# इकाई– 1

## नगरीय समाजशास्त्रः उत्पत्ति, प्रकृति, विषय वस्तु, क्षेत्र और महत्व
## (Urban Sociology: Origin, Nature, Subject Matter, Scope & Importance)

### इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 नगरीय समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषाएं

1.4 नगरीय समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास

1.5 नगरीय समाजशास्त्र की प्रकृति

1.6 नगरीय समाजशास्त्र की विषय वस्तु

1.7 नगरीय समाजशास्त्र का क्षेत्र

1.8 नगरीय समाजशास्त्र का महत्व

1.9 सारांश

1.10 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

### 1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे।
1– नगरीय समाजशास्त्र का अर्थ, अवधारणा का स्पष्टीकरण वं परिभाषायें।
2– नगरीय समाजशास्त्र की उत्पत्ति वं विकास।
3– प्रकृति वं विषयवस्तु का स्पष्टीकरण।
4– नगरीय समाजशास्त्र का महत्व।

### 1.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम सब जानते हैं नगरीय समाजशास्त्र एक नवीन विषय है, जो अनेक नगर तथा नगरीय समुदाय से सम्बन्धित है। नगरीय समुदाय की जीवन पद्धति, नगरीय जीवन, पारिवारिक व्यवस्था तथा सामाजिक सम्बन्धों का सविस्तार विश्लेषण करता है। यद्यपि नगरीय अध्ययन प्राचीन समय से ही एक प्रमुख विषय के रूप में प्रचलित रहा है, किन्तु 16वीं शताब्दी में इटली के विचारक गियोवानी बोटरो ने नगरों के अध्ययन को प्रारम्भ किया था। इसके पश्चात् पार्क तथा बर्गेस ने नगरीय

समाजशास्त्र को आगे बढ़ाने में विशेष सहयोग प्रदान किया। पार्क की पुस्तक ''दि सिटी'' (1925) तथा बर्गेस की ''दि अर्बन कम्युनिटी'' (1925) के प्रकाशन ने नगरीय समाजशास्त्र को स्थापित करने में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वह्न किया।

## 1.2 नगरीय समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषायें

प्रत्येक मानव समूह जिस समुदाय तथा जिस समाज में रहता है। उसका उसके व्यक्तित्व व्यवहार तथा जीवन स्तर पर विशेष प्रभाव पड़ता है। चूंकि मानव समाज का एक अभिन्न अंग माना जाता है। अतः उसके विभिन्न सामाजिक समूहों का उस पर विशेष प्रभाव पड़ता है। विभिन्न सामाजिक समूहों के अन्तर्गत ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्र तथा नगरीय तथा ग्रामीण पर्यावरण व संस्कृति का विशेष स्थान होता है। जिसका मानव के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक जीवन पर भी एक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

नगरीय समाजशास्त्र वर्तमान समय में समाज शास्त्र की एक महत्वपूर्ण उपशाखा है। जिसके अन्तर्गत नगरीय जीवन, जीवन स्तर, विभिन्न सामाजिक घटनायें, सामाजिक समस्याओं तथा नगरीय सामाजिक क्रियाओं, सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक संरचनाओं का सम्पूर्ण वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। नगरीय समाजशास्त्र को दो शब्दों 'नगरीय' तथा 'समाजशास्त्र' से समझ सकते हैं। 'नगरीय' शब्द का अर्थ नगरीय समुदाय जिसमें व्यक्ति, परिवार व सामाजिक सम्बंधों जो ग्रामीण समुदाय से विपरीत जीवन पद्धति वाला हो। समाजशास्त्र से तात्पर्य समाज विभिन्न सामाजिक संस्थायें तथा मानवीय सामाजिक सम्बनधों के अध्ययन से होता है। इस प्रकार नगरीय समाजशास्त्र से तात्पर्य नगरीय समाज में जीवन–यापन करने वाले लोगों के सामाजिक सम्बन्ध एवं उनके जीवन से सम्बन्धित अध्ययन से सम्बंधित है।

**नगरीय समाजशास्त्र की परिभाषाएँ–**

1– एण्डरसन के अनुसार – ''नगरीय समाजशास्त्र कस्बों एवं नगरों में समाज और जीवन के ढंग से संबंधित है।''[1]

2– एल0 डब्ल्यू0 ब्राइस एवं बैंजामिन खान के अनुसार – ''नगरों का अध्ययन व उससे सम्बन्धित तमाम समस्याओं का अध्ययन समाजशास्त्र की एक नवीन एवं महत्वपूर्ण शाखा नगरीय समाजशास्त्र में किया जाता है। ये नगरीय समस्याएँ मानवीय समस्याएँ हैं और इनका हल मनुष्य के द्वारा मानवीय ढंग से ही होना चाहिए।''[2]

3–बर्गल के कथनानुसार, ''नगरीय सामाजिक क्रियाओं, सामाजिक सम्बंधों, सामाजिक संस्थाओं पर नगरीय जीवन के प्रभाव एवं नगरीय जीवन के ढंग पर आधारित और इससे विकसित सभ्यताओं के प्रकारों से सम्बंधित है।''[3]

4–इरिवसन –''एक सामाजिक वैज्ञानिक के रूप में नगरीय समाजशास्त्री उस सम्पूर्ण जटिल परिस्थिति एवं उन सभी अर्न्तसम्बंधों में रूचि रखता है, जो कि नगरीय सामाजिक जीवन का निर्माण करते हैं। यह नगरीय समग्र के किसी एक अंग में नहीं, अपितु सम्पूर्ण नगरीय समग्र का अध्ययन करता है।''[4]

5– हॉब हाउस–''नगरीय समाजशास्त्र नगर के जीवन और समस्याओं का विशिष्ट अध्ययन है।''[5]

6– लुइस वर्थ के अनुसार– ''नगरवाद एक विशेष प्रकार की जीवन पद्धति को कहते हैं।''

7– लॉरी नेल्सन के अनुसार– ''नगरीय समाजशास्त्र, नगरीय पर्यावरण में मनुष्यों और नगरीय समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है।''[6]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि अनेक समाजशास्त्रियों एवं विद्वानों ने नगरीय समाजशास्त्र को नगरीय जीवन एवं इससे सम्बन्धित विभिन्न सामाजिक समूहों के अध्ययन विषय के रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है।

वास्तव में नगरीय समाजशास्त्र मुख्य रूप से नगरीय समाज की अनेकों सामाजिक क्रियाओं, व्यक्तियों के मध्य सामाजिक सम्बन्धों, विभिन्न सामाजिक संस्थाओं नगरीय सामाजिक संरचनाओं एवं संस्कृति पर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों के अध्ययन विषय से सम्बन्धित एक विषय है।

## 1.3 नगरीय समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास

नगरीय समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास की व्याख्या से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि वास्तव में नगर की स्थापना कब हुई? नगर की स्थापना के संदर्भ में कहा जाता है कि प्रौद्योगिक विकास, औद्योगिकीकरण तथा नगरीकरण के कारण नगरों का विकास हुआ। जनसंख्या वृद्वि तथा अधिक अन्न उत्पादन प्रणाली ने धीरे–धीरे ग्रामीण जीवन को खत्म करना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही प्रौद्योगिक विकास व मशीनीकरण ने कार्य करने के दूसरों अवसरों को भी जन्म दिया। इसी प्रकार यातायात के बढ़ते अवसरों ने भी नगरों को विकसित करने में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वह्न किया है। राबर्ट मैक एडम्स ने अपने 'नगर के विकास निबंध' में इस तथ्य पर अत्यधिक बल देते है कि ''नगर विकास में सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन की निर्णायक भूमिका रही है, जिसका पर्यावरण में परिवर्तन से सीधा संबंध जोड़ना उचित नहीं है, बल्कि नई संस्थाओं का अभ्युदय और विविध सामाजिक इकाईयों की जटिलता नगरों के विकास में सहायक रही है।''[7]

इसी प्रकार राबर्ट एडम का कहना है कि, नगर और गाँव को आर्थिक–आधार पर अलग नहीं करना चाहिए, बल्कि आज किसी सीमा तक दोनों में साँस्कृतिक और पर्यावरणीण घनिष्ट सम्बन्ध है। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि नगर और गाँव के मध्य अन्तर की कोई स्पष्ट रेखा खींचना आज दुरुह कार्य है। फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि गाँव की अपेक्षा नगरीय समाज में प्रकार्यात्मक रूप में दूसरों पर अधिक निर्भर रहता है।'[8]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाज में हो रहे निरन्तर परिवर्तन, प्रौद्योगिक विकास, औद्योगीकरण तथा आवागमन के सुलभ साधनों की नगरों के विकास में एक प्रमुख भूमिका है।

नगरीय समाजशास्त्र की उत्पत्ति तथा विकास के सन्दर्भ में यदि बात की जाये तो प्रसिद्व अमेरिकन समाजशास्त्री राबर्ट पार्क को नगरीय समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है। सन् 1925 में राबर्ट पार्क की पुस्तक 'द सिटी' का प्रकाशन हुआ। इसी वर्ष बर्गेस की 'दि अर्बन कम्युनिटी' नामक पुस्तक का भी प्रकाशन हुआ, जिसने नगरीय समाजशास्त्र को विकसित करने का प्रयास किया।

नगरीय समाजशास्त्र के प्रारम्भिक अवस्था में यह विषय परिस्थितिशास्त्रीय अध्ययन से सम्बन्धित है, जिसमें प्रमुख रूप से नगरों की विभिन्न समस्याओं एवं समाज के प्रमुख स्वरूपों को अध्ययन किया जाता था। चूँकि 1925 ई0 से 1950 ई0 के मध्य अनेक समाजशास्त्रियों द्वारा नगरों से सम्बन्धित अनेक अध्ययन किये गये। अतः इस समय या काल को नगरीय समाजशास्त्र का विकास काल कहा

गया। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अमेरिका के शिकागो विश्द्यवविद्यालय में नगरीय समाजशास्त्र में उल्लेखनीय कार्य हुए। जिसने नगरीय समाजशास्त्र को एक नयी दिशा देने का कार्य किया, जिसमें 1927–Redford, reading in Urban sociology, 1928 Anderson and lindman, Urban Sociology, 1929. Sorokin and zimmerman, Rural Urban Sociology, 1929, Lynd and Lynd, The Middle Town आदि पुस्तकों के प्रकाशन ने नगरीय समाजशास्त्र को आगे बढ़ाने में विशेष सहयोग प्रदान किया। इसके अतिरिक्त 1915–Graham R.Taylor, satellite cities, a study of industrial suburbs, 1925-mildred l. hart sough, The Twin cities as a matropolition Market 1933, R.d.Mackenzie The Metropolition community. 1937, Coluin F.Schmid, social Sage of the cities. पुस्तकों को प्रकाशन ने जो कि राजधानियों से सम्बंधित है, ने भी नगरीय समाजशास्त्र को समृद्ध करने में अपना विशेष सहयोग प्रदान किया। अन्य देशों की तुलना में भारत में नगरीय समाजशास्त्र का विकास धीमी गति से हुआ, किन्तु डॉ0 बी0 के0 आर0 वी0 राव के द्वारा विभिन्न नगरीय क्षेत्रों के अध्ययन ने इसे एक गति देने का प्रयास किया, जिसमें दिल्ली के फरीदाबाद, नीलीखीरी तथा राजपूरा क्षेत्र के अध्ययनों की विशेष भूमिका है। डॉ0 राव के अतिरिक्त भारत में नगरीय समाजशास्त्र को एक नयी दिशा देने डॉ0 टी0 आर0 गाडगिल, डॉ0 आई0 पी0 देसाई तथा डॉ0 जे0 एस0 घुरिये का नाम महत्वपूर्ण है।

अतः कहा जा सकता है कि नगरीय समाजशास्त्र एक विशेष विज्ञान के रूप में स्थापित हो रहा है तथा मानव के नगरीय जीवन से सम्बंधित प्रत्येक परिप्रेक्ष्य का इस अध्ययन में गहन अध्ययन किया जा रहा है।

## 1.4 नगरीय समाजशास्त्र की प्रकृति

नगरीय समाशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक मानी जाती है, क्योंकि इसका अध्ययन वैज्ञानिक तरीके से क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित तरीके से किया जाता है। समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक क्यों है? इसे निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

**1) वैज्ञानिक पद्वति का प्रयोग–** नगरीय समाजशास्त्र के अध्ययन वैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर किये जाते हैं। तथ्यों का संकलन एवं स्पष्टीकरण तथा विभिन्न नियमों का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धतियों जैसे–अवलोकन पद्धति, व्यक्तिगत जीवन अध्ययन पद्धति, सर्वेक्षण पद्धति, समाजमिति एवं प्रयोगात्मक पद्धति तथा वर्गीकरण एवं सारणीयन पद्धति द्वारा किया जाता है। जिससे अध्ययन में यथार्थ निष्कर्ष प्राप्त किया जा सके।

**2) सार्वभौमिक–**नगरीय समाजशास्त्र में सार्वभौमिकता का गुण पाया जाता है, क्योंकि इसके नियम सभी जगह व्याप्त है तथा सभी स्थानों में समान रूप से लागू किये जाते हैं। जैसे औद्योगीकरण तथा नगरीकरण से नगरों का विकास एवं विस्तार होता है तथा इससे आवास की समस्या एवं मलिन बस्तियों का निर्माण होता है।

**3) सिद्वान्तों का पुनः परीक्षण सम्भव–** नगरीय समाजशास्त्र में जिन सिद्धान्तों एवं तथ्यों का निर्माण किया जाता है। उनकी पुर्नपरीक्षा भी की जा सकती है, क्योंकि किसी भी सिद्वान्त या तथ्यों के निर्माण के पश्चात वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग कर उन सिद्धान्तों की प्रमाणिकता को जानने के लिए उनकी पुनः सत्यता की परीक्षा करना सम्भव होता है।

**4) भविष्यवाणी–** नगरीय समाजशास्त्र के तथ्यों एवं सिद्धान्तों का निर्माण चूंकि वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग करके किया जाता है, किन्तु इस समाजशास्त्र में भी भविष्य में होने वाले परिवर्तनों, विकास की गति एवं प्रगति की भविष्यवाणी वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर पर की जा सकती है। जैसे अत्यधिक तेजी से बढ़ते हुए मलीन बस्तियों के दुष्परिणामों एवं दुष्प्रभावों का नगरों पर पडने वाले प्रभाव की भविष्यवाणी की जा सकती है।

**5) यथार्थ निष्कर्ष पर आधारित–** नगरीय समाजशास्त्र में समाजिक तथ्यों को उनके मौलिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। साथ ही प्राप्त तथ्यों के आधार पर सिद्धान्तों एवं नियमों का निर्माण किया जाता है।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि भौतिक विज्ञानों की तरह नगरीय समाजशास्त्र की प्रकृति पूर्णरूप से विज्ञान नहीं है, तथापि दिन–प्रतिदिन वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग से इसकी प्रकृति को अधिक से अधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

## 1.5 नगरीय समाजशास्त्र की विषय वस्तु

नगरीय समाजशास्त्र चूंकि एक नवीन विज्ञान है। अतः इसकी विषय वस्तु पर सविस्तार चर्चा करना आवश्यक हो जाता है। चूंकि नगरीय समाजशास्त्र नगरों एवं नगरीय जीवन के विभिन्न पक्षों की व्याख्या करता है। अतः नगरीय समाजशास्त्र की विषय वस्तु को निम्नांकित तीन आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है।

**1– परिचयात्मक विषय वस्तु–** परिचयात्मक विषय वस्तु के अन्तर्गत तीन प्रमुख भागों को सम्मिलित किया गया है।

**2– नगरीय परिस्थिति शास्त्र–** नगरीय परिस्थितिशास्त्र के अन्तर्गत नगरीय समुदाय के स्वरूप, समुदाय की संरचना, सामाजिक व्यवस्था एवं सांस्कृतिक व्यवस्था को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

**3– विश्लेषणातमक विषय वस्तु–** विश्लेषणात्मक विषयवस्तु के अन्तर्गत नगरीय समुदाय के विभिन्न पक्षों के अध्ययन को अध्ययन विषय में सम्मिलित किया है, जैसे– नगर की अवधारणा। उत्पत्ति, प्रकार पर्यावरण, संस्कृति, व्यवसाय, नगरीय जनसंख्या तथा नगरीय समुदाय, विशेषतायें तथा समुदाय की विवेचना एवं विश्लेषण, इसके साथ ही नगरीकरण, नगरीकरण की प्रक्रिया, प्रभाव, नगरवाद एवं नगरीय जीवन पद्धति आदि।

**4– सुधारात्मक विषय वस्तु–** सुधारात्मक विषयवस्तु के अन्तर्गत नगरीय व्याधिकी अर्थात् नगरीय समस्याओं के विश्लेषण एवं उपचार से सम्बंधित अध्ययन तथा नगरीय नियोजन के अन्तर्गत नगरों के पुनर्निर्माण एवं नियोजन में होने वाले सामाजिक परिवर्तन से संबंधित अध्ययन से सम्बंधित है। नगरीय समाजशास्त्र की विषय वस्तु को पार्क एवं बर्गेस ने तीन भागों में विभाजित किया है–

- **नगरीय परिस्थितिशास्त्र–** इसके अन्तर्गत मानव जीवन पर नगरीय भौगोलिक स्थिति, नगरीय पर्यावरण तथा संरचना के पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।
- **नगरीय सामाजिक संगठन–** नगरीय सामाजिक संगठन में नगरीय समुदाय, परिवार, पड़ोस, जातियाँ, विभिन्न प्रकार की संस्थायें जैसे– सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं

मनोरंजनात्मक संगठन के स्वरूपों एवं उनके मध्य पाये जाने वाले सामाजिक संबंधों को अध्ययन विषय में सम्मिलित किया गया है।

- **नगरीय सामाजिक विघटन–** नगरीय समुदाय की विभिन्न समस्याओं जो नगरीय समाज को विघटित करता है जैसे–अपराध, वैश्यावृत्ति, बेराजगारी, भिक्षावृत्ति, मद्यपान, बाल अपराध, नशाखोरी, जुआ, पारिवारिक तनाव, संघर्ष तथा विवाह–विच्छेद आदि को नगरीय समाजशास्त्र की विषय वस्तु के रूप में अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीय समाजशास्त्र में नगरीय जीवन के प्रत्येक परिप्रेक्ष्य जैसे नगरीय सामाजिक संरचना, सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक परिवर्तन, नगरीकरण, औद्योगीकरण, पश्चिमीकरण, लौकिकीकरण, आधुनिकीकरण, नगरीय सामाजिक पुर्ननिर्माण एवं नियोजन तथा नगरीय समस्याओं को नगरीय समाजशास्त्र की अध्ययन विषयवस्तु में सम्मिलित किया गया है।

## 1.6 नगरीय समाजशास्त्र का क्षेत्र

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि नगरीय समाजशास्त्र एक आधुनिक सामाजिक विज्ञान है, जो नगरीय जीवन के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों का अध्ययन करता है, जिसमें नगरीकरण, नगरवाद तथा नगरीय परिस्थितिशास्त्र प्रमुख है। वास्तव में नगरीय समाजशास्त्र मानवीय समाज के अतीत एवं भविष्य व भविष्य में होने वाले अनेकों परिवर्तनों का अध्ययन भी करता है। अतः आधुनिकीकरण की तरफ बढ़ते नगरीय जीवन को समझने के लिए यह विज्ञान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

पार्क तथा बर्गेस ने नगरीय समाजशास्त्र के क्षेत्र को तीन तथ्यों के आधार पर स्पष्ट किया है–

**1– परिस्थितिशास्त्र–** नगरों में पायी जाने वाली भौगोलिक एवं प्राकृतिक परिस्थितियों का अध्ययन इसमें किया जाता है। पार्क और बर्गेस ने इसे दो भागों में बाँटा है–मानव परिस्थितिशास्त्र तथा सामाजिक परिस्थितिशास्त्र। आज दोनों समाजशास्त्रियों का मानना है कि परिस्थितियाँ प्रत्येक स्थान में एक समान नहीं होती हैं तथा परिस्थितियाँ प्रत्येक स्थान में एक समान नहीं होती हैं तथा परिस्थितियाँ मानव व्यवहार, जीवनशैली तथा सामाजिक सम्बन्धों को सर्वाधिक प्रभावित करती है।

**2– सामाजिक संगठन–** नगरीय समाजशास्त्र में सामाजिक संगठन एक महत्वपूर्ण अध्ययन क्षेत्र है। पार्क तथा बेंतस का मानना है कि नगरीय सामाजिक संगठन, ग्रामीण सामाजिक संगठन से पूर्णतया भिन्न है। अतः उनके बारे में जानना अत्यंत आवश्यक है। सामाजिक संगठन के अंतर्गत प्राथमिक तथा द्वितीयक समूह जो सामाजिक संगठन को व्यवस्थित रखने में अपना सहयोग देते हैं, को अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित किया गया है। इसके अलावा इसके अन्तर्गत विभिन्न वर्ग, परिवार, जाति, सामाजिक संस्थाएं, आर्थिक तथा मनोरंजनात्मक व राजनैतिक संस्थाओं का विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

**3–सामाजिक विघटन–** नगरीय जीवन वृहद होने के कारण अनेक विघटन शक्तियों को बढ़ाने का कार्य करता है। अतः नगरीय समाजशास्त्र में विघटनकारी शक्तियों का अध्ययन किया जाता है। प्रमुख विघटनकारी शक्तियों मे जैसे–अपराध, मलिन बस्तियाँ, नशाखोरी, वैश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति, भ्रष्टाचार, पारिवारिक तनाव एवं संघर्ष व विवाह–विच्छेद आदि का अध्ययन नगरीय समाजशास्त्र के अंतर्गत किया जाता है।

पार्क तथा बर्गेस के अतिरिक्त अनेक समाजशास्त्रियों ने नगरीय समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र को अनेक भागों में विभक्त किया है–

**1– सामुदायिक जीवन का अध्ययन–** नगरीय समाजशास्त्र में नगर की सरंचना तथा नगरीय जीवन के सामाजिक संबंधों एवं कार्यात्मक विभाजन का अध्ययन किया जाता है

**2– संगठनात्मक पक्षों का अध्ययन–** नगरीय समाजशास्त्र के अन्तर्गत प्राथमिक तथा द्वितीयक सामाजिक संगठनों का सविस्तार अध्ययन किया जाता है।

**3– जीवन पद्धति का विश्लेषण–** नगरीय जीवन शैली नगरीकरण का परिणाम मानी जाती है जो पूर्णतया ग्रामीण जीवन शैली से विपरीत है। नगरीय जीवनशैली, वेशभूषा, व्यवहार करने का तरीका, भाषा शैली इत्यादि का अध्ययन नगरीय समाजशास्त्र के अंतर्गत किया जाता है।

**4– आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन का अध्ययन–** नगरीय समाज में आर्थिक अर्थ व्यवस्था को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। जिसमें अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार उद्योग–धंधे होते हैं जिसके परिणामस्वरूप नगरीय गतिशीलता को बढ़ावा मिला है। इसी प्रकार नगर राजनीतिक केन्द्र होने के कारण नगरीय समाज के प्रत्येक परिप्रेक्ष्य को भी प्रभावित करता है। अतः नगरीय समाजशास्त्र में नगरीय आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन का अध्ययन किया जाता है।

**5–नगरीय समस्याओं का अध्ययन–** नगर तथा नगरीकरण से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का अध्ययन भी नगरीय समाजशास्त्र के अंतर्गत किया जाता है।

**6– सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन–** सामाजिक प्रक्रियायें, सामाजिक संगठन एवं समाज को व्यवस्थित रखने में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वहन करते हैं। नगरीय सामाजिक प्रक्रियाओं में सहयोगी, असहयोगी, विभेदीकरण तथा प्रतिस्पर्धा आदि प्रमुख हैं। जिन्हें नगरीय समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित किया गया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीय समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। जैसे–जैसे नगर, नगरों के आकार, सामाजिक संरचना, विभिन्न परिप्रेक्ष्य सामाजिक समस्याओं का क्षेत्र विस्तृत होगा, वैसे–वैसे नगरीय समाजशास्त्र का क्षेत्र भी विस्तृत होता जायेगा।

## 1.7 नगरीय समाजशास्त्र का महत्व

आधुनिक समाज विकास एवं प्रौद्योगिक विकास का द्योतक है और जैसे–जैसे नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता आती है वैसे–वैसे नगरीय समाजशास्त्र की उपयोगिता भी बढ़ती जाती है। ऐसा माना जाता है कि जैसे ही विकास की प्रक्रिया में तीव्रता आती है। वैसे ही समाज में अनेकों कई समस्यायें भी उत्पन्न होती हैं। अतः इन समस्याओं को समझने व निराकरण करने के लिए नगरीय समाजशास्त्र एक महत्वपूर्ण विज्ञान के रूप में उभर कर सामने आ रहा है।

नगरीय समाजशास्त्र के महत्व को निम्नांकित तथ्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

**1–विशिष्ट शाखा–**नगरीय समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा है। जिसके अंतर्गत नगरीय तथा नगरीय परिस्थितियों में व्यक्ति तथा समाज के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों का अध्ययन किया जाता है। जिनका अध्ययन किसी भी अन्य सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत नहीं किया जाता है।

**2–वैज्ञानिक अध्ययन–** नगरीय समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक है। अतः इसमें वैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों की सहायता से नगरीय सामाजिक समूह, संस्थायें, संगठन तथा संरचना का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है।

**3–विभिन्न समस्याओं का अध्ययन–** नगरीय समाज एक जटिल समाज माना जाता है। जटिल समाज होने के कारण यहां अनेकों प्रकार की समस्यायें भी उत्पन्न होती रहती हैं। अतः नगरीय समाजशास्त्र के अंतर्गत इन समस्याओं का गहन अध्ययन किया जाता है। जिससे भविष्य में इन समस्याओं को सुलझाने में मदद मिल सके।

**4–नगर नियोजन में सहायक–** नगरों के विकास में नगर नियोजन का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अतः नगरीय समाजशास्त्र इस दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है कि इसने नगरों की संरचना तथा उसे व्यवस्थित रूप प्रदान करके विकास की दिशा में अनेक नगर नियोजन की नीतियों की अध्ययन विषय में सम्मिलित किया गया है।

**5–प्रगति एवं विकास में सहायक–** नगरीय समाजशास्त्र के अंतर्गत नगरीय संरचना तथा नगरीय समाज के विभिप्न परिप्रेक्ष्यों का अध्ययन किया जाता है। जिससे उसमें परिवर्तन, विकास तथा प्रगति का भी समय–समय आंकलन किया जा सकता है।

**6–नगरीय परिवर्तन–** नगरीय समाजशास्त्र में नगरों में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों का भी अध्ययन किया जाता है, जिससे नगरीय समाज में होने वाले परिवर्तनों को भी देखा जा सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीय समाजशास्त्र का अपना एक विशेष महत्व है, क्योंकि औद्योगिक विकास ने जहां एक ओर नगरों को विकसित करने में अपना विशेष योगदान दिया है। वहीं दूसरी ओर अनेक नगरीय समस्याओं को भी उत्पन्न किया है। अतः एक पृथक विज्ञान के रूप में नगरीय समाजशास्त्र इन सबका विस्तृत अध्ययन कर उन कारणों की भी व्याख्या करता है। जिससे भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों से बचा जा सके।

## 1.8 सारांश

इस प्रकार सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि नगरीय समाजशास्त्र नगरों की संरचना, नगरीय समाज एवं जीवन स्तर के अध्ययन से संबंधित समाजशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा है। नगरीय समाजशास्त्र की उत्पत्ति के विषय में यदि चर्चा की जाए तो यह विज्ञान अति प्राचीन विज्ञान नहीं है, बल्कि कई समाजशास्त्रियों ने तो इसे आधुनिक समय के अध्ययन के रूप में भी परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। नगरीय समाजशास्त्र के अध्ययन के महत्व को इस बात से भी समझा जा सकता है कि यह अध्ययन जहाँ एक ओर नगरीय समाज, संगठन, संस्थाएँ तथा समूहों का विस्तृत अध्ययन करता है। वहीं दूसरी ओर नगरीय जीवन से उत्पन्न होने वाले अनेकों समस्याओं को भी स्पष्ट करने का प्रयास करता है। जिससे प्रगति एवं विकास में होने वाली बाधाओं एवं दुष्परिणामों को भी भविष्य में दूर किया जा सके।

**बोध प्रश्न–01**

**रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–**

1–नगरीय समाजशास्त्र दो शब्दों..... तथा .....से मिलकर बना है।
2–समाजशास्त्र से तात्पर्य.....के अध्ययन से होता है।
3–नगरीय समाजशास्त्र.....में समाज और जीवन के ढंग से संबंधित है।
4–नगरवाद एक विशेष प्रकार की .....को कहते हैं।

**बोध प्रश्न–02**

**सत्य–असत्य**

1–प्रौद्योगिक विकास, औद्योगीकरण तथा आवगमन के सुलभ साधनों की नगरों के विकास में प्रमुख भूमिका है। सत्य/असत्य

2–21वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में नगरीय समाजशास्त्र के सम्बन्ध में कार्य हुए। सत्य/असत्य

3–अन्य देशों की तुलना में भारत में नगरीय समाजशास्त्र का विकास धीमी गति से हुआ। सत्य/असत्य

4–नगरीय समाजशास्त्र की प्रकृति अवैज्ञानिक है। सत्य/असत्य

**बोध प्रश्न–03**

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिये?

1–नगरीय समाजशास्त्र की विषयवस्तु के तीन आधारों को स्पष्ट करिये?

2–पार्क तथा बर्गेस की विषयवस्तु को स्पष्ट करे।

3–सामाजिक संगठन को स्पष्ट करिये?

## 1.9 अभ्यास एवं बोध प्रश्नों के उत्तर

**उत्तर बोध प्रश्न– 01**

1. नगरीय तथा समाजशास्त्र
2. समाजिक संस्थायें तथा मानवीय सामाजिक संबंधों
3. कस्बों एवं नगरों
4. जीवन पद्धति

**बोध प्रश्न– 02**

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

## 1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Nels Anderson, The Urban Community, P- 21
2. श्रीमती एल0डब्ल्यू ब्राइस एवं बेंजामिन खान, 'नगरीय समाजशास्त्र की प्रस्तावना', पृ0सं0 7
3. E.E.Bergal, urban sociology, p 3
4. E.G.Erickson, Urban Sociology, p-464
5. House, The Development of Sociology, p-338

6. Nels Anderson, The Urban Community, p -21

7. डॉ0 वी0 एन0 सिंह तथा जनमेजय सिंह, नगरीय समाजशास्त्र, पे0 नं0 09

8. उपरोक्त पे0 न.0 10।

## 1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1—नगरीय समाजशास्त्र क्या है? परिभाषित कीजिए?

2—नगरीय समाजशास्त्र के विकास के बारे में आप क्या सोचते हैं?

3—नगरीय समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक है? स्पष्ट करिये।

4—नगरीय समाजशास्त्र के क्षेत्र तथा महत्व को स्पष्ट करिये।

इकाई– 2

# नगरीय समाजशास्त्र के माध्यम एवं साधन
# (Methods and Tools of Urban Sociology)

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 शोध की कार्यनीति

2.3 नगरीय शोध के लिये विश्लेषण के स्तर और कार्य

2.4 आंकड़ों का संग्रहण एवं विश्लेषण

2.5 नगरीय विश्लेषण के अवधारणात्मक साधन

2.6 आंकड़ों के स्रोत और संसाधन

2.7 नगरीय शोध के लिये उपलब्ध संसाधन

2.8 शोध के अनिवार्य तत्व

2.9 शोध की उपयोगिता

2.10 निष्कर्ष

2.11 अभ्यास प्रश्न

2.12 सहायक अध्ययन

## 2.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जान सकेंगेः

1. शोध के लिये जरूरी कदम और साधन कौन से हैं?
2. शोध कार्य के लिये आंकड़े जुटाने के तरीके और इसके लिये साधनों का उपयोग।
3. शोधकार्य के उपयोगी पहलू एवं समाज को लेकर इनकी प्रासंगिकता।

## 2.1 परिचय (Introduction)

बीते कुछ वर्षों में नगरीय शोधकार्य का महत्व न सिर्फ बढ़ा है, बल्कि इसे वैश्विक पहचान भी मिली है। 20वीं सदी के अंत में शहरों और उनके पर्यावरण के बीच अंतर्संबंध के बढ़ते महत्व के चलते नगरीय घटनाओं–कारकों को समझना बेहद महत्वपूर्ण हो गया (Henderson & Castells, 1987; King, 1990; Smith & Feagin, 1987). नगरीय प्रक्रिया स्थानिक और क्षेत्रीय से लेकर वैश्विक व्यवस्था तक किसी शहर को आकार देने और उसकी पुनर्स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। परिवर्तन की प्रक्रिया पर ही यह निर्भर होता है कि नगरीय क्षेत्र कैसा आकार पाता है और नगरीय कारकों–घटनाओं को लेकर हम क्या सोचते–समझते हैं। शोधकर्ताओं ने नगरीय क्षेत्रों (विशेषकर औद्योगिक देशों के) में तकनीक और सुरक्षा व्यवस्था की विश्वसनीयता, इनके क्रियान्वयन,

स्थानिक प्रतिबद्धता, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के प्रभाव, इन सभी बिंदुओं के अंतर्सम्बंध और इनसे मिलने वाले परिणामों के अध्ययन का प्रयास किया है। (Harvey, 1989; Sorokin, 1992). इन अंतर्सम्बंधों के स्पष्ट होने से हमें इन सवालों के जवाब आसानी से मिल जाते हैं:

1. शहरीकरण के विकासपरक पैटर्न क्या हैं?
2. नगरीय क्षेत्रों एवं वैश्विक अर्थव्यवस्था का संबंध।
3. शहरीकरण और लोगों के बीच बदलते संबंधों का पैटर्न।

इन सवालों के उत्तर तलाशने की कोशिश में शोधकर्ता निरंतर प्रयासरत रहे हैं और इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप विभिन्न शोध माध्यम (Research Methods) विकसित हुए जो डाटा विश्लेषण, सर्वेक्षण, नृवंशविज्ञान (Ethnography) पर आधारित हैं। इनके जरिये नगरीय घटनाक्रम का पूरा वर्णन आसानी से हासिल किया जा सकता है। (e.g., Gottdiener & Pickvance, 1991).

## 2.2 शोध की कार्यनीति (Strategy of Research)

रणनीतिक विचार का महत्व यह है कि इसके जरिये शोधवस्तु की संपूर्णता को समझना और इसके बाद व्यवस्थित दृष्टिकोण को अपनाते हुए कदम दर कदम आवश्यक जानकारियां जुटाकर शोध को पूर्ण किया जा सकता है। इस प्रक्रिया को पीछे की ओर सोचना कहा जाता है, यानी पहले संपूर्णता को जानना और फिर इस संपूर्णता को हासिल करने के लिये आवश्यक कदम बढ़ाना। इस प्रक्रिया में निम्नवत सूचनाओं, जानकारियों को जुटाना आवश्यक होता है:

1. शोध की प्रासंगिकता को परिभाषित करना
2. परिवर्तनशीलता की पहचान
3. विश्लेषण के विभिन्न स्तरों को समझना एवं इनके अंतर्संबंध
4. आंकड़ों के स्रोतों की पहचान
5. संग्रहीत आंकड़ों का मूल्यांकन
6. ऐसे स्रोतों की खोज, जिनके जरिये संसाधनों तक पहुंचा जा सके
7. ऐसे ठोस और आदर्श शोध प्रारूप की पहचान, जिनसे सशक्त निष्कर्षों तक पहुंचा जा सके
8. शोध से लाभान्वित होने वाले वर्ग की पहचान और वह तरीका, जिससे शोधकर्ता अपने निष्कर्षों को उनके समक्ष प्रस्तुत करने वाला है

## 2.3 नगरीय शोध के लिये विश्लेषण के स्तर और कार्य (Level of Analysis and Its Function in Urban research)

विश्लेषण के स्तर (Levels of Analysis) शोधकर्ता को नगरीय क्षेत्रों के स्थानिक अंतर्संबंध को स्थापित कर पाने में मदद करते हैं। नगरीय व्यवस्था में स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक गतिविधियां अलग–अलग स्तरों पर संचालित होती रहती हैं। ऐसे में शोधकर्ता विश्लेषण के विभिन्न स्तरों को पदानुक्रम (Hierarchy) के हिसाब से तय कर समस्या का समाधान तलाश कर सकता है, जिसमें सरकार अथवा गैर सरकारी संगठन माध्यम हो सकते हैं। इस तरह हर स्तर समस्याओं को बेहतर ढंग से समझने और उनके निस्तारण के तरीकों को जान पाने में मददगार होता है। यह जरूरी है कि शोधकर्ता संपूर्ण शोधकार्य में हर स्तर के योगदान को भली–भांति जानता हो और उसे यह मालूम हो कि नगरीय घटनाक्रमों के विश्लेषण में कौन सा स्तर कितना उपयोगी होने वाला है तथा अलग–अलग स्तरों के बीच किस तरह जुड़ाव हो सकता

है। शोध का प्रारूप, आंकड़ों का संग्रहीकरण एवं विश्लेषण इस पर निर्भर करता है कि किसी विशेष शोध कार्य की कल्पना किस तरह की गयी है।
विश्लेषण के स्तर शोध प्रारूप, आंकड़ों के संग्रहीकरण एवं आंकड़ों के अध्ययन को केन्द्रित करने के साथ तीक्ष्ण भी बनाते हैं (Andranovich And Riposha, 2011). इससे विश्लेषण के विभिन्न स्तरों से चयन का भी अवसर मिलता है। यह प्रक्रिया शोधकर्ता को किसी समस्या अथवा मुद्दे को गहराई से समझने और विश्लेषण करने में मदद करती है। यह नगरीय घटनाक्रमों, मसलों, विषयों, मुद्दों के अध्ययन का महत्वपूर्ण साधन है, क्योंकि नगरीय घटनाएं विभिन्न कारकों (व्यक्ति, सरकारी संस्थान, छोटे–बड़े निजी हितधारक) की स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और वैश्विक क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं का परिणाम होती हैं।

सामान्यतः जब लोग नगरीय (Urban) शब्द के बारे में विचार करते हैं तो मन में किसी शहर की तस्वीर उभरती है। ऐसे में जब हम घटनाओं को नगरीय घटनाओं की तरह देखते हुए इसके बहुआयामों को विशेष दिशा में सीमित करके देखते हैं तो यह सवाल उठता है कि क्या हम वास्तव में शहर को किसी नगर (City) के एक आयाम के तौर पर देख सकते हैं? निश्चित रूप से नगर ऐतिहासिक रूप से वह केन्द्रबिन्दु रहे हैं, जो नगरीय क्षेत्र को बांधकर रखते हैं। लेकिन, नगरीय विश्लेषण में नगरों पर ध्यान केन्द्रित करना वस्तुतः ठोस, परिपूर्ण और जानकारियों से समृद्ध अवधारणा के महत्वपूर्ण परिदृश्य को अनावश्यक रूप से प्रभावित करेगा। इसीलिये शोधकर्ता को यह सुझाव दिया जाता है कि वह नगरीय क्षेत्र को किसी नगर, प्रदेश, राष्ट्रीय नगरीकृत व्यवस्था और वैश्विक व्यवस्था के एक अंग के रूप में देखे।

## 2.4 आंकड़ों का संग्रहीकरण एवं विश्लेषण (Data Collection and Data Analysis)

विश्लेषण के स्तर का सीधा प्रभाव आंकड़ों के संग्रहीकरण एवं इनके विश्लेषण पर दिखता है। नगर स्तर पर संग्रहीत परिवहन, ढुलाई का आंकड़ा छोटे उद्यमियों के हित में परिवर्तन कर सकने में मददगार हो सकता है। अगर शोधकर्ता क्षेत्रीय (Regional) स्तर पर परिवहन संबंधी आंकड़े जुटा रहा है तो उसे लघु उद्योगों और इनकी वित्तीय स्थिति के साथ इनके पर्यावरणीय असर को भी देखना होगा। ऐसी स्थिति में आंकड़े क्षेत्रीय मानकों के अनुरूप, दूसरे क्षेत्रों से यातायात एवं इस सबकी वजह से वायु में पर्यावरणीय नुकसान के तौर पर होने वाले प्रभाव के आधार पर संग्रहीत किये जायेंगे। आंकड़ों का संग्रहीकरण एवं इनका विश्लेषण अलग–अलग हो सकता है।

इस लिहाज से दो बिंदु अमल में लाये जाने चाहिये। 1. कोई नगरीय मुद्दा विभिन्न स्थानिक स्तरों पर सामने आ सकता है, 2. अलग–अलग स्थानिक स्तर किसी विशेष नगरीय मुद्दे को समझने–जानने के लिये अलग–अलग अवसर प्रदान करते हैं, जो परस्पर संबंधित तो होते हैं, लेकिन उनके आयाम अलग हो सकते हैं। अब यहां दो विरोध भी सामने आते हैं। नगरीय शोध प्रक्रिया का आधार अकसर स्थानविहीन होता है, यह स्थानिक (Spatial) एवं अस्थायी (Temporal) रूप से समझाया जाता है। हालांकि, इसके जरिये विभिन्न विश्लेषणात्मक जरूरतों को समझ पाना भी संभव होता है। चूंकि अधिकतर नगरीय शोध समस्याओं पर आधारित होते हैं, ऐसे में विभिन्न स्तरों पर जाने और घटनाओं के विभिन्न आयामों को समझने के लिये अनुभव के आधार पर मान्यता देने में सावधानी रखना आवश्यक होता है। जब हम किसी विशेष मानक का विभिन्न स्तरों पर परीक्षण करते हैं और स्थानिक पैमाने पर पदानुक्रम के हिसाब से इसे स्थानिक से वैश्विक स्तर तक ले जाते हैं तो संबंधित मुद्दे–विषय की विविधता, प्रभाव, सघनता बदलते जाते हैं। ऐसे में शोधकर्ता के लिये यह आवश्यक होता है कि वह शक्तियों (कारक, प्रक्रिया और पर्यावरण) की अवधारणा इस तरह बनाये रखे कि स्थानिक व्यवस्थाओं में विभिन्न पैमानों पर भी इनकी स्थिरता (Consistency) बनी रहे।

किसी विशेष शोध कार्य के दौरान अस्थायी रूप से विश्लेषण के विभिन्न स्तरों पर नगरीय घटनाक्रम बदलते हुए प्रतीत नहीं होते हैं। ये निरंतर प्रवाहमान और लंबे समय तक अपरिवर्तनीय महसूस होते हैं। अधिकतर आंकड़े देशांतर (Longitude) के बजाय किसी क्षेत्र में व्यापक प्रतिनिधित्व (Cross-Section) पर आधारित होते हैं, जो भविष्य में समस्या पैदा कर सकता है। इसकी निम्न वजहें हैं:

1. जब आंकड़ों का देशांतरीय विश्लेषण किया जाता है, लेकिन जिन आंकड़ों का इस्तेमाल किया गया है, वे उन सूचनाओं–जानकारियों पर आधारित हैं जो किसी समय पर एक ही स्थान से ली गयी थीं
2. जब शोधकर्ता नगरीय घटनाओं अथवा गतिविधियों की तस्वीरों को संग्रहीत कर लेता है, क्योंकि तात्कालिक घटना या गतिविधि की वीडियो उपलब्ध नहीं थी
3. यद्यपि इन तकनीकों का इस्तेमाल कई बार होता है, लेकिन देशांतरीय आंकड़ों की अनुपस्थिति के कारण आंकड़ों को दोबारा अर्जित कर पाना संभव नहीं होता

## 2.5 नगरीय विश्लेषण के अवधारणात्मक साधन (Conceptual Tools for Urban Analysis)

चूंकि शहर के जटिल सवालों को समझ पाना बेहद मुश्किल कार्य है, ऐसे में दो अन्य साधनों को गतिविधियों की पहचान और विश्लेषण के स्तरों पर सहायता के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है: प्रावधान की अवधारणा एवं उत्पादन की अवधारणा। इनके जरिये शोधकर्ता जटिल से जटिल घटनाक्रमों को समझ सकते हैं, फ्रेमवर्क तैयार कर परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

1. **प्रावधान (Provisions):** लॉसवेल (Lasswell, 1938) की 'Manifold of Events' में ऐसी राजनीतिक प्रक्रियाओं का जिक्र है, जो समाज अथवा सरकार की संगठन और निर्णय–निर्धारण क्षमता को प्रभावित करते हैं और जिनका परिणाम जनमूल्यों की गिरावट के तौर पर सामने आता है। ऐसे में प्रावधान न सिर्फ सरकारी कार्रवाई को लागू करते हैं, बल्कि औपचारिक एवं अनौपचारिक पहुंच के स्रोतों, प्रतियोगिता एवं सहयोग के ढांचे के निर्माण, संगठन और संचार को स्थापित करते हैं। इससे शोधकर्ता को नगरीय शासन, विशेष केन्द्रों, गलियों में होने वाले अपराधों, गिरोहों के परीक्षण का अवसर मिलता है, ताकि वह स्थानिक, क्षेत्रीय स्तर पर इनके प्रभाव को समझ सके।

2. **उत्पादन (Productions):** इसका अर्थ निजी क्षेत्र के संगठनों और व्यापार संबंधी मामलों के निस्तारण के लिये इनके द्वारा अपनाये जाने वाले तरीकों से है। आज के दौर में उत्पादन का अर्थ सिर्फ निर्माण एवं सेवाओं से नहीं रह गया है, बल्कि इसका तात्पर्य उच्च विशेषीकृत सेवाओं, जैसे– वित्तीय सेवाएं, कानूनी सेवाएं, रियल एस्टेट, निर्माण संबंधी सेवाएं, विज्ञापन, बीमा आदि, के विकास और इसके लिये संचार–नियंत्रण जैसी उच्चस्तरीय सुविधाओं की उपलब्धता से है। सासेन (Sassen, 1991, pp. 325-326) बताती हैं कि उत्पादन नगरीय शोधकार्य का महत्वपूर्ण केन्द्र है, क्योंकि यह उत्पादन क्षेत्रों को उभारता है और नगरीय अनुक्रम में नगरों के अंतर्सम्बंधों को स्पष्ट करता है। इस आधार पर शोधकर्ता उत्पादन एवं उपभोग (Production and Consumption) की व्यवस्था का परीक्षण कर सकता है, इनके प्रभावों को समझ सकता है और नगरीय पदानुक्रम में इनकी स्थिति को स्पष्ट कर सकता है। अब हम यह जानेंगे कि ये अवधारणाएं विश्लेषण के अलग–अलग स्तर पर कैसे काम करती हैं:

**प्रतिवेश स्तर (Neighbourhood Level)**

स्थानिक पदानुक्रम के एक ओर के अंतिम छोर पर प्रतिवेशी स्तर प्रारंभ होता है। सामान्य स्तर पर देखें तो प्रतिवेश अथवा पड़ोस का अर्थ किसी व्यक्ति के अपने घर के आसपास रहने वाले अन्य लोगों का समूह है। (Herson & Bolland, 1990, p. 158). आम तौर पर परंपराओं, बाजार, सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों, घरों के प्रकार आदि के लिहाज से अड़ोस–पड़ोस में एकरूपता नजर आती है। लेकिन, जैसे ही यह मानक या आयाम बदलता है, हमें प्रतिवेशी समुदायों (Neighbourhood Communities) में अंतर दिखने लगता है। (Zehner & Chapin, 1974). इसके साथ ही हम गुणवत्तापरक जीवनस्तर के अस्तित्व को लेकर सावधान हो जाते हैं, जो पड़ोस के स्तर पर प्रावधानों को प्रभावित करता है।

किसी नगर पर पड़ने वाले दबाव के लिये उस नगर के पड़ोस की परिस्थितियां और क्षेत्र जिम्मेदार होते हैं (Yates, 1980, p. 178). किसी नगर का पड़ोस, दरअसल आर्थिक विकास के संघर्ष का स्थल होता है (Kantor & David, 1988, p. 244), काश्तकारों के संगठनों के बिन्दु और पड़ोसी गुट (Lawson, 1986) और नगरीय दंगे भी कई बार इनके परिणाम होते हैं। और स्पष्ट कहें तो प्रतिवेश यानी पड़ोस वह स्थान है, जहां सामुदायिक मूल्य किसी शहर पर स्थानीय शासन की ओर से लागू असंख्य नीतियों को प्रभावित करते हैं। हर दृष्टिकोण सलाह देता है कि प्रतिवेशी स्तर किसी नगरीय शशोध के लिये नगरीय सामाजिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं को समझने के लिहाज से महत्वपूर्ण है। (Blakely, 1979; Green, 1985).

डाउन्स (Downs, 1981) इस बात पर जोर देते हैं कि प्रतिवेश स्तर पर अध्ययन के इच्छुक नगरीय अध्येताओं के लिये शोध की समृद्ध संभावनाएं उपलब्ध हैं। वह बताते हैं कि विश्लेषण के इस स्तर पर होने वाले उलझाव प्रावधानों को विश्लेषणात्मक अवधारणा की स्थापना के लिये महत्वपूर्ण बनाते हैं। डाउन्स के अनुसार प्रतिवेशी स्तर (Neighbourhood Level) तीन लक्षणों को उभारता है, 1. इसका समान स्थान या विस्तार (Common Space) अंतर्वैयक्तिक संवाद का केन्द्रबिन्दु है 2. यह नजदीकी संस्थानों (उदाहरणार्थ चर्च) के बीच संबंधों को बढ़ाता है, 3. इसमें समान पहचान (Common Identity) या समान सदस्यता (Common Membership) के गुण मिलते हैं। ये तीनों लक्षण हितों (Interests) की बुनियाद निर्मित करते हैं जो स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने की क्षमता का महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाती है। प्रतिवेशी स्तर के भीतर और विभिन्न प्रतिवेशों के मध्य इन हितों का उतार–चढ़ाव (Ebb and Flow) प्रतिवेशों के संयोजन को प्रभावित करता है, जिसका अंतिम रूप से असर प्रतिवेशों के राजनीतिक, सामाजिक–सांस्कृतिक ढांचे पर पड़ता है (उदाहरण के लिये नगर स्तर पर).

कई प्रतिवेश (Neighbourhood) बीते कुछ दशकों में निरंतर और बेहद तेजी से होने वाले परिवर्तनों से गुजरे होते हैं। कुछ मामलों में प्रतिवेश में अब सिर्फ गरीब लोग ही बाकी रह जाते हैं तो कुछ में निर्माणकर्ता (Deveopers) पिछड़े इलाकों में जाकर वहां पहले से रहने वाले लोगों को हटाकर उच्च वर्ग को बसा देते हैं (Barry & Derevlany, 1987; Smith, 1979). छोनों ही मामलों में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से प्रतिवेश के गुण प्रभावित होते हैं। प्रतिवेश के लोग स्वयं को आपराधिक गतिविधियों से घिरा पाते हैं, उनके लिये गुणवत्तापरक जीवनस्तर महंगा और पहुंच से बाहर होता जाता है और स्थानीय शासन के स्तर पर भी उपेक्षित महसूस करते हैं।

प्रतिवेशी जीवन में इस तरह के कारक सामाजिक संवाद की संभावनाओं को कम कर देते हैं (Herson & Bolland, 1990, p. 159). ऐसे में प्रतिवेश राजनीतिक संगठनों के लिहाज से बेहतर स्थान बन जाते हैं (Henig, 1982; Hiss, 1990; Williams, 1971).

प्रावधान प्रक्रिया में एक अन्य प्रतिक्रिया भी सामने आती है, जिसके तहत प्रतिवेशी स्तर के तंत्र में सुरक्षात्मक व्यवस्था, बहिष्कार जैसी बातों को बढ़ावा मिलता है। चहारदीवारी युक्त स्थानों पर निवासरत समुदायों से लेकर मुख्य सड़कों पर आधिपत्य, प्रतिवेशों से समन्वय, गलियों में अपराध आदि के उदाहरणों से इसे समझा जा सकता है (Herson & Bolland, 1990; Williams, 1971). हालांकि, हर तंत्र (Mechanism) एक–दूसरे से अलग होता है, फिर भी हर तंत्र अपने सदस्यों की एकजुटता (Cohesion) एवं प्रभावोत्पादकता (Efficacy) को बढ़ाने, सुरक्षित रखने के लिये व्यवस्थित होता है। अंततः नगरीय क्षेत्र में इस तरह के सांगठनिक ढांचे अपने–अपने संघर्ष को राजनीतिक स्वरूप प्रदान कर विकास कार्यों पर नियंत्रण का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिये 125 प्रतिवेशों के सामूहिक संगठन Neighborhood Open Space Coalition ने अटलांटिक महासागर से न्यूयॉक के लांग द्वीप तक 40 मील लंबा बाइक एवं पैदलपथ सफलतापूर्वक तैयार किया, जिसे ब्रुकलिन क्वीन्स ग्रीनवे (Hiss, 1990) कहा जाता है। नीतियों को लेकर ऐसा समन्वय (जिसकी जरूरत अमेरिका के इस सबसे सघन नगरीय क्षेत्र में थी) नगरीय अधिकारियों और निर्माणकर्ताओं के बीच लंबे संघर्ष के बाद सामने आया, क्योंकि निर्माणकर्ताओं के मन में इस भूक्षेत्र के लिये कुछ अन्य योजनाएं थीं।

प्रतिवेशों को हम किसी नगर में विविधता वाला क्षेत्र मान सकते हैं। विभिन्न प्रतिवेश बड़े नगरीय स्वरूप के छोटे हिस्से का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो इनमें रहने वाले लोगों के अलग–अलग मुद्दों, जरूरतों को प्रदर्शित करते हैं। प्रतिवेशों के मुख्य मुद्दों को आसानी से पहचाना जा सकता है। इनमें नशे की समस्या, सार्वजनिक शिक्षा की गुणवत्ता और स्तर, युवाओं के लिये अवसर, पुलिस–समुदाय के संबंध, स्थानीय व्यवसायों में निवेश, दूसरे प्रतिवेश से स्पर्धा (कुलीन वर्ग के विकास या आवासीय सुविधाओं के बेहतर विकास एवं उपलब्धता के लिहाज से), स्वास्थ्य सुविधाओं और सेवाओं की उपलब्धता और नागरिकों तक इनकी आसान पहुंच, यातायात–परिवहन सुविधाएं एवं आवासीय सुविधाओं का अभाव आदि प्रमुख हैं। निम्न सूचक (Indicators) वे उदाहरण हैं, जिनके जरिये इन समस्याओं और मसलों को मात्रात्मक रूप से हल किया जा सकता हैः

1. जनसांख्यिकीय सूचक
2. निवासियों की आय एवं संपत्ति का मूल्य
3. आवासीय भंडार (स्वामित्व वाले मकानों की संख्या, किरायेदारी वाले भवन एवं ऐसे भवनों की संख्या, जो खाली हों अथवा जर्जर–खंडहर हो चुके हों)
4. हाईस्कूल तक शिक्षा दर
5. आपराधिक आंकड़े
6. नागरिक संबंधों की संख्या एवं प्रकार
7. नगरीय परिषदों की बैठकें और निर्णय

जनसंख्या के आंकड़े से इतर संघीय शासन के ढांचे से निम्न बिंदुओं से आंकड़े लेने में सहायता मिलती हैः

1. नगर निकायों की बैठकों के कार्यवृत्त (Minutes)
2. नगरीय निकायों के कार्यालयों के दस्तावेज (Records)

3. प्रतिवेशी संगठनों की वार्षिक रिपोर्ट
4. लोकपाल (Ombudsman) कार्यालय के ज्ञापन या स्मृतिपत्र (Memorandum)
5. समाचार, मीडिया (बड़े समाचार पत्रों के साथ स्थानीय स्वामित्व वाले अखबार और अन्य समाचार साधन)
6. नगर नियोजन विभाग के क्षेत्रवार नक्शे
7. प्रतिवेशों में निवेश के दस्तावेज और इनके लक्ष्य
8. मतदान के आंकड़े

**नगर (The City)**

नगर वह नगरीय स्थान हैं, जो नगरीय विश्लेषण प्रक्रिया में सबसे अधिक ध्यानाकर्षित करते हैं। इसकी वजह है कि वे ही शासन और प्रशासन के केन्द्र होते हैं। यहां परीक्षण के मुख्य मुद्दे स्वास्थ्य सुविधा, शिक्षा, पुलिस एवं अग्निशमन सेवाएं, आवास, अपराध, नशा, रोजगार और कर आधारित होते हैं। ऐसे में यह प्रश्न उठता है कि नगरीय स्तर पर नगरीय प्रक्रिया को किस तरह विश्लेषित किया जाये? आज के जीवन में नगर इतने आम हो गये हैं कि इनसे होने वाला मेल–जोल इनकी जटिलताओं को छिपा लेता है। इसका एक कारण बहुकेन्द्रित नगरीय स्थानों का विकास भी है, जिससे नगर विभिन्न विशेष स्थानिक नगरीय केन्द्र वाला बन जाता है (e.g., Knox, 1991).

नगर को विश्लेषण के स्तर पर उपयोग करने से पहले इसको परिभाषित करना आवश्यक होता है, जिसके बाद ही अवधारणात्मक साधनों को इसके विभिन्न आयामों, कार्यशैली और नगरीय स्थानिक पदानुक्रम में इसकी भूमिका के विश्लेषण में लगाया जा सकता है। इससे शोधकर्ता के लिये नगर के जटिल सामाजिक संगठन को कम कर छोटे व्यवस्थित हिस्सों में बांटकर देखना संभव हो पाता है, ताकि वह अपेक्षित परिणाम हासिल कर सके। नगर को परिभाषित कर पाने में एक बड़ी समस्या यह है कि यह किसी एक विशेष वर्गीकरण में ही नहीं देखा जा सकता, बल्कि यह सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रतीकों का एक जाल जैसा है (Herson & Bolland, 1990). इस तरह नगर सांस्कृतिक गतिविधियों, आर्थिक उद्यमों, सामाजिक ताने–बाने के केन्द्र हैं। यह सब नगर को उस विशेष गुण की ओर ले जाता है, जो इसे अन्य नगरीय क्षेत्रों से अलग करता है और वो यह है कि– नगर शासन और प्रशासन का केन्द्रबिन्दु हैं।

नगर आर्थिक उत्पादन एवं सामाजिक–आर्थिक ढांचे में उपभोग के भी महत्वपूर्ण बिन्दु हैं (Tabb & Sawers, 1984). पूंजी के उपनगरों, अन्य क्षेत्रों की ओर जाने को लेकर भले ही बहस का विषय बना रहता हो, लेकिन नगर उत्पादक सेवा केन्द्रों (वित्तीय एवं कानूनी सेवाएं), भारी एवं हल्के निर्माण उद्यमों, गोदामों और वितरण केन्द्रों के लिये पहली पसंद बने रहते हैं। नगरों और देश के बीच उत्पादन का यह संबंध नया नहीं है, अमेरिकी आर्थिक विकास में नगर औपनिवेशिक दौर से ही केन्द्र रहे हैं (Benjamin, 1984), और वैश्विक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास भी आधुनिक महानगरों से ही हुआ है (Gordon, 1984). अब भी स्थानिक प्रारूपों में बदलाव और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के संबंधों, परिवर्तन से उत्पादन की सहूलियत मिलती है (for richer discussions of this transition, see Gordon, 1984; Riposa & Dersch, 1992; Smith & Feagin, 1987; Tabb & Sawers, 1984). अर्थव्यवस्था में इन बदलावों और नगरों पर इनके प्रभावों को समझने के बाद शोधकर्ता श्रम विभाजन के स्थानिक तरीकों (Patterns) का परीक्षण कर सकता है। तुलनात्मक अध्ययन के लिये नगरों को वर्गीकृत किया जा सकता है (Riposa &

Andranovich, 1988), और नगरों के प्रतिवेश, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक परिस्थितियों में योगदान को लेकर निष्कर्ष हासिल किये जा सकते हैं। उत्पादन के आयाम पर नगर स्तर में किये जाने वाले विश्लेषण में निम्न अवधारणात्मक प्रश्न सामने आते हैं:

1. अर्थव्यवस्था में किसी शहर की भूमिका क्या है (उत्पादक अथवा उपभोगकर्ता)?
2. नगर का स्थानिक स्वरूप अर्थव्यवस्था में इसकी भूमिका के आधार पर कैसे बदलता है (उदाहरण के लिये सेवा प्रदाता, उत्पादन–निर्माणकर्ता, कानूनी सेवा प्रदाता या प्रशासनिक केन्द्र)
3. नगरों के मध्य आर्थिक जुड़ाव कौन–कौन से हैं?
4. नगरों में रहने वाले लोगों (रोजगार, आवास एवं आय) और समुदाय (स्कूल एवं अन्य सेवाएं) पर क्या प्रभाव होते हैं?

फिर भी, उत्पादन की अवधारणा को अधिक बल देना शोधकर्ता को परिणामों–निष्कर्षों के तकनीकी अथवा आर्थिक निर्धारण की ओर ले जा सकता है, क्योंकि नगरीय परिवर्तनों को मुख्यतः इन्हीं स्वरूपों में वर्णित किया जाता है। व्यापक विश्लेषण के लिये जरूरी है कि नगरीय परिवर्तनों को प्राकृतिक समझने के बजाय इनका सामाजिक संघर्ष के परिणाम के तौर पर विश्लेषण किया जाये (Gottdiener, 1986; Tabb & Sawers, 1984). नगरीय विश्लेषण में एकीकृत दृष्टिकोण का अभाव शोधकर्ता को ऐसे परिणाम की ओर ले जा सकता है, जहां यह सामने आये कि राजनीति नगरीय नीति निर्माण में महत्व नहीं रखती है, पीटरसन के नगरीय आर्थिक विकास नीति के विश्लेषण में सामने आया ऐसा निष्कर्ष बहस का विषय रहा है (Peterson, 1981; Stone & Sanders, 1987).

उत्पादन के प्रावधान संबंधी आयामों और इनके संबंधों को समझने के लिये नगर के आर्थिक हितों और समूहों का परीक्षण आवश्यक होता है। इसमें न सिर्फ औपचारिक प्रभावी समूहों को शामिल किया जाना चाहिये, बल्कि उन प्रशासनिक संस्थाओं को भी शामिल करना चाहिये, जो स्थानीय नीतियों को तैयार और लागू करती हैं।

## 2.6 आंकड़ों के स्रोत एवं संसाधन (Data Sources and Resources)

आंकड़ों का संग्रहीकरण कई बार सरल होता है, लेकिन कई बार इसके लिये किसी छोटी सी जानकारी से ही रहस्यों को सुलझाकर विस्तृत तथ्य हासिल करने होते हैं (the knack of Sherlock Holmes for unraveling a mystery from the smallest clue-Andranovich And Riposha, ibid). इसके अलावा नगरीय आंकड़ों के स्रोतों की जानकारी, तथ्य निकालने के लिये उत्सुकता, रचनात्मकता भी शोधकर्ता में होना आवश्यक है। हालांकि, शोधकर्ता जिस भी सिद्धांत से जुड़ा हो या जिसके अनुरूप शोध कर रहा हो, उसके अनुसार ही आंकड़े संग्रहीत करने की प्रक्रिया अपना सकता है। यहां यह ध्यान रखना जरूरी है कि अलग–अलग तरीके भी सही तरीकों से लागू किये जायें तो समान रूप से परिणामदायक होते हैं।

यद्यपि शोधकर्ता के लिये तब आंकड़ों के संग्रहीकरण के सभी स्रोतों को सूचीबद्ध करना अथवा आंकड़ों से संबंधित संसाधनों को तलाश कर पाना बेहद मुश्किल हो जाता है, जब वह समयबद्ध शोध पर काम कर रहा हो। शोधकर्ता को उन पुस्तकों की जानकारी होनी चाहिये, जो सरकारी आंकड़ों का कोष होती हैं और अपने क्षेत्र के उन संसाधनों की भी जानकारी उसे होनी चाहिये जो नगरीय आंकड़े उपलब्ध कराते हैं (उदाहरण के लिये भारत में वीवी गिरी की लेबर इंस्टीट्यूट

आंकड़ों के लिहाज से बेहतरीन है). यहां यह जानना भी जरूरी है कि इन संसाधनों और स्रोतों से कई संकेत शब्द (Key words) भी मिलते हैं, जो शोध को आगे बढ़ाने में मदद करते हैं। हालांकि, शोध के दौरान वैकल्पिक रणनीति रखना भी उपयोगी होता है, ताकि स्रोतों के संबंध में त्वरित संदर्भ मिल सकें, जिनसे शोध के दौरान सामने आने वाले सवालों के जल्द जवाब मिलें और वे आंकड़ों के संग्रहीकरण में सहयोगी हो सकें। पहला कदम विश्वविद्यालयी अथवा सार्वजनिक पुस्तकालय से जुड़ना होता है, इसके बाद लाइब्रेरियन की मदद से सन्दर्भ सूची पाकर सामान्य नगरीय सूचनाएं–जानकारियां, संसाधन और स्रोत तलाशे जा सकते हैं।

## 2.7 नगरीय शोध के लिये उपलब्ध संसाधन (Resources Available for Urban Research)

आंकड़ों के स्रोत और संसाधनों की स्थानीय स्तर पर प्रचुर उपलब्धता शोधकार्य को निरंतर आगे बढ़ाने के लिये बहुत जरूरी है। शोध के स्थानीय सामान्य उद्देश्य (नगर और देश), महानगरीय (नगर निकाय, प्रशासन एवं विशेष केन्द्र) और विशिष्ट उद्देश्य जैसे स्कूल, पानी, सीवर व्यवस्था हो सकते हैं। सरकारी स्रोत आंकड़ों के सबसे बड़े और विश्वसनीय स्रोत माने जाते हैं। हालांकि, आधिकारिक तौर पर उपयोग किये जाने वाले अधिकतर आंकड़े संघीय सरकार (Federal Government) द्वारा एकत्र किये जाते हैं, लेकिन कई बार स्थानीय स्तर पर तैयार की जाने वाली विशेष रिपोर्ट भी खास मुद्दों के संबंध में बेहतर जानकारी देती हैं, जिनमें स्थानीय लोगों से जुड़े सर्वे, फोकस ग्रुप आदि शामिल होते हैं, लेकिन ये जानकारियां आसानी से कहीं भी उपलब्ध नहीं होतीं। इसी तरह सूचनाओं के अहम स्रोत सरकारी नाम–सूची एवं टेलीफोन नंबर निर्देशिकाओं (Directories) को हर कोई व्यक्ति नहीं देख सकता है। शोधकर्ता के लिये टेलीफोन भी जानकारियां हासिल करने का अहम स्रोत हो सकता है। इसके अलावा जब सरकारी कार्यालय से आंकड़े हासिल करने हों तो सूचना का अधिकार अधिनियम (RTI) भी अच्छा विकल्प है। इनके अलावा स्थानीय निकाय, स्वयंसेवी संस्थाएं (NGO), सरकार द्वारा सहायतित, गैर सहायतित संस्थाएं भी आंकड़ों के मुख्य स्रोत होते हैं। कई सामाजिक–सामुदायिक संस्थाएं शरणार्थियों, सामुदायिक समस्याओं, आवासीय सुविधाओं आदि को लेकर सर्वे करती हैं और आंकड़े जुटाती हैं।

लेकिन, जब प्रतिवेशी क्षेत्रों में अपराध, पुलिस सुरक्षा, शिक्षा, आर्थिक अवसर, जीवनस्तर की गुणवत्ता जैसे विशिष्ट मुद्दों पर आंकड़े जुटाने हों तो शोधकर्ता के लिये स्थानीय, प्रतिवेशी, राष्ट्रीय स्तर पर संसाधनों की तलाश करना जरूरी होता है। पेशेवर संस्थाएं (Proffessional Associations) भी आंकड़े जुटाने का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ऐसी संस्थाएं भी टेलीफोन डायरेक्टरी जैसे साधन तैयार करती हैं जो सरकारी डायरेक्टरी के समान ही उपयोगी होती हैं। कई बार शोधकर्ता को शोध के उद्देश्य की पूर्ति के लिये व्यावसायिक एवं वाणिज्यिक आंकड़ों को जुटाना जरूरी हो जाता है, जिसके लिये स्थानीय चैंबर ऑफ कॉमर्स जैसे संस्थान उपयोगी हो सकते हैं। इनके vykok स्थानीय समाचार पत्र भी आंकड़ों को जुटाने में मददगार हो सकते हैं। निष्पक्ष आंकड़े जुटाने के लिये शोधकर्ता को समाचार पत्रों के जरिये स्थानीय स्तर पर सामने आने वाले विवादों, खुलासों को छोड़कर सिर्फ आंकड़ों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि आंकड़ों के ये स्रोत शोधकर्ता को बेहतर जानकारियां जुटाने के लिये कई अन्य संसाधनों की पहचान करने में भी मदद करते हैं।

## संघीय स्रोत (Federal Sorces)

संघीय सांख्यिकीय व्यवस्था में नगरीय नियोजन विभाग, जनगणना ब्यूरो, संक्रामक रोग नियंत्रण विभाग, श्रम विभाग, अर्थ एवं संख्या विभाग, नेशनल सेंटर फॉर हेल्थ स्टेटिस्टिक्स, सेंटर फॉर स्टेटिस्टिक्स, ब्यूरो ऑफ जस्टिस स्टेटिस्टिक्स आदि संस्थानों की ओर से आंकड़ों की जानकारी प्रकाशित की जाती है, जो शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, रोजगार, व्यापार जैसे मसलों पर नगरीय आंकड़ों का बड़ा स्रोत हैं।

## राज्य एवं स्थानीय निकाय स्रोत (State and Local Government Sources)

अधिकतर राज्यों में स्थानीय शासन समिति विभिन्न संस्थानों की शाखाओं के जरिये सरकारी मुद्दों की निगरानी और क्रियान्वयन करती हैं। ऐसे में शोधकर्ता के लिये इन समितियों तक पहुंच उपयोगी हो सकती है। टेलीफोन डायरेक्टरी से इन तक पहुंचने का रास्ता मिल सकता है। इन संस्थानों से जुड़े कर्मचारी, अधिकारी आंकड़े जुटाने में मदद कर सकते हैं, यहां शोधकर्ता के लिये जरूरी होता है कि वह संबंधित कार्यालयों से मिलने वाली रिपोर्ट, नियम, प्रावधान, निर्देशों संबंधी दस्तावेजों के पहचान क्रमांक (Identification Number) अनिवार्य रूप से पूछ ले। ये दस्तावेज अन्य स्रोतों की पहचान और उन तक पहुंचने में सहायक हो सकते हैं। यदि शोधकर्ता को यह स्पष्ट नहीं है कि कौन सा कार्यक्रम कौन से संस्थान के तहत संचालित होता है तो इसके लिये राज्य संस्थानों संबंधी डायरेक्टरी से जानकारी ली जा सकती है।

सार्वजनिक बैठकें (Public Meetings) भी आंकड़े जुटाने का अहम स्रोत हैं, क्योंकि यहां निर्णय और निर्धारण किये जाते हैं। यह न सिर्फ निर्बाध आंकड़े उपलब्ध कराती हैं, बल्कि महत्वपूर्ण दस्तावेज, बैठकों के मिनट्स यानी कार्यवृत्त, कार्यसूची (Agenda) भी यहां मिलते हैं। कई महानगरीय इलाकों में नागरिक सुझाव समितियों के जरिये सार्वजनिक बैठकों में जरूरी निर्णय लिये जाते हैं। स्थानीय निकायों से इन नागरिक समितियों की भी जानकारी मिल सकती है। इस तरह विभिन्न स्रोतों से मिलने वाले आंकड़े शोध को सटीक निष्कर्ष तक पहुंचाने में सहयोग करते हैं।

शासन के क्षेत्रीय परिषद (Regional Councils of Government) भी नगरीय मुद्दों से जुड़े आंकड़ों के स्रोत हैं, विशेषकर शिक्षा, जीवनस्तर, पर्यावरण, आवासहीनता, आर्थिक विकास से जुड़े मसले इनमें शामिल होते हैं। अधिकतर क्षेत्रीय परिषदों की अपनी शोधशाखाएं होती हैं, जो योजनाओं और नीतियों के निर्माण का लक्ष्य पूरा करने के लिये नियमित रूप से विभिन्न विभागों से समन्वय कर शोध करते हैं। ये शोधशाखाएं नियमित बुलेटिन, कार्यसूची, रिपोर्ट आदि जारी करते हैं, जिनसे शोधकर्ता को बड़ी मदद मिल सकती है। इनकी रिपोर्ट में भौगोलिक परिस्थितियों से जुड़ी जानकारियां भी स्पष्ट होती हैं, उदाहरण के लिये सुविधा संबंधी योजनाओं पर दी जाने वाली रिपोर्ट में स्थान विशेष की अवस्थिति (Location) संबंधी विस्तृत जानकारी मिलती है, इसी तरह व्यापार–आर्थिक रिपोर्ट में बाजार के विश्लेषण होते हैं। इन रिपोर्ट में शोधकर्ता के लिये बहुत उपयोगी नक्शे भी न्यून अथवा नगण्य मूल्य पर उपलब्ध हो जाते हैं।

भारत में योजना आयोग और अमेरिका में अमेरिकन सोसायटी फॉर पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन जैसे संस्थान क्षेत्रीय स्तर पर भी अपनी शाखाएं संचालित करती हैं। इस तरह की संस्थाएं भी शोधकर्ताओं को अहम आंकड़े मुहैया करा सकते हैं। उदाहरण के लिये भारत में केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय वार्षिक 'ईयर बुक' का प्रकाशन करता है, इसमें सन्दर्भ सूची के तौर पर आपातकालीन

प्रबंधन, सार्वजनिक निवेश और कई अन्य बिंदुओं से जुड़े स्रोत आसानी से मिल जाते हैं। अमेरिका में सर्वे करने वाले सदस्यों की आंकड़ों पर आधारित संक्षिप्त टिप्पणियां किसी नगरीय मुद्दे पर दृष्टिकोण को विकसित करने में मदद करती हैं। इसी तरह अन्य देशों में भी शोध संस्थानों की गाइड प्रकाशित होती हैं। उदाहरण के लिये लंदन में Directory of Professional Associations का प्रकाशन गेल डायरेक्टरी करती है, जो सर्वसुलभ होती है।

**अन्य गैर लाभधारी संस्थाएं (Nonprofit Organizations)**

इस तरह की संस्थाएं भी नगरीय शोध के बड़े संसाधन हैं। फोर्ड फाउंडेशन, डब्ल्यूके कैलॉग, जॉन डी एवं कैथरीन टी मॅकआर्थर फाउंडेशन, मॅकनाइट फाउंडेशन, सोशियल साइंस रिसर्च काउंसिल जैसे कई संस्थान क्षेत्र, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि मुद्दों पर जानकारियां संग्रहीत करते हैं। इन संस्थानों द्वारा जुटाये जाने वाले आंकड़े और रिपोर्ट किसी नगर और प्रतिवेश से जुड़े अहम विषयों पर जानकारियों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। उदाहरण के लिये लीग ऑफ वुमैन वोटर्स हर साल 'अर्बन ब्रीफ्स' नाम से रिपोर्ट प्रकाशित करता है, जिसमें सरकारी आंकड़ों और रिपोर्ट का भी समावेश होता है।

**वाणिज्यिक स्रोत (Commercial Sources)**

नगरीय क्षेत्रों में वाणिज्यिक–व्यापारिक आंकड़ों और सूचना स्रोतों का भी बड़ा महत्व है (see Stewart, 1984). इस स्तर पर आंकड़े जुटाने के दो मुख्य स्रोत चैंबर ऑफ कॉमर्स और दैनिक समाचार पत्र हैं। चैंबर ऑफ कॉमर्स किसी नगर या क्षेत्र के व्यापारिक समुदाय की धड़कन मानी जा सकती है, लिहाजा इसे प्राथमिक सूचना स्रोत के तौर पर ही देखना चाहिये।

चैंबर्स अकसर आंकड़ों संबंधी पुस्तकों, रिपोर्ट का प्रकाशन करते हैं, जिनसे शोधकर्ता को अवस्थापना ढांचे, रोजगार, शिक्षा, व्यापारिक गतिविधियों, श्रम संबंधी आवश्यक जानकारियां मिल सकती हैं। चैंबर्स के कार्य –जो आम लोगों के लिये खुले नहीं होते– वे 'बिजनेस लीडर्स' को जानने का अवसर प्रदान करते हैं। इसके अलावा रियल एस्टेट बोर्ड, व्यापारिक संगठनों, सार्वजनिक–निजी उपक्रमों की सीमित रिपोर्ट से भी आंकड़े जुटाने में मदद मिल सकती है। अन्य सामान्य व्यापारिक आंकड़े आम लोगों के लिये सीमित रूप से समाचार पत्र, रियल एस्टेट बोर्ड, सार्वजनिक–निजी उपक्रमों समेत विभिन्न माध्यमों से उपलब्ध हो जाते हैं। अधिकतर पुस्तकालयों में प्रतिष्ठित दैनिक समाचार पत्रों को संग्रहीत रखा जाता है। इसी तरह अखबार और अन्य मीडिया माध्यम भी प्रमुख खबरों को दस्तावेजी स्वरूप में संजोकर रखते हैं। पत्रकारों से संपर्क कर शोधकर्ता अखबारों के कार्यालयों से जानकारियां ले सकते हैं।

**शैक्षिक स्रोत (Academic Sources)**

शैक्षिक शोधों के बेहतरीन संसाधन आसानी से उपलब्ध होते हैं। *Social Science Index* (SSI) एवं *Public Affairs Index Service* (PAIS) विभिन्न आलेखों, किताबों, सरकारी दस्तावेजों, शोधकार्यों की सूची उपलब्ध कराते हैं (see Stewart, 1984). विभिन्न शैक्षिक प्रकाशन नगरीय मुद्दों के संबंध में निबंधों–शोधकार्यों की शृंखला प्रकाशित करते हैं (e.g., the University of Kansas Press and the State University of New York Press). कुछ विश्वविद्यालय नगरीय मुद्दों को लेकर विशेष कार्यक्रम चलाते हैं, जिनके लिये शोध इकाइयां भी बनायी जाती हैं।

ये इकाइयां विभिन्न स्तरों पर शोध, विश्लेषण करती हैं जो शोधकर्ता के लिये विशेष उपयोगी हो सकते हैं। आंकड़े जुटाने का एक हालिया प्रयास Fiscal Austerity and Urban Innovation (FAUI) परियोजना है, जिसका मकसद दुनियाभर से तुलनात्मक रूप से पुष्ट आंकड़े जुटाना है। वर्ष 1982 में आरंभ हुई इस परियोजना में अब तक 36 देशों के आंकड़े शामिल किये जा चुके हैं। अमेरिका के ऐन आर्बर, मिशीगन में इसके आंकड़े Inter-University Consortium for Social and Political Research (see I- UCSPR, 1988) के जरिये उपलब्ध हैं। (see Clark, 1990; Clarke, 1990).

## 2.8 शोध के आवश्यक तत्व (Some Essentials Of Research)

यहां हम ऐसी कुछ अनिवार्य शर्तों के बारे में जानेंगे, जो बेहतर शोधकार्य के लिये आवश्यक हैं:

### नमूने लेना (Sampling)

शोधकार्य का सबसे महत्वपूर्ण तत्व यानी आंकड़ों का संग्रहीकरण दरअसल नमूनों यानी सैंपल के ढांचे पर निर्भर करता है (see Fowler, 1988). कुछ मामलों में शोध करवाने वाला ही शोधकर्ता को लक्षित जनसंख्या की सूची देता है, जिससे सैंपलिंग आसान हो जाती है, लेकिनऐसा नहीं होता है तो शोधकर्ता सैंपलिंग के लिये मतदाता सूची, पेशेवर संगठनों की डायरेक्टरी, सामुदायिक–सामाजिक संगठनों की सदस्यता, उपस्थिति पंजिकाओं, जनसुविधाओं के आंकड़े आदि से इसके लिये मदद ले सकता है। अगर ऐसी कोई संभावना भी नहीं मिल पाती तो शोधकर्ता को स्वयं के तरीकों से सैंपल का ढांचा तैयार करना होता है। इसके लिये वह लक्षित जनसंख्या का अनियमित–अक्रमबद्ध चयन (Random Selection) कर सकता है।

### साधन/दस्तावेज (Instrumentation)

किसी सर्वेक्षण को पूरा करने के लिये साधनों की बहुत आवश्यकता होती है। शोधकार्य में सर्वे करने से पहले उन प्रश्नों को सूचीबद्ध करना जरूरी होता है, जो लक्ष्य को पूरा करने के लिये जरूरी मानकों का उत्तर दे सकें। इसके साथ ही ऐसे दस्तावेज भी उपलब्ध कराने चाहिये जो शोधकार्य को पेशेवर प्रदर्शित करने में सक्षम हों और लक्षित समुदाय, जनसंख्या का भी ध्यानाकर्षित कर सकें। प्रश्न इस तरह के होने चाहिये जो अस्पष्ट या भटकाव वाले न हों। ऐसी परिस्थिति में साधन और दस्तावेज लक्षित समूह को ध्यान केन्द्रित कर पाने में मदद करते हैं।

### सर्वेक्षण मूल्य (Survey Costs)

आंकड़े जुटाने के लिये किया जाने वाला सर्वेक्षण खासा महंगा हो सकता है। बजट का अधिकतर हिस्सा डाक, प्रश्नसूची के प्रकाशन, टेलीफोन, डाटा एंट्री, साधन जुटाने, आंकड़ों के विश्लेषण के लिये जरूरी उपकरण जुटाने और कई बार यात्रा करने में भी व्यय होता है। ऐसे में शोधकार्य के लिये सुनियोजित व्यय नियंत्रण रखना जरूरी है।

### समयबद्धता (Scheduling)

शोधकर्ता के लिये सर्वेक्षण कार्य और आंकड़ों के संग्रहीकरण में होने वाली देरी का पूर्वानुमान लगाना आवश्यक है। यदि शोधकर्ता के सहकर्मियों को थोड़ा बहुत अनुभव है तो भी यह मानकर चलना चाहिये कि आंकड़े जुटाने में निर्धारित समय से 125 से 150 फीसदी तक अधिक समय लग सकता है (Warwick & Lininger, 1975, p. 35). छुट्टियां, सामाजिक और नगरीय कार्यक्रम भी सर्वेक्षण कार्य पर असर डालते हैं। ऐसे में काल्पनिक समयसीमा तनाव और मानसिक परेशानियां बढ़ा सकती हैं, जिसके चलते शोध करवाने वाले और शोधकर्ता के बीच भी इसलिये स्थिति बिगड़ सकती है कि निर्धारित आंकड़ों का संग्रहीकरण तय समयसीमा में नहीं हो पा रहा है या नहीं हो सका (Hedrick et al., 1992). सर्वे रिसर्च से विस्तृत एवं समग्र परीक्षण के लिये व्यवस्थित आंकड़े उपलब्ध हो सकते हैं। फिर भी, इस माध्यम में कुछ मजबूती हैं तो कुछ कमजोरियां भी। यदि शोधकर्ता बहुत बड़ी आबादी में किसी नगरीय गुण विशेष का विश्लेषण करना चाहता है तो यह तरीका कारगर हो सकता है। इसके जरिये प्रतिक्रियाओं की विस्तृत श्रृंखला को सामने लाने, सैंपलिंग की बेहतर क्षमता के माध्यम से फील्ड रिसर्च में किसी एक पक्ष की ओर आने वाले झुकाव को भी कम किया जा सकता है। मुख्य पहलू यह है कि यदि आप पूरे लक्षित समूह का साक्षात्कार नहीं करना चाहते हैं तो लक्षित समूह का सामान्यीकरण कर इसकी सैंपलिंग कर सकते हैं। इसके आगे डाक और टेलीफोन शोधकर्ता को गुप्त रहकर अपेक्षित पहुंच पाने में मदद करते हैं।

यहां यह उल्लेखनीय है कि सभी सर्वेक्षण पर बहुत अधिक समय और धन लगता है। यदि शोधकर्ता त्वरित सर्वे करने का प्रयास करता है तो भले ही खर्चा कुछ कम हो जाये, लेकिन इसके कारण उपलब्ध होने वाले आंकड़ों के मूल्य (Value) पर असर हो सकता है। इसके अलावा सर्वे से मिलने वाले आंकड़ों से परिवर्तन, विकास का पूरी तरह मूल्यांकन कठिन हो जाता है, जबकि ये नगरीय घटनाक्रमों के प्रवाह के विश्लेषण के लिये आवश्यक तत्व हैं। कुछ अन्य सीमाओं का उल्लेख फॉलर (Fowler) ने किया है (1988, pp. 71-72).

## 2.9 शोध की उपयोगिता (Utilization of Research)

वेस (Weiss, 1984) ने शोधकार्य को और अधिक उपयोगी बनाने के लिये निम्न कदम उठाने का सुझाव दिया हैः

1. शोध करवाने वाले के साथ शोध पर योजना बनायें
2. उन घटनाओं, मुद्दों, बिंदुओं पर ध्यान केन्द्रित करें, जिनका परीक्षण किया जाना है
3. उन परिस्थितियों को हमेशा ध्यान में रखें, जिनके विकल्प की तलाश करनी पड़ सकती है
4. अपनी रिपोर्ट को स्पष्ट, बेहतर तरीके से लिखित रूप में तैयार करें और समयबद्ध तरीके से रिपोर्ट को प्रकाशित भी करें, ताकि उसका आवश्यक प्रसार हो सके
5. अपने विश्लेषण को बड़े परिदृश्य में समाहित करें
6. शोधकार्य में गुणवत्ता का हमेशा ध्यान रखें

## 2.10 निष्कर्ष (Conclusion)

नगरीय क्षेत्रों में निरंतर बढ़ती सघनता और कई शहरों में रोजगार के अवसरों के बदलते आधार ने बड़ी सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। भारत समेत कई देशों में वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं के चलते सीमाओं का महत्व सवालों के दायरे में है। इसके चलते शहरों में अमीरों और गरीबों के बीच असमानता की स्थिति स्पष्ट नजर आती है, जबकि मध्यम वर्ग की परिस्थितियां उतनी स्पष्ट नहीं हो पाती हैं। जितनी अधिक संख्या में लोग रोजगार–आवास की तलाश में शहरों की ओर बढ़ते हैं,

उतनी ही मात्रा में गरीबी, वर्ग विभेद, कमजोर स्वास्थ्य सेवाओं, अशिक्षा जैसे मसले सामने आते हैं। ऐसे में सार्वजनिक शिक्षा, श्रम–रोजगार की उपलब्धता, कौशल विकास, सामाजिक गतिशीलता आदि के ढांचे को पुनर्गठित करने की आवश्यकता महसूस होती है। इन नगरीय मुद्दों के लिये जरूरी संसाधनों की मांग बहुत अधिक होती है, लेकिन प्रभावित लोगों को बेहतर सुविधाएं और अवसर प्रदान करने से नगरीय प्राधिकरण काफी हद तक समस्या का निस्तारण कर सकते हैं।

गुणवत्तापरक जीवनस्तर महत्वपूर्ण पहलू है और इसे सार्वजनिक सोच–समझ से कभी अलग नहीं किया जा सकता। नगरीय मुद्दों के रूप में इसे भी दोबारा ढाले जाने के प्रयास शुरू हुए हैं। सामुदायिक स्वपास्थ्य, एड्स नीति जैसे कार्यक्रम शहरों में स्वास्थ्य सेवाओं की बेहतरी के लिये संचालित होते हैं (see Slack, 1991). ये मुद्दे संसद से लेकर कारपोरेट जगत में भी जोर–शोर से उठते रहे हैं। भारत के अधिकतर बड़े शहरों में आवासहीनता बड़ी समस्या है। ये सभी वो मसले हैं, जिनसे शहरों में रहने वाला हर व्यक्ति प्रभावित होता है। ऐसे में जीवनस्तर की गुणवत्ता के विश्लेषण के लिये सरकारी कार्यक्रमों और नीतियों के जीवन पर होने वाले असर का विश्लेषण आवश्यक होता है। ऐसे में नगरीय शोधकार्य का विभिन्न स्तरों पर खोजी प्रतिक्रियाओं और परिणामों को सामने रखना आवश्यक बन जाता है। इसके तहत अलग–अलग स्तर पर प्रभावी कार्यक्रमों की पहचान, उनके प्रभावी होने के कारणों का मूल्यांकन और अन्य जरूरतमंद लोगों तक इन कार्यक्रमों की पहुंच बढ़ाने के तरीकों की जानकारी जुटाना जरूरी है। यहां तक कि सामाजिक मसलों से जुड़े नक्शे भी नगरीय निकायों को मजबूत निर्णय ले पाने में मदद कर सकते हैं। शैनन, पायेल और बैशर का 1990 में एड्स पर किया गया शोधकार्य इन्हीं तरीकों से बेहतर परिणाम देने वाला शोधकार्य बना।

## 2.11 अभ्यास प्रश्न (Mode Questions)

1. शोधकार्य के लिये जरूरी कदमों की जानकारी दें और शोध में इनके महत्व को भी समझाये।
2. नगरीय शोध कार्य में साधनों और माध्यमों के बारे में विस्तार से बतायें।
3. नगरीय शोध के लिये अनिवार्य शर्तों की जानकारी दें।
4. नगरीय शोध के स्रोतों का वर्णन करें। भारत में शोध के लिये उपलब्ध स्रोतों को सूचीबद्ध करें।

## 2.12 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)

1.Anderson,J.E(1984), "public policy making (3rd.edt.),New York,Halt,Reinhart and Wilston

2. Gregory D. Andranovich & Gerry Riposa(2011),"Doing Urban Research", Sage publication, Thousand Yorks.

ईकाई– 3

# भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया
# Process of Urbanization in India

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 नगरीकरण की अवधारणा
3.3 भारत में नगरीकरण
3.4 भारत में नगरीकरण के कारण
3.5 नगरीकरण के प्रभाव
3.6 नगरीकरण से उत्पन्न समस्याएं
3.7 सारांश
3.8 बोध प्रश्न/बोध प्रश्नो के उत्तर
3.9 लघु प्रश्न
3.10 निबंधात्मक प्रश्न
3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

## 3.0 उद्देश्य

इस ईकाई के मुख्य उद्देश्य हैं–

1. नगरीकरण तथा भारत में नगरीकरण की अवधारणा एवं प्रक्रिया को स्पष्ट करना।
2. भारत में नगरीकरण के कारण तथा प्रभाव को स्पष्ट करना।
3. भारत में नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं की व्याख्या।

## 3.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम सब जानते हैं कि नगरीकरण की प्रक्रिया नगरों के निर्माण तथा नगरों की वृद्धि से संबंधित है। वास्तव में ग्रामीण जनसंख्या का नगरों में जाना ही नगरीकरण कहलाता है। भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया को यदि देखा जाए तो प्राचीन समय से ही नगरीकरण की प्रक्रिया दिखाई देती है, किंतु यह भी वास्तविक है कि परिस्थितियाँ, देशकाल तथा स्वरूप के आधार पर इसमें निरंतर परिवर्तन आते रहते हैं। प्राचीन समय से ही जब मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ने लगी तब अनेक व्यवसायिक केन्द्रों का उद्भव हुआ जो शनैः–शनैः नगर का रूप धारण करने लगा। प्राचीन समय में पाटलिपुत्र, उज्जैन तथा तक्षशिला आदि ऐसे ही व्यवसायिकृत नगर हैं। भारत में नगरीकरण

की प्रक्रिया भी रही है। राजनैतिक नगरों में हस्तिनापुर, मथुरा, कन्नौज, इन्द्रप्रस्थ तथा अयोध्या नगर प्रमुख हैं। जहाँ मुख्य रूप से राजनैतिक संस्थाओं तथा शासन प्रणाली का उद्‌भव हुआ। इसी प्रकार धार्मिक रूप से कई नगरों का विकास हुआ, जिसमें हरिद्वार, काशी, प्रयाग तथा गया ऐसे धार्मिक स्थल हैं, जो बाद में धार्मिक नगरों के रूप में विख्यात हुए, ब्रिटिश काल में तो नगरों के निर्माण तथा वृद्धि में सर्वाधिक तीव्रता आई कच्चे तथा उत्पादित माल के आयात–निर्यात के लिए प्रायः समुद्र के किनारे बड़े–बड़े नगरों का निर्माण तथा विकास होने लगा, जिसमें मुम्बई, चेन्नई तथा कलकत्ता जैसे महानगरों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया के विभिन्न कारणों का उल्लेख करे तो यहाँ पर एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आवश्यकताएं, व्यापारिकरण, औद्योगिकरण विकास, सामाजिक, गतिशीलता, भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा नए–नए आविष्कार एक ऐसे कारण हैं, जिन्होंने भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करने में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है।

## 3.2 नगरीकरण की अवधारणा

नगरीकण के संदर्भ में हम पहले भी चर्चा कर चूके हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या का नगरीय क्षेत्रों में जाना नगरीकरण की प्रक्रिया कहलाता है। इस संबंध में प्रमुख विद्वान एन्डरर्सन का मानना है कि नगरीकरण एक तरफा प्रक्रिया न होकर दुतरफा प्रक्रिया है। इसमें केवल गाँवों से शहरों में जाना नहीं होता परंतु इसमें प्रवासी के दृष्टिकोणों, विश्वासों, मूल्यों और व्यवहार के संरूपों में भी परिवर्तन होता है। एन्डर्सन ने नगरीकरण की पाँच विशेषताओं का उल्लेख किया है।

1. मुद्रा अर्थव्यवस्था
2. सरकारी प्रशासन
3. सांस्कृतिक परिवर्तन
4. लिखित अभिलेख
5. अभिनव परिवर्तन[1]

थामसन ने नगरीकरण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ''प्रमुखतः अथवा एकमात्र कृषि से संबंद्ध समुदायों की ओर से साधारणतया विशालतर समुदायों की ओर जिनकी क्रियाएँ प्रचीन रूप से सरकार व्यापार, विनिमय अथवा आश्रित विषयों की होती हैं लोगों के गति के रूप से की है।''[2]

इसी प्रकार नेल्सन एडरसन ने भी नगरीकरण के विषय में लिखा है कि जीवन के मार्ग के रूप में शहरीपन केवल शहरों एवं कस्बों तक ही सीमित नहीं है यद्यपि दूसरा विकास विशाल नगर केंद्रों में भी होता है। यह व्यवहार का ढंग है, जिसका अर्थ है कि कोई भी अपने विचारों तथा आचरण से शहर बन सकता है। भले ही निवास एक गाँ में करता हो। दूसरी ओर एक अत्यंत अशहरीकृत व्यक्ति शहर के एक अति नगरीकृत क्षेत्र में निवास कर सकता है।[3]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि वास्तव में नगरीकरण के कारण नगरीय प्रभावों को प्रसार है, जो प्रमुखतः उद्योगों पर आधारित होता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें ग्रामीण संरचना में धीरे–धीरे परिवर्तन होता है तथा नगरीयता की स्थिति में भी परिवर्तन एवं वृद्धि होने लगती है। प्रमुख समाजशास्त्री बर्गेल का भी मानना है कि ग्रामीण क्षेत्रों के नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तन होने की प्रक्रिया का नाम ही वास्वत में नगरीकरण है। इसी प्रकार वारेन थामसन का भी मानना है कि नगरीकरण एक प्रक्रिया है जिसमें कृषि से संबंधित समुदाय के लोग धीरे–धीरे ऐसे बड़े समूहों के रूप में परिवर्तित होने लगते हैं, जिनकी क्रियाएँ उद्योग, व्यापार, वाणिज्य तथा सरकारी कार्यालयों से संबंद्ध होती हैं।

नगरीय जीवन की मुख्य विशेषता औद्योगिक कार्य, प्रस्थिति एवं व्यवसाय में उच्च गतिशीलता, मानव निर्मित पर्यावरण **Time and Tempo compulsion the transiency** आदि हैं। नगरीकण एक प्रक्रिया है जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्र के लोग नगरीय जीवन ढ़ग को ग्रहण करते हैं। जब ग्रामीण क्षेत्र के लोग नगरीय जीवन ढंग को ग्रहण करते हैं। तब उनका संपूर्ण जीवन परिवर्तित होने लगता है। अवैयक्तिक सामाजिक संबंध के विकास के कारण संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में परिवर्तित होने लगता है। के कारण मानव संबंध एवं अंतःक्रियाएं परिवर्तित होने लगती हैं, नगरीकण की प्रक्रिया लेागों का ध्यान गैर–कृषि कार्यों की ओर आकृष्ट करता है, जिसके लिए विशेषीकरण की आवश्यकता होती है। इस प्रकार नगरीकरण के कारण विशेषीकरण की मात्रा में वृद्धि होती है। इस विशेषीकरण के कारण व्यक्तिवाद विकसित होता है तथा व्यक्ति के गुण एवं क्षमता का महत्व बढ़ जाता है।[4]

## 3.3 भारत में नगरीकण

नगरीकरण की प्रक्रिया भारत वर्ष में प्राचीन काल से चली आ रही एक प्रक्रिया है। जो देशकाल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। भारत में जैसे–जैसे कृषि को विकास हुआ उत्पादन क्षमता विकसित हुई वैसे–वैसे निर्यात के लिए बाजारों की आवश्यकता होने लगी। अतः उत्पादन को खपाने तथा आयात–निर्यात को बढ़ावा देने के लिए तथा आर्थिक वृद्धि हेतु मंडियों की उत्पत्ति हुई। ऐसा माना जाता है कि यही मंडियाँ धीरे–धीरे नगर में परिवर्तित हो गई। विनिमय के विकास के कारण सामाजिक गतिशीलता बढ़ी, जिससे यातायात एवं आवगमन के साधनों का विकास होने लगा। एक प्रकार से कई स्थान व्यावसायिक केंद्रों में परिवर्तित हो गए जिनमें तक्षशिला, उज्जैन तथा पाटलिपुत्र प्रमुख हैं। इसी प्रकार विभिन्न शासकों द्वारा कई राजनैतिक एवं शासन संबंधों नगरों की भी स्थापना की गई, जिसमें प्रमुख रूप से हस्तिनापुर, मथुरा, कन्नौज तथा अयोध्या आदि नगर प्रमुख हैं। मुगलों तथा मुस्लिम शासकों ने अपने कार्यकाल में आगरा, दिल्ली तथा फतेहपुर सिकरी

जैसे वास्तुकला में विख्यात नगरों की स्थापना की जो आज भी विश्व–विख्यात नगरों की स्थापना की जो आज भी विश्व विख्यात हैं और वास्तुकला में पूरे विश्व में आज भी बेजोड़ माने–जाते हैं।

अंग्रेजों के शासनकाल या ब्रिटिश युग में तो नगरीकरण या नगरों के निर्माण व वृद्धि में तीव्रता आने लगे। जिसके परिणाम स्वरूप व्यवस्थित एवं साधन संपन्न बड़े–बड़े औद्योगिक नगरों का विकास हुआ। ब्रिटिश काल में अधिकांश नगर समुद्रों के किनारे बनाए गए। समुद्र किनारे नगरों के निर्माण तथा वृद्धि का एक प्रमुख कारण आवगमन की सुविधा को माना जा सकता है क्योंकि भारत में कच्चे माल तथा आयात–निर्यात अथवा अंग्रेजों को इंग्लैण्ड से कच्चा माल तथा भारत में उत्पादित वस्तुओं को समुद्र तटीय मार्गों या समुद्री जहाजों से ले जाने में सर्वाधिक सुविधा प्राप्त होती थी। उस समय मुंबई, कलकत्ता तथा चेन्नई आदि नगर समुद्रों के किनारे बसे हुए महानगर माने जाते थे।

इस प्रकार भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया के संदर्भ में कहा जा सकता है कि यहाँ नगरीकरण की प्रक्रिया ईसा से 3,000 वर्ष पूर्व ही प्रारंभ हो गई थी। इस संबंध में प्रमुख सामाजशास्त्री गणेश पाण्डेय तथा अरुणा पाण्डेय आदि का मानना है कि आज से 2,000 वर्ष पूर्व ही भारत में मगध, नालंदा, तक्षशिला, उज्जैन, पाटलिपुत्र, कन्नौज, धारा, काशी एवं मालवा आदि जैसे बड़े–बड़े नगर थे। 18 वीं सदी के पहले तक भारत एवं संसार के अन्य देशों में जिन बड़े नगरों की स्थापना हुइ थी। उनका कारण एक विशेष स्थान पर केन्द्रित राजनीतिक शक्ति, व्यापार एवं शिखा की सुविधाएं थीं, लेकिन इन नगरों में जनसंख्या का घनत्व अधिक नहीं था। 20 वीं शताब्दी में जिन नगरों की स्थापना हुई उनकी जनसंख्या में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई।[5]

नगरीकरण की वृद्धि औद्योगीकरण या संपूर्ण आर्थिक विकास के साथ घनिष्ठ रूप से संबंध हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया एक प्रतिरूप दिखलाती है, जिसमें परिवर्तन की गति प्रारंभ में मंद रहती है। फिर औद्योगीकरण की प्रारंभिक अवस्था में पहुंचने पर सीधी ऊँचे उठती है और धीरे–धीरे संकुचित होती जाती है। जब औसत शहरी परिपूर्णता–बिंदु पर पहुँचने लगता है।[6]

भारत में नगरीकरण पर एक विचार गोष्ठी सन् 1960 में हुई जिसने यह निष्कर्ष निकाला कि :–

1. नगरीय जीवन दशाएं बहुत ही असहनीय हैं ओर उनमें सुधार किया जाना चाहिए।
2. आने वाले तीस वर्षों में शहरी जनसंख्या कम–से–कम दो गुनी अवश्य हो जाएगी।
3. आज के क्रांतिक काल में शहरी सामाजिक विषयों पर व्यय यथा संभव कम किए जाने चाहिए यदि उत्पादकताक का पर्याप्त रूप से बढ़ाना हमारा लक्ष्य है।[7]

इसी प्रकार नियोजन आयोग ने भी तृतीय पंचवर्षीय योजना तैयार करते समय इस मत का समर्थन किया था कि ''नगरीकरण आर्थिक तथा सामाजिक विकास की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है और गाँवों से कस्बों की ओर स्थानान्तरण; ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में रहन–सहन के स्तर। विभिन्न आकार के कस्बों में आर्थिक तथा सामाजिक सेवाएं प्रदान करने के लिए सापेक्ष व्यय जनसंख्या के

विभिन्न अंगों के लिए आवास की व्यवस्था, जलपूर्ति, सफाई; परिवहन एवं शक्ति जैसी सेवाओं का प्राविधान। आर्थिक विकास का स्वरूप, उद्योगों का स्थान–निर्धारण एवं विकिरण; नागरिक प्रशासन। वित्तीय नीतियों और भूमि उपयोग के नियोजन जैसी अनेक समस्याओं के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। इन अंगों का महत्व उन शहरी क्षेत्रों में जो बड़ी तेजी से विकसित हो रहे हैं विशेष हो जाता है।[8]

**विकास संबंधी नीति के अवयव–**

1. जहाँ तक संभव हो नए उद्योगों को विशाल तथा जनबहुल क्षेत्रों से दूर स्थापित किया जाए।
2. भारी उद्योगों के नियोजन में प्रदेश की संकल्पना concept of region को अपनाया जाना चाहिए। प्रत्येक विषय में निकटस्थ नगर–उपान्त से लेकर इस विशाल क्षेत्र तक का नियोजन किया जाना चाहिए। जिसके विकास के लिए निकट–स्थित उद्योग तो उसे केंद्र बिंदु मानकर कार्य करेगा।
3. सामुदायिक विकास परियोजनाओं अथवा प्रान्त के अंदर अन्य क्षेत्रों में विकास के ग्रामीण तथा नगरीय संघटक एवं संयुक्त योजना में ही गुँथे होने चाहिए। यह योजना प्रत्येक दशा में कस्बों तथा अन्य उपान्त क्षेत्रों के बीच आर्थिक अन्योन्याश्रिता को सुदृढ़ करने वाले कार्यक्रमों पर आधारित होनी चाहिए।
4. प्रत्येक ग्रामीण क्षेत्र में कृषि पर आधुनिक अत्यधिक निर्भरता के स्थान पर विविध व्यावसायिक प्रतिरुप लाने का प्रयास किया जाना चाहिए।[9]

## 3.4 भारत में नगरीकरण के कारण

भारत में नगरीकरण के कारणों को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **कृषि व्यवसाय में वृद्धि–** भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया के लिए कृषि व्यवसाय में वृद्धि को भी उत्तरदायी माना जा सकता है। कृषि व्यवसाय में जब उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए नए–नए उन्नतिशील बीजों का प्रयोग किया जाने लगा साथ ही अच्छी और विविधापूर्ण फसलों को उत्पन्न करने के लिए सिंचाई की सुविधाएं तथा नए यंत्रों एवं मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा। तब उत्पादित फसल एवं अनाज को खपाने के लिए विभिन्न बाजारों की आवश्यकता महसूस होने लगी तब इस कृषि क्रांति ने अनेक व्यवसायिक नगरों का निर्माण एवं उसे विकसित किया।
2. **यातायात के साधनों का विकास–** यातायात या आवागमन के साधनों ने नगरीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाने में प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है। व्यापारीकरण, आयात–निर्यात तथा बाजारीकरण बिना यातायात के साधनों के विकास के संभव नहीं था। नगरों के विकास तथा

नगरीकरण के लिए रेल, वायुयान, पानी के जहाज, ट्रक आदि प्रमुख हैं। जो कच्चे माल तथा उत्पादित वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं।

3. **उपजाऊ भूमि एवं उपर्युक्त जलवायु–** नगरों के विकास में उपजाऊ भूमि एवं उपयुक्त जलवायु का भी विशेष योगदान है। भारत की जलवायु कृषि के लिए उपर्युक्त है साथ ही नदियों की बहुलता तथा खनिज लवण युक्त मिट्टी उत्पादन क्षमता को विकसित करती है।
4. **व्यापारिक केंद्र स्थल–** रोजगार के अवसर तथा उच्च जीवन स्तर के लिए अधिक से अधिक लोग व्यवसायिक जीवन को प्राथमिकता देते हैं। नगर मुख्यतः व्यवसायिक तथा व्यापारिक केद्र स्थल माने जाते हैं। अतः व्यवसायिक एवं व्यापारिक केंद्र स्थल होने के कारण भी नगरों का विकास या नगरीकरण होता है।
5. **औद्योगिकरण तथा तकनीकीकरण–** नगरीकरण के विकास तथा प्रगति के लिए उद्योग धंधों तथा नवीन मशीनों का विशेष योगदान है। नए–नए अविष्कारों तथ नई–नई तकनीक वाली मशीने उत्पादन क्षमता को बढ़ाकर विकास में तीव्रता लाती हैं। भारत भी इससे अछूता नहीं है। वास्तव में नगरीकरण औद्योगीकरण का ही परिणाम है।
6. **रोजगार एवं जीविकोपार्जन के केंद्र–** ग्रामीण समाज कृषि प्रधान समाज हो के कारण अधिकांश लोग कृषि पर आधारित होते हैं। किंतु कृषि में पूरे साल भर रोजगार नहीं मिल पाता। अतः इस मौसमी बेरोजगारी से बचने के लिए अधिकांश लोग नगरों में जाकर रोजगार करना ज्यादा पसंद करते हैं। यही कारण है कि आज नगरों की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है तथा छोटे–छोटे नगर महानगरों में परिवर्तित हो रहे हैं।
7. **नगरीय सुविधाएं–** नगरीय जीवन सुविधाओं का केंद्र माना जाता है। स्वास्थ्य, शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, स्वच्छता, उच्च जीवन स्तर, संस्थाएं, संघ तथा अनेक समितियाँ आदि सुविधाएं प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। व्यक्ति एक अच्छे जीवन निर्वहन के लिए नगरों की ओर पलायन कर रहा है।

## 3.5 भारत में नगरीकरण के प्रभाव

भारत में नगरीकरण के आरंभ के विषय में यदि बात की जाए तो यहाँ नगरीकरण की प्रक्रिया शताब्दियों पूर्व हो गई थी, निम्नांकित कारणों के आधार पर भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया के आरंभ होने के कारणों तथा उससे उत्पन्न प्रभावों को स्पष्ट किया जा सकता है।

### 1. सामाजिक प्रभाव (Social Effect)

सामाजिक रूप से भारत में नगरीकरण के प्रभाव को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **संयुक्त परिवार का विघटन–** भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया के लिए सबसे प्रमुख प्रथम सामाजिक प्रभाव संयुक्त परिवार के विघटन को कहा जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि तथा रोजगार के सीमित अवसरों ने पलायन की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है, जिससे ग्रामीण जनसंख्या बड़ी संख्या में नगरों में रोजगार के लिए जाती है तथा वही पर जीवन पर्यन्त रहते हैं, जिससे संयुक्त परिवार धीरे–धीरे विघटित हो रहे हैं।
2. **सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन–** वैचारिक स्वतंत्रता तथा विभिन्न धर्म एवं जाति के संपर्क में आने के पश्चात् व्यक्तियों में पुरानी मान्यताएं तथा रुढ़िवादी विचारधारा का अंत होने लगा है, जिससे परंपरागत सामाजिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है या उसमें परिवर्तन होने लगा है।
3. **स्वतंत्र व्यक्तित्व–** नगरीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय व्यक्तियों के मध्य ''हम'' की जगह ''मैं'' की भावना का विकास कर दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में सामूहिकता की जगह वैयक्तिकता की भावना का विकास होने लगा है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने स्वार्थों तथा अपने ही विषय में सोचता है।
4. **रूढ़िवादिता का ह्रास–** नगरीकरण के कारण विभिन्न धर्म एवं जाति के लोग मिलजुल कर काम करते हैं। साथ–साथ खाना खाते हैं तथा एक ही मुहल्ले एवं कस्बे में मिलजुल कर जीवन निर्वाह करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में धार्मिक कट्टरता की भावना में कमी आई है तथा रूढ़िवादी परंपराओं का ह्रास हो रहा है। इस संबंध में प्रो0 श्री निवास ने तीन विशेषताओं की व्याख्या की है जो निम्न हैं–
   1. जिस कार्य व व्यवहार को पहले धार्मिक माना जाता ाि। उसे अब वैसा नहीं माना जाता है।
   2. परंपरागत विश्वासों के स्थान पर तर्क एवं बुद्धिवाद का महत्व बढ़ने लगता है।
   3. धार्मिक व्यवहारों का विश्लेषण सामाजिक मूल्यों तथा मानववादी मूल्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाने लगा है।
5. **सामाजिक संबंधों में परिवर्तन–** नगरीकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक संबंधों में एक बड़ा परिवर्तन ला दिया है। ग्रामीण समाज में जहाँ प्रत्येक व्यक्तियों के मध्य प्राथमिक एवं घनिष्ट संबंध पाए जाते थे तथा प्रत्येक सदस्य सदैव एक–दूसरे की सहायता को सदैव तत्पर रहता था। वही नगरीय समाज में प्राथमिक संबंधों का स्थान औपचारिक संबंधों ने ले लिया है। व्यक्तियों की महत्वकांक्षाओं ने उसे स्वार्थी बना दिया है। व्यक्ति का प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के साथ संबंध केवल स्वार्थ सिद्धि के लिए ही बनाया जाता है। कई बार तो पड़ोसी पास रह रहे पड़ोसी तक को नहीं पहचानता है। इस प्रकार भारत में नगरीकरण का एक सामाजिक प्रभाव सामाजिक संबंधों में परिवर्तन है।

6. **महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन–** शिक्षा के बढ़ते सुअवसर, वैचारिक स्वतंत्रता एवं परंपरागत नियमों एवं परंपराओं में परिवर्तन आने के कारण महिलाओं की स्थिति में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया है। यह भारत में नगरीकरण का ही प्रभाव है कि आज महिलाओं ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी दमदार उपस्थिति दर्ज करवाई है। नगरीकरण के प्रभाव से महिलाओं में तार्किक दृष्टिकोण का उदय हुआ है, जिससे वह अपने सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों के प्रति जागरूक हुई हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया ने जहाँ एक ओर महिलाओं में वैचारिक स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया है। वही दूसरी ओर पुरूषों को भी महिलाओं को समानता एवं प्रत्येक क्षेत्र में स्वतंत्रता के अधिकारों को देने की भी प्रेरणा प्रदान की है।

## 2. आर्थिक प्रभाव (Economic Effects)–

भारत में नगरीकरण ने आर्थिक जीवन में भी कई परिवर्तन ला दिया है, जिससे परिणामस्वरूप व्यक्ति के जीवन स्तर में कई क्रांतिकारी परिवर्तन आ गए हैं। जिसे निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **व्यवसायिक केंद्र स्थल–** भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने विभिन्न व्यवसायों एवं उद्योग–धंधों को प्रोत्साहित किया है। सरल शब्दों में यदि कहा जाए तो नगरों को प्रायः व्यवसायों एवं उद्योग–धंधों का केद्र स्थल कहा जा सकता है। नगरीय जीवन में प्रत्येक व्यक्ति अपने आर्थिक जीवन को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से प्रवेश करता है। यहाँ जीविकोपार्जन के अनेक साधन व्यवसाय एववं नौकरी के रूप में उपलब्ध होते हैं, जिन्हें अपना कर व्यक्ति अपने आर्थिक जीवन को उन्नतिशील बना सकता है।
2. **बाजार एवं मंडियों में वृद्धि–** व्यवयासीकृत केंद्र होने के कारण अधिकांशतः नगरों में बाजार एवं मंडियों की तीव्र गति से बढ़ोत्तरी होती है। व्यवसाय करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का अंतिम लक्ष्य अधिक–से–अधिक मुनाफा कमाना होता है। अतः नगरों में बाजारों एवं मंडियों का विस्तार एवं विकास इस तरह किया जाता है कि अधिकांश वस्तुओ की खपत की जा सके। अतः यह कहा जा सकता है कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने बाजारों का विस्तारीकरण करके आर्थिक जीवन को सुदृढ़ करने में विशेष भूमिका का निवर्हन किया है।
3. **असमानता की स्थिति–** भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने व्यक्तियों के मध्य एक असमानता की स्थिति को ला दिया है। जिससे उच्च तथा निम्न स्तरीकरण वाले समाज को बढ़ावा मिला है। कहने का तात्पर्य यह है कि नगरीय जीवन में प्रत्येक व्यक्ति की आर्थिक स्थिति समान न होने के कारण उनका जीवन तथा सामाजिक स्तर समान नहीं

होता है। जैसे उच्च आर्थिक स्थिति वाले व्यक्ति बड़ी–बड़ी कोठियों या बंग्लों में वातानुकूलित आवास में जीवन यापन करते हैं। जबकि वही दूसरी ओर कई व्यक्ति मलिन बस्तियों में रहने को मजबूर होते हैं। जहाँ मौलिक सुख–सुविधाओं का भी अभाव पाया जाता है। अतः नगरीकरण का आर्थिक जगत में एक प्रमुख प्रभाव आर्थिक क्षेत्र में असमानता को भी माना जा सकता है।

4. **धन की महत्वता–** भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने मानव को स्वार्थी बना दिया है। नगरों में निवास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से अपने स्वार्थ संबंधों के आधार पर जुड़ा रहता है। जिसका एकमात्र और अंतिम उद्देश्य सर्वाधिक धन कमाना या धन की प्राप्ति करना होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने व्यक्ति को धन का पुजारी बना दिया है। जो किसी भी तरह से केवल आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने में लगा रहता है। जिससे उसके सामाजिक संबंध धीरे–धीरे क्षीण या नष्ट होने लगते हैं।

### 3. पारिवारिक व्यवस्था में परिवर्तन (Impact on Family system)–

भारत में नगरीकरण के कारण पारिवारिक व्यवस्था भी प्रभावित हुई है। स्वतंत्रता के पश्चात् नगरीय प्रवृत्ति ने व्यक्ति में समानता, स्वतंत्रता एवं तार्किकता का विकास किया है। इसी तरह नगरीय उद्योगों ने व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से आजीविका अर्जित करने का अवसर भी प्रदान किया है न केवल पुरुष बल्कि शिक्षित महिलाएं भी अर्थोपार्जन करके आत्मनिर्भर बनने का प्रयत्न करने लगी हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज स्त्रियां संयुक्त परिवार में रहना पसंद नहीं करती हैं। इससे नगरों में संयुक्त परिवार विघटित होकर एकाकी परिवारों में परिणत हो गया है। नगरीकरण के कारण आज परिवार का आकार छोटा होने के साथ–साथ पति–पत्नी एवं उनकी संतानों के पारस्परिक संबंधों में भी परिवर्तन स्पष्ट होने लगा है। परिवार के सदस्यों के बीच व्यक्तिवादिता एवं औपचारिकता की भावना पनपने लगती है।

इस संबंध में रॉस ने अपनी पुस्तक **The Hindu family in its urban setting** में बताया है कि ''आने वाले कुछ समय में परिवार के नियमों तथा दायित्वों संबंधी विचार भी दुर्बल पड़ते जाएंगें। सदस्यों के बीच पारस्परिक स्नेह कम होता जाएगा तथा परिवार के मुखिया के अधिकार लगभग समाप्त हो जाएंगे।''

इसी प्रकार एम0एस0 गोरे ने **''Urbainzation and family change''** में बताया कि नगरीकरण से प्रभावित वर्तमान परिवारों में रहन–सहन के स्तर सदस्यों की संख्या तथा सदस्यों की स्थिति में परिवर्तन आया है, लेकिन सांस्कृतिक रूप से वे आज भी संयुक्त परिवार व्यवस्था से जुड़े हुए हैं।

प्रमुख सामाजशास्त्री 'रास' ने भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया का पारिवारिक व्यवस्था पर प्रभाव को स्पष्ट करते हुए कहा है कि ''परिवार के प्रति कर्त्तव्य की भावनाएं और परिवार के सदस्यों के प्रति

भावात्मक लगाव निश्चित रूप से कमजोर हो जाएंगे और पितृसत्ता समाप्त हो जाएगी। जब ऐसा होगा तो संबंधियों के और बड़े समूह में पहचान के लिए कुछ भी बाकी नहीं रह जाएगा।''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने पारिवारिक व्यवस्था में कई उल्लेखनीय परिवर्तन किए हैं। वास्तव में नगरीकरण की प्रक्रिया द्वारा जहाँ संयुक्त परिवार विघटित होकर एकाकी परिवारों में परिवर्तित हो रहे हैं। वहीं परंपरागत परिवारों में मिली–जुली संस्कृति (परंपरागत तथा पश्चिमी) का भी समावेश हो रहा है। इन परिवर्तनों ने परंपरागत परिवारों की कई परंपराओं एवं रीति–रिवाजों को परिवर्तित कर दिया है।

### 4. राजनीतिक जीवन पर प्रभाव (Impact on Political life)–

भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने अधिकांश लोगों में राजनीति के प्रति जागरूकता की भावना को विकसित किया है साथ ही व्यक्तियों में राजनीति के प्रति जिज्ञासा को भी उत्पन्न किया है। राजनीतिक प्रभावों को निम्नलिखित तथ्यों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **राजनीतिक जागरूकता–** यह कहना कोई अतिशोयक्ति नहीं होगा कि ग्रामीण समाज में व्यक्तियों के अंदर देश–विदेश संबंधी राजनीतिक जागरुकता का अभाव पाया जाता है, किंतु नगरीय समाज में व्यक्ति संचार के माध्यमों टी0वी0 एवं इंटरनेट के माध्यम से राजनीतिक गतिविधियों से भी अवगत होता रहता है। जिससे उसे देश और समाज के प्रति अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का बोध होता है। इस प्रकार भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने जनता को राजनीतिक रूप से जागरूक किया है।
2. **राजनीतिक गतिविधियों में भागीदारी–** नगरीकरण की प्रक्रिया ने व्यक्तियों को राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिया रूप से भागीदारी को सुनिश्चित किया है। जहाँ एक ओर व्यक्ति लोकतंत्र की महत्ता को समझता है वहीं दूसरी ओर उसे समाज और देश के प्रति अपने कर्त्तव्यों का बोध रहता है। मतदाता के रूप में व्यक्ति एक ईमानदार नेता का चुनाव करता है। कहने का आशय यह है कि नगरों में व्यक्ति राजनीतिक गतिविधियों में खुले रूप से भाग लेते हैं।

### 5. व्यवहारों एवं मनोवृत्तियों पर प्रभाव

जैसा कि हम सब जानते हैं कि नगरों में अनेक धर्म एवं जातियों के लोग आपस में मिल–जुल कर रहते हैं। जिससे उनकी परंपरागत परंपराओं, रीति–रिवाजों एवं रूढ़िवादी विचारधाराओं में परिवर्तन आता है। पश्चिमी सभ्यता को अपनाकर प्रत्येक व्यक्ति, व्यक्तियों को अलग–अलग जातियों एवं वर्गों में न बांटकर समानता के स्तर पर रखकर समान व्यवहार करने का प्रयास करता है। अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने व्यक्तियों की परंपरागत व्यवहारों एवं

मनोवृत्तियों में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। इस संबंध में प्रमुख समाजशास्त्री प्रो0 एम0एन0 श्रीनिवास ने लिखा है कि ''पश्चिमीकरण एक विशेष प्रक्रिया का नाम है, जिसमें व्यक्ति प्रौद्योगिकी, विभिन्न संस्थाओं, विचारों और सामाजिक मूल्यों के स्तर पर होने वाले सभी परिवर्तनों को ग्रहण करने के लिए तैयार रहता है। इस प्रकार पश्चिमीकरण वह प्रक्रिया है जो व्यक्तिग व्यवहारों के निर्धारण में मानवतावाद, उदारतावाद, तार्किकता, धर्म निरपेक्षता, समतावाद एवं परिवर्तन को महत्व देती है। साथ ही इसके अंतर्गत सांप्रदायिकता, जातिवाद एवं क्षेत्रवाद को हतोत्साहित किया जाता है।[11]

### 6. ग्रामीण समुदाय में प्रभाव[12] (Impact on Rural community)

भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण समुदाय को भी प्रभावित किया है। इस संबंध में के0एम0 कपाड़िया ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि नगरीकरण के प्रभाव से गाँवों की आत्मनिर्भरता नष्ट हो गई है तथा गाँवों की परंपरागत संस्कृतियों पर नगरों की नई संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट होने लगा है। नगर की आधुनिक सुविधाएं गाँवों तक भी पहुँच गई हैं। नवीन संपर्क से गाँवों में रहन–सहन, वेशभूषा एवं घर की सजावट के तरीके प्रभावित हुए हैं। इसी प्रकार डॉ0 राव ने अपनी पुस्तक में ग्रामीण समुदाय पर नगरीकरण के प्रभावों की विस्तृत व्याख्या की है। इनके विचार में नगरीकरण के कारण ग्रामीण समुदाय में द्रव्यीकरण का विकास हुआ है एवं खेती में व्यापारीकरण की प्रवृत्ति स्पष्ट होती जा रही है। गाँवों में जो व्यक्ति पहले अपने परंपरागत कार्यों में लगे हुए थे वे अब नई सेवाओं के आकर्षण के कारण नगरों में प्रवेश कर रहे हैं। इससे गाँव में परंपरागत व्यवसायों के साथ–साथ जजमानी व्यवस्था भी समाप्त हो गई है। नगरीय उद्योग–धंधों में कार्य करने के कारण ग्रामीण लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ तथा उनमें आत्मनिर्भरता उत्पन्न हुई।

### 7. जाति व्यवस्था पर प्रभाव (Impact on caste system)-

ऐसा माना जाता है कि भारत में नगरीकरण के प्रभाव से जाति व्यवस्था सर्वाधिक प्रभावित हुई है। भारत में नगरीकरण की जाति व्यवस्था पर प्रभाव निम्नांकिम बिंदुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **अस्पृश्यता की भावना का ह्रास–** नगरीकरण के परिणामस्वरूप नगरों में उच्च जाति और निम्नजाति सभी मिल–जुल कर कार्य करते हैं। होटल में रेस्ट्रा में साथ–साथ खाना खाते हैं, इस तरह नगरीय समाज में छुआछूत या अस्पृश्यता की भावना का ह्रास हो रहा है।
2. **परंपरागत व्यवसायों में परिवर्तन–** प्राचीन काल में समाज को व्यवस्थित एवं संगठित रखने के लिए संपूर्ण समाज को कार्यात्मक आधार पर चार वर्णों में विभक्त कर दिया जाता था। प्रत्येक व्यक्ति को कुछ निश्चित कार्य व्यवसाय के रूप में करना होता था जो कालांतर में

पीढ़ी–दर–पीढ़ी जातिगत व्यवसाय बनते चले गए, किंतु नगरीकरण के पश्चात् इस परंपरागत व्यवसाय में परिवर्तन आने लगा अपनी योग्यता और रुचि के अनुरूप प्रत्येक व्यक्ति कोई भी कार्य करने के लिए स्वतंत्र है। सरल शब्दों में यदि कहा जाए तो यह आवश्यक नहीं कि व्यक्ति केवल अपने परंपरागत व्यवसाय को ही करे। अपनी रुचि तथा योग्यता के अनुरूप जहाँ उसकी आमदनी अधिक होती है उस व्यवसाय को चुनने के लिए वह स्वतंत्र होता है।

3. **धर्म एवं संस्कृति में परिवर्तन–** नगरीय सभ्यता ने व्यक्ति को वैचारिक एवं ताकिक स्वतंत्रता प्रदान की है। नगर का वातावरण प्रगतिशील एवं विकसित होने के कारण व्यक्ति अपने धार्मिक नियमों, परंपराओं एवं रूढ़िवादी विचारों का धीरे–धीरे त्याग कर रहा है, जिससे उसमें धर्म एवं संस्कृति संबंधी पारंपरिक विचारधाराओं में परिवर्तन आ रहा है। वर्तमान समय में तो व्यक्ति अपने धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म को अपना रहा है।
4. **वैवाहिक संस्था में परिवर्तन–** भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने वैवाहिक संस्था में भी क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। औद्योगिकरण के कारण युवक एवं युवतियाँ साथ–साथ काम करते हैं तथा एक–दूसरे को समझने का अवसर भी प्राप्त होता है। जिससे प्रेम विवाह तथा अंतर्जातिय विवाह को बढ़ावा मिला है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय वैवाहिक पारंपरिक संस्था में कई परिवर्तन किए हैं।

उपयुक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने जाति व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला है, इस संबंध में आन्द्रे बिताइ का मानना है कि पाश्चात्य रंग में रंगे हुए अभिजन ने वर्ग के बंधन, जाति के संबंधों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। कुछ जातियों के शिक्षित सदस्य जो आधुनिक व्यवसायों में हैं। कभी–कभी दबाव समूह के रूप में संगठित हो जाते हैं। इस प्रकार एक जाति दूसरे दबाव समूहों के साथ राजनीतिक और आर्थिक संसाधनों के लिए एक सामूहिक इकाई की तरह प्रतिस्पर्द्धा करती है। इस प्रकार का संगठन एक नई प्रकार की एकात्मकता दर्शाता है। ये प्रतिस्पर्द्धा करने वाली इकाइयाँ जाति के वर्गों की अपेक्षा सामाजिक वर्गो की तरह अधिक कार्य करती है।[13]

इसी प्रकार कोलेन्ड्रा ने नगरीकरण के जाति व्यवस्था पर प्रभाव को तीन प्रकारों के आधार पर स्पष्ट किया है।[14]

1. रोजगार में और शहरों की अपेक्षाकृत नई बस्तियों में विभिन्न उपजातियों और जातियों के व्यक्ति एवं–दूसरे से मिलते हैं। वे प्रायः लगभग बराबर के दर्जे के होते हैं और इसमें पड़ोस की या कार्यलय समूह को एकता विकसित होती है। इस तरह की चीज बड़े शहरों में सरकारी बस्तियों में आम रूप से पाई जाती है।

2. अन्तर–उपजातीय विवाह होते है और इसे उपजातियों के विलयन को प्रोत्साहन मिलता है। यह इसलिए होता है कि कई बार शिक्षित बेटी के लिए अपनी ही उपजाति में पर्याप्त रूप से शिक्षित वर नहीं मिलता, परंतु करीब की उपजाति में मिल जाता है।
3. लोकतांत्रिक राजनीति–उप जातियों और सन्निकट जातियों के विलयन को प्रोत्साहित करती है ताकि बड़े आकार के दलों का संगठन बन सके।

## 3.6 नगरीकरण से उत्पन्न समस्याएं

जैसा कि हम सब जानते हैं विकास और प्रगति जहाँ एक ओर समाज को एक नई दिशा और सकारात्मक परिणाम लाने में सहायक होते है। वहीं दूसरी ओर वे कई नकारात्मक परिणाम एवं एसस्याएं भी लाते हैं। भारत में नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. **मलिन या गंदी बस्तियों का निर्माण–** भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने मलिन तथा गंदी बस्तियों का निर्माण किया है। रोजगार के अवसरों, शिक्षा तथा उच्च जीवन स्तर की लालसा में नगरों में दिन–प्रतिदिन जनसंख्या का घनत्व बढ़ जाता है। जो आवास संबंधी समस्या को उत्पन्न कर देता है। इस समस्या से बचने के लिए व्यक्ति छोटी–छोटी बस्तियों का निर्माण करने लगता है। जहाँ मूलभूत सुविधाओं का भी अभाव होता है तथा स्वास्थ्य एवं अपराध संबंधी कई नई समस्याओं को जन्म देने का कारण बनता है।
2. **प्रदूषण की समस्या–** नगरीकरण की प्रक्रिया ने प्रदूषण की समस्या को सर्वाधिक उत्पन्न किया है। औद्योगिक अवशिष्ट ने जहाँ एक ओर नदी और पीने के पानी को प्रदूषित किया है वहीं दूसरी ओर चिमनियों से निकलने वाले धुंए और जहरीली गैसों ने वायु प्रदूषण को भी बढ़ावा दिया है, जिससे धीरे–धीरे कई नई बिमारियाँ उत्पन्न होती है जो स्वास्थ्य पर अपना गहरा दुष्परिणाम छोड़ती है।
3. **प्रवजन की समस्या–** रोजगार के अवसर, गरीय सुविधाएं एवं नगरों की चकाचौंध भरी जीवन की ओर आकर्षित होकर ग्रामीण समाज से युवा वर्ग का नगरों की ओर पलायन एक प्रमुख समस्या बन गया है, जिससे गाँव–गाँव खाली होते जा रहे हैं।
4. **अपराध एवं बाल अपराध–** भारत में नगरीकरण के कारण अपराध एवं बाल अपराध को बढ़ावा मिला है। नगरों में अलग–अलग जगहों से विभिन्न मनोवृत्तियों वाले व्यक्ति आकर निवास करते हैं। जिसका प्रमुख उद्देश्य केवल धन कमाना होता है। अतः व्यक्ति अपराध की ओर अग्रसर होकर भी धन की प्राप्ति करता है, नगरों में पति–पत्नी दोनों के कार्यरत होने की दशा में उनके बच्चे गलत संगत में पड़कर अपरासध की ओर अग्रसर होने लगते हैं।

5. **श्रम समस्याएं–** भारत में नगरीकरण ने श्रम समस्याओं को जन्म दिया है। ग्रामीण समाज से व्यक्ति रोजगार की तलाश में नगरों में तो प्रवेश करते हैं, किंतु रोजगार के अभाव में आकस्मिक रोजगार को अपना लेते हैं। जैसे फेरीवोल, रिक्शा चालक, ग्रह सेवक तथा छोटे बच्चों की देखभाल आदि का कार्य इस तरह के कार्य व्यक्तियों के लिए कई नई प्रकार की समस्याओं को उत्पन्न कर देता है, क्योंकि ऐसे कार्यों में किसी भी प्रकार का स्थायित्व नहीं पाया जाता है।
6. **सामुदायिक विघटन–** सामुदायिक विघटन की समस्या को जन्म देने नगरीकरण की प्रक्रिया का विशेष योगदान माना जा सकता है। सरल शब्दों में यदि कहा जाए तो नगरीय समुदाय में अधिकांश व्यक्ति परिवार विहीन या अकेले निवास करते हैं। इसके अलावा स्थायी रूप से बेरोजगार व्यक्ति, भिखारी, नशाखोर एवं जुआखोर व्यक्ति सभ्य समाज के संगठन में रोज नए–नए संकट पैदा करते हैं जो सामुदायिक विघटन उत्पन्न करने लगते हैं। ऐसे व्यक्ति अपराध को भी बढ़ावा देते हैं।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने देश में विकास एवं प्रगति को एक दिशा प्रदान की है। वहीं दूसरी ओर कई प्रकार की अनगिनत समस्याओं को भी जन्म दिया है।

## 3.7 सारांश

उपरोक्त संपूर्ण विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने भारत के परंपरागत एवं स्थिर समाज को परिवर्तित करके एक गतिशील समाज में परिवर्तित कर दिया है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति व्यक्ति के जीवन स्तर में एक क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई देने लगा है। नगरीकरण के कारण व्यक्तियों में जहाँ एक ओर नवीन वैचारिक शक्तियों का उद्‌भव हुआ है वहीं दूसरी ओर वह आर्थिक रूप से भी सुदृढ़ हुए हैं। जिससे भारतीय समाज के परंपरागत रहन–सहन के ढंग मे परिवर्तन आ गया है। कहने का आशय यह है कि इस प्रक्रिया के कारण व्यक्ति जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोणों को आत्मसात कर रहे हैं। जो उनके लिए लाभप्रद और तार्किक हो, जैसा कि हम सब जानते हैं कि परिवर्तन के सदैव दो पहलू होते हैं एक सकारात्मक तथा दूसरा नकारात्मक भारत में जहाँ एक ओर नगरीकरण की प्रक्रिया ने सकारात्मक परिणामों से देश को विकास एवं प्रगति की एक नई दिशा से अवगत कराया है वहीं नकारात्मक परिणाम के रूप में कई प्रकार की समस्याओं को भी उत्पन्न किया है जिनका सविस्तार अध्याय में पहले विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। अतः यह आवश्यक है कि विकास एवं प्रगति के साथ–साथ हमें उसके दुष्प्रभावों के विषय में भी सर्दव सचेत रहना चाहिए जो एक उन्नतिशील समाज एवं देश के लिए आवश्यक होता है।

## 3.08 बोध प्रश्न/बोध प्रश्नों के उत्तर

**1. बोध प्रश्न**

(सत्य/असत्य)

1. ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर जाना ही नगरीकरण है– सत्य/असत्य
2. व्यवसायिक केन्द्रों ने नगरों के विकास को बढ़ावा दिया है– सत्य/असत्य
3. कार्ल मार्क्स का मानना है कि नगरीकरण एक तरफा प्रक्रिया न हो कर दुतरफा प्रक्रिया है– सत्य/असत्य
4. बर्गेल का मानना है की ग्रामीण क्षेत्रों के नगरीय क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तन को ही नगरीकरण कहा जाता है– सत्य/असत्य
5. भारत वर्ष में नगरीकरण की प्रक्रिया प्राचीन काल से चली आ रही है– सत्य/असत्य

**उत्तर**

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य

**2. बोध प्रश्न**

**रिक्त स्थानों की पूर्ति**

1. नगरीकरण की प्रक्रिया ने परंपरागत .....का ह्रास किया है।
2. भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ने विभिन्न .....एवं उद्योग धंधों को प्रोत्साहित किया है।
3. उच्च जाति और निम्न जाति के साथ–साथ कार्य करने से .....की भावना का ह्रास हुआ है।
4. अपनी जाति से बाहर विवाह करना अन्तरजातीय विवाह कहलाता है जो .....का परिणाम है।
5. कोलेन्ड्रा ने नगरीकरण के जाति व्यवस्था पर प्रभाव के .....प्रकार बताए हैं।

**उत्तर**

1. सामाजिक मूल्यों, 2. व्यवसायों, 3. अस्पृश्यता, 4. नगरीकरण, 5. तीन

## 3.9 लघु प्रश्न

1. नगरीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करिए।

2. एन्डरर्सन द्वारा दिए गए नगरीकरण की पाँच विशेषताओं का उल्लेख करिए।
3. भारत में नगरीकरण से कृषि व्यवसाय में किस प्रकार वृद्धि हुई स्पष्ट करिए।
4. भारत में नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव को स्पष्ट करिए।
5. नगरीकरण की प्रक्रिया ने भारत में जाति व्यवस्था को परिवर्तित किया है। संक्षेप में स्पष्ट करिए।

## 3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नगरीकरण किसे कहते हैं तथा भारत में नगरीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करिए?
2. भारत में नगरीकरण के कारण तथा प्रभाव को स्पष्ट करिए?
3. भारत में नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं का सविस्तार व्याख्या किजीए?
4. भारत में नगरीकरण के सामाजिक तथा आर्थिक प्रभाव को स्पष्ट करिए?
5. भारत में नगरीकरण के पारिवारिक व्यवस्था तथा राजनीतिक व्यवस्था के प्रभाव को सविस्तार स्पष्ट व्याख्या कीजिए?

## 3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची


1. Anderson And Iswarn, Urban Socialogy, New York, publishing House-1953.
2. Thompson Warren S. Urbanization in Encyclopedia of th Social Science vol XV.
3. Anderson Nels, The Urban Community, A world prospective, New York Henry Holt and Co, 1959.
4. गणेश पाण्डेय, अरुणा पाण्डेय, ''नगरीय समाजशास्त्र–2004, राधा पब्लिकेशन्स, पे0न0–110
5. गणेश पाण्डेय, अरुणा पाण्डेय, ''नगरीय समाजशास्त्र–2004, राधा पब्लिकेशन्स, पे0न0–119
6. Kingsley Davis "Urbanization in India : Past and future in India's Urban future Ra Turnar Bombay. Oxford University press, 1962, P No-03.
7. Wurster "Urban Living conditions overhead costs and the deveplpment pattern in India" Urban future (1962), P No-277.
8. जी0आर0 मदन, ''विकास का समाजशास्त्र–2003, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पे0न0–203
9. Third five year plan, P No-689.
10. गणेश पाण्डेय, अरुणा पाण्डेय, ''नगरीय समाजशास्त्र–2004, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पे0न0–116
11. गणेश पाण्डेय, अरुणा पाण्डेय, ''नगरीय समाजशास्त्र–2004, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पे0न0–117

12. गणेश पाण्डेय, अरुणा पाण्डेय, ''नगरीय समाजशास्त्र–2004, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पे0न0 – 117–118
13. Beteille Andre "caste : old and new essays in social stratification" Asia publishing house, Delhi, 1969.
14. Kalenda Pauline "Caste in contemporary India" Rawat publications , Jaipur, 1984.

इकाई– 4

# नगर, नगरों का कार्याधारित वर्गीकरण
# (The City, Functional Classification of Cities)

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 नगरों के कार्याधारित विभाजन का ऐतिहासिक विकास

4.3 नगरों का कार्याधारित वर्गीकरण

4.3.1 भारत में वर्गीकरण

4.3.2 अन्य देशों में वर्गीकरण

4.4 अध्ययनों का समालोचनात्मक विश्लेषण

4.5 निष्कर्ष

4.6 अभ्यास प्रश्न

4.7 भावी अध्ययन

## 4.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे कि नगरों को किस तरह वर्गीकृत किया जा सकता है। नगरों के विकास और वर्गीकरण का इतिहास क्या है और वे विद्वान कौन हैं, जिन्होंने कार्यों के आधार पर भारत और अन्य देशों में नगरों का वर्गीकरण किया।

## 4.1 परिचय (Introduction)

धरती पर विस्तृत कालखंड में विकसित हुये नगर अनंत सौंदर्यस्वरूप हैं। विद्वान शोधकर्ताओं से लेकर कवियों तक हर वर्ग, हर विचार के व्यक्ति को नगरों ने प्रभावित किया है। शोधकर्ताओं ने नगरों को मुख्यतः दो प्रकारों में वर्गीकृत किया है, 1. स्वतः विकसित (Grown) 2. नियोजित (Planned) (Blumenfeld, 1943). आदिकालीन व्यवस्था में आवास सुविधा नियोजित अथवा अनियोजित होती थी। मूल उद्देश्य विविध गतिविधियों के साथ आवास समस्या को हल करना था। प्राचीनकाल में लोग अधिकतर बिखरे हुये गांवों में रहते थे, जहां उनका मुख्य कार्य कृषि गतिविधियां थीं। यही वजह थी कि नगरों और गांवों की पहचान का एक मुख्य माध्यम कृषिकार्य और गैरकृषिकार्य बन गये। बाद में औद्योगिक विकास और आर्थिक गतिविधियों ने नियोजित नगरों का विकास किया। 'विकासशील अर्थव्यवस्थाओं (विशेषकर अफ्रीका में) में औद्योगीकरण के बिना भी शहरीकरण हो रहा है। चूंकि एक शहर गैर व्यापारिक वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है साथ ही अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर व्यापारयोग्य वस्तुओं का भी (यदि वे पर्याप्त प्रतिस्पर्धी हों), यह लाभ के पैमाने

पर निर्भर करता है। कोई शहर व्यापारिक वस्तुओं का उत्पादन कर पाने में तब अक्षम होता है, जब शहर और आंतरिक क्षेत्रों में गैर व्यापारिक वस्तुओं की मांग अधिक हो अथवा शहरी अवस्थापना और निर्माण की लागत बेहद अधिक हो।' (Venables, 2017). नगर मानवजाति के सांस्कृतिक विकास के केन्द्र हैं।

यहां यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि पहली मानवीय आवासीय व्यवस्था का विकास अलग–अलग रुचियों, लक्ष्यों वाले लोगों के एकसाथ आने से हुआ। नगर के केन्द्र का तात्पर्य राजनीतिक शक्तियों और धार्मिक प्राधिकरणों से है, जो राष्ट्रों पर हमले कर जीत हासिल करने की मंशा के कारण बने। (Hoyt, 1962). आकार, अवस्थिति और कार्यों तथा लोगों की आवश्यकताओं, सामाजिक–सांस्कृतिक महत्य आदि के आधार पर नगर विभिन्न प्रकार के होते हैं। विभिन्न शोधकर्ताओं ने नगर को आकार, अवस्थिति, सामाजिक–सांस्कृतिक महत्व आदि कारकों के आधार पर वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। इन सबमें कार्यों के आधार पर नगर का वर्गीकरण तब सबसे उपयुक्त प्रतीत होता है, जब हम समरूप सैद्धान्तिक वर्गीकरण चाहते हैं। कस्बों का कार्याधारित विश्लेषण शहरी अध्ययन का अहम हिस्सा बन गया है, क्योंकि इसके जरिये क्षेत्रीय नियोजन को बेहतर आधार मिलता है (velapurgore, Rathod and kalgapur, 2008). स्मिथ (1965) के अनुसार, 'नगर अर्थव्यवस्था और लोगों की संस्कृति में विविध कार्यों को संपन्न करने का माध्यम हैं। सभी नगरों के कुछ कार्य समान होते हैं। सभी नगरों के कुछ कार्य उनकी अवस्थिति और अन्य परिस्थितियों, उनमें रहने वाले लोगों के हिसाब से अलग व विशेष होते हैं। और सभी नगरों के कुछ कार्य उनकी विकास प्रक्रिया तथा इतिहास से जुड़े हुये होते हैं। इस प्रकार नगरों को कार्य को मापदंड मानने के आधार पर वर्गीकृत करना अन्य किसी भी माध्यम से अधिक प्रभावी होता है।'

## 4.2 नगरों के कार्याधारित विभाजन का ऐतिहासिक विकास (Historical Growth of Functional Division of City)

होमर होइट ने नगरों के कार्यों को कालक्रम में वर्गीकृत किया है। उन्होंने नगरों को प्राचीन और आधुनिक में बांटा, जो निम्नवत हैं:

### प्राचीन नगर (Ancient cities: before 100 A.D.)

अधिकतर महान नगर जो शक्तिशाली साम्राज्यों की राजधानियां थीं और जहां महल, मन्दिर आदि थे नक्शे से गायब हो चुकी हैं (जैसे बेबीलोन, निनेवा, मेम्फिस और थीब्स आदि)। अन्य कुछ महान नगरों के अवशेष खुदाई में मिले हैं, जिनमें क्रीट का नॉसस, ग्रीस का कोरिन्थ और भारत का मोहनजो–दारो शामिल हैं। ये सभी नगर ईसा से 3000 वर्ष पूर्व विकसित थे। बायब्लोस, बाल्बेक, सैगुन्तेम, इटालिया, पॉम्पी, पलमाइरा, सीसेरिया और कई अन्य छोटे नगर भी नष्ट हो गये। अन्य महान नगरों, जैसे मैक्सिको (500–1200 ईसवी) के मन्दिर भी जंगलों में दफन मिले। मेक्सिको सिटी के नजदीक ही स्थित तेओतिवाकान के पिरामिड अमेरिका के संरक्षित नगरों में एक हैं। ये सभी महान नगरीय केन्द्रों के उदाहरण हैं, जो नष्ट हो गये। अब भी अस्तित्वमान प्राचीनतम नगरों में सीरिया का डेमेस्कस, येरूशलम, रूस का कीव और बगदाद शामिल हैं। 1200 से 1000 ईसा पूर्व विकसित वर्तमान नगरों में एथेंस, बीजिंग, रोम शामिल हैं। इसी तरह 300 से 50 ईसा पूर्व ग्रीक या रोमन काल में विकसित हुये नगरों में लंदन, पेरिस, अंकारा, वियेना, मिलान, बार्सिलोना, लिस्बन, कोरदोवा, मार्सिल्स, ब्रुसेल्स, एनीटोक, कैंटन आदि शामिल हैं।

## 100 से 1000 ईसवी (Period 100 A.D. to 1000 A.D)

रोमन साम्राज्य का विकास मुख्यतः कांस्टेन्टिनोपल नगर के आसपास हुआ, जो बाद में 328 ईसवी में पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी बनकर उभरा। वेनिस का उद्भव एक गांव के रूप में हुआ, जिसे मत्स्याखेट जैसी गतिविधियों के लिये जाना जाता है। हालांकि, रोमन साम्राज्य के उतार के दौर में इस शहर की जनसंख्या तेजी से गिरी और अगस्टस के काल यानी नवीं सदी तक एक लाख से घटकर महज 17 हजार रह गयी। हालांकि, 800 ईसवी तक इंग्लैंड में मेनचेस्टर सिटी और जर्मनी में हैम्बर्ग जैसे नये शहर विकसित हुये।

## 1000 से 1500 ईसवी (Period 1000 A.D. to 1500 A.D.)

इस काल में बाल्टिक सागर के तटों पर बसे नगर पश्चिमी व्यापारिक मार्गों के निकट थे। नॉर्वे में 1048 में ओस्लो और 1070 में बर्जेन जबकि 1943 में कोपेनहेगन विकसित हुये। तटवर्ती इलाकों से प्रारंभ हुआ यह नगरीकरण समय के साथ आंतरिक पूर्वी क्षेत्रों तक बढ़ता गया। बाद में ये नगर पूर्वी और मध्य यूरोप की राजधानियां बनीं। बर्लिन, वर्सा, प्राग, ekWLdks, स्टॉकहोम का विकास 1000 से 1250 ईसवी के बीच हुआ। इसी तरह मैड्रिड 1050 ईसवी में विकसित हुआ। जापान में टोक्यो 1200 ईसवी में नगरीकृत हुआ, जबकि इंग्लैंड में भी शहरी विकास 12वीं सदी में ही हुआ। इस दौरान विकसित हुये कुछ प्रमुख नगरों में बुकारेस्ट, रोमानिया–1388 ईसवी, कोरिया–1350 ईसवी, अहमदाबाद– 1411 ईसवी, मेक्सिको– 1300 ईसवी शामिल हैं।

## 1500 से 1699 ईसवी (Period 1500 A.D. to 1699 A.D.)

इस अवधि में कोलंबस ने अमेरिका की खोज की, जबकि सैन जुआन ने कैरीबियन सिटी और प्यूर्टो रिको ने दक्षिण अमेरिका को 1535 में खोजा। बाद के काल में खोजे गये नगर निम्नवत हैं:

- हवाना, क्यूबा– 1514 (स्पेनिश द्वारा)
- लीमा, पेरू– 1535 (स्पेनिश द्वारा)
- ब्यूनस आयर्स, अर्जेन्टीना– 1536 (स्पेनिश द्वारा)
- बगोटा, कोलम्बिया– 1538 (स्पेनिश द्वारा)
- सेन्टियागो, चिली– 1541 (स्पेनिश द्वारा)
- कराकास, वेनेजुएला– 1567 (स्पेनिश द्वारा)
- रियो डि जेनेरियो, ब्राजील– 1506–65 (पुर्तगालियों द्वारा)
- क्यूबेक, मॉन्ट्रियल– 1567 (फ्रेंच द्वारा)
- न्यूयॉर्क– 1615 (डच द्वारा)
- बोस्टन– 1630 (इंग्लैंड द्वारा)
- फिलाडेल्फिया– 1652
- चार्ल्सटन, दक्षिण कैरोलिना– 1670

## 1700 से 1799 ईसवी तक (Period 1700 A.D. to 1799 A.D.)

18वीं सदी की शुरुआत में रूस में नयी राजधानी पेट्रोग्राद (अब लेनिनग्राद) विकसित हुयी, जिसकी स्थापना पीटर द ग्रेट ने 1704 में की थी। इसी काल में उत्तरी अमेरिकी महाद्वीप में नये नगरों के

विकास की प्रक्रिया भी तेज हुयी, जिसने समय के साथ महानगरीय स्वरूप ले लिया। इस दौर में विकसित जो नगर बाद में महानगर के तौर पर विकसित हुये, उनके नाम निम्नवत हैं:

- न्यू ऑर्लेन्स– 1718
- पिट्सबर्ग– 1750
- सेंट लुईस– 1764
- सिनसिनाटी– 1788
- बाल्टीमोर– 1729
- सवाना, जॉर्जिया– 1733
- वाशिंगटन, डीसी– 1791
- टोरंटो, कनाडा– 1798
- ग्रेट लेक्स, क्लीवलैंड– 1796

### 1800 से 1899 (Period 1800 A.D. to 1899 A.D.)

19वीं सदी में अमेरिका के आंतरिक क्षेत्रों में आबादी की वृद्धि, आवासों और रेलमार्गों के निर्माण में तेजी आयी (Hoyt, 1962). परिवहन और अन्य सुविधाओं में आये इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों की वजह से विकसित हुये नगर निम्नवत हैं:

- डेट्रोएट– 1802
- कांसास सिटी– 1821
- शिकागो– 1836
- डलास– 1841
- पोर्टलैंड, ओरेगन और मिनेपोलिस– 1845
- सिएटल– 1852
- डेन्वर– 1857
- साल्ट लेक सिटी– 1847
- जोहान्सबर्ग – 1886 (सोने की खदानों की खोज के बाद)
- मिलामी, फ्लोरिडा– 1896 (फ्लोरिडा ईस्ट कोस्ट रेलमार्ग के निर्माण के बाद)

### 20वीं सदी में नगर (Cities in 20th Century)

इस दौर में नये नगरों का तेजी से विकास हुआ, लेकिन इन नगरों के विकास का कारण नयी खोज या परिवहन और अन्य सुविधाओं की बढ़ोतरी के बजाय सरकारों की नाकामी रही। ऐसे में राजनीतिक महत्वों के आधार पर नगर विकसित हुये। उदाहरण के लिये इजराइल में 1927 में जाफा नगर के पास अवीव नाम के नये नगर की स्थापना हुयी। इसी तरह ब्राजील में 1960 में ब्राजीलिया नाम के नये नगर का विकास हुआ जो इस देश की राजधानी बना।

## 4.3 नगरों का कार्याधारित वर्गीकरण (Functional Classification of City)

नगर को सजीव व्यवस्था मान लें तो यह आवश्यक हो जाता है कि नगर यानी इस व्यवस्था के अलग–अलग हिस्से परस्पर समन्वय, संचार और उत्तरदायित्व, लचीलेपन का प्रवाह बनाये रखें। बेहतर व्यवस्था के लिये यह आवश्यक है कि नगर अपने हर नागरिक, हिस्से और समुदाय के लिये समग्र रूप से कार्य करे। डल (1986) ने सक्रिय नगर के लिये आवश्यक कार्यों का प्रस्ताव दिया है, जो निम्नवत हैः

- अपनी विकास आवश्यकताओं, लोगों और संगठनों के प्रति नगर का उत्तरदायित्व प्रभावी एवं उपयुक्त होना चाहिये
- नगर में यह क्षमता हो कि वह स्वयं को निरंतर परिष्कृत करे और परिवर्तनों के साथ निरंतरता बनाये रखे
- जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन ताकि यह अपने निवासियों के विकास के लिये सक्षम हो
- नगर अपने नागरिकों के लिये शैक्षिक भूमिका का निर्वहन करे

शोधकर्ताओं और विद्वानों ने विभिन्न लक्ष्यों के अनुसार नगरों के कार्यों को परिभाषित करने का प्रयास किया है। लीबा टॉब ने नगरों के कार्यों को ऐतिहासिक रूप से परिभाषित किया तो जेन एडम्स ने अपने लेख '**The Function of Social settlement**' में बताया कि मानवीय व्यवस्थाओं का कार्य मानवीय ज्ञान के मूल्य को क्रियाओं और अनुभव के आधार पर परीक्षित करता है। प्रख्यात विद्वान वेबर इस बात पर जोर देते हैं कि भारी शहरीकरण की प्रक्रिया ने राजनीतिक सहभागिता के अवसरों को लगातार कम किया। इस तरह हम पाते हैं कि नगर को कार्याधारित आयाम से देखने के कई विचार और भारत समेत अन्य देशों को भी विभिन्न तरह से वर्गीकृत किया गया है।

### 4.3.1 भारत में नगरों के कार्य (Function of City in India)

**उत्पादन के केन्द्र (Centre of Production)**: यह ऐतिहासिक तथ्य है कि दुनियाभर में नगरों का विकास उद्योगों और औद्योगिक उत्पादन के विकास से हुआ। आज के दौर में भी औद्योगीकरण की रफ्तार को ही नगरों के विकास और विस्तार का महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। वर्तमान युग की औद्योगिक क्रान्ति को हम सिर्फ उद्योगों से ही जोड़कर नहीं देख सकते, बल्कि भारत के परिप्रेक्ष्य में इसे नगरीय क्रान्ति के तौर पर भी देखा जा सकता है। नगरों को औद्योगिक एवं उत्पादन केन्द्र के रूप में देखा जा सकता है। उत्पादन केन्द्रों को हम आगे विभिन्न उपश्रेणियों में भी वर्गीकृत कर सकते हैं, जो निम्नवत हैं–

### प्राथमिक एवं द्वितीयक उत्पादन केन्द्र (Primary & Secondary Production Centres)

प्राथमिक उत्पादन केन्द्र का तात्पर्य उन स्थानों से है, जहां से उद्योगों के लिये कच्चा माल और प्राथमिक उत्पाद प्राप्त होते हैं। चूंकि ये नगर मुख्यतः कच्चे माल के आपूर्ति केन्द्र होते हैं, ऐसे में यहां रहने वाली अधिकतर आबादी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कच्चे माल के उत्पादन से संबंधित होती है। नेल्लोर, कोलार और बरेली ऐसे नगरों के कुछ उदाहरण हैं। दूसरी ओर, द्वितीयक उत्पादन केन्द्र का अर्थ उन नगरों से है, जहां अंतिम उत्पादन तैयार होता है। अधिकतर द्वितीयक उत्पादन केन्द्र आकार में बेहद बड़े होते हैं, जो दिनबदिन विस्तारित होते जाते हैं।

### व्यापार एवं वाणिज्य केन्द्र (Centre of Trade and Commerce)

मध्यकालीन कस्बे और नगर व्यापारिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों के केन्द्र थे। इन नगरों में उत्पादन द्वितीयक गतिविधि थी। व्यापारी और कारोबारियों यहां संगठित संघों के स्वरूप में थे और वस्तुओं एवं सुविधाओं के वितरण के अलावा बैंकिंग प्रणाली के रूप में भी काम करते थे। राजा भी इन संघों की प्रक्रियाओं को मान्यता प्रदान करते थे और पारंपरिक नियमों के अनुरूप इनमें साधारण न्यायालयों का भी संचालन होता था। इसके अलावा उस दौर में उद्यमों में कुशल श्रमिक भी होते थे। आरके मुखर्जी बताते हैं कि मुगलकाल में राजकीय उद्यम की व्यवस्था भी थी। राजकीय उद्यमों के अलावा निजी उद्यम भी इस काल में मौजूद थे। यहां यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि तत्कालीन राज्यों की राजधानियां वाणिज्यिक–व्यापारिक केन्द्रों के तौर पर भी विकसित हुयीं, क्योंकि कारोबारी और व्यापारी राजा के निकट रहकर संरक्षण और अपने कारोबारों, उद्यमों को बढ़ाने के लिये उपयुक्त संसाधन पाना चाहते थे। व्यापारियों को उपयुक्त आंतरिक क्षेत्रों और वहां तक संचार, परिवहन आदि सुविधाओं की आवश्यकता होती थी, ताकि वे अपने संगठन को और अधिक विस्तार दे सकें।

उस काल में राजनीतिक संरक्षण विभिन्न व्यापारिक नगरों, कस्बों और बाजारों के विकास और पतन का साधन था। व्यापारिक और वाणिज्यिक केन्द्र आंतरिक क्षेत्रों में उत्पादित होने वाली वस्तुओं पर भी बड़े पैमाने पर निर्भर थे। इसके अलावा बड़े नगरों तक परिवहन, व्यापार सुविधाएं और नये व्यापारिक समुद्री मार्गों की तलाश भी उनके लिये आवश्यक थी। उदाहरण के लिये वास्कोडिगामा के समुद्री रास्ता तलाशने के बाद कालीकट बड़े व्यापारिक केन्द्र के तौर पर विकसित हुआ। एक अन्य उदाहरण मुंबई का है, जहां व्यापार और वाणिज्यिक गतिविधियों ने इस शहर को बड़े उत्पादक केन्द्र के तौर पर विकसित किया। हालांकि, औपनिवेशिक दौर में भरूच और सूरत जैसे नगरों को मुंबई के विकास के चलते उपेक्षित रहना पड़ा। उन नगरों को व्यापार केन्द्र के रूप में विकसित होने में ज्यादा मदद मिली, जो समुद्री मार्गों से जुड़े हुये थे। हालांकि, भारत में कोझीकोड, कोची, तूतीकोरिन, विशाखापत्तनम, कोलकाता, काकीनाडा और चेन्नई प्रमुख बंदरगाह और सामान्यतः व्यापारिक केन्द्र हैं, लेकिन यह हमेशा आवश्यक नहीं होता है कि बंदरगाह ही व्यापारिक एवं वाणिज्यिक केन्द्र हों।

## राजधानी एवं प्रशासनिक केन्द्र (Capital and Administrative Centres)

नगरों के विकास के साथ प्रशासनिक कस्बों और नगरों का विशेष स्थान रहा है जो मुख्यतः केन्द्रीय स्थान पर अवस्थित होते हैं। भारतीय नगरीय इतिहास पर नजर डालें तो विभिन्न साम्राज्यों के उद्भव और विकास के साथ नगरीय केन्द्रों में भी उतार–चढ़ाव सामने आते रहे। उदाहरण के लिये पाटलिपुत्र, विजयनगरम, मदुरै, गोलकुंडा को प्राचीन प्रशासनिक नगरों के तौर पर देखा जाता है, लेकिन वर्तमान के प्रशासनिक नगरों के तौर पर इनकी पहचान नहीं रह गयी है।

### 4.3.2 भारत में नगरों का कार्याधारित वर्गीकरण (Functional Classification of City in India)

भारतीय विद्वानों ने जनगणना आधारित वर्गीकरण की कमजोरियों को उजागर करते हुये पाया कि वस्तुतः आर्थिक गतिविधियों से ही समूहों का निर्माण होता है। आर्थिक गतिविधियां ही किसी समूह के सामान्य और विशिष्ट होने का निर्धारण करती हैं। पहले, दूसरे और तीसरे क्रम की आर्थिक गतिविधियां नगरों की भूमिकाओं को निर्धारित करती हैं। इससे ही तय होता है कि कोई नगर प्रभावी भूमिका में रहेगा या उसे कम अहमियत दी जायगी। वस्तुनिष्ठता की इस समस्या और इसके आधार पर नगरों–कस्बों की कार्य भूमिका के सांख्यिकीय आंकड़ों का विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने तरीके से विश्लेषण किया है। जानकी, अमृत लाई, केएन सिंह, प्रकाश राव, ओपी सिंह, रफीउल्लाह,

महामाया मुखर्जी, काजी अहमद, अनन्त पद्मनाभन, अशोक मित्रा और कई अन्य विद्वानों ने अपने–अपने क्षेत्र में नगरों का वर्गीकरण किया है। इनमें से किसी का भी वर्गीकरण न तो दूसरों से कमतर है, न ही बेहतर। लेकिन ये सभी क्षेत्रीय दृष्टिकोण के आधार पर कस्बों की कार्याधारित भूमिकाओं को स्पष्ट करते हैं।

प्रकाश राव ने आंकिक ग्रेडिंग के लिये कस्बों शहरी सुविधाओं और सेवाओं, बस परिवहन सुविधा एवं ग्राहक क्षेत्रों को मानक के रूप में इस्तेमाल किया। रफीउल्लाह ने नगरों की रैंकिंग के लिये वेबर के तरीके को अपनाया। तिवारी ने कुछ आगे बढ़कर मध्य प्रदेश के नगरों–कस्बों को आईबीएम 7044 कंप्यूटर के जरिये विभिन्न मानकों के आधार पर वर्गीकृत किया। ओपी सिंह ने भारत में केन्द्रीय स्थानों के कार्यों के आधार पर विश्लेषण किया। उन्होंने कार्यों की विशेषता और कार्यों के पदानुक्रम के आधार पर अलग–अलग विभाजन किया। पोथाना ने आन्ध्र प्रदेश में आर्थिक आधार पर नगरों का वर्गीकरण किया। महापात्र, त्रिपाठी और सिन्हा ने ओडिशा के छोटे कस्बों के आर्थिक आधार पर कार्यविभाजन किया। रजा, अग्रवाल और मोंदिरा दत्ता ने भारतीय अर्थव्यवस्था में महानगरीय केन्द्रों का परीक्षण कर वर्गीकरण किया।

## अशोक मित्रा का कार्याधारित वर्गीकरण (Ashok Mitra's Functional Classification)

अशोक मित्रा का वर्गीकरण विशुद्ध रूप से 1961 और 1971 की जनगणना में कामगारों के वर्गीकरण पर आधारित है। वर्गीकरण निम्नवत किया गया था:

- कृषि
- कृषि श्रमिक
- पशुधन, वानिकी, मत्स्यपालन, आखेट, पौधरोपण, बागवानी और अन्य संबद्ध गतिविधियां
- खनन एवं चुगान
- घरेलू–कुटीर उद्योग
- उत्पादन से इतर घरेलू उद्यम
- व्यापार एवं वाणिज्य
- परिवहन, भंडारण एवं संचार
- सेवाएं

प्रथम दो श्रेणियां विशुद्ध रूप से कृषि श्रेणी को प्रदर्शित करती हैं। अन्य श्रेणियां औद्योगिक एवं शहरी श्रेणियों की प्रतीक हैं। ऐसे में प्रारंभिक दो श्रेणियों को छोड़कर बाकी सात श्रेणियों के आधार पर नगरों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

- **उत्पादक नगर (Manufacturing Town):** तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी श्रेणी में कामगारों की संख्या सातवीं और आठवीं श्रेणी में कामगारों की कुल संख्या से तुलनात्मक रूप से कहीं अधिक है। नवीं श्रेणी में कामगारों की संख्या इन सभी श्रेणियों से काफी कम है।
- **व्यापार एवं परिवहन नगर (Trade and Transport Town):** इस वर्ग में सातवीं और आठवीं श्रेणी के कामगारों की प्रतिशतता नवीं श्रेणी के कामगारों की प्रतिशतता से अधिक है। तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी श्रेणियों के कामगारों की संख्या से भी सातवीं आठवीं श्रेणी के कामगारों की संख्या बेहद अधिक है।

- **सेवा प्रदाता नगर (Service Town):** नवीं श्रेणी के कामगारों की संख्या तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी श्रेणियों से कहीं अधिक है, जबकि सातवीं और आठवीं श्रेणी के कामगारों की संख्या तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी श्रेणियों से कम है।

**क्या आप जानते हैं: अशोक मित्रा भारतीय मार्क्सवादी अर्थशास्त्री और राजनेता हैं। वह भारत सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार रहे। मित्रा ने कलकत्ता डायरी और टर्म्स आफ ट्रेड एंड क्लास रिलेशन्स पुस्तकें लिखी हैं। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी दैनिक द टेलीग्राफ के लिये वह नियमित रूप से लेख लिखते हैं, जबकि बंगाली में लघु कहानियां भी उन्होंने लिखी हैं। उनके अन्य प्रकाशित लेखन में चाइना इश्यूज इन डेवलपमेंट, फ्रॉम द रैंपर्स, प्रैटलर्स टेल: रिकलेक्शन्स आफ ए कन्ट्रारी मार्क्सिस्ट (इसका बंगाली में अपिला चपला नाम से प्रकाशन हुआ है) शामिल हैं।**

वर्ष 1991 में सभी शहरी स्थानों को उनके कार्यों के महत्व के अनुसार श्रेणीबद्ध करने का प्रयास किया गया। इस प्रक्रिया में औद्योगिक श्रेणियों को पांच आर्थिक गतिविधियों के आधार पर निर्धारित किया गया। इसके आधार पर किया गया वर्गीकरण निम्नवत है:

- **प्राथमिक गतिविधियां (Primary Activities):** 1. कृषि, 2. कृषि श्रमिक, 3. पशुधन, वानिकी, मत्स्यपालन, आखेट, बागवानी और अन्य गतिविधियां
- **उद्योग (Industry):** इसमें उत्पादन, प्रसंस्करण, सेवा और मरम्मत शामिल हैं। इसके तहत 1. घरेलू उद्योग और 2. घरेलू उद्योग से इतर उद्योग 3. निर्माण श्रमिक आते हैं
- **व्यापार (Trade):** व्यापार एवं वाणिज्य
- **परिवहन (Transport):** परिवहन, भंडारण एवं संचार
- **उद्योग (Services):** अन्य सेवाएं

यदि भारत के ऐतिहासिक सन्दर्भ में देखा जाये तो स्पष्ट होता है कि यहां 1951 से ही उपजीविका को वर्गीकरण का प्राथमिक आधार माना गया। लेकिन, इस वर्गीकरण की विफलता का मुख्य कारण यह रहा कि यह निर्धारण किसी शोध के आधार पर नहीं, बल्कि जनगणना आंकड़ों के अनुसार किया गया था। 1951 के जनगणना आंकड़ों में श्रमिकों की उपजीविका और व्यावसायिक श्रेणियों में कई खामियां थीं। कृषि और गैर कृषि श्रेणी की इन खामियां को 1961 की जनगणना में दूर किया गया और इन श्रेणियों को भी जनगणना आंकड़ों में शामिल किया गया। इसके आधार पर श्रेणियां निम्नवत हुयीं:

- कृषक
- कृषि श्रमिक
- खनन, पशुधन, वानिकी, मत्स्यपालन, आखेट, बागवानी एवं संबद्ध गतिविधियां
- घरेलू उद्यम
- उत्पादन उद्योग
- निर्माण
- व्यापार एवं वाणिज्य
- परिवहन, भंडारण एवं संचार
- अन्य सेवाएं

विकास के पैमाने को ध्यान में रखते हुये 1971 की जनगणना में वानिकी, खनन, पशुधन, मत्स्यपालन, आखेट आदि गतिविधियों को अलग–अलग मानते हुये नयी श्रेणियां शामिल की गयीं। 1981 की जनगणना में इसे और अधिक परिष्कृत किया जा सका, जिसके बाद निम्न श्रेणियां उभरीं:

- कृषक
- घरेलू उद्योग
- कृषि श्रमिक
- अन्य कामगार
- सीमांत कामगार

**निष्कर्ष (Conclusion):** व्यापक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी विशेष सिद्धान्त भारतीय नगरों को पूरी तरह वर्गीकृत करने में सक्षम नहीं है। विविध क्षेत्र, विकास दर, आजीविका श्रेणियों और विभिन्न कार्यों के आधार पर भारतीय नगरों का समान वर्गीकरण संभव नहीं है। इसके चलते कोई भी सीधा सिद्धांत या आधार इस तरह के वर्गीकरण के लिये उपयुक्त नहीं है।

### 4.3.3 अन्य देशों में नगरों का कार्याधारित वर्गीकरण (Functional Classification of City in Other Countries)

नगरों को उनके कार्यों के आधार पर विभिन्न जोन एवं क्षेत्रों में बांटा गया है। यहां हम इनमें से कुछ पर चर्चा करेंगे, ताकि दुनियाभर में नगरों के वर्गीकरण और इसके लिये अपनाये गये तरीकों को समझ सकें।

### ऑरासो मॉडल (Conclusion)

ऑरासो ने वर्ष 1924 में विशेष कार्य सिद्धांत दिया। उन्होंने शहरी नियोजन में शहरी भूगोल के महत्व को देखते हुये इसे शहरी अध्ययन का उपक्षेत्र मानने के बजाय स्वतंत्र क्षेत्र माने जाने पर जोर दिया। हालांकि, शहरी भूगोल द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ही प्रमुख सिद्धांत के तौर पर उभरा और शहरी नियोजन व भौगोलिक विकास के लिये आवश्यक कारक बन गया। वर्ष 1921 में एम ऑरासो ने नगरों को छह श्रेणियों में बांटा:

- प्रशासनिक (Administrative)
- सुरक्षा (Defence)
- संस्कृति (Culture)
- उत्पादन (Production)
- संचार (Communication)
- मनोरंजन (Recreation)

उन्होंने नगर को बेहद साधारण स्वरूप में वर्गीकृत किया। शहरीह केन्द्र मानव आबादी के प्रमुख हिस्से के रूप में निश्चित अनिवार्य कार्यों के निष्पादन में अहम भूमिका निभाते हैं। ये कार्य सामान्यतः नगर की समग्र व्यवस्था से प्रभावित होते हैं। प्रशासन इसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका में होता है,

लिहाजा यह सबसे अधिक क्रियाशील भी रहता है। इस तथ्य का प्रमाण इससे भी मिलता है कि प्राचीन काल में राजा अपने प्रशासनिक नगरों को संचार और अन्य सुविधाओं से युक्त स्थानों पर बसाते थे। आज भी राजधानी के रूप में दिल्ली में ही भारत के सभी प्रमुख सरकारी मुख्यालय हैं। इसी तरह सुरक्षा का संबंध नागरिकों से है और ऐसे स्थान देश की सीमाओं पर स्थित होते हैं। सांस्कृतिक स्थानों को राष्ट्रीय संपत्ति के रूप में संरक्षित किया जाता है।

**क्या आप जानते हैं: मार्कल ऑरासो आस्ट्रेलियाई भूगोलवेत्ता, अनुवादक, भूगर्भशास्त्री थे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उन्होंने आस्ट्रेलियाई इंपीरियल फोर्स में तैनाती ली। भूगोल के क्षेत्र में 50 साल से भी अधिक समय तक मार्कल का योगदान रहा। जनसंख्या समस्या और व्यवस्थागत पैटर्न पर आधारित उनके औपचारिक बौद्धिक लेखन का प्रकाशन 1918 से 1927 तक हुआ। इस अवधि में 1923–24 में वह अमेरिकन ज्योग्राफिकल सोसाइटी ऑफ न्यूयॉर्क में बतौर भूगोलवेत्ता तैनात थे। उन्होंने अमेरिका में करीब चार वर्ष व्यतीत किये और इस दौरान वह आईजे बोमैन, हरलैन बैरोज और मार्क जेफरसन जैसे प्रख्यात अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं के संपर्क में आये। 1920 की जीवनी में ऑरासो भूगोलवेत्ता के तौर पर स्वयं का मूल्यांकन करने के साथ तात्कालिक परिस्थितियों की जानकारी देते हैं। उन्होंने महसूस किया कि उनके योगदान को अपेक्षित पहचान नहीं मिली। उनके शब्दों में, मैं उभरता उभरता सितारा था, लेकिन मैं क्षितिज पर अधिक दूर तक नहीं जा सका।**

**आलोचना (Criticism):** यद्यपि ऑरासो ने नगरों को कार्यों के महत्व के आधार पर वर्गीकृत किया (जो वर्गीकरण का सबसे विश्वसनीय आधार है) फिर भी यह आलोचना से मुक्त नहीं है। इसके कारण निम्न हैं:

- विशिष्ट कार्य सिद्धान्त अत्यधिक सामान्यीकृत हो गया
- एक मुख्य श्रेणी में वर्गीकृत नगर में सामान्य तौर पर अन्य वर्गों की भूमिकाओं की अनदेखी की गयी
- किसी वर्ग का 'कट ऑफ प्वाइंट' अनुमानित प्रतिशत के आधार पर निर्धारित किया जाता है ऐसे में यह व्यक्तिपरक हो जाता है
- आर्थिक आयाम को प्रक्रिया में नजरअंदाज किया गया है, जबकि यह बिन्दु इसलिये अहम है कि किसी नगर को अपने दायरे से बाहर रहने वाले लोगों की जरूरतों को भी जुटाना पड़ता है
- ऑरासो द्वारा कार्यों के आधार पर कई श्रेणियों को प्रस्तुत करने से संशय और भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है, इसका तात्पर्य यह है कि यहां कार्य और अवस्थिति दोनों ही मानक मिश्रित हो गये हैं, उदाहरण के लिये– संचार श्रेणी में आने वाले नगर वस्तुओं के परिवहन का कार्य भी करते हैं, लेकिन यह बिन्दु वर्गीकरण में स्पष्ट नहीं किया गया है
- ज्वारीय सीमा में आने वाले, वृक्षपातन वाले और पुलों वाले नगरों के कार्यों में उनके स्थान की विशेषता (ज्वार, वृक्षपातन आदि) का महत्व स्पष्ट होता है, इससे यह स्पष्ट होता है कि ये नगर संचार के लिहाज से महत्वपूर्ण हैं, सिर्फ स्थान के लिये नहीं। इसी तरह तीर्थ केन्द्र वाले नगर सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण होते हैं, जबकि वे नदियों, घाटियों, पर्वतीय क्षेत्रों में अवस्थित हो सकते हैं।
- विश्वविद्यालयी नगर भी अनुपयुक्त श्रेणी है, क्योंकि इस तरह के विशेषण कार्यों को स्पष्ट नहीं करते, बल्कि यह नगर के समग्र नगरीय कार्यों में से सिर्फ एक विशेषता को ही स्पष्ट करते हैं

**निष्कर्ष (Conclusion):** ऑरासो के वर्गीकरण में महत्वपूर्ण श्रेणियों को स्पष्ट किया गया है जो भावी विशिष्ट सिद्धांतों, तरीकों के लिये अवसर प्रदान करते हैं। शहरी गतिविधियों के आधार पर शहरी केन्द्रों के निर्धारण के लिये यह व्यावहारिक रूप से समग्र व्यवस्था है। हालांकि, कार्याधारित विभिन्नताओं और संबंधित गतिविधियों के लिहाज से यह धुंधली तस्वीर पेश करता है। ऐसे में इसे और बेहतर ढंग से निष्पादित करना आवश्यक हो जाता है।

## हैरिस का मॉडल (Harris's Model)

पूर्ववर्ती शोधकर्ताओं के वर्गीकरण से असंतुष्ट हैरिस ने व्यक्तिपरक और नगरों के कार्यों के आधार पर अत्यधिक आलोचनात्मक स्थिति के विरोध में तर्क दिये। अपने शोधपत्र "A functional classification of the cities in the united states" में उन्होंने आबादी के कारक को वर्गीकरण का बुनियादी आधार बनाया। उन्होंने दो मुख्य कारकों में इन्हें बांटा, ये थे– रोजगार एवं आजीविका। उन्होंने नगरों को इस आधार पर श्रेणियों में वर्गीकृत किया:

- उत्पादन
- खुदरा बिक्री
- विविधता
- थोक बिक्री
- परिवहन
- खनन
- होटल–रिजॉर्ट और मनोरंजन
- अन्य

**क्या आप जानते हैं: हैरिस का कॅरियर नगरों के प्रति उनकी विशेष रुचि से प्रारंभ हुआ। अपने डॉक्टरी शोधपत्र, "Salt Lake City: A Regional Capital" में उन्होंने सेवा संबंधी कार्यों और नगरों पर इनके विस्तृत प्रभाव का विश्लेषण किया। इसके बाद 1941 में हैरिस ने एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन ज्योग्राफर्स में शहरों के वर्गीकरण पर अपना पहला शोधपत्र प्रस्तुत किया, जिसे शहरी भूगोल के क्षेत्र में उल्लेखनीय माना जाता है। उपनगरीय क्षेत्रों पर भी उन्होंने 1943 में जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी में लेख लिखे। इन शोधपत्रों ने शहरी अध्ययन के क्षेत्र में उन्हें महत्वपूर्ण विद्वान के तौर पर स्थापित किया।**

**हैरिस मॉडल की धारणा (Assumption of Harris Model):** हैरिस द्वारा अपने मॉडल में जिन धारणाओं को शामिल किया गया है, वे निम्नवत हैं:

- जमीन समतल नहीं होती है (बर्गीज मॉडल का सुधार), किसी बड़े नगर में समतल जमीन की तलाश करना बेहद कठिन कार्य होता है। भूखंड की गुणवत्ता नगरीय क्षेत्र की समग्र गतिविधियों, विकास और उन्नति की दिशा को प्रभावित करती है।

- नगर के लोगों के बीच संसाधनों का समान वितरण किया जाता है। विशेषाधिकार या संसाधनों तक विशिष्ट पहुंच का लाभ लेने के दौरान पदानुक्रम को बनाये रखना अनिवार्य नहीं होता है।

- जनसंख्या घनत्व की प्रकृति समरूप होती है। पूरे नगर में लोग समान रूप से रहते हैं, किसी दायरे विशेष में नहीं। यह इसलिये आवश्यक है कि जनसंख्या का असमान वितरण बाजार को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

- नगरों में परिवहन लागत भी समान होती है, ग्राहकों पर यात्रा व्यय का अधिक असर नहीं होता है।

- क्षेत्र विशेष में विशिष्ट गतिविधि के संचालन का एकमात्र उद्देश्य लाभ प्राप्त करना होता है। यही वजह है कि उद्योगों की स्थापना मांग पर निर्भर करती है। हालांकि, श्रम लागत, परिवहन लागत, स्थानीय बाजार से निकटता जैसे पहलुओं पर भी विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। स्थान की अवस्थिति का कारक परिवहन लागत और वस्तुओं–सेवाओं की गतिशीलता को भी प्रभावित करता है।

**आलोचना (Criticism)**: गणनात्मक तकनीकों और विभिन्न श्रेणियों के चलते हैरिस के नगरीय वर्गीकरण को उत्तरवर्ती वर्गीकरणों के लिये प्रतिमान माना जाता है। हालांकि, उनका वर्गीकरण भी आलोचना से मुक्त नहीं है। उनके वर्गीकरण को व्यक्तिपरक श्रेणियों और कच्चे आंकड़ों के इस्तेमाल के कारण आलोचना के दायरे में रखा गया है। मोजर और स्कॉट (1961) ने नगरों के वर्गीकरण के लिये कुल 5 श्रेणियां विकसित कीं, जो जनसंख्या आकार और ढांचा, जनसांख्यिकीय परिवर्तन, आवास स्वामित्व आदि पर आधारित थीं।

## हॉवर्ड नेल्सन का वर्गीकरण (Howard Nelson's Classification)

नेल्सन ने पूर्ववर्ती वर्गीकरणों में सामने आयी खामियों को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने हैरिस और अन्य विद्वानों के वर्गीकरण के तरीकों का विरोध करते हुये एक निर्दिष्ट प्रक्रिया का उपयोग किया, जिसकी अन्य लोग भी निष्पक्ष जांच कर पाने में संभव हों। उन्होंने अपने वर्गीकरण की बुनियाद विशुद्ध रूप से मुख्य औद्योगिक समूहों पर केन्द्रित रखी। ये समूह 1950 की जनगणना में महानगरीय, नगरीय और ऐसे नगरीय क्षेत्रों के लिये मानक थे, जहां की आबादी 10 हजार या इससे अधिक थी। कृषि, निर्माण जैसे कम महत्व के समूहों को उन्होंने अलग कर दिया और अंतिम रूप से नौ सक्रिय समूहों को निर्धारित किया। हॉवर्ड ने नगर के आकार के अनुसार विभिन्न गतिविधियों में रोजगार की निश्चित प्रतिशतता हासिल की। किसी शहर को कब विशेषीकृत माना जा सकता है, इस सवाल का समाधान उन्होंने खास सांख्यिकीय तकनीक स्टैंडर्ड डिवीजन (Standard Division: SD) के जरिये निकाला।

**क्या आप जानते हैं: नेल्सन ने अमेरिका के शहरों के वर्गीकरण के लिये उसी तकनीक का इस्तेमाल किया, जो ओगासावारा ने चीन के नगरों के लिये प्रयोग की थी। हालांकि, वर्गीकरण से पूर्व नगरों के सेवा ढांचे को नगरों के समग्र ढांचे से अलग कर दिया गया था (Alexandersson, 2015)। हॉवर्ड का विख्यात शोधपत्र A Service Classification of American Cities 1955 में जर्नल ज्योग्राफी में प्रकाशित हुआ।**

किसी शहर को एक से अधिक गतिविधियों और श्रेणियों के अनुसार विशेषीकृत किया जा सकता है। हॉवर्ड ने नगरों की सभी गतिविधियों को plus 1, plus 2, plus 3 श्रेणियों में बांटा है। निम्न सारिणी हॉवर्ड द्वारा चयनित नौ गतिविधि समूहों के आधार पर प्रतिशतता के अनुसार तैयार की गयी है।

**Table 9.2**
*Nelson's Nine Activity Groups (1950)*

| | *Manu-facturing* | *Retail Trade* | *Professional Service* | *Trans-portation and Communi-cation* | *Personal Service* | *Public Adminis-tration* | *Wholesale Trade* | *Finances Insurance and Real Estate* | *Mining* |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | *Mf* | *R* | *Pf* | *T* | *Ps* | *Pb* | *W* | *F* | *Mi* |
| Average | 27.07 | 19.23 | 11.09 | 7.12 | 6.20 | 4.58 | 3.85 | 3.19 | 1.62 |
| Standard Deviation | 16.04 | 3.63 | 5.89 | 4.58 | 2.07 | 3.48 | 2.14 | 1.25 | 5.01 |
| Average Plus 1 SD | 43.11 | 22.86 | 16.98 | 11.70 | 8.27 | 8.06 | 5.99 | 4.44 | 6.63 |
| Average Plus 2 SD | 59.15 | 26.49 | 22.87 | 16.28 | 10.34 | 11.54 | 8.13 | 5.69 | 11.64 |
| Average Plus 3 SD | 75.19 | 30.12 | 28.76 | 20.86 | 12.41 | 15.02 | 10.27 | 6.94 | 16.65 |

मान लें कि कोई नगर Pf 2F श्रेणी में वर्गीकृत है तो इसका अर्थ यह है कि यहां 22.87 प्रतिशत से अधिक लेकिन 28.76 प्रतिशत से कम श्रम बल पेशेवर सेवाओं से जुड़ा है। इसी तरह 4.44 या इससे अधिक लेकिन 5.69 प्रतिशत से कम लोग वित्तीय, बीमा और रियल इस्टेट के काम से जुड़े हैं। सारिणी से यह तय होता है कि कोई शहरी केन्द्र मुख्यतः किस तरह की गतिविधि से संबद्ध किया जा सकता है। यदि कोई नगर इनमें से किसी भी मानक में शामिल नहीं हो पाता है तो नेल्सन के वर्गीकरण के अनुसार वह नगर विविध गतिविधियों का केन्द्र हो सकता है।

**निष्कर्ष (Conclusion):** विभिन्न शोधकर्ताओं ने हॉवर्ड के मॉडल को नगरों के वर्गीकरण में प्रयोग किया है। महाराष्ट्र के लातूर जिले का वर्गीकरण इस माध्यम से करने पर स्पष्ट हुआ कि जिले का उदगिर कस्बा कृषि कार्यों में सबसे आगे था। इसी तरह लातूर खनन और वानिकी, अहमदपुर और लातूर आवासीय सुविधाओं, उदगिर निर्माण, लातूर और निलंग व्यापार एवं वाणिज्यिक गतिविधियों में आगे थे। वहीं, ऑसा तहसील किसी भी श्रेणी में शामिल नहीं हो सकी (वेलापुरक, राठौड़ और कल्गापुरे, 2001)। इससे स्पष्ट है कि नेल्सन हॉवर्ड का मॉडल अविकसित औद्योगिक क्षेत्रों के लिये उपयुक्त नहीं है।

## 4.4 ताजा अध्ययनों का समालोचनात्मक विश्लेषण (Critical Analysis of Recent Studies)

संघमित्रा ने महानगरों के कार्याधारित वर्गीकरण के लिये अशोक मित्रा के मॉडल का उपयोग किया। उन्होंने भारत के 12 महानगरों में वर्ष 1901 से 1971 तक कार्याधारित गतिविधियों का अध्ययन किया, जिसके लिये 1961 की जनगणना के आधार पर नौ औद्योगिक श्रेणियों में कामगारों का विश्लेषण किया। यह उस दौर में गैर कृषि कार्यों में कार्यबल के खिसकने के कारणों को जानने का प्रयास था। इसके माध्यम से कार्य, कार्यों में सहभागिता –विशेष रूप से महिलाओं की– की दर को जानने की कोशिश की गयी। इसके तहत तीन बुनियादी वर्गीकरण किये गये

- सेवा प्रदाता क्षेत्र (Service Town Sector)
- औद्योगिक नगर (Industrial Towns)
- व्यापार एवं परिवहन नगर (Trade and Transport Towns)

इसी तरह रेड्डी और राव (1981) नगरीय क्षेत्र में संतुलन की स्थिति का वर्णन करते हैं। उनके अनुसार नगर के अभिकेन्द्रीय कार्य आंतरिक इलाकों और आवृत्त क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं, नगरीय कार्यों के इन दोनों पहलुओं से नये संबंध व्युत्पन्न किये जाते हें। वहीं, सोनी (1981) ने हॉवर्ड नेल्सन के मॉडल के आधार पर लखनऊ के परिनगरों में सेवा केन्द्रों का कार्याधारित वर्गीकरण और विश्लेषण किया। उनके अध्ययन में कुल 67 सेवा केन्द्र चिह्नित किये गये। इनमें से 16 एकल कार्याधारित थे, जबकि 23 युगल कार्याधारित यानी एक साथ दो कार्यश्रेणियों में शामिल थे। 22 केन्द्र तीन कार्यश्रेणियों में रखे गये, जबकि पांच बहुकार्य आधारित रहे।

सिंह (2014) ने हरियाणा के छोटे और मध्यम कस्बों के आकार, कार्य और अवस्थापना विकास का अध्ययन करते हुये इस राज्य में शहरी विकास, स्थानिक वितरण, कार्यों के गुणों में होने वाले बदलाव को स्पष्ट किया। उनके शोधकार्य में वर्ष 1961 से 1991 तक यानी तीस वर्ष की अवधि में तीन चिह्नित छोटे और मध्यम कस्बों के अंतरसंबंधों और परस्पर अन्य व्यवस्थाओं को भी प्रमुखता से इंगित किया गया। यह स्पष्ट हुआ कि इस अवधि में हरियाणा के अधिकतर कस्बाई नगर आकार में छोटे या मध्यम थे। यह भी साफ हुआ कि छोटे कस्बे दरअसल वे विकसित गांव थे, जहां आबादी सघन थी। शाही (1989) ने शहरी केन्द्रों के कार्यों का अध्ययन किया और उनके कार्याधारित विश्लेषण के लिये उन्होंने आकार की श्रेणी का उपयोग किया। बाद में शहरी केन्द्रों को कार्यों की विशेषता और पदानुक्रम के आधार पर पांच कार्याधारित श्रेणियों में बांटा गया। इसका मकसद जनसंख्या आकार के अनुरूप कार्यों का तुलनात्मक विश्लेषण एवं नगरों की समग्र व्यवस्था के संबंध को समझना था। इसके साथ ही एक छठी श्रेणी विविध नगर (Diversified Town) भी जोड़ी गयी। इसमें उन नगरों को शामिल किया गया, जो पूर्वनिर्धारित विशिष्ट कार्याधारित श्रेणियों में शामिल नहीं हो पाते।

निगम ने लखनऊ का अध्ययन किया और विभिन्न क्षेत्रों में कार्यों के पृथक्कीकरण या विभाजन की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया। बताया कि मुख्य व्यावसायिक क्षेत्र नगर के आंतरिक क्षेत्र में स्थित हैं, जबकि आवासीय क्षेत्र परिधीय क्षेत्र में। इसी तरह प्रशासनिक क्षेत्र मुख्यतः मध्य में मिले तो शिक्षण संस्थान मध्य और बाहरी क्षेत्रों में अवस्थित हैं। नगर के दक्षिण–पश्चिमी क्षेत्र का विकास औद्योगिक क्षेत्र के रूप में हुआ है, जबकि बैरक–क्वार्टर के साथ कैंटोन्मेंट दक्षिण की ओर उपनगरीय इलाके में है। अस्पताल मध्य क्षेत्र में पश्चिम की ओर स्थित हैं। कृषि कार्यों ने लगभग पूरे नगर को पश्चिम, उत्तर के उपनगरीय क्षेत्र और दक्षिण की ओर से बाहरी क्षेत्र से चारों ओर से घेरा हुआ है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि लखनऊ में वे सभी कार्य भी पाये गये जो बड़े नगरों में होते हैं। इस तरह लखनऊ को विविध श्रेणी में रखा गया। चूंकि कार्यों के आधार पर यह एक तरफ प्रदेश की राजधानी है तो दूसरी ओर सेना का क्षेत्रीय मुख्यालय भी। यह एक विश्वविद्यालयी नगर भी है तो बड़ा सेवा प्रदाता केन्द्र भी।

## 4.5 निष्कर्ष (Conclusion)

व्यापक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी विशिष्ट सिद्धांत भारतीय नगरों के वर्गीकरण के लिये पूरी तरह उपयुक्त नहीं है। भारतीय नगरों में विविध क्षेत्र, विकास दर, व्यावसायिक एवं उपजीविका श्रेणियां और कार्यों के अलग–अलग वर्ग–श्रेणी मिलती हैं। ऐसे में कोई एक सीधा फार्मूला यहां श्रेणियां तय कर पाने में पूरी तरह सक्षम नहीं है। नगरीकरण की प्रक्रिया नगरीकरण से जुड़ी कई अन्य प्रक्रियाओं से संबद्ध होती है, जिनमें लगातार बदलाव दर्ज किया जाता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि शहरी विकास की प्रक्रिया आर्थिक गतिविधियों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभावों पर निर्भर करती है। इनमें उत्पादक उद्योगों का विस्तार, सेवा केन्द्रों का विकास आदि पहलू शामिल हैं।

## 4.6 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

- नगरों के कार्याधारित वर्गीकरण से आप क्या समझते हैं? नगर के विकास के विभिन्न चरण क्या हैं?
- भारतीय शोधकर्ताओं द्वारा किये गये नगरों के कार्याधारित वर्गीकरण की विस्तार से जानकारी दें।
- विदेशी शोधकर्ताओं द्वारा किये गये नगरों के वर्गीकरण को विस्तार से समझायें।
- नगरों के कार्याधारित वर्गीकरण को लेकर किये गये ताजा अध्ययनों के बारे में विस्तार से लिखें।
- आप जिस नगर में रहते हैं, उसे ध्यान में रखते हुये वर्गीकृत करने का प्रयास करें। आपके नगर को वर्गीकृत करने के लिये कौन सा सिद्धांत उपयुक्त है और क्यों, विस्तार से समझायें।

## 4.7 भावी अध्ययन (Further Readings)


- Duhl, leonard, j (1986), "The healthy city: Its function and its future", Health Promotion International, Volume 1, Issue 1, Pages 55–60,https://doi.org/10.1093/heapro/1.1.55
- Hoyt, Homer (1962), Function Of the Ancient and the Modern City, Land Economics, University Of Wisconsin Press, Vol.3, Pp-241-247
- Hans Blumenfeld (1943), Forms and Function in urban community, "The journal of American of architectural historians", vol. 3, number ½, the history of city planning, pp.11-21
- Smith, Robert, H.T. (1965), Method and purpose in functional town classification, Annals of the Association of American Geographes,Taylor and
- francis,Vol.55,No.3 ,1965,pp.539-548
- Mitra Ashok (1973), Functional classification of Indian town, Institute of Economic Growth New Delhi

- M.N .Nigam (1964),Functional Regions Of Lucknow ,National Geographical Regions Of India ,Volume X Part-1,Pp 38-52
- Reddy,N.B.K. and Rao, D.S.(1981),"An equilibrium function in a city region",vol.2,NAGI,1981
- Shahi (I 989), '"Rank-Size Relationship and Hierarchy of Urban Centres"(In Prof. Jagdish Singh Edt. "Urban Analysis Of Gujarat: A Geographical Analysis"), Chapter 5. Pp 122-155, Institute of Rural Development, Gorakhpur
- Singh, Kuldip (2014), "size, functions and infrastructural development in small and medium towns of Haryana", Ethesis, Shodhaganga, Inflibnet
- Venable, Anthony, J. (2017), "Breaking Into Tradable: Urban Form and Urban Function in A Developing City", Journal or Urban Economics, Volume 19, Pp.88-97, Https://Doi.Org/10.1016/J.Jue.2017.01.002

इकाई– 5

# नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद
# (Urbanization, Urbanism, Urbanity)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 नगरीकरण की अवधारणा एवं परिभाषा

5.3 नगरीकरण की विशेषताएं

5.4 नगरीकरण से संबंधित समस्यायें

5.5 नगरीकरण का जाति पर प्रभाव

5.6 भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया एवं प्रभाव

5.7 नगरीयता का अर्थ एवं परिभाषा

5.8 नगरीयता की विशेषताएं

5.9 नगरीयता एवं नगरीकरण में अन्तर

5.10 नगरवाद का अर्थ एवं परिभाषा

5.11 नगरवाद की विशेषताएँ

5.12 नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद में अंतर

5.13 नगरवाद से उत्पन्न समस्याएँ

5.14 सारांश

5.15 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

5.16 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.17 निबंधात्मक प्रश्न

## 5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे–

1. नगरीकरण किसे कहते हैं तथा इसकी विशेषतायें।
2. नगरीकरण से उत्पन्न समस्यायें एवं जाति में प्रभाव।
3. भारत में नगरीकरण के पढ़ने वाले प्रभाव।
4. नगरीयता की अवधारणाा एवं इसकी विशेषतायें।
5. नगरीयता एवं नगरीकरण में क्या अन्तर है?
6. नगरवाद की परिभाषा एवं इससे उत्पन्न विभिन्न समस्यायें।
7. नगरीकरण एवं नगरवाद में मुख्य अन्तर।

## 5.1 प्रस्तावना

नगरीकरण की प्रक्रिया का अभिप्राय उस प्रक्रिया से लगाया जा सकता है। जिसमें कोई भी स्थान नगर से सम्बन्धित अनेकों विशेषताओं का अपनाता है। यद्यपि नगरीयता एव नगरीय वाद को नगरीकरण का ही स्वरूप मान लिया जाता है, जबकि इनमें काफी अन्तर पाया जाता है। वास्तव में नगरीकरण का सीधा सम्बन्ध नगर से लगाया जाता है, जो क्षेत्र विशेष के अनुरूप पृथक–पृथक पाया जाता है। वास्तव में नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद, नगरीय जीवन से जुड़ी एक ऐसी अवधारणा है जो नगरीकरण के कारणों एवं परिणामों का विश्लेषण करती है। जो विकासशील देशों में नगरीकरण के कुप्रभावों की तीव्रता को स्पष्ट किया है। अतः इस दृष्टिकोण से नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है।

## 5.2 नगरीकरण की अवधारणा एवं परिभाषा

नगरीकरण का तात्पर्य नगर और नगर से जुड़ी अनेकों ऐसी विशेषताओं से है जो ग्रामीण क्षेत्रों की विशेषताओं से बिल्कुल अलग है। भारत में पिछले कुछ दशकों से नगरीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता आयी है। जिसका प्रमुख कारण जनसंख्या वृद्धि से लगाया जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि जैसे–जैसे जनसंख्या वृद्धि होती है। वैसे–वैसे ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय जीवन की ओर जनता पलायन करती है। नेल्स एण्डरसन ने कहा है कि 'नगरीकरण' प्रायः बड़े नगरों में केन्द्रित है ओर उद्योग की ओर उन्मुख है। इसे प्रायः पाश्चात्य कहा जाता है और एक जीवन के ढंग के रूप में नगरीयता कहा जाता है। भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया दो तरीकों से विकसित हुई है। प्रथम औद्योगीकरण के कारण जब किसी स्थान पर उद्योग स्थापित किये जाते हैं तो उन उद्योगों में कार्य करने के लिए आस–पस के लोग निरन्तर आकर वहीं बस जाते हैं और इस प्रकार जनसंख्या बढ़ती है। और वह नगर का रूप ले लेती है। द्वितीय, धार्मिक भावनाओं से नगरों का विकास भारत एक धर्म प्रधान देश है। इसलिए धार्मिक भावनाओं से नगर बसे हैं। जब किसी एक स्थान विशेष पर लोगों की धार्मिक भावनायें जुड़ जाती है, तो लोग दूर दूर से आकर वहां धार्मिक भावनायें प्रकट करते हैं और कुछ वहीं बस जाते हैं। इस प्रकार जनसंख्या की बहुलता नगर का विकास करती है।''1

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरों के विकास की प्रक्रिया को ही नगरीकरण कहा जाता है। अब यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि वास्तव में नगर या नगरीय क्षेत्र किसे कहा जाता है? नगर की अवधारणा को प्रायः जनसंख्यात्मक और समाजशास्त्रीय अर्थों में विभक्त किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि नगर की जनसंख्या, घनत्व तथा नगर की विषयमता, पारस्परिक निर्भरता व जीवन स्तर व गुणवत्ता आदि के आधार पर नगर को परिभाषित किया जा सकता है। सरल शब्दों में कहा जाये तो नगर उस स्थान को कहा जा सकता है। जहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है तथा समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से लोगों के मध्य औपचारिक सम्बन्ध पाये जाते हैं। लुईस बर्थ ने नगरीय समाज का ग्रामीण समाज से अन्तर करते हुए नगर को तीन आधारभूत विशेषताओं के आधार पर परिभाषित किया है–जनसंख्या का आकार, घनत्व और विषयमता। इन विशेषताओं का अर्थ है कि यद्यपि नगर निवासी, ग्रामवासियों की अपेक्षा अधिक मानवीय सम्पर्कों का अनुभव करेगा। किन्तु वह अधिक अकेलापन भी अनुभव करेगा, क्योंकि उन सम्पर्कों की प्रकृति भावनात्मक रूप से शून्य होगी। लुईस बर्थ के अनुसार नगरों में सामाजिक अंतक्रिया जो कि नगरों की विशेषता है।

अवैयक्ति, खण्डीय, दिखावटी, अस्थाई और सामान्यतः विशुद्ध रूप से व्यवहारिक और साधन होती है। इसनको लुईस बर्थ द्वितीयक सम्पर्क कहते हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक सम्पर्कों से बिल्कुल भिन्न होते हैं।[2]

इस प्रकार नगरीकरण के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि नगरीकरण एक सामाजिक परिवर्तन की ही प्रक्रिया है। जिसमें ग्रामीण समाज धीरे–धीरे नगरीय समाज में परिवर्तित होने लगता है। नगरीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए अनेकों विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषायें दी हैं। जो निम्नांकित है–

1. बर्जल के अनुसार–''ग्रामीण क्षेत्रों को नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तित होने की प्रक्रिया को ही हमें नगरीकरण कहना चाहिए। इस प्रक्रिया का गांव की जनसंख्या की आर्थिक संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जिस अनुपात में ग्रामीण जनसंख्या धरती है। ठीक उसी अनुपात से नगर की जनसंख्या में भी वृद्धि होती है।
2. बर्गेल–''ग्रामीण क्षेत्रों के नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तन होने की प्रक्रिया का नाम ही नगरीकरण है।''
3. किग्सले डेविस–''नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसके निर्धारण का महत्वपूर्ण आधार जनसंख्या का एक न्यूनतम स्तर नागरिक प्रशासन तथा मुद्रा अर्थ व्यवस्था है।
4. वारेन थामसन–''नगरीकरण एक प्रक्रिया है। जिसमें कृषि से सम्बन्धित समुदाय के लोग धीरे–धीरे ऐसे बड़े समूहों के रूप में परिवर्तित होने लगते है, जिनकी क्रियायें उद्योग, व्यापार, वाणज्यि तथा सरकारी कार्यालयों से सम्बन्ध होती है।
5. नेल्सन एन्डरसन– ''नगरीकरण का तात्पर्य केवल गाँवों के लोगों का शहरों की ओर बढ़ना अथवा कृषि को छोड़कर व्यापार या नौकरी करना ही नहीं है, बल्कि इस प्रक्रिया में व्यक्तियों के विचारों, व्यवहारों, मनोवृत्तियों और मूल्यों में होने वाला परिवर्तन भी सम्मिलित हैं।
6. थामसन वारन–''एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज में नगरीकरण की परिभाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है–यह ऐसे समुदायों के व्यक्तियों का जो प्रमुख रूप से या पूर्णरूप से कृषि से जुड़े हुए है। उन समुदायों में जाना है, जो साधारणतया (आकार में) उनसे बड़े हैं और जिनकी गतिविधियाँ मुख्य रूप से सरकार, व्यापार, उत्पादन या इनसे सम्बद्ध कारोबारों पर केन्द्रित हैं।''
7. एम0 एन0 श्रीनिवास ने लिखा है–नगरीकरण से तात्पर्य केवल सीमित क्षेत्र में अधिक जनसंख्या से ही नहीं है, अपितु सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन से भी है।
8. गेराल्ड ब्रीज ने नगरीकरण की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि नगरीकरण एक प्रक्रिया है, जिसके कारण लोग नगरीय कहलाने लगते हैं शहरों में रहने लगते है। खेती के स्थान पर अन्य पेशों को अपनाने लगते हैं। जो नगरों में उपलब्ध है और व्यवहार प्रतिमान में अपेक्षाकृत परिवर्तन का समावेश करते हैं।
9. उकेक के अनुसार–''अपने अधिक साधारण और जनांकिकीय अर्थों में नगरीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके द्वारा जनसंख्या एक निर्दिष्ट आकार से भी अधिक झुण्डों में एकत्रित होने की प्रवृत्ति रखती है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट होता है कि वास्तव में नगरीकरण एक निरन्तर चलने वाली एक ऐसी परिवर्तनशील प्रक्रिया है, जो ग्रामीण एवं नगरीय जीवन में एक प्रकार से विभेद उत्पन्न करती है। जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या का नगरीय क्षेत्रों में पलायन को भी समझा जा सकता है। इस प्रकार नगरीकरण वह प्रक्रिया है। जिसमें नगरों की जनसंख्या में लगातार

वृद्धि होती रहती है तथा व्यक्तियों द्वारा नगरीय जीवन सम्बन्धी व्यवहार को भी अपनाया जाता है। जिसमें नगरीय जीवन शैली मनोवृत्तियों एवं नगरीय व्यवहार एवं दृष्टिकोण आदि हैं।

## 5.3 नगरीकरण की विशेषतायें

1. **जनसंख्या की अधिकता**– नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक पाया जाता है, जिसमें प्रायः अलग–अलग धर्म एवं जाति के लोग निवास करते हैं।
2. **गैर कृषि व्यवसायों की अधिकता**–जैसा कि सर्वविदित है। नगरों की स्थापना में व्यापार एवं उद्योग–धंधों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। व्यापार एवं उद्योग–धंधों के विकास ने नगरीकरण की प्रक्रिया को जन्म दिया। एक प्रकार से नगरीकरण का प्रमुख आधार व्यापार एवं कृषि से अलग व्यवसाय है। अतः एक ओर जहाँ सम्पूर्ण ग्रामीण समाज कृषि अर्थव्यवस्था पर आधारित है। वहीं दूसरी ओर नगरीकरण की अर्थव्यवस्था गैर कृषि व्यवसायों पर आधारित है।
3. **सामाजिक गतिशीलता**– नगरीकरण की प्रमुख विशेषता सामाजिक गतिशीलता है। बेरोजगारी, उच्च जीवन स्तर की लालसा, सामाजिक प्रतिष्ठा, शैक्षणिक स्थिति तथा उच्च आर्थिक स्तर प्राप्त करने के लिए व्यक्ति ग्रामीण समाज से नगरीय समाज की ओर पलायन करता हैं ये सारे आधार ऐसे हैं, जो सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा दते हैं।
4. **सामाजिक विभेदीकरण**– नगरीकरण की दूसरी प्रमुख विशेषता सामाजिक विभेदीकरण है। हम सभी जानते हैं कि नगरों में विभिन्न धर्म, जाति, वर्ग तथा विभिन्न जीवन स्तर के लोग जीवन–यापन करते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के मध्य अनेकों सामाजिक विभेदीकरण या अन्तर पाया जाता है। जो अलग–अलग समूहों में विभक्त होता है। यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सामाजिक विभेदीकरण होने के पश्चात ही प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे पर पारस्परिक निर्भर होता है तथा समूह में प्रत्येक कार्यों का निर्वह्न आपस में मिलजुल कर किया जाता है।
5. **द्वितीयक तथा औपचारिक सम्बन्धों की अधिकता**– नगरों में प्रायः व्यक्तियों के मध्य द्वितीयक तथा औपचारिक सम्बन्धों की अधिकता पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के साथ स्वार्थ सम्बन्धों के आधार पर बंधे हुए होते हैं।
6. **सुख–सुविधाओं के साधनों की प्रचुरता**–सुख– सुविधाओं की प्रचुरता भी नगरीकरण की एक प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में प्रत्येक सुख–सुविधाओं का उपभोग एवं उच्च जीवन स्तर की लालसा रखता है। पग्रति नये–नये आविष्कार, आवागमन के साधनों की प्रचुरता, शैक्षणिक, चिकित्सीय एवं मनोरंजन सम्बन्धी अनेक साधन नगरीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देते हैं।
7. **भौतिक सभ्यता एवं संस्कृति**– नगरीकरण की एक प्रमुख विशेषता भौतिक संस्कृति एवं आधुनिक सभ्यता है। जिसके आकर्षण में बँध कर मानव नगरों की ओर जाकर वहाँ अपना जीवन–यापन करना अधिक सुलभ एवं सरल मानते हैं।

इस प्रकार उपयुक्त विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीकरण वास्तव में नगरीय उद्योग–धन्धों, व्यवसाय एवं सुख–सुविधाओं के साधनों की प्रचुरता की ही देन है, जिसमें व्यक्तियों के मध्य द्वितीयक एवं अनौपचारिक सम्बन्ध पाये जाते हैं। यद्यपि व्यक्तियों के मध्य भावनात्मक लगाव का अभाव पाया जाता है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए

प्रत्येक दूसरे व्यक्ति पर निर्भर होता है। आवश्यकताओं, उच्च जीवन स्तर की लालसा तथा महत्वकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं के स्तर ने सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा दिया है, जिससे व्यक्ति ग्रामीण समाज से नगरों की ओर पलायन कर रहे हैं।

## 5.4 नगरीकरण से सम्बंधित समस्यायें

ऐसा माना जाता है कि जब समाज में किसी प्रकार का भी परिवर्तन होता है तो सदैव उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक परिणाम दृष्टिगत होते हैं। भारतीय समाज भी इससे अछूता नहीं है। नगरीकरण की वृद्धि ने जहाँ एक ओर नगरीकय समाज को विकसित एवं प्रगतिशील बनाने में अपनी एक विशेष भूमिका का निर्वह्न किया है। वहीं दूसरी ओर नगरीकरण की प्रक्रिया ने कई गम्भीर समस्याओं को भी जन्म दिया है। नगरीकरण से उत्पन्न होने वाली कई समस्याओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है–

1–मलिन बस्तियों की समस्या– नगरीकरण की तीव्र वृद्धि के कारण नगरों की जनसंख्या में भी तीव्र गति से वृद्धि हुई है। नगरों में जहाँ एक ओर तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि हुई है उस अनुपात में आवास या मकानों की साथ में वृद्धि नहीं हो पायी है।

अतः परिणामस्वरूप मलिन बस्तियाँ या गंदी बस्तियों का निर्माण होने लगा। 'गन्दी बस्तियाँ नगर के उस भाग अथवा क्षेत्र का नाम है जहाँ घने रूप से बसे हुए अत्यधिक गन्दे और टूटे–फूटे मकानों में निम्न आय वाले गरीब लोग अथवा श्रमिक कम स्थान में जीवन व्यतीत करते हैं।''[3]

ग्रामीण समाज में रोजगार की कमी के कारण बड़ी संख्या में रोजगार पाने के लिए प्रतिदिन नगरों में लाखों की संख्या में श्रमिक वर्ग प्रवेश करता है। नगरों में उन्हें रोजगार तो मिल जाते हैं, परन्तु स्थान का अभाव होने के कारण इन्हें गन्दी तथा अस्वास्थ्यकारी मलिन बस्तियों (कम किराये की छोटी–छोटी कोठरियों) में निवास करना पड़ता है। डॉ0 मुकर्जी ने इस सम्बन्ध में कहा है कि औद्योगिक केन्द्रों की गन्दी बस्तियों की दशा इतनी भयंकर है कि यहां मानवता का नाश हो रहा हैं महिलाओं का जीवन अपमानित है और अबोध शिशुओं का दम घुट रहा है।''[4] मलिन बस्तियाँ नगरीकरण की एक प्रमुख समस्या के रूप में उभर कर सामने आ रहा है। सीलन होने तथा रोशनी के अभाव में ये बस्तियाँ अनेक रोगों को भी जन्म दे रही है। जिसमें प्रमुख रूप से संक्रामक रोग, अस्थमा, डायरिया तथा टी0बी0 है। मलिन बस्तियां एक तरह से अपराधिक गतिविधियों का भी अड्डा बनता जा रहा है। इसके अलावा इन बस्तियों में नशाखोरी, जुआ, वैश्यावृत्ति एवं चोरी जैसे अपराध भी दिन प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। इन मलिन बस्तियों में इन सब समस्याओं के अतिरिक्त व्यक्तियों में अवसाद, निराशा तथा कुण्ठा की भावना में भी बढ़ोत्तरी हो रही है। मलिन बस्तियों में प्रमुख रूप से मुम्बई की चोले, कलकत्ता की बस्तयों, तथा चेन्नई में चरियां तथा कानपुर के पुरवा तथा आहाते आदि हैं।

2–विघटन की समस्या– नगरीकरण के कारण एक प्रमुख समस्या व्यक्ति का वैयक्तिक विघटन तथा पारिवारिक विघटन होता है। ग्रामीण समाज से जब एक व्यक्ति नगरीय समाज में प्रवेश करता है, तो अधिकांशतः नये परिवेश में वह सामंजस्य नहीं बिठा पाते। अतः व्यक्तियों में वैयक्तिक विघटन होने लगता है, जिसके परिणमास्वरूप व्यक्ति तनावग्रस्त एवं निराशा से परिपूर्ण होने लगता है। इन परिस्थितियों से मुक्त होने के लिए व्यक्ति वेश्यागमन तथा नशाखोरी करने लगता है। पारिवारिक नियंत्रण न होने के कारण व्यक्ति आपराधिक गतिविधियों में भी लिप्त हो जाता है। जो कई प्रकार की समस्याओं को उत्पन्न करने लगता है।

इसके साथ ही नगरीकरण की प्रक्रिया ने पारिवारिक विघटन को भी बढ़ा दिया है। इस प्रक्रिया ने परम्परागत संयुक्त परिवार की प्रणाली को पूर्णरूप से विघटित करने दिया है। पति–पत्नी दोनों के कार्यरत् होने के कारण बच्चों को पूर्णरूप से स्वतंत्रता प्राप्त होने से वह आपराधिक गतिविधियों में लिप्त हो जाते हैं माता–पिता के अत्यधिक व्यस्त हो जाने के कारण बच्चों का जीवन अपेक्षापूर्ण एवं निराश एवं तनावग्रस्त हो जाता है।

पारिवारिक विघटन होने के कारण व्यक्ति धीरे–धीरे अपने अन्य पारिवारिक सदस्यों से दूर होने लगता है। जिससे परिणामस्वरूप बीमारी, बेकारी तथा गंभीर दुर्घटना हो जाने पर व्यक्ति को परिवार के अन्य सदस्यों का सहयोग नहीं मिल पाता, जिससे व्यक्ति का जीवन निर्वह्न तक दुखदायी एवं कष्टों से परिपूर्ण हो जाता है। अतः कहा जा सकता है। नगरीकरण की प्रक्रिया ने जहां एक ओर विकास को एक नयी दिशा दी है। वहीं दूसरी ओर सामाजिक एवं पारिवारिक विघटन जैसी कई गम्भीर समस्याओं को भी जन्म दिया है।

3–प्रवर्जन या पलायन की समस्या– प्रत्येक व्यक्ति अपने मूल स्थान से प्रवर्जन या पलायन इसलिये करता है, जब व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकतायें भी पूर्ण नहीं हो पाती। रोजगार की कमी अच्छे जीवन स्तर की लालसा। ये देनों ही ऐसी चीजें हैं जो व्यक्ति को नगरों की ओर पलायन करने के लिए विवश करता है। भारत में प्रवर्जन के चार स्वरूप हैं–

- ग्रामीण से ग्रामीण
- ग्रामीण से नगरीय
- नगरीय से नगरीय
- नगरीय से ग्रामीण

यद्यपि ग्रामीण से ग्रामीण प्रवर्जन अभी तक सबसे अधिक प्रचलित पलायन का रूप है। परन्तु ग्रामीण से नगरीय और नगरीय से नगरीय प्रवर्जन अभी इतना ही महत्वपूर्ण है।''[5]

ग्रामीण दरिद्रों के शहर में प्रवेश राजस्व के स्रोतों को कम करते हैं दूसरी ओर आजकर धनवान व्यक्ति उपनगरीय क्षेत्रों में रहना अच्छा समझते हैं। धनवान व्यक्तियों के पलायन से नगर की वित्तीय हानि होती है। इस प्रकार का श्हार में प्रवर्जन और शहर से दूर प्रवर्जन से समस्यायें बढ़ती हैं।''[6]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि पलायन या प्रवर्जन एक ऐसी मुख्य समस्यायें हैं। जो ग्रामीण समाज को तो खोखला कर ही रही है साथ ही नगरों में भी अनेकों समस्याओं को जन्म देती है।

4– **प्रदूषण की समस्या–** नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण एक विश्वस्तरीय प्रमुख समस्या प्रदूषण की समस्या है। उद्योगों एवं कारखानों से उठने वाले प्रदूषित धुंए ने सम्पूर्ण वायुमण्डल की एक तरह से पूरी तरह प्रदूषित कर दिया है। साथ ही इन उद्योग का गन्दा पानी एवं औद्योगिक अपविष्ट नदियों में बहा दिया जाता है। जिससे नदियों का पानी पूरी तरह से प्रदूषित हो गया है। इस प्रकार कहा जा सका है कि प्रदूषित धुंए एवं अपविष्ट औद्योगिक निकासी ने जल तथा वायु प्रदूषण को जन्म दिया है जिससे अनेकों गम्भीर बीमारियों का सामना जन जीवन को करना पड़ रहा है।

बनार्ड ने चार प्रकार के प्र्यावरण बताए हैं– भौतिक, जैविक, सामाजिक एवं मिश्रित, सामाजिक में शारीरिक मनोवैज्ञानिक तथा मिश्रित में आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक पर्यावरण को सम्मिलित किया है। नगरीकरण पर्यावरण को अनेक तरह से प्रदूषित किया है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रदूषण, जल, हवा एवं ध्ववनि प्रदूषण नगर की प्रमुख विशेषता बन गई है। इस तरह जैसे–जैसे नगरीकरण बढ़ रहा है, वैसे–वैसे प्रदूषण भी बढ़ रहा है। शिक्षा के कारण व्यक्ति अविवेकी एवं धर्म निरपेक्ष भी होता जा रहा है।''[7]

5– **सामुदायिक विघटन–** इलियट और मैरिल का कथन है–''सामुदायिक विघटन एक ऐसी जटिल प्रक्रिया है जिसमें उन सभी समूहों, संस्थाओं तथा ऐच्छिक समितियों का आंशिक अथवा पूर्ण विघटन हो जाता है। जिनकी संयुक्त गतिविधियों द्वारा समुदाय की अन्तःक्रियाओं का निर्माण होता है।''[8]

जैसा कि इलियट और मैरिल ने कहा है कि सामुदायिक विघटन सम्पूर्ण समाज को विघटित कर देता है। नगरीकरण के द्वारा संयुक्त परिवार धीरे–धीरे एकल परिवारों में परिवर्तित हो रहे हैं। धार्मिक एवं जातिगत मान्यतायें धीरे–धीरे परिवर्तित हो रही हैं और उनमें शिथिलता आ रही है। मलिन बस्तियों एवं आवास की समस्या ने विकराल रूप ले लिया है। अपराधिक गतिविधियां तीव्र गति से बढ़ रही है। काम की अधिकता तथा मनोरंजन के अपर्याप्त साधनों ने व्यक्ति में अवसाद, कुंठा एवं निराशा को जन्म दिया है। दूसरे अर्थों में कहा जा सकता है कि भारतीय परम्परागत समाज की समाजिकता एक तरह से नगरीकरण के कारण प्रायः विघटित होने लगी है। जिससे परिणामस्वरूप सामाजिज संस्थाओं, सामाजिक संगठनों एवं सामाजिक व्यवस्था में अनेकों परिवर्तन हो रहे हैं जिससे अनकों प्रकार की समस्याओं का भी उदय हो रहा है।

6– **अपराधीकरण को बढ़ावा–** जैसा कि हम सब जानते हैं कि रोजगार के अवसरों की कमी, बेरोजगारी तथा आर्थिक सुदृढ़ीकरण के कारण प्रत्येक व्यक्ति नगरों में जाकर जीवन यापन करना ज्यादा पसंद कर रहा है। किन्तु यह भी वास्तविकता है कि नगरीय जीवन को बेकारी की कम करने के बजाये बढ़ावा दिया है। व्यक्ति अपनी सीमित आय में अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी सुगमतापूर्णव नहीं कर पाता। अतः अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह गलत मार्ग की सहायता लेने लगता है, जिसमें मुख्य रूप से जुआ, अनैतिक कृत्य तथा चोरी करना आदि ई। इसके विपरीत एकाकी जीवन होने के कारण व्यक्ति गलत संगत में पड़ कर भी कई प्रकार के अपराध करने लगता है।

7– **बेरोजगारी की समस्या–** औद्योगीकरण की प्रक्रिया नगरीकरण की प्रमुख देन है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया में कारखानों में अधिकतर कार्य मशीनों के द्वारा ही किये जाते हैं जिससे अधिक उत्पादन किया जा सके। मशीनीकरण ने एक तरह से उद्योग–धन्धों तथा कुटीर उद्योगों को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है। अतः जिससे हजारों की संख्या में लोग बेरोजगार हो गये हैं। अतः सरल शब्दों में कहा जाये तो नगरीकरण की प्रक्रिया ने बेरोजगारी की समस्या को विकसित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वह्न किया है।

8– **यातायात की समस्या–** नगरों में जनसंख्या की अधिकता ने यातायात और परिवहन की समस्या को भी बढ़ा दिया है। नगरीकरण के कारण समस्या को भी बढ़ा दिया है। नगरीकरण के कारण जनसमुदाय तो निरन्तर बढ़ता जा रहा है। किन्तु उस दिशा में यातायात के साधनों में तीव्रता नहीं आयी है। यदि यातायात की आपूर्ति को बढ़ाया जाता है, तो वह प्रदूषण को बढ़ावा देता है। अतः नगरीकरण की प्रक्रिया ने यातायात की एक बड़ी समस्या को भी बढ़ावा दिया है।

9– **द्वितीयक समूहों की वृद्धि–** नगरीकरण की प्रक्रिया ने द्वितीयक समूहों में भी वृद्धि की है। जिससे प्राथमिक समूहों में भी विघटन की स्थिति आ गयी है। सरल शब्दों में यदि कहा जाये तो व्यक्तियों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्धों का अभाव हो गया है। जिसके स्थान पर औपचारिक सम्बन्धों की वृद्धि हो गयी है। द्वितीयक समूहों में व्यक्ति केवल स्वार्थ के कारण दूसरे व्यक्ति से जुड़ा रहता है। नगरों में तो पड़ोस में भी व्यक्ति एक दूसरे से अच्छे से परिचित नहीं होते हैं।

10– **विवाह का परिवर्तित स्वरूप**– नगर विभिन्न प्रकार के धर्म एवं जाति के लोग निवास करते हैं। अतः धीरे–धीरे वैवाहिक संस्था में भी परिवर्तन होने लगे है। वर्तमान समय में विवाह में जाति एवं धर्म को विशेष महत्व नहीं दिया जाता है। सजातीय विवाह के स्थान पर अन्तजार्तीय विवाह को प्राथमिकता दी जाती है। जातीय तथा धार्मिक बंधन प्रायः शिथिल होने लगे हैं। नगरीकरण के कारण विवाह एक धार्मिक संस्कार न होकर समझौता बन गया है। साथ ही वैवाहिक बन्धनों में भी अब शिथिलता का विकास हो गया है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर काह जा सकता है। कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने समाज को जहां एक ओर विकसित एवं प्रगतिशील बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वह्न किया है। वहीं दूसरी ओर इस प्रक्रिया ने अनेकों समस्याओं को भी जनम दिया है। पलायन के कारण ग्रामीण क्षेत्र धीरे–धीरे खाली होने लगे हैं, जिससे कृषि कार्यों में बूरा प्रभाव पड़ा है। रोजगार एवं उच्च जीवन स्तर पाने की लालसा ने नगरों में जनसंख्या की आशातीत वृद्धि कर दी है। जिससे मलिन बस्तियों एवं आवास की विकाराल समस्या का जन्म हुआ है। एकल परिवार एवं स्वतंत्र जीवन शैली ने जहां एक ओर अपराधीकरण को बढ़ा दिया है, वहीं दूसरी ओर व्यक्तिवादिता, अवसाद, निराशा एवं कुंठित मनोवृत्तियों को भी जन्म दिया है। नगरीकरण से सामुदायिक विघटन तो हुआ है। साथ ही सामाजिक एवं पारिवारिक विघटन भी तीव्र गति से हुआ है। अतः यहाँ पर यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि नगरीकरण ने नगर एवं समाज की विकसित तो किया है, किन्तु कई गम्भीर एवं विकाराल समस्याओं को भी जन्म दिया है।

## 5.5 नगरीकरण का जाति पर प्रभाव

नगरीकरण ने जाति व्यवस्था पर भी पूर्ण रूप से प्रभाव डाला है। नगरीकरण का जाति पर प्रभाव को निम्नांकित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

1. नगरों में सभी धर्मों के व्यक्ति साथ–साथ उद्योग–धन्धों में कार्य करते हैं। साथ कार्य करने के कारण प्रत्येक जाति के व्यक्ति एक दूसरे के साथ मिल–बांटकर खाना खाते हैं। इस प्रकार जातीय रूढ़िवादिता, अस्पृयता की भावना व जातीय बंधन धीरे–धीरे ढीले हो रहे हैं।
2. परम्परागत समाज में कार्यात्मक विभाजन होने के कारण व्यक्ति को अपने जाति के आधार पर कुछ निश्चित कार्य करने होते थे। वर्तमान समय में नगरीय जीवन में परम्परागत कार्य धीरे–धीरे लुप्त होते जा रहे हैं उसके स्थान पर व्यक्ति सर्वसुलभ कार्यों तथा रूचि के अनुरूप कार्यों को प्राथमिकता देते हैं। अतः नगरीकरण ने परम्परागत कार्यों में परिवर्तन ला दिया है।
3. नगरीकरण की प्रक्रिया ने सांस्कृतिक को भी परिवर्तित कर दिया है। वास्तव में प्रत्येक जाति की अपनी संस्कृति, भाषा तथा संस्कार होते हैं, जिनका पालन उन्हें अनिवार्य रूप में करना होता है। किन्तु नगरीय जीवन में धीरे–धीरे सांस्कृतिक कट्टरता कम होने लगती है, क्योंकि यहाँ प्रत्येक धर्म, संस्कृति एवं जाति के लोग साथ–साथ मिलजुल कर रहते हैं तथा

खान–पान में विशेष कोई पाबंदी नहीं होती। अतः कहा जा सकता है कि नगरीकरण ने सांस्कृतिक व्यवस्था को भी परिवर्तित कर दिया है।

4. प्राचीन समय से ही प्रत्येक जाति की अपनी वैवाहिक संस्था होती थी। विवाह प्रत्येक जाति एवं धर्म के आधार पर निर्धारित होते थे। एक तरह से विवाह नाम संस्था पूर्ण रूप से जाति पर आधारित थी। वर्तमान समय में नगरीकरण ने इस संस्था को भी पूर्ण रूप से परिवर्तित कर दिया है, क्योंकि नगरों में प्रत्येक जाति एवं धर्म के लड़के एवं लड़कियाँ साथ–साथ मिलजुलकर रहकर एक ही स्थान पर काम करते हैं। इसके अलावा अनेक जाति को मानने वाले आस–पड़ोस में भी साथ–साथ निवास करते हैं जिससे अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन मिला है।
5. परम्परागत भारतीय समाज में जाति प्रथा का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जिसमें कई जातियों में महिलाओं को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती है। महिलायें परिवार के पुरुष सदस्यों के आधीन रहकर कार्य करती थीं। पर्दा प्रथा जाति की एक प्रमुख शर्त थी, जिसमें महिलाओं को पर्दे में रहकर ही प्रत्येक कार्य करने होते हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया ने जाति प्रथा की इस परम्परागत रूढ़िवादिता को खत्म करने में मुख्य भूमिका का निर्वह्न किया है। नगरीय समाज में महिलाओं को प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता के साथ–साथ जातिगत रूढिवादिता से भी मुक्ति मिली है। पर्दा प्रथा धीरे–धीरे खत्म हो रही है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने जातिवाद को परिवर्तित करने में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वह्न किया है। आन्द्रे बिताई ने इस सम्बन्ध में कहा है कि ''पाश्चात्य रंग में रंगे हुए अभिजन वर्ग के बंधन जाति के संबंधों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। कुछ जातियों के शिक्षित सदस्य जो आधुनिक व्यवसायों में हैं। कभी–कभी दबाव समूह के रूप में संगठित हो जाते हैं। इस प्रकार एक जाति दूसरे दबाव समूहों के साथ राजनीतिक और आर्थिक संसाधनों के लिए एक सामूहिक इकाई की तरह प्रतिस्पर्द्धा करती हैं इस प्रकार का संगठन एक नई प्रकार की एकात्मकता दर्शाता है। ये प्रतिस्पर्द्धा करने वाली इकाईयां जाति के वर्गों की अपेक्षा सामाजिक वर्ग की तरह अधिक कार्य करती है।''[9]

कोलेन्ड्रा के अनुसार–''रोजगार में और शहर की अपेक्षाकृत नई बस्तियों में विभिन्न उपजातियों और जातियों के व्यक्ति एक दूसरे से मिलते हैं। वे प्रायः लगभग बराबर दर्जे के होते हैं। और इनमें पड़ोस की या कार्यालय समूह को एकता विकसित होती है। इस तरह की चीज बड़े शहरों में सरकारी बस्तियों में आम रूप से पाई जाती है। इसी प्रकार अन्तर उपजातीय विवाह होते है। और इससे उपजातियों के विलयन को प्रोत्साहन मिलता है। यह इस लिए होता है कि कई बार शिक्षित बेटी के लिए अपनी ही उपजाति में पर्याप्त रूप से शिक्षित वर नहीं मिलता। परन्तु करीब की उपजाति में मिल जाता है।''[10]

## 5.6 भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया एवं प्रभाव

ऐसा माना जाता है कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया ईसा से 3000 वर्ष पूर्व से ही प्रारम्भ हो गयी थी। आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व भारत में मगध, नालन्दा, तक्षशिला, उज्जैन, धारा, पाटलीपुत्र, कन्नौज, काशी और मालवा जैसे बड़े–बड़े नगर अपने अस्तित्व में आ गये थे।

भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया मुख्य रूप से औद्योगीकरण के कारण हुई। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार व्यापार के लिए जिन स्थानों में कच्चा माल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। ऐसे स्थानों में

उद्योग–धंधों की स्थापना की गयी। जिसके परिणामस्वरूप धीरे–धीरे इन स्थानों में रोजगार के अवसर उपलब्ध होने के कारण जनसंख्या वृद्धि होने लगी तथा बड़े–बड़े नगरों की स्थापना होने लगी। भारत में औद्योगिक विकास के कारण स्थापित नगरों में प्रमुख नगर जमशेदपुर, टाटानगर, मोदीनगर, दुर्गापुर, राउरकेला, भिलाई, विशाखापट्नम और बुरहानपुर आदि हैं। भारत में औद्योगीकरण के कारण विभिन्न स्थानों पर जब बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना हुई तो लघु एवं कुटीर उद्योग–धंधों का पतन होने लगा। इन उद्योगों में लगे लाखों कारीगर औद्योगिक केन्द्रों में रोजगार पाने की मंशा से गांवों को छोड़कर नगरों में आकर बसने लगे। दूसरी ओर लोगों की बढ़ी हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उद्योगों में किये जाने वाले उत्पादन की मात्रा में भी वृद्धि होती गई।''[11]

किग्सले डेविस ने इस संदर्भ में कहा है कि ''नगरों की उत्पत्ति और विकास आज केवल कुछ आर्थिक, राजनैतिक, सैनिक, धार्मिक, और मनोरंजन संबंधी आकर्षणों का ही परिणाम नहीं है, बल्कि उन विभिन्न आकर्षणों की मांगों जैसे–उद्योगों की स्थापना, परिवहन, संचार, विशेषीकरण, श्रमविभाजन और आर्थिक सुरक्षा की भावना आदि से ही इतना अधिक प्रभावित है।''[12]

भारत में नगरीकरण ने नगर को विकसित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वह्न किया है। वहीं दूसरी ओर भारतीय सामाजिक संरचना को भी परिवर्तित किया है। नगरीकरण ने भारतीय परम्परागत समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। नगरीकरण के द्वारा भारतीय समाज में होने वाले प्रभाव को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

**अ– समाजिक प्रभाव**

1. **पारिवारिक व्यवस्था पर प्रभाव–** ग्रामीण समाज के अधिकांश व्यक्ति बेरोजगारी एवं रोजगार की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन करकते नगरों की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। अतः नगरीकरण ने पारिवारिक व्यवस्था में परिवर्तन ला दिया। शिक्षा के प्रभाव के कारण महिलायें भी आत्मनिर्भर हो कर अर्थोपार्जन कर रही हैं अतः नगरीकरण के कारण संयुक्त परिवार विघटित होकर एकांकी परिवारों में परिवर्तित हो रहे हैं। जिससे परिवार के सदस्यों के मध्य भी सम्बन्धों में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध समाजशास्त्री रास ने अपनी पुस्तकत 'दि हिन्दू फैमली इन इट्स अरबन सेटिंग में बताया कि आने वाले कुछ समय में परिवार के नियमों द्वारा दायित्वों संबंधी विचार भी दुर्बल पड़ते जायेंगे। सदस्यों के बीच पारस्परिक स्नेह कम होता जायेगा तथा परिवार के मुखिया के अधिकार लगभग समाप्त हो जायेंगे। इसी प्रकार एम0 एस0 गोरे ने अपनी पुस्तक 'अरबनाईजेशन एण्ड फैमली चेंज' में बताया है कि नगरीकरण से प्रभावित वर्तमान परिवारों में रहन सहन के स्तर, सदस्यों की संख्या तथा सदस्यों की स्थिति में परिवर्तन आया है। लेकिन सांस्कृतिक रूप से वे आज भी संयुक्त परिवार व्यवस्था से जुड़े हुए हैं।''[13]

2. **मूल्यों में परिवर्तन–** नगरीकरण के परिणाम स्वरूप परम्परागत मूल्यों में धीरे–धीरे परिवर्तन हो रहे हैं। आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण सभ्यता ने व्यक्तियों के परम्परागत मूल्यों से जुड़े हुए विचारों एवं धारणाओं को परिवर्तित कर दिया है। परम्परागत रूढिवादिता विचारों का स्थान पर प्रगतिशील विचारों ने ले लिया है।
3. **धार्मिक परिवर्तन–** नगरीकरण ने व्यक्ति के धार्मिक जीवन में भी अनेकों परिवर्तन ला दिया है। धर्म की प्राचनी मान्यतायें अब धीरे–धीरे खत्म हो रही हैं। विभिन्न जाति एवं धर्म को मानने वाले लोगों के साथ–साथ मिलजुल कर रहने तथा साथ–साथ कार्य करने से धार्मिक कट्टरता में धीरे–धीरे

कमी आने लगी है। अन्धविश्वास एवं धार्मिक रूढ़ियों का मानव समाज त्याग रहा है, जो वास्तव में नगरीकरण की ही देन माना जा सकता है। छुआछूत एवं अस्पृश्यता की भावना भी धीरे–धीरे खत्म हो रही है।

4. **महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन–** नगरीकरण की प्रक्रिया ने महिलाओं को शिक्षित बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। महिलायें अपनी परम्परागत छवि से बाहर निकल रही हैं। वैचारिक जागरूकता एवं स्वतंत्रता के कारण महिलायें धरे से बाहर निकल कर विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों के समान कार्य कर रही हैं। एक तरह से नगरीकरण ने अर्थोपार्जन के माध्यम से आत्मनिर्भर बनने के कारण अनेकों अवसर मुहिया करवाये हैं नगरीकरण के कारण ही महिलाओं में सामाजिक एवं आर्थिक जागरूकता का तीव्र विकास हुआ है। महिलाओं में स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता ने महिलाओं की स्थिति को और सशक्त किया है, जिससे महिलायें अब स्वयं जीवनसाथी का चुनाव कर रही हैं। विवाह की आयु धीरे–धीरे बढ़ने लगी है। साथ ही जीवन साथी से वैचारिक मतभेद होने की स्थिति में विवाह–विच्छेद को भी महिलायें गलत नहीं मानती हैं।

5. **जाति व्यवस्था में परिवर्तन**– ऐसा माना जाता है कि नगरीकरण ने जाति व्यवस्था को सर्वाधिक प्रभावित किया हैं विभिन्न जातियों के एक साथ रहने, मिलजुल कर कार्य करने से जातिगत ऊँच–नीच की भावना लगभग समाप्त हो गयी है। व्यवसाय में जाति को प्रमुखता न देकर व्यक्ति की योग्यता एवं कार्यकुशलता को मुख्य आधार माना जाता है। अस्पृश्यता सम्बन्धी मान्यतायें अब पूर्ण रूप से समाप्त हो गयी हैं इस सम्बन्ध में जी0 एस0 घुरिये ने स्पष्ट किया है कि 'नगरों में जो व्यक्ति ग्रामीण समुदाय से आकर प्रवासी के रूप में रहते हैं, वे आज भी जाति के नियमों से शहरी श्रमिकों की अपेक्षा अधिक प्रभावित हैं। इसी प्रकार एक ही नगर में नई बनी कलौनियों की तुलना में पुराने मोहल्लों में जाति प्रथा का प्रभाव अधिक बना हुआ है। इसी प्रकार नर्मदेश्वर प्रसाद ने बताया है कि ''जिन समूहों पर नगरीकरण के प्रभाव से जाति व्यवस्था का प्रभाव कम हुआ है, वहां भी इस प्रभाव में काफी असमानता है। जैसे नगरीकरण के प्रभाव से जातियों के आनुवंशिक व्यवसाय का विभाजन, खान–पान के नियंत्रणों, जाति पंचायतों के संगठन तथा जाति के आधार पर सामाजिक स्थिति के निर्धारण आदि में बहुत शिथिलता आ गई है।''[14]

### ब– राजैनैतिक जीवन पर प्रभाव

1. जागरूकता में वृद्धि–ऐसा देखा गया है कि नगरीय समुदाय में व्यक्ति ग्रामीण समुदाय की तुलना में अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति अधिक जागरूक रहता है। चूंकि व्यक्ति नगर में निवास करता है, तो वहां वह राजनैतिक गतिविधियों के प्रति अधिक जागरूक रहता है। अपने अधिकारों के प्रति व्यक्ति कानूनी लड़ाई तक लड़ने को तैयार हो जाते हैं विभिन्न लोगों के साथ रहने तथा संचार सुविधायें की सुलभता के कारण व्यक्ति राजनैतिक जीवन की प्रत्येक घटना पर नजर रखता है तथा राजनैतिक व्यवस्था में अपने हित तथा अहित को ध्यान में रखकर वह राजनैतिक रूप से सदैव जागरूक रहता है।
2. **स्पष्ट सक्रियता**– नगरीय समुदय में व्यक्ति राजनैतिक क्षेत्र या व्यवस्था में सक्रिय रूप से भागीदारी है। जागरूकता एवं वैचारिक स्वतंत्रता होने के कारण व्यक्ति यह समझने लगता है कि उसके लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा। अतः व्यक्ति अपनी सक्रिय भागीदारी के कारण लोकतांत्रिक देश के निर्माण में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करता है।
3. **ग्रामीण समुदाय में परिवर्तन–** नगरीकरण तथा सामाजिक गतिशीलता के कारण ग्रामीण समुदाय में भी स्पष्ट परिवर्तन दिखई देते हैं पलायन के कारण जो व्यक्ति ग्रामीण समुदय को छोड़कर नगरों में निवास करने लगता है तथा नगरीय जीवनशैली तथा संस्कृति को ग्रहण कर लेता है। तब ग्रामीण समुदाय के उसके निकट सम्बनधी या रिश्तेदार उसके जैसा बनने का प्रयास करते हैं।

जिसके परिणाम स्वरूप ग्रामीण समुदय की परम्परागत जीवनशैली तथा संस्कृति में धीरे–धीरे परितर्वन हओने लगते हैं। शिक्षा की वृद्धि एवं प्रचार–प्रसार तथा यातायात एवं परिवहन के साधनों ने नगरीय सभ्यता एवं संस्कृति को ग्रामीण समुदाय तक पहुंचाने का कार्य तीव्र गति से किया है। जिससे ग्रामीण समुदायय की संरचना में व्यापक परिवर्तन दिखाई देने लगे हैं। डॉ0 राव ने अपनी पुस्तक 'अरबनाईजेशन एण्ड सोशल चंज' में ग्रामीण समुदाय पर नगरीकरण के प्रभावों की विस्तृत व्याख्या की है। उनके अनुसार नगरों के संपर्क में आने से ग्रामीण समुदाय में द्रव्यीकरण का विकास हुआ है तथा खेती में व्यापारीकरण की प्रवृत्ति स्पष्ट होती जा रही है। जो व्यक्ति पहले गांवों में कपड़े धोने, जूता बनाने, बाल काटने, लोहे का काम करने अथवा पुरोहिताई का काम आदि करते थे। वे नई सेवाओं के आकर्षण में नगरों में प्रवेश कर रहे हैं। इससे न केवल आनुवंशिक व्यवसाय की परम्परा समाप्त होने लगी है, बल्कि ग्रामीण समुदाय में जजमानी व्यवस्था का भी विघटन हो गया है। खेती में व्यापारीकरण, नगरीय उद्योग–धंधों में नौकरी तथा परिवहन की सुविधाओं से जब ग्रामीणों की आर्थिक सिीति में सुधार हुआ तो उनमें आत्मर्भिरता भी बढ़ने लगी है। इसके फलस्वरूप उन्होंने भी संचार साधनों तथा रेडियो, टी0वी0 टेपरिकार्डर आदि का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया।[15]

इसी प्रकार डॉ0 इंद्रा शुक्ला ने नगरीकरण के आर्थिक प्रभाव में दो प्रकार के प्रभावें का उल्लेख किया है।

1. **उत्पादन व व्यवसाय के केन्द्र–** आज नगरों में बड़े–बड़े उद्योग स्थापित हो गए हैं जो उत्पादन तथा व्यवसाय के केन्द्र बन चुके हैं। नगर में किसी भी व्यवसाय या उद्योग को प्रारम्भ करने में कठिनाई नहीं होती है। यहां ग्रामीण व्यक्ति आकर अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदते हैं और अपनी उत्पादित वस्तुओं को बेचते हैं।
2. **बैंकिंग व वित्तीय संस्थाओं का विकास–** नगरों में वित्तीय संस्थाओं, बैंक, मुद्रा व साख आदि की सुविधाए उपलब्ध हैं। इसी कारण नगर व्यापार व वाणिज्य के केंद्र बन गए हैं किसी भी नए उद्योग या व्यवसाय को स्थापित करने के लिए बैंक से उचित ब्याज दर पर ऋण मिल जाता है। इन बैंकों में अपनी बचत को जमा करके व्याज दर के रूप में लाभ भी प्राप्त किया जा सकता है।''[16]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था, संरचना, परम्परागत समूहों एवं संस्थाओं में अपना व्यापक प्रभाव डाला है।

## 5.7 नगरीयता का अर्थ एवं परिभाषा

नगरीयता एक ऐसी अवधारणा है जो नगरीय जीवन शैली को परिभाषित करती है। नगरीय जीवन से तात्पर्य नगरीय संगठन, संगठन के प्रकार, मूल्य, व्यवहार करने के तरीके तथा नगरीय संरचना है। कहने का तात्पर्य यह है कि नगरीयताएक प्रकार से एक नगरीय जीवन पद्धति है। जिसमें यह निर्धारित किया जाता है। कि नगर में जीवन–यापन करने वाले लोगों का अन्य लोगों के साथ व्यवहार कैसा कैसा होगा तथा उनके मूल्य कैसे होंगे? वास्तव में सामाजिक मूल्य का स्वरूप पूर्व में ही निर्धारित होता है। जिसका पालन प्रायः नगर में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को करना पड़ता है। नगरीता के सन्दर्भ में अनेक विद्धानों एवं समाजशास्त्रियों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं। जिनमें से प्रमुख समाजशास्त्रियों की परिभाषा निम्नांकित है।

लुईस बर्थ–''नगरीयता जीवन के रहन–सहन के ढंग को कहते हैं जो सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से नगरीय रहन–सहन में जटिलता को लाता है जो जनसंख्या के आकार में परिवर्तन, घनत्व

और विषमता को निर्धारित करता है। व्यक्ति के व्यवहार एवं नगरीय परिवेश में सोचने के ढंग आदि में परिवर्तन लाता है। जहां लोग विभिन्न समुदायों के बीच से एक नये नगरीय समुदाय का निर्धारण करते हैं।

थिओडर्स के अनुसार–''नगरीयता एक जीवन पद्धति (way of life) है। यह समाज एक ऐसा संगठन है जिससे श्रम का जटिल विभाजन, प्रौद्योगिकी के ऊँचे स्तर, उच्च गतिशीलता (highmobility), आर्थिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए उसके सदस्यों की पारस्परिक आश्रितता और सामाजिक सम्बन्धों में अवैयक्तिता (impersonality) का समावेश होता है।[17]

एण्डरसन के अनुसार–'' नगरीयता जीवन के रहन–सहन के ढ़ंग के रूप में केवल नगरों एवं शहरों की ही अकेले अपने अन्दर नहीं समेटता, बल्कि वह राजधानी जैसे महानगरों से दृष्टिगोचर होती है कि यह एक व्यवहार करने का तरीका है।

क्वीन एवं कारपेंटर–''नगरीयता नगर निवास की एक प्रघटना है।

सुधाकर प्रसाद तिवारी–''नगरीयता या नगरवाद एक जीवन शैली है। जिसमें सारा कार्य समयबद्ध नियमित यथार्थता से जुड़ा रहता है। यहां व्यक्ति विचारों और वस्तुओं के स्थान पर नयी वस्तुओं को लाता रहता है। पुराने विचारों एवं परम्पराओं से करना चाहता है। हर वस्तु या व्यक्ति को हानि–लाभ के सन्दर्भ में आंकता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीयता एक जीवन पद्धति है। जो नगरों में रहने वाले लोगों का जीवन जीने का एक तरीका है। नगरीयता के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह एक आधुनिक जीवन शैली से युक्त जीवन जीने का एक ऐसा तरीका है, जो प्राथमिक सम्बन्धों से विपरीत द्वितीयक सम्बन्धों पर आधारित होता है जिसमें एक सामाजिक–सांस्कृतिक आदर्शों एवं मूल्यों की एक समन्वित सामाजिक व्यवस्था समाहित होती है।

## 5.8 नगरीयता की विशेषताएँ

नगरीयता की विशेषता के सन्दर्भ में अनेकों समाजशास्त्रियों ने अलग–अलग तरीके से अपने विचारों को स्पष्ट किया है। प्रमुख समाजशास्त्रियों द्वारा दिये गये नगरीयता की विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1 लुईस बर्थ ने नगरीयता की चार विशेषताएँ बतलायी हैं।[18] स्थायित्व–एक नगर निवासी अपने परिचितों को भूलता रहता है और नये व्यक्तियों से सम्बन्ध बनाता रहता है। उसके अपने पड़ोसियों से एक क्लब आदि जैसे समूहों के सदस्यों से अधिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध नहीं होते। इसलिए उनके चले जाने से उसे कोई चिन्ता नहीं होती।

1. सतहीपन– एक नागरिक कुछ ही व्यक्तियों से बातचीत करता है और उनसे भी उसके सम्बनधर अवैयक्तिक और अनौपचारिक होते हैं। व्यक्ति एक दूसरे से अत्यंत अलग–अलग भूमिकाओं से मिलते हैं। वे अपनी जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक व्यक्तियों पर निर्भर होते हैं।
2. गुमनामिता– नगरवासियों के एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होते। वैयक्तिक पारस्परिक परिचतता जो आस–पड़ोस के व्यक्तियों में निहित होती है। नगर में नहीं होती।
3. व्यक्तिवाद– व्यक्ति अपने निहित स्वार्थों को अधिक महत्व देते हैं।

रूथ ग्लास ने नगरीयता की निम्नलिखित विशेषताएँ बतलाई हैं।[19]

1. गतिशीलता

2. गुमनामीपन
3. व्यक्तिवाद
4. अवैयक्तिक सम्बन्ध
5. सामाजिक विभेदीकरण
6. अस्थायित्व और यांत्रिक एकता

एन्डर्सन ने नगरीयता की तीन विशेषताओं को सूचीबद्ध किया है[20]–

1- समंजननीयता
2- गतिशीलता
3- प्रसार।

4– मार्शल क्लिनर्ड ने निम्नांकित विशेषतायें को स्पष्ट किया है[21]– द्रुतगामी सामाजिक परिवर्तन

1. प्रतिमानों और मूल्यों के बीच संघर्ष
2. जनसंख्या की बढ़ती हुई गतिशीलता
3. भौतिक वस्तुओं पर बल
4. अभिन्न अंतर–वैयक्तिक सम्प्रेषण में अवनति

5– डेविस ने नगरीय सामाजिक व्यवस्था की आठ विशेषताओं का उल्लेख किया है।[22] सामाजिक विषमता–नगरीय क्षेत्रों में विभिन्न धर्मों, भाषाओं, जातियों और वर्गों के व्यक्ति रहते हैं और वहां पर व्यवसाय में भी विशेषता होती है।

1. दैतीयक संबंध
2. सामाजिक गतिशीलता
3. व्यक्तिवाद
4. स्थान सम्बन्धी पृथक्करण
5. समाजिक सहनशीलता
6. द्वैतीयक नियंत्रण
7. स्वयंसेवी संस्थाएँ

लुईस बर्थ ने नगरीयता की चार विशेषतायें बतलाई हैं।[23] जनसंख्या की विषमता

1. कार्य की विशेषता
2. गुमनामीपन तथा अवैयक्तिकता
3. जीवन और व्यवहार का मानकीकरण

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि अनेक विद्वानों ने नगरीयता की अलग–अलग विशेषताओं का उल्लेख किया है। किन्तु विशिष्ट जीवन पद्धति, विविधता, उपयोगितावाद, वर्ग–विभेद, गतिशीलता, व्यक्तिवाद एवं अस्थायित्वता के आधार पर नगरीयता की विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. नगरीयता वास्तव में औद्योगीकरण की देन है। जिसमें परम्परागत धार्मिक नियमों, संस्कृति, मूल्यों एवं आदर्शों का कोई विशेष स्थान नहीं होता है।

2. घनिष्ठता का अभाव होने के कारण नगरीयता में प्राथमिक सम्बन्धों की अपेक्षा द्वैतीयक सम्बनधों को अधिक महत्व दिया जाता है।
3. नगरीयता सदैव व्यक्तिवादी होती है नगरीय जीवन में सदैव व्यक्ति स्वार्थ सम्बन्धों के आधार पर एक दूसरे से जुड़े रहते हैं अर्थात् व्यक्तियों के सम्बन्ध 'हम' के स्थान पर 'मैं' की भावना से जुड़े रहते हैं। व्यक्ति केवल उन्हीं व्यक्तियों से सम्बन्ध रखते हैं जो उनके स्वार्थों को पूरा करने में सक्षम होते हैं।
4. नगरीय जीवनशैली अपनाने के पश्चात् व्यक्ति के व्यक्तित्व में धीरे–धीरे अनेकों परिवर्तन आने लगते हैं अर्थात् नगरीयता एक तरह से सामाजिक एवं वैचारिक गतिशीलता को बढ़ावा देता है। क्योंकि व्यक्ति के विभिन्न लोगों के सम्पर्क एवं वैचारिक स्वतंत्रता बढ़ने के कारण उसके विचारों में तो परिवर्तन आता ही है। साथ ही व्यक्ति दिन प्रतिदिन आने वाली नई–नई परिस्थितियों में भी आसानी पूर्वक सामंजस्य स्थापित कर लेता है।
5. नगरीयता में भौतिक संस्कृति का अपना एक विशेष महत्व होता है। आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण के कारण नगरों में निवास करने वाले व्यक्ति सामान्यतः भौतिक संस्कृति को मानने वाले होते हैं। जिससे अभौतिक संस्कृति का धीरे–धीरे ह्रास होने लगता है।
6. नगरीयता एक तरह से विशेषीकरण के विकास को प्रोत्साहित करता है। कार्यों का क्षेत्र विस्तृत होने के कारण व्यक्ति अपनी रूचि के क्षेत्रों में कार्य करने लगता है। जिससे कार्यों में धीरे–धीरे विशेषज्ञता आने लगती है। प्रत्येक कार्य विशेषज्ञ नगरीय समाज को अपनी कार्यकुशलता एवं योग्यता के आधार पर अपना योगदान देता है और इस प्रकार व्यक्तियों के मध्य श्रम विभाजन भी होता है।
7. नगरीय जीवन में अत्यधिक जनसंख्या घनत्व होने के कारण व्यक्ति की वैयक्तिक पहचान धीरे–धीरे खतम होने लगती है। अनौपचारिक सम्बन्धों के कारण व्यक्ति केवल स्वार्थ सम्बन्धों को ही स्थापित करता है। जिससे सामूहिक मनोवेग एवं विशेषज्ञ सम्बन्धों की भावना समाप्त होने लगती है।

## 5.9 नगरीयता एवं नगरीकरण में अंतर

नगरीयता एवं नगरीकरण के सम्बन्ध में यदि बात की जाए तो प्रायः नगरीयता एवं नगरीकरण को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है। जबकि इनमें परस्पर काफी अन्तर पाया जाता है। चूंकि ये दोनों ही प्रक्रियायें नगरों से सम्बन्धित होती हैं। अतः इन्हें समान माना जाता है।

वास्तव में नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो नगरीय प्रभावों का प्रसार करती है। वास्तव में नगरीकरण सामाजिक गतिशीलता का परिणाम होती है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों से व्यक्ति प्रवर्जन या प्रवास के द्वारा नगरीय केन्द्रों में निवास करने लगता है। नगरीय केन्द्रों तथा नगर में रहकर व्यक्ति जिस जीवन पद्धति को अपनाता है वह पद्धति नगरीयता कहलाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि नगरीयता व्यक्ति के जीवन जीने का एक ढंग है जो विशेष नगरीयय सामाजिक व्यवस्था को जन्म देता है। जबकि नगरीकरण नगरीय विशेषताओं को स्थापित करने में अपना विशेष योगदान देता है। अतः कहा जा सकता है कि नगरीकरण के कारण नगरों को निर्माण एवं विकास होता है। जबकि नगरीयता नगरों में निवास करने वाले व्यक्ति के जीवन जीने के तरीके तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करता है। नगरीकरण एवं नगरीयता के अंतर को स्पष्ट करने के लिए अनेक समाजशास्त्रियों ने अपने–अपने विचार प्रस्तुत किये हैं जो निम्नांकित हैं–

1. शशि के जैन के अनुसार– नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो नगरीय प्रभावों का प्रसार करता है। जबकि नगरों में व्यक्ति जिस तरह रहता है या जीवन व्यतीत करता है। उसे नगरीयता कहते हैं। जीवन की यह विधि नगरी या कस्बों तक ही सीमित है।
2. नेल्स एण्डरसन के कथनानुसार–नगरीकरण प्रायः बड़े नगरों में केन्द्रित है और उद्योग की ओर उन्मुख है इसे प्रायः पाश्चात्य कहा जाता है और एक जीवन के ढंग के रूप में नगरीयता कहा जाता है।
3. बर्गेल के अनुसार–''नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में और नगरीयता एक देश या परिस्थितियों के पुंज के रूप में समझे जायेंगे।
4. एम0 एस0 ए0 राव– नगरीकरण जहां एक प्रक्रिया है। वहीं पर नगरीयता जीवन ढंग को व्यक्त करती है।
5. थॉम्पसन एवं लुईस– ''नगरीकरण उस प्रक्रिया को कहते हैं। जिसके अन्तर्गत किसी देश की जनसंख्या बढ़ती दर से शहरों में आकर बसने लगती है। नगरीयता एक ऐसी जीवन–यापन करने की विधि है जो नगरों में अपनायी जाती है।
6. क्वीन एवं कारपेंटर–नगरीयता का प्रयोग हम नगर निवास की घटना को पहचानने के लिए करते हैं नगरीयकरण का प्रयोग एक विशिष्ट जीवन शैली जो अद्भुत रूप से नगर निवास से जुड़ी है। को पहचानने के लिए करते हैं।

अतः उपरोक्त समाजशास्त्रियों की परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीकरण और नगरीयता दो अलग–अलग अवधारणाएं हैं। जिन्हें प्रायः एक समझने की भूल की जाती है। जिसमें नगरीकरण के अर्न्तत ग्रामों का नगरों के रूप में बदलना तथा नगरीयता का तात्पर्य ऐसी जीवन पद्धति से है जो अनौपचारिक सम्बन्धों पर आधारित, अस्थायितव एवं परिवर्तनशील जैसी विशेषताओं से युक्त होती है।

## 5.10 नगरवाद का अर्थ एवं परिभाषा

जैसा कि हम सब जानते हैं कि नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें कोई भी स्थान नगरीय विशेषताओं को धारण करता है। जबकि नगरवाद नगरीय जीवन ढंग को व्यक्त करने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जो नगरीय जीवन के निर्धारण के ढंग को व्यक्त करता है। वास्तव में नगरवाद व्यक्ति की एक ऐसी जीवन शैली की पद्धति बन गयी है, जो नगरीय जीवन में अनेक जटिल समस्याओं को भी उत्पन्न कर देता है। नगरवाद के सम्बन्ध में दी गई प्रमुख परिभाषायें निम्नांकित हैं–

1. विरेन्द्र सिंह के अनुसार–''नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है। जिससे कोई स्थान नगरीय विशेषताओं को धारण करता है। जबकि नगरवाद जीवन–ढंग को व्यक्त करता है। नगरीय जीवन–ढंग का निर्धारण वे व्यवहार के ढंग, संगठन के प्रकार, मूल्य तथा व्यवहार प्रतिमान तय करते हैं जो पूर्व निश्चित हैं।
2. वीन और कारपेंटर के अनुसार–'' नगरवाद का प्रयोग हम नगर निवास की घटना को पहचानने के लिए करते हैं। नगरीकरण का प्रयोग एक विशिष्ट जीवन शैली, जो अद्भुत रूप से नगर निवास से जुड़ी है, को पहचानने के लिए करते हैं।
3. बर्जल ने नगरवाद को स्पष्ट करते हुए कहा है कि नगरीकरण एक प्रक्रिया के रूप में और नगरवाद एक देश या परिस्थितियों के पुंज के रूप में समझे जायेंगे।
4. प्रो0 राव– ''नगरीकरण जहाँ एक प्रक्रिया है। वहीं पर जीवन ढंग को व्यक्त करता है। ग्रामीण लोग समीपवर्ती कस्बे अथवा नगर से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखते हैं। वह नगरीकरण के

अध्ययन का एक आधार हो सकता है। इसे अन्य शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है। प्रथम वह प्रत्यक्ष तरीका जिससे कि ग्रामीणवासी नगर के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में भाग लेते हैं। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि ग्रामीणवासी नगरों में जाकर ही रहें। वे गांव में रहते हुए भी नगरीय संस्कृति से प्रभावित हो सकते हैं। दूसरा–अंतर वैयक्तिक सम्बन्ध जो ग्रामीण लोग नगरीय लोगों के साथ रखते हैं। यद्यपि नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन का एक कारक है फिर भी वह स्वतः परिवर्तित होता रहता है। भारत में नगरों में रहने वाले लोगों में भी ग्रामीण जीवन ढंग दृष्टिगत होता है। यह भारतीय नगरीकरण की अपनी विशेषता है। इस प्रकार के नगरीकरण को जिसे परम्परागत नगरीकरण कहते हैं।

5. एम0 एम0 ए0 राव– जब ब्रिटिश शासन काल में नगरीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तो उसने परम्परागत नगरवाद को प्रभावित किया।
6. रेडफील्ड और सिंगर के अनुसार–''आर्थिक विकास का नगरीय वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिससे किसी राष्ट्र की वास्तविक रूप में दीर्घकालीन वृद्धि होती है। वास्तव में आर्थिक विकास की प्रक्रिया से न केवल मौद्रिक आय में ही वृद्धि होती है। बल्कि सामाजिक आदतों, शिक्षा, जनस्वास्थ्य, आराम तथा समाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण में सुधार होता है जो एक सुखी जीवन के लिए आवश्यक है। आर्थिक विकास से सामाजिक दशाएँ सुधरती हैं। जिसे सामाजिक प्रगति की ओर एक कदम कहा जा सकता है।
7. क्रीन तथा कारपेंटर ने अपने ग्रथ 'दी अमेरिकन सिटी' में लिखा है कि 'नगर निवास की स्थिति से तादात्म्य स्थापित करने को नगरीयता और नगरीय निवास की विशिष्ट जीवन पद्धति से तादात्मीकरण को नगरीकरण कहते हैं।[24]
8. शशि के जैन– औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के परिणमास्वरूप लोगों में नगरीय जीवन–पद्धति के प्रति एक भावना, जागरूकता या चेतना विकसित होती है। जिसे हम नगरवाद के नाम से जानते हैं। यह चेतना एक विशिष्ट वातावरण से प्रभावित होने के कारण और एक विशेष जीवन–पद्धति के जीवन से अथवा उसका निरंतर अनुभव हो जाने के कारण धीरे–धीरे विकसित होती है जो लोगों की यह सोचने पर बाध्य करती है कि जीवन को एक विशेष–पद्धति से जिया जा रहा है। जिसकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। नगरीय विशेषताओं वाले जीवन में प्रति जागरूकता ही नगरवाद है। या नगरीय जीवन की विशेषताओं से युक्त जीवन व्यतीत करने के प्रति विकसित चेतना ही नगरवाद है।''[25]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरवाद नगरों में रहने वाले व्यक्ति की विशिष्ट जीवन शेली की विशेषताओं को व्यक्त करता है। सरल शब्दों में यदि कहा जाए तो नगरीयता जहां एक ओर एक जीवन–पद्धति (way of life) है। जिसमें व्यक्ति नगरीय जीवन को अपनाता है। जबकि व्यक्ति जीवन–यापन के लिए अन्य सदस्यों पर आश्रित रहता है तथा अनौपचारिक सम्बन्धों द्वारा–एक दूसरे से सम्बंधित रहते हैं वहीं दूसरी ओर नगरवाद नगरीयता की विशेषताओं वाले जीवन को स्पष्ट करने में सहायक होता है। आधुनिक युग में नगरीकरणप ने जहां एक ओर जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि की है वही अनेक बहुआयामी आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक समस्याओं को भी उत्पन्न किया है। जो नगरवाद के बढ़ते हुए प्रभाव से उत्पन्न होते हैं।

## 5.11 नगरवाद की विशेषताएँ

नेल्स एण्डरसन एवं के0 ईश्वरन ने नगरवाद की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया है[26]–

1. मुद्रा अर्थव्यवस्था– नगर के वातावरण में लोग अपरिचित तथा धन एवं सम्पत्ति से अधिक मतलब रखते हैं। सभी शारीरिक आवश्यकताओं एवं भौतिक सुविधाओं की पूर्ति मुद्रा से आसानी से सम्भव होती है। वस्तु विनिमय वाली अर्थव्यवस्था आज के विश्व में नहीं रही है। अतः अधिकांश लोग पैसे देकर और लेकर वस्तुएं खरीदते व बेचते हैं। इस प्रकार मुद्रा अर्थव्यवस्था ने भी नगरवाद के प्रसार में अपना योगदान प्रदान किया है।
2. लिखित प्रमाण या दस्तावेज– नगर में कोई भी कार्य या समझौता मौखिक न होकर लिखित होता है। जो कि स्टाम्प पेपर पर गवाहों की उपस्थिति में लिखित रूप में किया जाता है। ताकि कानून सहायक हो सके। पैसे का लेन–देन भी बैंक–चैक या बैंक ड्राफ्ट से किया जा सके तथा उसका रिकार्ड रखा जाता है। नगर के जटिल वातावरण में यह जरूरी भी है, क्योंकि नगर के इस अपरिचिततापूर्ण पर्यावरण में कोई किसी को नहीं जानता। कार्य या समझौते की शर्तों का पालन न करने पर व्यक्ति को नियंत्रण के अनौपचारिक साधनों द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता और इसीलिए नियंत्रण के औपचारिक साधन जैसे–पुलिस एवं न्यायालय आदि केवल लिखित प्रमाणों पर ही विश्वास करते हैं। अतः नगरवाद में मौखिक कार्य की कोई उपयोगिता नहीं होती।
3. आविष्कार एवं प्रविधियों की विविधता– नगरों की प्रौद्योगिकी अत्यंन्त उन्नत और विकसित होने के कारण विभिन्न क्षेत्रों में नित्य नए–नए आविष्कार होते है रहते हैं यह नई प्रौद्योगिकी एवं आविष्कार लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं सुविधाओं में वृद्धि ही नहीं कर रहे हैं। बल्कि मानवीय सम्बन्धों को निरंतर जटिल बना रहे हैं जिससे जीवन में नई–नई सामाजिक समस्याएँ विकसित होती चली जा रही हैं। जिनका समाधान करने के लिए कार्य करने की नई प्रणालियाँ एवं आविष्कार हो रहे हैं। यह ऐसा दुर्दम्य चक्र है, जिससे आधुनिक समाज में बचा भी नहीं जा सकता।
4. संगठित एवं सुदृढ़ प्रशासन– आवास व्यवस्था, भवन निर्माण, सफाई, जल, विद्युत, गन्दी गलियों की सफाई का प्रबन्ध सड़कों का निर्माण, यातायात की देखभाल, सार्वजनिक कल्याण एवं विकास कार्य, अदालतें, कचहरी, सार्वजनिक प्रशासन, शान्ति एवं सुरक्षा व्यवस्था, परिवार नियोजन, वाणिज्य एवं व्यापार नियंत्रण आदि विविध कार्य नगरीय जीवन में हेते हैं इनको सुवयवस्थिति एवं सुचारू रूप से चलाने तथा नगरीय जीवन की विशलता, जटिलता एवं अपरिचितता से निपटने के लिए एक स्वच्छ एवं सुदृढ़ प्रशासन आति आवश्यकक होता है, क्योंकि इसके बिना काम ठीक से नहीं चल सकता।
5. सांस्कृतिक आविष्कार– नगरीय समाज में भैतिक परिवर्तन अत्यधिक तीव्र गति से होने के कारण सांस्कृतिक परिवर्तन भी तीव्रता से होता है। नए–नए सांस्कृतिक तत्वों का आविष्कार होता रहता है। जिससे नगरीय संस्कृति का विकास होता चला जाता है। सांस्कृतिक परिवर्तन भौतिक परिवर्तन के समकक्ष तीव्र नहीं होते। जिससे सांस्कृतिक विलम्बन की प्रक्रिया उत्पन्न होती है, जो कई सामाजिक–साँस्कृतिक समस्याएँ उत्पन्न करती हैं। फिर भी भौतिक विकास नगरीय समा में नए सांस्कृतिक तत्वों का समावेश करता चलता है।

## 5.12 नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद में अंतर

1. नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो किसी स्थान की नगरीय विशेषताओं को धारण करता है जबकि नगरीयता एक जीवन पद्धति (way of life) है। जिसमें व्यक्ति नगरीय जीवन को अपनाता है, जबकि नगरवाद नगरीयता अर्थात् व्यक्ति किन आदतों को अपने व्यवहार में शामिल करता है तथा नगरीयता की विशेषताओं को अपनाता है उसे रेखांकित करता है।

2. नगरीकरण ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों ओर जनसंख्या की गतिशीलता को स्पष्ट करता है। जबकि नगरीयता नगर में रहने वाले लोगों की जीवन–पद्धति को प्रदर्शित करता है तथा नगरवाद नगरीयता एवं नगरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों को स्पष्ट करता है।
3. नगरीकरण द्वारा नगरों के निर्माण में सहायता मिलती है, जबकि नगरीयता व्यक्ति के व्यवहारों का निर्धारण करता है तथा नगरवाद व्यवहारों की विशेषताओं को स्पष्ट करता है।
4. नगरीकरण जहां एक ओर विकास एवं प्रगति को स्पष्ट करता है। वहीं नगरीयता व्यक्ति के जीवन शैली में परिवर्तन को स्पष्ट करता है तथा नगरवाद उन परिवर्तनों में व्यक्ति के सामन्जस्य स्थापित करने की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है।
5. नगरीकरण प्रवर्जन का परिणाम है, जबकि नगरीयता एवं नगरवाद के माध्यम से व्यक्ति नगरीय व्यवहारों एवं जीवनशैली को अपनाता है जो सदैव परिवर्तनशील रहते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीकरण नगरीयता एवं नगरवाद ये अलग–अलग अवधारणायें हैं। प्रमुख समाजशास्त्रीय श्रीवास्तव ने नगरीयता एवं नगरवाद के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि नगरीयता नगरवासियों की वह स्थिति है जो कि ग्रामवासियों की स्थिति से निभिन्न है। नगरीयता का सन्दर्भ नगर में हरने वाले लोगों की कार्य स्थिति भोजन की आदतों, तनाव के प्रतिमान और जीवन दृष्टिकोण के प्रतिमानों से है। नगरवाद मनोवृत्तियों की एक व्यवस्था है। यह अन्त व्यक्ति के सम्बन्धों के अंतर्गत औपचारिकतावाद, व्यक्तिवाद और गुमनामी के रूप में परिलक्षित होता है। इसी प्रकार श्रीवास्तव जी ने नगरीय लोगों के जीने के ढंग को नगरीयता एवं उनकी मनोवृत्ति को नगरवाद के रूप में रेखांकित किया है। किन्तु जीवन के ढंग और मनोवृत्ति दो सापेक्ष शब्द हैं मनुष्य की मनोवृत्ति जिस प्रकार की होती है, वह उसी प्रकार का जीवन व्यतीत करता भी है।''[27] नगरीकरणी की प्रक्रिया को अनेक बार नगरवाद से जोड़कर देखा जाता है। जबकि ये दोनों भिन्न है। पॉल मीडोज एवं मिसरूची ने लिखा है कि–''नगरीकरण से उस प्रक्रिया का बोध होता है जिसमें (अ) नगरीय मूल्यों का विस्तारण होता है। (ब) गांवों से नगरों की ओर लोग आते हैं। (स) व्यवहारों के प्रमिान परिवर्तित होते हैं और जिनका तादात्मीकरण नगर में रहने वाले समूहों से तालमेल रखता है।''[28] वस्तुतः नगरीकरण वह प्रक्रिया है जो नगरीयता को समृद्ध कर उसे ठगों को उन तक पहुंचाता है जो अवगत नहीं रहते। नगरीय सांस्कृतिक प्रतिमानों को सुदूर तक पहुंचाती है। लोगों के साथ–साथ रहने की असहिष्णुता का प्रादुर्भाव करती है अनुकूलन की दशाएं सृजित करती है। विभिन्न आस्थाओं, संस्थाओं, भाषाओं, प्रजातियों, क्षेत्रों के लागों को विजातीयता भरे समुदायों के साथ रखने की प्रेरणा देती है। नवीनता को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ाती है। विभिन्न आर्थिक समूहों में लोगों की गतिशलीता उत्पन्न करती है। वर्गीय संरचना को प्रोत्साहन देती है। लोगों में आधुनिकता का भाव भरती है। और सतत् क्रियाशील रह औद्योगीकरण की सहगामी होती है तथा अधि–संरचना का विस्तार करती है।''[29]

## 5.13 नगरवाद से उत्पन्न समस्याएँ

नगरीकरण के परिणामस्वरूप नगरवाद व्यक्ति की एक जीवनशैली बन गयी है। नगरों एवं नगरवाद के आकर्षण ने जहां ओर गनरों में जनसंख्या के घनत्व में तीव्र गति से बढ़ोत्तरी की है। वहीं दूसरी ओर अनेकों समस्याओं को भी उत्पन्न किया है। जिन्हें निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. **आवास समस्या–** औद्योगिक नगरों में आजीविका की खोज में बड़ी संस्था में व्यक्ति आता है। रोजगार के सुअवसर होने के कारण व्यक्ति को रोजगार तो आसानी से प्राप्त हो जाता है, किन्तु रहने के लिए स्थान आसानी से प्राप्त नहीं हो पाता। श्रमिक वर्ग एवं कम आय प्राप्त व्यक्ति भूमि क्रय करने मकान भी नहीं बना सकता। अतः नगरों में आवास समस्या एक विकराल समस्या के रूप में सामने आ रही है। आवासीय सुविधा प्राप्त न होने की स्थिति में व्यक्ति अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों से ग्रस्त होने लगता है।
2. **मलिन बस्तियाँ–** आवासीय सुविधाएं प्राप्त न होने की स्थिति में व्यक्ति झोपड़ी, कोठरी एवं बांस के छप्परों में कुटिया बना कर निवास करता है। मलिन बस्ती का अर्थ जर्जर आवास व्यवस्था एवं गन्दगी युक्त पर्यावरण और वातावरण से होता है। मलिन बस्तियों गम्भीर बीमारियों का केन्द्र बन गया है। यहां शुद्ध ाजल, वायु एवं वातावरण का अभाव पाया जाता है। जिससे क्षय रोग, डायरिया एवं पेचिस एक आम रोग बन गया है। मलिन बस्तियाँ एक तरह से अपराध का केन्द्र बनते जा रहे हैं। कई सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि यह स्थान चरस, गांजा और कच्ची शराब बेचने का केन्द्र बनते जा रहे हैं। स्थान एवं कमरों की कमी होने के कारण तथा सदस्यों की संख्या ज्यादा होने के कारण यहां गोपनीयता का अभाव पाया जात है जिससे बच्चो ंका नैतिक पतन हो रहा है तथा बाल अपराधियों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हो रही है।
3. **वैयक्तिक एवं परिवारिक विघटन–** नगरवाद के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व और परिवार का विघटन होने लगता है अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पति और पत्नी दोनों कार्यरत् होते हैं। जिससे वह अपने बच्चों और परिवार को उचित समय व देखभाल नहीं कर पाते। आर्थिक सुदृढ़ता के लिए उचित और अनुचित सभी प्रकार के कार्यों को करते हैं जिसके परिणामस्वरूप धीरे–धीरे वैयक्ति एवं पारिवारिक विघटन होने लगता है।
4. **सामाजिक विघटन–** जैसा कि हम सब जानते हैं कि नगरीय जीवन में द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता होती है। जिसके फलस्वरूप सामाजिक आदर्श, मूल्य, नैतिकता एवं सहिष्णुता का पूर्ण अभाव पाया जाता है। प्राथमिक सम्बन्धों या घनिष्ठता के अभाव में धीरे–धीरे सामाजिक विघटन होने लगता है।
5. **नगरीय तनाव–** अति आधुनिक भौतिकवादी सम्यता और संस्कृति के कारण नगर आज तनाव का केन्द्र बन रहे हैं। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद ने व्यक्ति के व्यवहारों एवं व्यक्तित्व में अनेकों परिवर्तन ला दिया है। जिससे व्यक्ति स्वार्थी, महत्वाकांक्षी अवसरवादी एवं भ्रष्ट बनता जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप अनेकों प्रकार की प्रतिस्पर्धा और संघर्ष का जन्म होता है। जो विभिन्न प्रकार नगरीय तनाव का कारण बनता है।
6. **पर्यावरण प्रदूषण–** उद्योगों एवं कारखानों से निकलने वाले प्रदूषित जल, दुर्गंध गन्दे नाले तथा कूड़ाघर आदि व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। जिसका प्रमुख कारण औद्योगिक अपशिष्टों का सही तरीके से निस्तारण न करना, नगर में साफ–सफाई की व्यवस्था का अभाव तथा जनसंख्या के घनत्व में तीव्र वृद्धि नगरीय पर्यावरण को प्रदूषित करता है। जो एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में सामने आ रहा है।
7. **मानसिक संतुलन–** नगरीय जीवन में मानसिक असन्तुलन एक प्रमुख समस्या के रूप में सामने आ रहा है। यद्यपि मानसिक असंतुलन की अवधारणा प्रायः व्यक्ति की अपने व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी एक घपटना है। किनतु नगरीय जीवन पद्धति तथा नगरीय व्यवहार के अपनाने` प्शत् व्यक्ति में मानसिक असन्तुलन की भावना का तीव्रता से विकास हो रहाहै। ग्रामीण समाज सरल समाज माने जाते हैं जिसमें व्यक्ति अपनी अनिवार्य एवं मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति से ही संतुष्ट रहता था। किन्तु नगरीय जीवन से उनकी अपेक्षायें तथा आकांक्षाओं में तीव्रता से

वृद्धि हुई है। आर्थिक सुदृढता, भौतिक संस्कृति के साधनों, दिखावटी जीवन तथा विलासिता पूर्ण जीवन जीने की लालसा ने व्यक्ति की अपेक्षाओं के स्तर की बहुत अधिक बढ़ा दिया है। उसके प्राप्त न होने की स्थिति में व्यक्ति में मानसिक तनाव बढ़ने लगता है तथा मानसिक असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

8. **नैतिक पतन–** समाज को व्यवस्थित एवं संगठित बनाये रखने के लिए नैतिक नियमों का अपना एक विशेष महत्व होता है। नैतिक नियम वे आचरण होते हैं जिन्हें समाज व्यक्ति के लिए उचित एवं पवित्र मानता है तथा व्यक्ति इन नियमों को अपनाकर समाज को व्यवस्थित रखने में अ में अपना सहयोग देता है। एक प्रकार से ये नैतिक नियम व्यक्ति को नियन्त्रित करने में प्रमुख भूमिका का निर्वहन करती है। जैसा कि हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि नगरीय जीवन में व्यक्ति की अपेक्षाओं एवं आकांक्षाओं का स्तर कताफी उच्च हो जाता है जब वह अपने स्वार्थों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नैतिकता को त्यागकर अनैतिक एवं भ्रष्ट तरीकों से धनोपार्जन करने लगता है। जिसके परिणामस्वरूप नगरीय जीवन में नैतिक पतन की समस्या विकराल रूप धारण कर रही है।

## 5.14 सारांश

उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीकरण, नगरीयता एवं नगरवाद का सीधा सम्बन्ध नगर से है। नगरीकरण की प्रक्रिया भारत में पिछले कुछ दशकों से तीव्र गति से बढ़ी है। ऐसा माना जाता है कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया औद्योगीकरण के कारण विकसित हुई, क्योंकि औद्योगीकरण के कारण जब किसी स्थान पर उद्योगों को स्थापित किया जाता है, तो उन उद्योगों में कार्य करने के लिए उस क्षेत्र के आस–पास वे लोग आकर वहां बस जाते हैं। इस प्रकार जब जनसंख्या का घनत्व बढ़ने लगता है तो वह नगर का रूप धारण कर लेता है। नगरों में व्यक्ति नगरीय विशेषताओं वाली जीवनशैली को अपनाता है या उस जीवन शैली में अपना जीवन व्यतीत करता है तो उसे नगरीयता कहा जाता है। नगरीयता की विशेषताओं को जब व्यक्ति अपने व्यवहार में शामिल करता है तो उसे नगरवाद कहते हैं।

नगरीकरण का समाज पर विशेष प्रभाव पड़ता है। रोजगार की लालसा, अच्छे जीवन स्तर, उच्च जीवन शैली तथा आर्थिक सुदृढ़ता के लिए व्यक्ति नगरों की तरह पलायन करते हैं तथा नगरीय व्यवहार और जीवन–पद्धति को अपनाता जिससे उसके सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में अनेकों परिवर्तन आते हैं। जिसके फलस्वरूप उसकी संस्कृति, मूल्य, धर्म, पारम्परिक संस्कृति तथा परिवारिक रीति–रिवाजों में परितर्वन आने लगते हैं यह परिवर्तन अनेकों समस्याओं को भी जन्म देता है। जिससे व्यक्तिगत रूप से व्यक्तित में ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता तथा घृणा सम्बन्धी व्यवहारों का जन्म होता है। साथ ही सामाजिक रूप से भी अनेकों समस्याओं जैसे मलिन बस्तियाँ, बेकारी, स्वास्थ्य सम्बन्धी परेशानी एवं बीमारियाँ, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, अपराध एवं बाल अपराध तथा मानसिक तनाव एवं असन्तुलन का भी जन्म होता है।

## 5.15 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बोध प्रश्न–

सत्य/असत्य

1.नगरीकरण ग्रामीण जीवन में परिवर्तन की प्रक्रिया को कहा जाता है– सत्य/असत्य

2.किंग्सले डेविस ने नगरीकरण का निर्धारण जनसंख्या के आधार पर किया है। – सत्य/असत्य

3.नगरवाद जीवन के ढंग को व्यक्त करता है। सत्य/असत्य
4.नगरीयता एक जीवन पद्धति नही है। सत्य/असत्य
5.नगरीकरण प्रवजन का परिणाम है। सत्य/असत्य
2.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजीए।
1.नगरीकरण, नगरीयता एंव नगरवाद का सीधा सम्बन्ध.....से है।
2.नगरीयता नगर निवास की ..... है।
3.नगरवाद से ..... समस्या उत्पन्न होती है।
4.नगर..... तथा व्यवसाय के केन्द्र बन चुके है।
5..... के कारण ग्रामीण नगरों में निवास करने लगते है।
बोध प्रश्नों के उत्तर
1 सत्य/असत्य
1 असत्य 2 सत्य 3 सत्य 4 असत्य 5 सत्य
2.रिक्त स्थानों की पूर्ती
1 नगर 2 प्रघटना 3 आवास 4 उत्पादन 5 पलायन

## 5.16 संदर्भ ग्रन्थ


1. शशि के जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 228
2. Louis wirth, urbanism as a way of life. 1938
3. शशि के0जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर, 2001, पृ0सं0238
4. शशि के0जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर, 2001, पृ0सं0238
5. वीरेन्द्र सिंह, विकास का समाजशास्त्र, 2001, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी–223
6. वीरेन्द्र सिंह, विकास का समाजशास्त्र, 2001, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी–223
7. शशि के जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0सं0 230
8. शशि के जैन, नगरीकरण समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 240
9- Beteille, andre, castes:old and new, essays in social stratification, asia publishing house delhi 1969
10- kalenda, Pauline, caste in contemporary India, Raurat Publication, Jaipur, 1984
11. शशि के जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 232
12. शशि के जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 232
13. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर, पृ0सं0 233
14. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर, पृ0सं0 234
15. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर, पृ0सं0 236–237
16. इंद्रा शुक्ला, ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र 2014, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, पृ0सं0 299
17- Theodorson C.A.and Theodorson a.q, A modern dictionary of sociology, Thomas y crowell co. new York 1969, page no 450
18. Wirth Louis, Urbanization as a way of life, American Journal of sociology, vol. 44. 1938, Page no 49

19. वीरेन्द्र सिंह, विकास का समाजशास्त्र, 2001, मिश्रा टेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी,पृ0सं0 213
20. Anderson and iswarn, Urban sociology new York publishing house, 1953
21. वीरेन्द्र सिंह, विकास का समाजशास्त्र,2001,मिश्रा टेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, पेज 213
22- Divies, k, Human society, The macmillan co. Newyork, 1959,
23. Writh Louis, Urbanzitation as a way of life, American journal of sociology, vol. 44,, 1938
24. S.A.Quinn, and D.B.carpenter, the American city, p 29
25. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, 2001, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर,पृ0सं0 21
26. Nels Anderson, The Urban Community, p 124
27. ए0आर0 श्रीवास्तव, भारतीय समाज, 2002, पृ0सं0 71
28- Paul Meadows and E.Mizruchi, Urbanism, Urbanization and change compararative, p-02
29. डॉ0 आर0 सी0 पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, पृ0सं0 2

## 5.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नगरीकरण की अवधारणा एंव परिभाषा को स्पष्ट करें।
2. भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया एंव इसके प्रभाव को स्पष्ट करें।
3. नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं को सविस्तार स्पष्ट करें।
4. नगरीयता किसे कहते है? इसकी विशेषतायें तथा नगरीयता एंव नगरीकरण में अन्तर स्पष्ट करें।
5. नगरवाद से आप क्या समझते है? नगरवाद, नगरीयता तथा नगरीकरण में अन्तर स्पष्ट करें।

इकाई– 6

उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश

**Sub-urban, Metropolitan, Corporation and Neighbourhood**

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय

6.2 वैश्वीकरण और नगर

6.3 उपनगर

6.4 महानगर

6.5 निगम

6.6 प्रतिवेश या आसपड़ोस

6.7 भारतीय सन्दर्भ में उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश

6.8 निष्कर्ष

6.9 अभ्यास प्रश्न

6.10 सहायक अध्ययन

## 6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बादः

- हम यह बेहतर ढंग से जान–समझ सकेंगे कि उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश का अर्थ क्या है?
- हम विश्लेषणात्मक तरीके से उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश के कार्यों व महत्व को समझ सकेंगे।

## 6.1 परिचय (Introduction)

नगरों और शहरी जीवन की अवधारणा का जन्म शिकागो स्कूल में हुआ, जिसे लुईस वर्थ (Louis Wirth) के निबंध "Urbanism as a way of life" में सर्वप्रथम स्पष्ट किया गया। लुईस ने शहर को सामाजिक रूप से बहुजातीय और भिन्न व्यक्तियों के बड़े, सघन और स्थायी व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया है (Large, dense and permanent settlement of socially heterogenous individuals). शहरीकरण का रुझान त्वरित रूप से विकसित होने का है, जो समुदायों और स्थान के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूपांतरण की वजह बनता है। आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2050 तक दुनिया की 70 प्रतिशत आबादी नगरों में रह रही होगी (Dutch government, 2014). इससे स्पष्ट है कि शहरी क्षेत्रों का भावी विकास अधिकतर विकासशील देशों में ही होने वाला है। शहरी के बीच स्थानिक और कार्यसंबंधी अंतर्संबंध, व्यवस्थाएं तथा उनके चारों ओर क्षेत्रों का विकास तथा नगरीय मानकों में बढ़ोतरी एकीकृत शहरी नियोजन के निर्माण और इसे लागू करने को प्रासंगिक बनाते हैं।

हाल के वर्षों में शहरी, ग्रामीण और प्रतिवेशी नगरों के बीच बढ़ते अंतर्सम्बन्धों ने वैज्ञानिक, प्रशासनिक, राजनीतिक अभिरुचियों में भी वृद्धि की है। महानगरीय क्षेत्रों का कार्यढांचा संबंधी दृष्टिकोण इस अवधारणा को अन्य स्थानिक नियोजन आयामों से विशिष्ट बनाता है।

## 6.2 वैश्वीकरण एवं नगर (Globalization and City)

हाल के वर्षों में नगरों में बड़े परिवर्तन हुये हैं और राष्ट्रीय राज्यों को गति मिली है। इन परिवर्तनों को वैश्वीकरण के हालिया चरण से जोड़कर देखा जा सकता है, जिसकी शुरुआत 70 के दशक के मध्य में हुयी (Sassen 1996; Porter 1998; Castells 2000). शहरों की मूल भूमिका को दो चरणों में सन्दर्भित करके देखा जा सकता है। 1. वे न सिर्फ आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों के केन्द्र के तौर पर सकारात्मक प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि इन परिवर्तनों के लिये आवश्यक उत्प्रेरक की तरह भी काम करते हैं। 2. वैश्वीकरण एवं सूचनाकरण का समन्वय पदानुक्रम में शहरों के महत्व को सर्वोच्च पायदान पर रखने का काम करता है, जिन्हें वैश्विक शहरों (World or Global Cities) के नाम से जाना जाता है। (Hall & Pain ,2006). World City शब्द की परिभाषा सर्वप्रथम Hall (1966) ने दी थी। उन्होंने शहरों की बहुआयामी भूमिकाओं को स्पष्ट किया और उन्हें निम्न कारकों के केन्द्र के रूप में परिभाषित किया:

- राजनीतिक शक्ति (राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय दोनों) तथा सरकार से संबंधित संगठन
- राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, जहां शहर स्वयं के लिये और कई बार आसपास के शहरों, देशों के लिये बतौर गोदाम (Enterpots) की तरह काम करते हैं
- बैंकिंग, बीमा और अन्य संबंधित वित्तीय सेवाएं
- हर तरह की उन्नत व्यावसायिक गतिविधियां
- सूचनाओं का संग्रहीकरण एवं प्रसार
- विशिष्ट उपयोग–उपभोग
- कला, संस्कृति और मनोरंजन तथा इनसे जुड़ी सभी अधीनस्थ गतिविधियां

**बाद में फ्रीडमैन (Friedmann, 1986) ने निम्न सात बिन्दुओं के आधार पर वैश्विक नगरों को स्पष्ट किया:**

- किसी नगर का वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण इसके स्वरूप और अवसरों की उपलब्धता पर आधारित होता है। नगरों में श्रम के स्थानिक विभाजन के नये स्वरूप का निर्धारण और इनका कार्य ही नगर के ढांचागत परिवर्तन में निर्णयात्मक होता है।
- विश्वभर में अधिकतम महत्व वाले नगर वैश्विक राजधानी के मॉडल के तौर पर देखे जाते हैं, जिन्हें स्थानिक संगठन और उत्पादन व विपणन–बाजार के समन्वय व संयोजन का आधार बिन्दु माना जाता है। इस तरह के अंतर्संबंधों का परिणाम वैश्विक नगरों को सघन स्थानिक पदानुक्रम में बदलता है।
- वैश्विक नगरों के कार्यों और तंत्र पर वैश्विक नियंत्रण का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से इनके ढांचागत विकास, रोजगार और उत्पादन क्षेत्र की गतिशीलता में नजर आता है।
- अंतर्राष्ट्रीय राजधानी के रूप में इन्हें महत्वपूर्ण स्थान के तौर पर देखा जाता है।
- ये नगर आंतरिक (राष्ट्रीय) और/अथवा बाह्य (अंतर्राष्ट्रीय) शरणार्थियों या पलायन करने वाले लोगों के लिये रहने, जीवनयापन करने के अवसर पाने का लक्ष्य बिन्दु होते हैं।

- वैश्विक नगरों के ढांचे में कुछ नकारात्मक बिन्दु भी शामिल होते हैं, मौजूदा दौर में औद्योगिक पूंजीवाद, स्थानिक और वर्गीय ध्रुवीकरण जैसे बिन्दु महत्वपूर्ण हैं।
- वैश्विक नगरों का विकास सामाजिक लागतों में बढ़ोतरी करता है, जो राजकोषीय क्षमता की दर से कई बार अधिक होता है

**लंबी बहस, वाद–विवाद और विमर्श के बाद फ्रीडमैन ने वैश्विक नगरों के तीन महत्वपूर्ण कार्यों को स्पष्ट किया (see also Derudder et al. 2012):**

- मुख्यालय (Headquarter Function)
- वित्तीय केन्द्र (Financial Centres)
- समायोजन वाले नगर, जहां राष्ट्रीय और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था वैश्विक अर्थव्यवस्था से समन्वित होती है (Articulator Cities)

1990 में, सासेन (Sassen, 1991) ने वैश्विक और सांसारिक नगरों (Global and World Cities) में अंतर स्पष्ट करने का प्रयास किया। यहां सांसारिक नगरों से तात्पर्य उन नगरों से है, जिनके विकास के फलस्वरूप ही वैश्विक नगर की अवधारणा उभरी। सासेन के अनुसार तीन महत्वपूर्ण कारक, नयी तकनीक, दूरसंचार और सूचना प्रौद्योगिकी ने दोनों तरह के नगरों को विकेन्द्रीकृत और सामूहिक आर्थिक गतिविधियों के संचालन को प्रेरित किया। स्थानिक लिहाज से इस समन्वय के प्रसार और वैश्विक एकीकरण ने महत्वपूर्ण नगरों को नयी रणनीतिक भूमिका प्रदान की। इसके चलते ये नगर एक नये तरह के नगर के स्वरूप में विकसित हुये, जो प्रारंभिक ऐतिहासिक बैंकिंग और व्यापारिक केन्द्रों से बिल्कुल अलग थे। सासेन के अनुसार वैश्विक नगर आभासी आर्थिक चक्र का निर्माण करते हैं और चार नये तरीकों से काम करते हैं:

- नियंत्रण की मांग शहरों को नियंत्रण बिन्दु (Command Points) के तौर पर विकसित करती है
- इसके चलते वित्तीय और व्यापारिक सेवाओं–सुविधाओं की मांग बढ़ती है और इसके चलते नगर विभिन्न अग्रगामी आर्थिक क्षेत्रों के लिये मूल स्थान (Key Locations) बन जाते हैं
- ये नगर इन आर्थिक क्षेत्रों के लिये उत्पादन और नये आविष्कारों के लिहाज से उपयुक्त स्थान बनते हैं
- नगर मुख्य आर्थिक क्षेत्र के उत्पादन के लिये बाजार को नियंत्रित–नियमित करते हैं

## 6.3 उपनगर (Sub-urban)

उपनगरीय व्यवस्था को जटिल विषय माना जाता है। एक ओर इन्हें, 'महानगरों का ऐसा क्षेत्र, जहां शहर नहीं है' (Mckee and Mckee,2003) के तौर पर परिभाषित किया जाता है, वहीं दूसरी ओर इन्हें इससे कहीं अधिक माना जाता है। विभिन्न शोधकर्ताओं ने इन्हें जीवन के तरीकों, अमेरिकन स्वप्न, अद्वितीय और वैचारिक–मानसिक स्थिति के तौर पर परिभाषित किया है। उपनगरीय क्षेत्र हमारे इतिहास, संस्कृति में सन्निहित रहे हैं और टेलीविजन, फिल्मों व साहित्य में भी इनका आभासी प्रतिनिधित्व मिलता है, जिसे हमारे बाहरी जीवन का हर हिस्सा माना जा सकता है। इस तरह उपनगर न सिर्फ अतीत का विषय है, बल्कि वर्तमान का मॉडल भी है। यह एक ऐसा स्थान है, जिसका लगातार विघटन हो रहा है, फिर भी कहीं न कहीं इसका अस्तित्व बना रहता है।

भौगोलिक रूप से देखें तो उपनगर सम्मिश्रित उपयोग अथवा आवासों वाला क्षेत्र है जो या तो नगर और शहरी क्षेत्र का ही एक हिस्सा होता है अथवा शहर से अलग कुछ दूरी पर आवासीय समुदाय होता है (Hema Kumar and Rainis, 2015). अधिकतर देशों (जहां अंग्रेजी बोली जाती है) में उपनगरों को शहर के केन्द्रीय क्षेत्र या आंतरिक शहरी क्षेत्र के विपरीत माना जाता है, लेकिन आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका में इन्हें प्रतिवेश यानी पड़ोसी (Neighbourhood) कहा गया है। आस्ट्रेलिया, चीन, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन और अमेरिका के कुछ राज्यों में नये उपनगर किसी बड़े शहर से जुड़े हुये होते हैं। सऊदी अरब, कनाडा, फ्रांस और अमेरिका के अधिकतर राज्यों में उपनगर अलग निकाय माने जाते हैं और यहां स्थानीय शासन ही किसी देश की तरह नियंत्रण करता है।

ऐतिहासिक रूप से उपनगर सबसे पहले 19वीं और 20वीं सदी में बड़े पैमाने पर उभरे, जिसका कारण रेल और सड़क परिवहन सुविधा में सुधार रहा, जिसने परिर्वन को बढ़ावा दिया (Mathew,2011). उपनगरों में महानगरों के आंतरिक क्षेत्रों के मुकाबले जनसंख्या घनत्व और व्यापारिक–व्यावसायिक केन्द्र कम होते हैं। हालांकि, ऐसे भी कई अपवाद हैं, जो औद्योगिक उपनगर, नियोजित समुदाय और कृत्रिम शहर होते हैं। उपनगर सामान्यतः नगरों के चारों ओर उन क्षेत्रों में विस्तारित होते हैं, जहां समतल भूमि का अभाव होता है (www.Wikipedia.com).

आमतौर पर माना जाता है कि उपनगरों में रहने वाली आबादी का सामाजिक–आर्थिक स्तर नगरों में रहने वाली आबादी के मुकाबले ऊंचा होता है। 1960 में अमेरिका के 200 शहरीकृत क्षेत्रों की जनगणना से यह तथ्य उजागर हुआ कि यह बड़े और पुराने क्षेत्रों से जुड़े व उपेक्षित इलाके हैं, लेकिन आकार में छोटे ये नये शहर आय, शिक्षा और व्यवसाय के लिहाज से संयोजित क्षेत्र से अधिक आगे हैं। बार–बार किये गये विश्लेषणों ने स्पष्ट किया कि आयु का कारक (Age Factor) शहरों के उपनगरीय क्षेत्रों में अंतर जानने का सबसे उपयुक्त माध्यम है। परिणामों ने स्पष्ट किया कि अमेरिकी शहरो का विभिन्न सामाजिक वर्गों के आवासीय वितरण के आधार पर निश्चित और पूर्वानुमानित दिशा में विकास हुआ है, जैसाकि बर्गीज मॉडल में भी स्पष्ट किया गया है।

बीते तीन दशकों में विमर्श का मसला शहरी उपनगरीय परिधि (Urban Periphery) के उदाहरण से वैश्विक उपनगरवाद (Global Suburbanism) एवं उत्तर उपनगरीय परिस्थितिवाद (Post Suburbia) में बदल गया है। यह हेनरी लीफेवर (Henry Lefebvre) के त्रिपदीय सिद्धांत, कल्पना, अनुभव और आवासस्थल (Conceived, Perceived and Lived Space) को बल देता है, जिसके जरिये वास्तविक शहरी रूपांतरण का विश्लेषण आसान होता है। वह बताते हैं कि नये मानकों की स्थापना शासन के नये स्वरूप, व्यवस्थाओं, विभिन्न निकायों के बीच सीमापार समन्वय के सशक्तीकरण की स्थिति को लागू करने और इनके विश्लेषण के लिये मापदंड का काम करते हैं। यह नये शहरी ढांचे की स्थापना में मदद करता है जो अधिक सघन तथा शहरीवाद को और अधिक ढंग से आत्मसात किये हुये होता है। इसकी शुरुआत आर्थिक मुख्यालयों और मध्यम वर्ग के लिये आवास उपलब्ध कराने से होती है। धीरे–धीरे इनमें नये सार्वजनिक स्थल जुड़ते जाते हैं और इन सबसे मिलकर नया शहरी वातावरण व छवि जन्म लेते हैं। इस तरह के प्रयास आंशिक रूप से सफल भी हुये। इस सन्दर्भ में पुरानी शहरी परिधि को विशिष्ट नगर के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है। पारंपरिक परिभाषाओं और अवधारणाओं के जरिये शहरी स्वरूप को पूरी तरह समझ पाने में नाकाम रहे, इससे यह निष्कर्ष निकला कि नगरीय और उपनगरीय दुनिया का विभाजन शहरीकरण या नगरीकरण के विश्लेषण का उपयुक्त साधन नहीं रह गया है।

उपनगरों की स्थानिक उपस्थिति को किसी परजीवी (Parasite) की तरह भी देखा जाता है, जो मूल नगर की सामाजिक–आर्थिक गतिविधियों को अपनी ओर खींचने लगता है। उपनगरवाद की वैचारिक उपस्थिति ने बड़े पैमाने पर ऐसे अकादमिक साहित्य को भी आकार दिया है, जो उपनगरीय संक्रमण की निंदा करता है (Baxandall and Ewen,2000). आधुनिक शोधकर्ताओं ने इस अभियान को बढ़ावा दिया है हालांकि शहर के समुदायवादी पहलू को ध्यान में रखते हुये वे कई मामलों में उभयभावी (Ambivalent) भी नजर आते हैं। उपनगरीय क्षेत्रों में आवासीय सुविधा के विकास ने भी सामाजिक परिस्थितियों को स्थायित्व के बजाय गतिशील बने रहने पर जोर दिया। औद्योगिक उत्पादन, उपभोक्तावादी संस्कृति और उपनगरीय सामुदायिक विकास ने अमेरिका के लोगों को समुदाय के निर्माण के बजाय समुदाय के चयन को प्रेरित किया। सामुदायिक स्थायित्व को ऐसी चीज माना गया, जिसे देखा–अनुभव किया जा सकता है, चयन किया जा सकता है और इसमें शामिल हुआ जा सकता है। पूर्व व्यवस्थित और लिपटे (Packaged) हुये ये समुदाय अन्यों को बेहतर अवसर और संभावनाओं के लिहाज से लुभाते हैं। मौजूदा अमेरिका में उपनगरों का अपने आसपास के नगरों से वियोजित होना एक ऐसी घटना है, जिसे शोधकर्ताओं ने अमेरिका का उपनगरीकरण (Suburbanization of United States) कहा है।

कई शोधकर्ता इस वियोजन या अलगाव को नये तेज और उग्र शहरी स्वरूप के विकास के तौर पर देखते हैं। हालांकि, यह वियोजन स्पष्ट करता है कि संबंधित उपनगर हाल में महत्वपूर्ण रूपांतरणों (Trnsformation) के दौर से गुजरा है। कई विमर्शों में यह भी बताया गया है कि उपनगरों का विकास असल में युद्धोपरांत अमेरिका में उपजी विशिष्ट परिस्थितियों का परिणाम था। उदाहरण के लिये, 1950 में यह माना जाता था कि घरों को गिरवी रखने की संघीय शासन की नीति उपनगरीकरण की जिम्मेदार थी। 1960 में अंतर्राज्यीय राजमार्गों और जातीय तनावों को विकेन्द्रीकरण का जिम्मेदार माना गया। लेकिन, वे सभी कारक जिन्होंने उपनगरीकरण को प्रेरित किया, युद्धोपरांत के घटनाक्रम थे और यह समस्या सिर्फ अमेरिका तक सीमित थी। वास्तव में उपनगरीकरण की प्रक्रिया युद्धपूर्व भी मौजूद थी और युद्धोपरांत भी साथ ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसे देखा जा सकता था।

## 6.4 महानगर (Metropolitan)

महानगरीय क्षेत्र (Metropolitan Region) स्पष्ट परिभाषित अवधारणा नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय (OECD, World Bank, etc.), यूरोपीयन (Sellers et al. 2013; Salet et al. 2003; Herrschel & Newman 2002; etc.) और जर्मन सन्दर्भों (Zimmermann & Heinelt 2012; BBSR 2010; Knieling 2009; etc.) में महानगरीय क्षेत्र को उच्च शहरीकृत, नगरीय इलाके के तौर पर वर्णित किया गया है, जहां जनसंख्या घनत्व उच्च होता है और आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियां यहां केन्द्रित होती हैं। यही नहीं, महानगरीय क्षेत्र वैश्विक नगरों के नेटवर्क का स्वरूप भी रखते हैं। विशिष्ट शासन ढांचा यहां की पहचान है जो केन्द्रीय नगरों और इसके आसपास के क्षेत्रों के बीच समन्वय, आंतरिक अधिकार क्षेत्र संबंधी तंत्र को नियंत्रित करता है। महानगरीय क्षेत्रों पर फोकस के लिये जरूरी है कि विश्लेषणात्मक और मानकीय दृष्टिकोण में विशेषज्ञता के साथ विभेद को समझा जाये। यहां यह उल्लेखनीय है कि इनमें से पहला पहलू जहां महानगरीय क्षेत्रों की परिभाषा और कार्यशैली को स्पष्ट करता है, वहीं दूसरा वस्तु, पूंजी, सूचना, पलायन प्रवाह आदि बिन्दुओं के लिहाज से उन केन्द्रों की पहचान करता है जो महानगरीय क्षेत्र हो सकते हैं और जो वैश्विक नेटवर्क में बुनियादी बिन्दु की तरह काम कर सकते हैं। यह वैश्विक क्रियाकलापों और स्थानीय आर्थिक एवं

सामाजिक गतिविधियों के बीच समन्वय का काम करते हैं। महानगरीय क्षेत्रों को अन्य क्षेत्रों से अलग समझने के लिये स्थानिक नियोजन के निम्न चार पहलुओं को अहम माना जाता हैः

- नवोन्मेषण एवं प्रतिस्पर्धा (Innovation and Competition)
- निर्णय क्षमता एवं नियंत्रण (decision-making and Control)
- मुख्य प्रवेशद्वार (Gateway)
- प्रतीक (Symbol)

इन पहलुओं के आधार पर महानगरीय क्षेत्रों के गुण और मापदंड तय किये गये हैं, जो विभिन्न श्रेणियों में अंतर करने में भी उपयोगी हैं।

वहीं, मानकीय दृष्टिकोण उन बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करता है, जिनसे स्पष्ट हो कि स्थानिक विकास की चुनौतियों और मौजूद समस्याओं के समाधान के लिये महानगरीय क्षेत्र को किस तरह और क्या काम करना चाहिये। उदाहरण के लिये यूरोपियन देशों में महानगरों को स्थानिक विकास नीतियों के आधार पर परिभाषित किया गया है। इसका मकसद न सिर्फ उनमें स्वायत्त संगठन की स्थापना है, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा भाव को सशक्त करना और राष्ट्रीय विकास में उनके योगदान की भूमिका तय करते हुये देश को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बेहतर छवि प्रदान करने में मदद करना भी है। लेकिन, मानकीय दृष्टिकोण की एक बुनियादी दिक्कत यह है कि यह विषय के तौर पर सिर्फ महानगरीय क्षेत्र के दायरे तक ही सीमित रह जाता है। इससे अवधारणा के गैरजरूरी उपयोग की संभावना बढ़ती है, जिसमें नकारात्मक प्रभावों की अनदेखी की जाती है। फ्रीडमैन (1986) ने इस दृष्टिकोण के आधार पर वैश्विक नगरों के तीन मुख्य कार्य बताये हैं (see also Derudder et al. 2012):

- मुख्यालय (Headquarters)
- आर्थिक–वित्तीय केन्द्र (Financial Centres)
- संयोजन क्षमता जो राष्ट्रीय या क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था से जोड़े (Articulator cities that link national or regional economy to the global economy)

## महानगरीय प्रदेश (Metropolitan Region)

नगरीय शब्दावली और अवधारणाओं में अब तक महानगरीय प्रदेश को अंतर्राष्ट्रीय संवाद में पर्याप्त स्थान नहीं मिला है। इसके बजाय वृहद महानगरों और क्षेत्रों (Mega Cities and Mega Regions) के त्वरित विकास और इनसे जुड़ी समस्याओं के समाधान पर ध्यान अधिक केन्द्रित किया गया है। इसके परिणाम क्षेत्रीय, स्थानिक और राजनीतिक ढांचे में नजर आते हैं, जहां नगरीय और क्षेत्रीय अवस्थापना विकास के साथ आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय क्षेत्रों में कई चुनौतियां सामने आती हैं। महानगरीय प्रदेशों को सामान्यतः उन क्षेत्रों के तौर पर जाना जाता है, जो औपचारिक तौर पर स्थानीय शासन के अधिकार क्षेत्र में आने वाले नगरीय इलाके हों। सामान्यतः ये नगर सघन आबादी वाले होते हैं (कम से कम एक लाख आबादी)।

महानगरीय प्रदेश में आसपास के क्षेत्र भी शामिल हो जाते हैं, इनमें नजदीक के नगरीकृत आवासीय क्षेत्र और कम जनसंख्या घनत्व वाले वे क्षेत्र भी आते हैं, जो सड़कों, परिवहन आदि सुविधाओं से नगरों से जुड़ते हैं। महानगरीय प्रदेशों के उदाहरणों में ग्रेटर लंदन और मेट्रो मनीला शामिल हैं (UNICEF,

2012). यह परिभाषा पूर्ववर्ती नगर क्षेत्र वर्णन से मिलती–जुलती है (Neuman & Hull ,2011) जिसका फोकस मूल नगर और इसके आसपास के क्षेत्रों के कार्य संबंधों से है, जो एक से दस लाख तक की आबादी के नगर समूहों से संबद्ध हो। फिर भी महानगरीय प्रदेश (Metropolitan Region) शब्द का इस्तेमाल शायद ही कभी यूरोप से बाहर कहीं किया जाता है। इसके बजाय महानगरीय क्षेत्र (Metropolitan Areas) शब्द का अधिक इस्तेमाल किया जाता है (e.g. Demographia.com 2013) जो अर्जेंटीना, ब्राजील, कनाडा, अमेरिका जैसे देशों में पहले विकसित हुये हैं। यहां कनाडा का उदाहरण यह भी स्पष्ट करता है कि महानगरीय क्षेत्रों के संबंध में सोच–समझ में समय के साथ खासा अंतर–परिवर्तन भी आया है (see excursus). सामाजिक लिहाज से देखें तो महानगरीय क्षेत्रों के गुण–विशिष्टताओं को निम्न चार आयामों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता हैः

- विश्लेषणात्मक तरीके से देखें तो महानगरीय क्षेत्रों को महानगरीय सार्वजनिक एवं निजी सुविधाओं–सेवाओं के संग्रहीत स्वरूप के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है
- कारकों और क्रियाओं के आधार पर देखें तो महानगरीय क्षेत्र क्षेत्रीय उद्देश्यों, रणनीति और आवश्यक संगठनात्मक ढांचे की पूर्ति के लिये बुनियादी क्षेत्रीय हितधारकों के साथ संयुक्त जानकारी–ज्ञान का आदान–प्रदान करते हैं
- स्थानिक विकास के सन्दर्भ में महानगरीय क्षेत्रों को मानकीय माना जाता है जो अन्वेषण, रचनात्मकता और आर्थिक विकास की दिशा में मार्गदर्शक का काम करते हैं
- नगरीय और क्षेत्रीय विकास के प्रतीक के तौर पर महानगरीय क्षेत्र उन नियमों, मानकों और मूल्यों के प्रतीकचिह्न हैं जो महानगरीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं से संबद्ध होते हैं

## महानगरीय प्रदेशों में ढांचागत अंतर (Structural Differentiation of Metropolitan regions)

उपरोक्त अवधारणाओं को ध्यान में रखते हुये गहन विश्लेषण से ज्ञात होता है कि महानगरीय क्षेत्रों में न सिर्फ आकार, बल्कि सामाजिक स्थिति, क्षेत्रीय हितधारकों की भूमिका और महानगरीय शासन के अस्तित्व जैसे पहलू भी शामिल होते हैं। इस आधार पर महानगरीय क्षेत्रों में अंतर के निम्न बिन्दु हो सकते हैंः

- केन्द्रीयता, जो महानगरीय क्षेत्र के बहुकेन्द्रीय स्थानिक ढांचे से एककेन्द्रीयता को अलग करती है
- बहुकेन्द्रीयता की विशिष्टता जो बहुकेन्द्रीय अंतर्नगरीय आकार के अंतर को स्पष्ट करती है
- कारकसमूहों के सन्दर्भ में महानगरीय क्षेत्रों की स्व अवधारणा, यह सार्वजनिक नीति दृष्टिकोण से समन्वित क्षेत्रीय कार्यसंबंधों तक विस्तृत हो सकती है, जिससे निजी व्यवसाय से सहयोग के तरीके विकसित किये जाते हैं जो क्षेत्र को व्यावसायिक स्थान की पहचान दिलाता है
- प्रोत्साहन, संचार आधारित औपचारिक क्षेत्रीय संचालक साधन और सहायक अनौपचारिक साधन
- महानगरीय प्रदेशों में बहुकेन्द्रीय ढांचे की उपलब्धता विकास और प्रबंधन के लिये जटिल प्रयासों की जरूरत की वजह बनती है, ऐसे में आंतरिक तकनीकी और राजनीतिक संगठन को खासी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। तकनीकी रूप से देखें तो नीति निर्माताओं के आंतरिक मतभेद और विविधताएं बहुकेन्द्रित ढांचे की सबसे बड़ी चुनौती हैं। वहीं, राजनीतिक लिहाज से देखें तो शासन व्यवस्था की चुनौती तब बढ़ जाती है, जब प्रतिस्पर्धी शहर संयुक्त महानगरीय व्यवस्था चला रहे हों। फिर भी, बहुकेन्द्रीयता हमेशा समस्या भरी नहीं होती है। असल में यह स्थानिक विकास और कार्यसंबंधों का नियंत्रण करती है। इस लिहाज से बहुकेन्द्रीयता की विश्लेषणात्मक अवधारणा महानगरीय प्रदेशों में विकास प्रक्रिया के विश्लेषण का बेहतर ढांचा

उपलब्ध कराने के साथ भावी आवश्यकताओं और विकास उद्देश्यों की पूर्ति का जरिया भी बनती है (उदाहरण के लिये सार्वजनिक परिवहन, तकनीकी अवस्थापना विकास या नगरों के मध्य श्रम विभाजन आदि)

नगरीय समूह अपेक्षाकृत नयी घटना है। 1950 में सिर्फ न्यूयॉर्क और टोक्यो ही ऐसे नगर थे, जहां 10 लाख के करीब आबादी रहती थी। 1970 के दशक तक शंघाई, मेक्सिको सिटी जैसे शहर भी इसमें जुड़ गये, जिसके बाद त्वरित नगरीय विकास देखा गया। 2004 तक दुनिया की करीब नौ प्रतिशत आबादी दुनिया के 22 मेगासिटी में रहने लगी थी (U.N.,2014). वर्ष 2020 तक मुंबई, दिल्ली, मेक्सिको, साओपाओलो, ढाका, जकार्ता और लागोस जैसे शहरों में 20 लाख से अधिक आबादी के रहने की संभावना है। विभिन्न देशों में इस विकास ने नगरीय प्रबंधन के लिये अहम चुनौतियां पेश की हैं (Du,2016). इन परिवर्तनों को निम्नवत समझा जा सकता हैः

- यदि केन्द्रीय नगर का विकास क्षेत्रीय स्तर के नगरों पर निर्भर करता है तो परिदृश्य जटिल हो जाता है। विभिन्न विकासशील नगरीय समूहों में बहुकेन्द्रित महानगरों (जिन्हें वृहद् क्षेत्र यानी मेगा रीजन के नाम से भी जाना जाता है) ने बहुत विशाल प्रादेशिक अस्तित्व का निर्माण किया है। उदाहरण के लिये अमेरिका में बॉसवाश स्ट्रेच (Boston, Washington and New York) और चीन में चोंगचिन (Chongqing) (Yang 2009).
- महानगरीय प्रदेश मेगासिटी और मेगारीजन के लिये सहायक पैमानों का नियंत्रण करते हैं। दुनियाभर में नगरीय समूह राजनीतिक रुचि का विषय रहे हैं। मूल केन्द्रीय नगर और आसपास के क्षेत्रों के बीच आंतरिक कार्यसंबंधों के कारण पर्याप्त समन्वय और सहयोग के लिये विभिन्न समाधान तलाशे गये हैं। स्थान विशेष के विशिष्ट सन्दर्भों और कार्यढांचों के लिहाज से महानगरीय प्रदेशों में अंतर देखा जा सकता है। विभिनन देशों में महानगरीय क्षेत्रों को आर्थिक और राजनीतिक रूप से निर्णायक महत्व दिये जाने के बावजूद अकसर यह प्रश्न उठता है कि महानगरीय प्रदेशों को मूल प्रासंगिकता के अनुरूप किस तरह व्यवस्थित किया जाये। महानगरीय क्षेत्र सामाजिक और सांस्कृतिक नवोन्मेषण के केन्द्र बनकर उभरते हैं।
- कुछ देशों में महानगरीय प्रदेशों–क्षेत्रों से जुड़ी विशिष्ट नीतियां तय की गयी हैं। उदाहरण के लिये यूरोप में यूरोपीयन यूनियन रिसर्च प्रोग्राम ऑन स्पाशियल डेवलपमेंट (ESPON) महानगरीय क्षेत्रों से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर शोध का काम कर रहा है। इसका आधार यूरोपीयन स्पाशियल डेवलपमेंट पर्सपेक्टिव (ESDP) है, जिसकी स्थापना वर्ष 1999 में हुयी थी। यूरोपीयन यूनियन से जुड़े कुछ देशों (जैसे फ्रांस, जर्मनी और पोलैंड) ने महानगरीय क्षेत्रों को उनकी अपनी स्थानिक विकास नीतियों के हिसाब से एकीकृत किया है। दुनिया के अन्य क्षेत्रों, जैसे ब्राजील, भारत, दक्षिण अफ्रीका, तुर्की आदि में भी महानगरीय क्षेत्रों के लिये यह प्रासंगिक हो गया है।

## 6.5 निगम (Corporations)

भारत में नगरीय प्रशासन के सन्दर्भ में देखें तो सर्वाधिक बोझ नगर निकायों पर ही रहता है। यदि हम किसी महानगर में रहते हैं तो ये निगम खासे सशक्त और आर्थिक रूप से सक्षम दिखते हैं और उनके पास पर्याप्त बजट की भी व्यवस्था होती है। गलियों की सफाई करने वाले स्वच्छकारों से लेकर नगर निगम के मुख्य अधिकारी तक कर्मचारियों की लंबी शृंखला वहां होती है। भारत में मुंबई स्थित बृहन्मुंबई नगर निगम (बीएमसी) को देश का सबसे अमीर निगम माना जाता है।

नगर निगमों की स्थापना दिल्ली, मुंबई, चेन्नई, कोलकाता और इन जैसे बड़े नगरों में बेहतर प्रशासनिक प्रक्रियाओं के संचालन के लिये की जाती है। संबंधित राज्य की विधानसभा से प्रस्ताव पारित करने के

बाद इनकी स्थापना की जाती है। केन्द्रशासित राज्यों में भारतीय संसद द्वारा पारित प्रस्तावों से निगम स्थापित होते हैं। नगर निगमों में तीन अधिकरण मुख्य होते हैं, परिषद (Council), स्थायी समिति (Standing Committee) और आयुक्त (Commissioner)। परिषद का गठन पार्षदों के समूह से होता है, जिनका सीधा निर्वाचन जनता करती है। परिषद के मुखिया को महापौर (Mayor) कहा जाता है। मेयर की सहायता के लिये उपमहापौर (Deputy Mayor) की भी व्यवस्था दी जाती है। परिषद की सभी बैठकों की अध्यक्षता मेयर ही करते हैं।

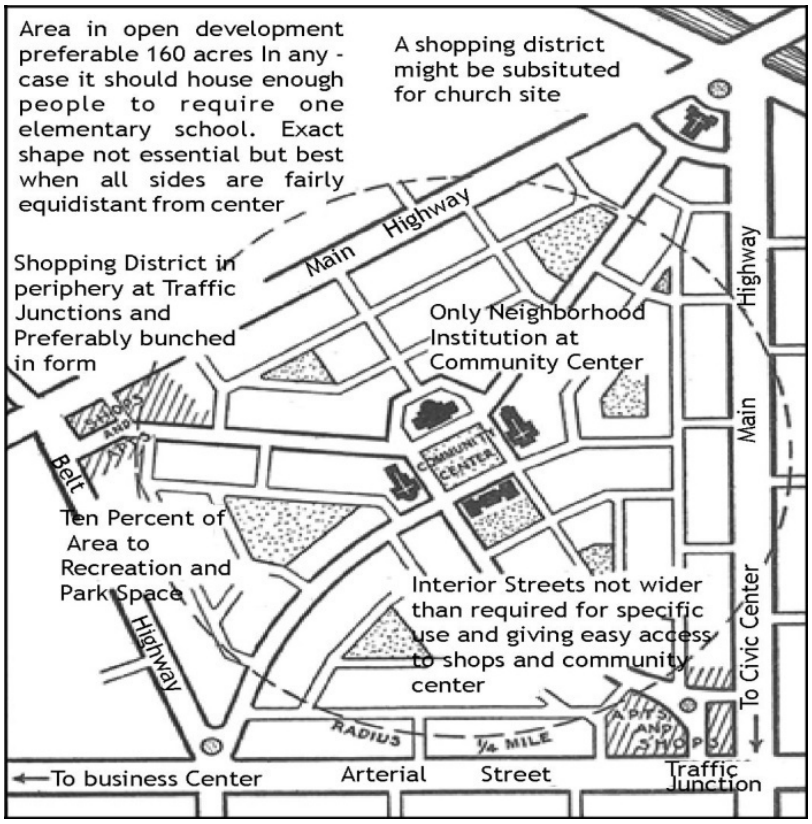


चूंकि पार्षदों की संख्या के लिहाज से परिषद का आकार बेहद बड़ा होता है, परिषदीय कार्यों के संचालन के लिये स्थायी समिति का गठन किया जाता है। स्थायी समिति ि"क्षा, स्वास्थ्य, कर व्यवस्था, सार्वजनिक कार्य आदि के संबंध में निर्णय ले सकती है। नगर आयुक्त (Municipal Commissioner) निगम के मुख्य कार्यकारी अधिकारी होते हैं और वह स्थायी समिति व परिषद द्वारा लिये जाने वाले फैसलों को लागू करवाने का काम करते हैं। नगर आयुक्त की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। सामान्यतः आईएएस अफसर को नगर आयुक्त के पद पर नियुक्ति दी जाती है।

## 6.6 प्रतिवेष या आसपड़ोस (Neighborhood)

प्रतिवेश या पड़ोस शब्द का सामान्य अर्थ पारंपरिक और सामयिक आवासीय विकास के सन्दर्भ में लिया जाता है। वर्ष 1929 में सबसे पहले क्लेरेंस ए. पेरी ने प्रतिवेशी इकाई (Neighborhood Unit) शब्द का इस्तेमाल किया था, तब से यह नगरों के नियोजन का अहम हिस्सा बन गया है। विकास एवं नियोजन के प्रयासों के बेहतर परिणाम हासिल करने के लिये यह आवश्यक है कि प्रतिवेश या पड़ोस के सामाजिक और भौतिक अर्थों को बेहतर ढंग से समझा जाये। सामान्यतः पड़ोस का अर्थ नगरों से सटे उपभागों और ग्रामीण क्षेत्रों से लगाया जा सकता है। साधारण परिभाषा यह है कि प्रतिवेश किसी नगर के पड़ोस का वह स्थान है, जहां लोग रहते हैं। लुईस मम्फोर्ड ने प्रतिवेश को ऐसा प्राकृतिक तथ्य माना है, जो तब अस्तित्व में आता है जब कोई जनसमूह किसी क्षेत्र में रहने

लगता है। मानवता के प्रारंभिक दौर से ही व्यावहारिक, आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारणों से लोग एक–दूसरे के समीप क्षेत्रों में रहते और समुदायों की स्थापना करते रहे हैं। इन वर्गों में कुछ विशेष भौतिक और सामाजिक गुण मिलते हैं जो इन्हें व्यवस्था के अन्य हिस्सों से अलग करते हैं। प्रतिवेशों के इन समूहों ने ही गांवों, नगरों और कस्बों का निर्माण किया। प्रतिवेश हर नगरीय या गैरनगरीय क्षेत्र में होने वाली देशव्यापी घटनाओं की एक इकाई है। अर्नोल्ड विटिक (1974) प्रतिवेश को नियोजित और एकीकृत नगरीय क्षेत्र के तौर पर परिभाषित करते हैं, जो विस्तृत समुदाय का हिस्सा होता है और जहां आवासीय क्षेत्र, एक या अधिक स्कूल, बाजार, धार्मिक भवन, खुले स्थान और कई बार बेहतर सेवा–सुविधाएं भी हासिल होती हैं।

नियोजन अवधारणा में प्रतिवेशी इकाई का उभार 1900 के बाद प्रारंभिक दशकों में तब हुआ, जब औद्योगिक क्रान्ति के कारण पर्यावरण और सामाजिक परिस्थितियों को होने वाले नुकसान सामने आये। न्यूयॉर्क की नियोजन प्रक्रिया में शामिल रहे क्लेरेंस आर्थर पेरी (1872-1944) बताते हैं कि प्रतिवेशी इकाइयों की स्थापना की शुरुआत समुद्र से होने वाले नुकसानों से समुदाय को बचाने के साधन के तौर पर हुयी। पेरी ने अपनी इस अवधारणा को 1929 में लिखी पुस्तक 'Regional Plan of New York and Its Environs' में सर्वप्रथम स्पष्ट किया, जिसने बाद में इस दृष्टिकोण को नियोजन का उपयोगी और अहम साधन बना दिया। पेरी ने जनसंख्या के विशिष्ट आकार के हिसाब से प्रतिवेश की स्थापना की जरूरत और स्थापना के तरीकों का ठोस डायग्राम पेश किया। इस मॉडल ने नगरों और प्रतिवेशों में आवासों, सामुदायिक सेवाओं, गलियों, व्यवसायों आदि की स्थापना के संबंध में गाइडलाइन का काम किया।

## क्लेरेंस पेरी की अवधारणा (Clarence A. Perry's Conception)

पेरी ने प्रतिवेशी इकाई को आबादी वाला क्षेत्र बताया है, जिसे प्राथमिक स्कूल की आवश्यकता होती है, जिसमें 1000 से 1200 तक छात्र पढ़ सकें। इस लिहाज से प्रतिवेश की आबादी छह हजार से अधिक होनी चाहिये। निम्न सघन आवासीय क्षेत्र के तौर पर विकसित इस क्षेत्र में प्रति एकड़ दस परिवार रहते हैं, इस लिहाज से प्रतिवेश की स्थापना 160 एकड़ के कुल क्षेत्र में की जानी चाहिये। यहां यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि इसे इस तरह आकार दिया जाये कि बच्चों को स्कूल तक पहुंचने के लिये चौथाई मील से अधिक नहीं चलना पड़े। कुल क्षेत्र का दस फीसदी मनोरंजन गतिविधियों के लिये तय होना चाहिये। परिवहन सुविधाओं के लिये चारों ओर गलियां, आंतरिक सड़कें इस तरह हों कि यहां रहने वालों को बेहतर सुविधा मिल सकें। इकाई में बाजार, धर्मस्थल, पुस्तकालय, सामुदायिक केन्द्र होने चाहिये। सामुदायिक केन्द्रों की स्थापना स्कूलों के ही आसपास की जानी चाहिये। (Gallion, 1984).

पेरी ने अच्छे प्रतिवेश के डिजाइन के छह बुनियादी सिद्धान्त बताये हैं। विभिन्न संस्थानों, सामाजिक कार्यों में इन सिद्धान्तों का इस्तेमाल किया गया है:

- मुख्य मार्ग और इन पर होने वाला यातायात प्रतिवेश के आवासीय क्षेत्र से नहीं गुजरना चाहिये, इसके बजाय इन मार्गों को प्रतिवेश की सीमाओं की तरह काम करना चाहिये अर्थात मुख्य मार्ग प्रतिवेश के बाहर से निकलने चाहिये
- प्रतिवेश के भीतर आंतरिक गलियों का निर्माण किया जाना चाहिये, डिजाइन इस तरह होना चाहिये कि यहां शांत, सुरक्षित और कम मात्रा का यातायात हो, जो आवासीय क्षेत्र के परिवेश को संरक्षित करने में मददगार हों

- प्रतिवेश की आबादी इतनी होनी चाहिये कि वह प्राथमिक स्कूल की स्थापना के लिये आवश्यक संख्या के अनुकूल हो
- प्रतिवेश का केन्द्र बिन्दु प्राथमिक स्कूल होना चाहिये जो प्रतिवेश के बीच स्थित हो, इसके अलावा अन्य सेवा प्रदाता संस्थान भी प्रतिवेश की चहारदीवारी के भीतर होने चाहिये
- प्रतिवेश की त्रिज्या अधिकतम चौथाई मील होनी चाहिये, ताकि प्राथमिक स्कूल में पढ़ने के लिये चारों ओर से आने वाले बच्चे आसानी से चलकर यहां तक पहुंच सकें
- बाजारों की स्थापना प्रतिवेश के किनारों पर की जानी चाहिये, मुख्य सड़कों की क्रॉसिंग वाला स्थान इसके लिये सर्वथा उपयुक्त हो सकता है

प्रतिवेशी इकाइयों में हाईस्कूल और एक या दो बड़े व्यावसायिक केन्द्र होने चाहिये, जो प्रतिवेश के चारों ओर से अधिकतम एक मील त्रिज्या की दूरी पर अवस्थित हों। नियोजन की प्रक्रिया में प्रतिवेश को कई बार परिभाषित किया जाता रहा है। संशोधनों, सुधारों के बावजूद प्रतिवेश का सिद्धान्त किसी नगर के सामाजिक, राजनीतिक और भौतिक संगठन में अहम बना रहता है। यह आबादी की ऐसी इकाई का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे शिक्षा, मनोरंजन और अन्य सेवाओं–सुविधाओं की आवश्यकता होती है और इन सुविधाओं के मानकों के हिसाब से ही प्रतिवेश का आकार और डिजाइन तय होता है।

प्रतिवेश की अवधारणा की खासी आलोचना भी हुयी है। कुछ आलोचकों ने यह तर्क दिया है कि प्रतिवेशों की स्थापना लोगों के समूहों की स्थापना करती है, जो आगे चलकर वर्गीय पहचान में बदल जाती है। कुछ का मानना है कि प्रतिवेश का सिद्धान्त इतना अधिक आदर्शवादी और कल्पनाधारित है कि आधुनिक शहरी जीवन में इसका व्यावहारिक होना संभव नहीं। प्रतिवेश के केन्द्र में स्कूल को रखे जाने की भी यह कहकर आलोचना की गयी है कि यह अव्यावहारिक और सिर्फ बच्चों पर केन्द्रित है, जबकि समुदाय के लिये जरूरी सुविधाओं की असमान अवस्थिति पर ध्यान नहीं दिया गया है जो समुदाय के कई लोगों के लिये बेहद दूर होते हैं। पार्कों और अन्य सार्वजनिक स्थानों की स्थापना में निर्माण और देखभाल–मरम्मत के लिहाज से खर्चीला हो सकता है। आलोचक पेरी के सार्वजनिक मिलन केन्द्र की स्थापना की अवधारणा पर भी सवाल खड़े करते हैं, उनका कहना है कि नगरीय क्षेत्रों में आमतौर पर अलग–अलग तरह के लोग–समुदाय होते हैं, ऐसे में इस तरह के केन्द्र औचित्यपूर्ण नहीं हैं। आलोचक यह भी सवाल उठाते हैं कि शहरी सुविधा और सेवा केन्द्र के तौर प्रतिवेशी इकाई किस तरह आर्थिक क्षमतावान हो सकती है? और यह भी कि प्रतिवेशी क्षेत्रों के स्कूल आकार में इतने छोटे होंगे कि वहां विशिष्ट गतिविधियों का संचालन कर पाना संभव नहीं होगा।

## 6.7 भारतीय सन्दर्भ में प्रतिवेश (Neighborhood in Indian Context)

पारंपरिक पर्यावरण एवं ग्रामीण व्यवस्थाओं में प्रतिवेशी इकाई की अवधारणा ने संबद्धता, पहचान, स्वीकार्यता की सशक्त भावना को विकसित किया। अधिकतर सामुदायिक सेवाओं और व्यापारिक गतिविधियों की यहां रहने वाले लोगों से समीपता ने सामाजिक संवाद को बढ़ावा दिया। लेकिन, नगरीय सन्दर्भ में देखें तो सामयिक नगरीय पर्यावरण में प्रतिवेशी भावना आम भागीदारी पर आधारित नहीं है। नगरीकरण के प्रभाव के चलते आधुनिकीकरण हुआ और समुदायों की संख्या में भी बढ़ोतरी हुयी साथ ही आंतरिक संयोजन में भी वृद्धि हुयी। इसके चलते प्रतिवेश में स्थानिक समुदाय की गतिशीलता में बढ़ोतरी ने प्रतिवेश को नुकसान पहुंचाया। गतिशीलता और परिवहन सुविधाओं में बढ़ोतरी के चलते प्रतिवेश में रहने वाले लोग नये अवसरों के लिये खुल गये, जिससे प्रतिवेश को मिलने वाले लाभों में

कमी देखी गयी। ऐसे में बुनियादी गतिविधियां और निवासरत लोगों के जीवनस्तर में बदलाव ही सामाजिक पर्यावरण के निर्माण के अहम कारक बन गये (Berk, 2005). यह मुद्दा सामाजिक पर्यावरण को मौजूदा भौतिक पर्यावरण से अलग करने का कारण बनता है। स्वतंत्र भारत में विकास नियोजन प्रक्रिया की स्थापना और विस्तार का विचार प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने दिया। भारत की पुरानी सामाजिक परंपराओं के चलते प्रतिवेशी इकाई की अवधारणा काफी हद तक भारतीय सन्दर्भ के लिये उपयुक्त रही। चंडीगढ़, भुवनेश्वर, गांधीनगर जैसे प्रतिवेशी इकाइयों की स्थापना में सफलता के बाद यह भारतीय नियोजन का अहम हिस्सा बन गया। नये नगरों और नगरीय विस्तारों की योजना के लिये यह उदाहरण के तौर पर उभरा। इसका बुनियादी सिद्धान्त नये नगरों की स्थापना के साथ संबद्ध प्रतिवेशी इकाई की भी स्थापना का रहा।

## सामयिक भारत में महानगर (Metropolis in contemporary india)

नगरीय भारत किस दिशा में जा रहा है? इस सवाल का विश्लेषण करते हुये दीपांकर गुप्ता ने 2011 के जनसांख्यिकीय आंकड़ों का गहन अध्ययन किया है। वह बताते हैं कि ये आंकड़े शहरी विकास, रुझान, तरीकों और विशिष्ट गतिविधियों की जानकारी देते हैं। गुप्ता के अनुसार, 'नगरीकरण के अलावा हमें इस तथ्य पर भी ध्यान देना चाहिये कि भारत की 70 फीसदी शहरी आबादी एक लाख या इससे अधिक आबादी वाले कस्बों में रहती है।' आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2001 में दस लाख से अधिक आबादी वाले शहरों में ही भारत की 68.7 प्रतिशत आबादी रहती थी, लेकिन वर्ष 2011 के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि अब यह प्रतिशतता 42.6 प्रतिशत रह गयी है, जो पिछली जनगणना के मुकाबले 26 प्रतिशत की गिरावट है। यह प्रतिशतता साफ करती है कि शहरी विकास अब कहां हो रहा है और यह भी कि इसकी निरंतरता भी बनी हुयी है।

उदाहरण के लिये दिल्ली भारत का सबसे सघन आबादी वाला महानगर है। यहां रहने वाले लोग बेहद संकुचित स्थान में रहते हैं, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दूसरे नगरों में स्थिति इससे बेहतर है। जनसंख्या रिपोर्ट शहरी भारत के कई अव्यवस्थित सत्यों को भी उभारती है। यह स्पष्ट करती है कि नगरीकरण की प्रक्रिया में नगरीय, महानगरीय मूल्यों को प्रोत्साहित नहीं किया गया। गुप्ता बताते हैं, 'भारत के वर्तमान में अतीत का प्रतिबिंब नजर आता है। इसका उदाहरण भारतीय नगरों में लिंगानुपात है। वर्ष 2011 का जनसंख्या आंकड़ा बताता है कि भारतीय नगरों, जिसमें देश की राजधानी दिल्ली भी शामिल है, प्रति एक हजार पुरुषों पर सिर्फ 868 महिलाएं ही हैं।' (Gupta,2012). दूसरी ओर, यह भी तथ्य है कि ग्रामीण आबादी आज भी अधिक है और पिछली जनगणना के मुकाबले 2011 की जनगणना में इसमें वृद्धि भी दर्ज की गयी है। ताजा आंकड़े बताते हैं कि 72.2 प्रतिशत भारतीय आबादी आज भी 6,41,000 गांवों में रह रही है (Bhagat,2012). ऐसे में जब यह सवाल उठता है कि कई ग्रामीण क्षेत्रों में शहरीकरण की होड़ लगी है, तब इसके जवाब में आंकड़ों की हकीकत से यह सवाल उठता है कि ऐसा है तो भारत में आज भी इतनी संख्या में ग्रामीण क्यों हैं?

भावी संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए गुप्ता कुछ बुनियादी सवाल उठाते हैं– क्या सभी लोगों का शहर से कस्बों और फिर वहां से गांव तक तेजी से लौट पाना संभव है? लेकिन, असल में ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि नगरों से गांवों की ओर पलायन बेहद नगण्य है। 2001 के जनसंख्या आंकड़े बताते हैं कि सिर्फ 8.6 प्रतिशत पुरुषों का अंतर्राज्यीय पलायन दर्ज किया गया, इसमें भी सिर्फ 6.1 प्रतिशत लोग ही शहरों से गांवों की ओर लौटे। यहां ग्रामीण लघु–कुटीर उद्योगों की स्थिति का विश्लेषण भी करना जरूरी है। यह बताता है कि गांवों से गांवों की ओर पुरुषों का पलायन अंतर्राज्यीय (एक से दूसरे राज्य में) और आंतरिकराज्यीय (राज्य के ही भीतर) काफी अधिक है, यह क्रमशः 20.7 प्रतिशत और 41.6

प्रतिशत दर्ज किया गया (desinghkar and ferrington , 2009). दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि पलायन करने वाले का पलायनस्थान हमेशा शहर हो यह आवश्यक नहीं है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भारत महानगर की दिशा से भी कहीं आगे बढ़ रहा है।

## 6.8 निष्कर्ष (Conclusion)

विश्व बैंक की प्रख्यात अर्थशास्त्री तारा विश्वनाथ और उनकी टीम ने ***"Urbanization beyond Municipal Boundaries: Nurturing Metropolitan Economies and Connecting Peri-Urban Areas in India"*** में पाया कि भारत में अधिकतर विकास महानगरीय क्षेत्रों से बाहर हो रहा है। उनका शोध बताता है कि उपनगरीकरण वैश्विक घटनाक्रम है जो आमतौर पर विकास के मध्यवर्ती चरण में उभरता है। भारत में यह अपेक्षित काल से पहले ही तेजी से उभरा है। विश्वनाथ कहती हैं, 'समयपूर्व उपनगरीकरण सकारात्मक हो सकता है, क्योंकि इससे नीतियों के प्रभाव के अध्ययन और इनमें सुधार की गुंजाइश बनी रहती है। इसके जरिये विकासशील नगरों को पूरा लाभ दिलाने की दिशा में काम किया जा सकता है।' बीते दो वर्षों से विश्व बैंक की टीम भारत में सरकार, अकादमिक क्षेत्रों से जुड़े विद्वानों के साथ काम कर रही है, जो शहरी विकास में विशेषज्ञता रखते हैं। साथ ही निजी सेक्टर भी इनके साथ जुड़े हैं, जो भूमिसुधार, अवस्थापना विकास, परिवहन सुविधा आदि के विकास में गहरा प्रभाव डालते हैं।

कई अन्य शोधकर्ताओं ने भी इस विषय पर काम किया है। कुमार (2002) ने भारत में महानगरीय प्रक्रिया और शहरी समूहों पर विस्तृत अध्ययन किया है। वह बताते हैं कि भारत में नगरीकरण नगरों से बाहर तेजी से उभर रहा है। वह इसे परिवर्तनकारी घटनाक्रम मानते हैं और बताते हैं कि नगरीकरण की प्रक्रिया में शामिल हो चुके गांवों को शहरी गांव कहा जाना चाहिये। वह इन्हें भारतीय शहरी समूह का ही हिस्सा मानते हैं।

## 6.9 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

- उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश की अवधारणा को विस्तार से समझाएं।
- वैश्विक परिदृश्य में उपनगर, महानगर, निगम और प्रतिवेश की अवधारणा को परस्पर समन्वित करते हुये समझाएं।
- उपनगर, महानगर, प्रतिवेश और निगमों के भारतीय सन्दर्भ में आंतरिक संबंधों को स्पष्ट करें।

## 6.10 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)


- David L. McKee , Yosra A. McKee(2003), "Edge Cities and the Viability of Metropolitan Economies: Contributions to Flexibility and External Linkages by New Urban Service Environments",https://doi.org/10.1111/1536-7150.00059
- Hemakumara, GPTS, & Rainis, Ruslan. (2015). Geo-statistical modeling to evaluate the socio-economic impacts of households in the context of low-lying areas conversion in Colombo metropolitan region-Sri Lanka.
- Hollow ,Matthew(2011).Suburban Ideals on England's Interwar council Estates",Retrieved 2012-12-29
- Rahel Nüssli ,Christian Schmid(2016),Beyond the Urban–Suburban Divide: Urbanization and the Production of the Urban in Zurich North, https://doi.org/10.1111/1468-2427.12390

- Locating the Suburb, Harvard Law Review, Vol. 117, No. 6 (Apr., 2004), pp. 2003-2022, The Harvard Law Review Association
- RongDu(2016),Urban growth: Changes, management, and problems in large cities of Southeast China,Frontiers of artichectual research ,vol.5,issue-3,p.229-300
- *Census of India* 2011 (provisional); R.P. Bhagat, 'Emerging Pattern of Urbanization in India', *Economic and Political Weekly* XLVI, 2011, p. 12.
- Priya Deshingkar and John Farrington (eds.), *Circulation, Migration and Multilocational Livelihood Strategies in Rural India*, Oxford University Press, Delhi, 2009, p. 15.

ईकाई– 7

# विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण
# Urbanization in Developed & Developing Countries

इकाई की रुपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 विकसित समाज का अर्थ एवं परिभाषा

7.3 विकासशील समाज का अर्थ एवं परिभाषा

7.4 विकसित एवं विकासशील समाज की विशेषताएं

7.5 विकासशील समाज की प्रमुख समस्याएं

7.6 विकसित एवं विकासशील समाज में अंतर

7.7 विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया

7.8 विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण से उत्पन्न समस्याएं

7.9 सारांश

7.10 बोध प्रश्न एवं लघु उत्तर प्रश्नावली

7.11 निबन्धानात्मक प्रश्न

7.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

## 7.0 उद्देश्य

इस ईकाई का मुख्य उद्देश्य है

- विकसित एंव विकासशील समाज की अवधारण को स्पष्ट करना ।
- विकासशील समाज के प्रमुख मापदण्ड तथा विशेषताओं की व्याख्या करना, विकासशील समाज की प्रमुख समस्याओं को स्पष्ट करना ।
- विकसित तथा विकासशील समाज में अंतर को स्पष्ट करना ।
- विकसित एवं विकाशील देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करना ।
- विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न प्रमुख समस्याएं को स्पष्ट करना ।

## 7.1 प्रस्तावना

संपूर्ण विश्व के समाज प्रायः दो भागों में विभक्त रहते हैं। एक भाग में वे आधुनिक समाज आते हैं जहाँ विकास अपनी चरम सीमा में पहुँच जाता है, जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक तथा मानव संबंधी समस्त साधनों, पूंजी एवं प्रौद्योगिकीय साधनों का मानवीय विकास में अपना एक सर्वोच्च योगदान होता है। ऐसे अति व्यवस्थित तथा उच्च समाज को विकसित समाज कहा जाता है। दूसरे भाग में वे समाज आते हैं जो अभी पूर्ण विकास को प्राप्त नहीं हो पाते हैं तथा धीरे–धीरे विकास की ओर उन्मुख होते हैं। अल्पविकसित समाज होने के कारण इन समाजों में निर्धनता, बेकारी, अशिक्षा तथा असुरक्षा जैसी कई समस्याएं व्याप्त होती हैं।

नगरीकरण की यदि बात करें तो विकसित एवं विकासशील समाज भी इस प्रक्रिया से अछूता नहीं रह गया है। इन दोनों ही समाजों में नगरीकरण की प्रक्रिया लगभग उन्नीसवी शताब्दी से प्रारंभ हो गई थी। किन्तु यह भी वास्तविकता है कि दोनों समाजों में नगरीकरण की प्रक्रिया समान रूप से विकसित हुई किंतु कई समानताएं होने के पश्चात् भी दोनों समाजों के नगरीकरण की प्रक्रिया में मौलिक अंतर पाए जाते हैं, यद्यपि दोनों समाजों में कई मौलिक असमानताएं होने के पश्चात् भी दोनों समाज एक ही तरह के नगरीकरण से उत्पन्न कई समस्याओं से जूझ रहा है, क्योंकि नगरीकरण की प्रक्रिया जहाँ एक ओर समाज को विकास की नई दिशा देता है वहीं दूसरी ओर कई अनगिनत समस्याओं को भी जन्म देता है।

## 7.2 विकसित समाज का अर्थ एवं परिभाषा

जिस समाज में औद्योगिकरण, नगरीकरण की प्रक्रिया तथा साक्षरता को अनुपात औसत से अधिक होता है। उस समाज को विकसित समाज कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विकसित समाज उन समाजों को कहा जाता है, जिसमें प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में औद्योगिकरण एवं प्रौद्योगीकरण का पर्याप्त उपयोग करके समाज को एक उच्चतर जीवनस्तर प्राप्त करने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। प्रायः विकसित समाजों में औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण तथा नगरीकरण तीव्र गति से होता है।

प्रमुख समाजशास्त्री विरेन्द्र सिंह का मानना है कि विकसित समाज को दो बड़े भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक ओर वे विकसित समाज हैं, जिन्होंने विकास के लिए प्रजातांत्रिक मार्ग का अनुसरण किया है और प्रजातांत्रिक ढांचे के अंतर्गत अपने को विकसित किया है। इन श्रेणी में पश्चिमी यूरोप के देश, इग्लैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया आदि आते हैं। इन सभी समाजों ने अपने यहाँ बड़ी सीमा तक स्वाधीन आर्थिक क्रिया और निजी अर्थव्यवस्था को स्थापित कर रखा है। इन समाजों में औद्योगिकरण, आधुनिकीकरण उपलब्धि– अभिविन्यास, सामाजिक गत्यात्मकता, राजनैतिक सामाजीकरण, सहभागिता एवं सहयोग का उच्च स्तर दिखाई पड़ता है। आर्थिक और भौतिक दृष्टिकोण से यह समाज समृद्ध एवं संपन्न समाज है। एरिक फ्राम

के मतानुसार पूंजीवादी सभ्यता एवं समाज ने जहाँ एक ओर विकास का उच्चतर स्तर प्राप्त कर लिया है। वहीं दूसरी ओर मानवता के लिए मानसिक और भावनात्मक समस्याएं भी उत्पन्न कर दी हैं, जिनमें अलगाव की समस्या, मानसिक असंतोष भावनात्मक अस्थिरता, अर्थहीनता और आदर्शविहीनता की समस्या प्रमुख है। फ्राम ने लिखा है कि पश्चिमी पूंजीवादी समाजों में व्यक्ति ने अपने व्यक्तित्व की वास्तविकता और मूर्तता को खो दिया है और जन समाज में उसकी स्थिति वैसी ही होकर रह गई है जैसे किसी बड़ी मशीन में एक छोटे पुर्जे की होती है।

## 7.3 विकासशील समाज की अवधारणा एवं परिभाषा

जैसा कि हम जानते हैं कि संपूर्ण विश्व प्रायः दो भागों में विभक्त होता है। विकसित तथा अल्पविकसित। अल्पविकसित समाजों को प्रायः निर्धन, पिछड़े, अविकसित तथा विकासशील देशों के नाम से जाना जाता है। मायर एवं बाल्डविन और बारबरा वार्ड ने प्रायः अल्पविकसित समाज को निर्धन कहा है, क्योंकि आपके मतानुसार अल्पविकसित शब्द अल्पविकास के बजाय निर्धन कहना ज्यादा उपयुक्त है, क्योंकि अल्पविकसित शब्द भी उपयुक्त नहीं है। क्योंकि पिछड़ा और आत्मगौरव को ठेस पहुँचाते हैं। प्रो0 गुन्नार मिर्डल ने इसी कारण एक अधिक गतिशील एवं व्यापक शब्द ''अल्पविकसित देशों के प्रयोग का समर्थन किया है। हमारी राय में यह अधिक उपयुक्त है क्योंकि यह शब्द विकास की दो चरम सीमाओं अविकसित और विकसित के मध्य में स्थित होने के कारण इन देशों को अगले छोर पर पहुँचने के लिए प्रेरित करता है।

**परिभाषायें**

1. जे0आर0हिक्स ने ''कन्ट्रीब्यूश[1]न टू दी थियरी ऑफ ट्रेड साइकिल्स में विकसशील समाज की व्याख्या करते हुए लिखा है कि ''एक विकासशील देश वह है, जिसमें प्राविधिक तथा मौद्रिक साधनों की मात्रा उत्पादन एवं बचत के वास्तविक स्तर के समान ही निम्न होती है। जिसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक को पुरस्कार (वेतन) बहुत कम मिल पाता है।
2. प्रो0 सेम्युलसन ने आर्थिक आधान पर विकासशील समाज की व्याख्या की है। साधारणतया एक विकासशील राष्ट्र वह है, जिसकी प्रति व्यक्ति आय ऐसे राष्ट्रों जैसे कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, बिट्रेन, फ्रांस तथा पश्चिमी यूरोप के प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कम हो। ऐसे राष्ट्रों के आय के स्तर में पर्याप्त सुधार करने की क्षमता होती है।
3. जैकब वाइनर ने विकासशील समाज के संदर्भ में लिखा है कि एक विकासशील राष्ट्र वह है जहाँ अधिक पूंजी अथवा श्रम अथवा अधिक उपलब्ध प्राकृतिक साधनों अथवा इन सभी का उचित उपयोग करने की संभावना हो, जिससे कि समाज अपनी जनसंख्या को ऊँचा जीवन

स्तर प्रदान कर सके और यदि प्रति व्यक्ति आय पहले से ही अधिक है तो रहन–सहन के स्तर को कम किए बिना अधिक लोगों का भरण–पोषण किया जा सके।[5]

4. रेगनर नर्क्स ने लिखा है कि विकासशील समाज वो है जिसमें जनसंख्या और प्राकृतिक साधनों की तुलना में पूंजी कम होती है।
5. प्रमुख समाजशास्त्री विरेन्द्र सिंह ने विकासशील समाज को निम्नांकित रूप में परिभाषित किया है।
    1. विकसित राष्ट्रों की तुलना में प्रति व्यक्ति आय कम है।
    2. प्राकृतिक साधनों एवं मानवीय शक्ति का उचित उपयोग न हो।
    3. निर्धनता प्रत्यक्ष हो।
    4. धार्मिक विश्वासों एवं रूढ़ियों का प्रभाव अधिक हो।
    5. प्रत्येक पहलू में विकास की संभावनाएं दृष्टिगोचर हो।
    6. जनसाधारण का जीवन स्तर निम्न हो।[7]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि विकासशील समाज ऐसे समाज को कहा जा सकता है जहाँ औद्योगिकरण की प्रक्रिया काफी धीमी हो तथा विकसित समाजों की अपेक्षा प्रति व्यक्ति आय निम्न हो, विकास के दृष्टिकोण से भी ये समाज बहुत पिछड़े हुए होते हैं तथा समाज में जीवन यापन कर रहे प्रत्येक व्यक्ता का जीवन स्तर निम्न होता है।

विकासशील समाज की परिभाषाएं :

**प्रो0 डब्ल्यू0 सिंगर** का मत है कि– अल्प–विकसित अर्थव्यवस्था को परिभाषित करने का कोई भी प्रयास, समय को बर्बाद करना है फिर भी किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह आवश्यक होगा कि कुछ प्रचलित परिभाषाओं का अध्ययन कर लिया जाए।

संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O) की एक विज्ञप्ति के अनुसार– ''अल्प–विकसित देश वह है जिसकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा पश्चिम यूरोपीय देशों की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की तुलना में कम है। प्रो0 सेम्युलसन (Samuelson) के विचार भी इस प्रकार के हैं।

प्रो0 मेकलियोड (A.N. Meleod) के मतानुसार– ''एक अल्प–विकसित देश अथवा क्षेत्र वह है, जिसमें उत्पत्ति के अन्य साधनों की तुलना में उद्यम एवं पूंजी का अपेक्षाकृत कम अनुपात है परंतु जहाँ विकास संभाव्यताएं विद्यमान हैं। अतिरिक्त पूंजी को लाभजनक कार्यों में विनियोजित किया जा सकता है।''

प्रो0 जे0 आर0 हिक्स (J.R. Hicks) के शब्दों में– ''एक अल्प–विकसित देश वह देश है जिसमें प्रौद्योगिकीय और मौद्रिक साधनों की मात्रा, उत्पादन एवं बचत की वास्तविक मात्रा की भांति कम

होती है, जिसके फलस्वरूप प्रति–श्रमिक को औसत पुरस्कार उस राशि से बहुत कम मिलता है, जो प्राविधिक विकास की अवस्था में उसे प्राप्त हो पाता है।''

प्रो0 ऑस्कर लैंज (Oskar Lange) की दृष्टि में– ''एक अल्प–विकसित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें पूंजीगत वस्तुओं की उपलब्ध मात्रा देश की कुल श्रम–शक्ति को आधुनिक तकनीक के आधार पर उपयोग करने के लिए पर्याप्त नहीं है।'' प्रो0 नर्कसे ने भी अल्पविकसित देश को इसी आधार पर परिभाषित किया है।

जैकब वाईनर (Jacob Viner) के अनुसार– ''अल्प–विकसित देश वह देश है जिसमें अधिक पूंजी अथवा अधिक श्रम–शक्ति अथवा अधिक उपलब्ध साधनों अथवा इन सबको उपयोग करने की पर्याप्त संभावनाएं हों जिससे कि वर्तमान जनसंख्या के रहन–सहन के स्तर को ऊँचा उठाया जा सके और यदि प्रति–व्यक्ति आय पहले से ही काफी अधिक है तो रहन–सहन के स्तर को कम किए बिना अधिक जनसंख्या का निर्वाह किया जा सके।''

यूजीन स्टाले (Eugene Steley) के विचारानुसार– ''अल्प विकसित देश वह देश है जहां जनसाधारण में दरिद्रता व्याप्त है जो (दरिद्रता) अत्यन्त स्थाई व पुरातन है जो किसी अस्थाई दुर्भाग्य का परिणाम नहीं है, बल्कि उत्पादन के घिसे–पिटे एवं परंपरागत तरीकों और अनुपयुक्त सामाजिक व्यवस्था के कारण है जिसका अभिप्राय यह है कि दरिद्रता केवल प्राकृतिक साधनों की कमी के कारण नहीं होती है और उसे अन्य देशों में श्रेष्ठता के आधार पर परखे तरीकों द्वारा संभवतः कम किया जा सकता है।

भारतीय योजना आयोग के अनुसार एक अल्पविकसित देश वह देश है जहां पर एक अप्रयुक्त मानवीय शक्ति और दूसरी ओर अवशोषित प्राकृति साधनों का कम या अधिक मात्रा में, सह–अस्तित्व पाया जाता है।''

सामान्यतः एक अल्प–विकसित देश वह है जहाँ जनसंख्या की वृद्धि की दर अपेक्षाकृत अधिक हो, पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक साधन उपलब्ध हो परंतु उनका पूर्णरूपेण विदोहन न हो पाने के कारण उत्पादकता व आय का स्तर नीचा हो। सरल शब्दों में, वह देश अल्प–विकसित देश माना जाएगा जिसका आर्थिक विकास संभव हो किंतु अपूर्ण हो।

## 7.4 विकसित एवं विकासशील समाज की विशेषताएं

**विकसित समाज की विशेषताएं**– विकसित समाज की विशेषताओं की निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. औद्योगीकरण की तीव्र गति
2. नगरीकरण की तीव्र गति
3. साक्षरता की उच्च दर
4. प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि

5. धन का समान वितरण
6. प्रौद्योगिकीय विकास
7. संचार एवं यातायात की प्रचुर मात्रा
8. बैकिंग सुविधाएं
9. जीवन स्तर उच्च होना
10. आर्थिक विकास का स्तर उच्च होना
11. भौतिक सुख एवं समृद्धि का उच्च स्तर
12. स्वास्थ्य सेवाओं की पर्याप्त एवं प्रचुर उपलब्धियाँ
13. रोजगार के अवसरों की प्रचुरता
14. प्रजातांत्रिक संस्थाओं का सुदृढ़ होना
15. प्रत्याशाओं एवं सामान्यताओं के प्रति जनता का जागरूक होना
16. आधुनिक दृष्टिकोण
17. अंधविश्वास एवं रुढ़िवादिता का पूर्णरूप से अभाव
18. सामाजिक गतिशीलता एवं सामाजिक गत्यात्मकता में वृद्धि
19. राजनैतिक सुदृणीकरण
20. जीवन प्रत्याशाओं का उच्च स्तर

1. **विकासशील समाजों की विशेषताएं** :– विकासशील समाजों की विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।
   1. निम्न प्रति व्यक्ति आय या वास्तविक आय का कम होना।
   2. कृषि अर्थव्यवस्था अथवा कृषि की प्रधानता
   3. कृषि संबंधी सुविधाओं एवं साधनों का अभाव
   4. अल्प–शोषित प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता
   5. बैंक संबंधी सुविधाओं एवं साधनों का अभाव
   6. बेरोजगारी
   7. आय का असमान वितरण
   8. प्रौद्योगीकरण एवं नगरीकरण का अभाव
   9. औद्योगीकरण एवं नगरीकरण का अभाव
   10. जन्म और मृत्यु दर का उच्च होना
   11. जनसंख्या का आधिक्य
   12. साक्षरता का निम्न स्तर
   13. परंपरा, रीति–रिवाज, अंधविश्वास एवं धार्मिक विश्वासों की प्रधानता

14. संचार एवं यातायात के साधनों का विकास न होना
15. आधुनिक उत्पादन क्षमता एवं विधियों का अभाव
16. प्रौद्योगिकरण एवं नवीन यंत्रों की जानकारी का अभाव
17. राजनैतिक अस्थिरता की स्थिति
18. सामाजिक एवं आर्थिक चेतना का आभाव
19. महिलाओं की निम्न स्थिति
20. आयात एवं नियति में असमानता
21. उत्पादन क्षमता में परंपरागत विधियों की प्रचुरता

## 4.5 विकासशील समाज की प्रमुख समस्याएं

विकासशील समाज की अनेकों समस्याएं हैं, जिसमें विकास संबंधी समस्याएं प्रमुख है। अनेक समाजशास्त्रियों ने विकासशील समाजों की समस्याओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है जो निम्नांकित हैं।

1. यूजीन स्टैली के अनुसार– आर्थिक एवं प्राकृति साधन संबंधी समस्याओं के अतिरिक्त कुछ सामाजिक समस्याओं की ओर यूजीन स्टैली ने संकेत किया है, इन समस्याओं ने विकासशील देशों ने विकास की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। स्टैली ने जिन समस्याओं की ओर संकेत किया है उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं–

   (क) पुरानी आदतें, विचार पद्धतियाँ एवं संस्थाएँ– स्टैली ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि विचारशील देशों में विद्यमान पुरानी आदतें, विचार पद्धतियाँ और संस्थाएँ विकास में बाधक सिद्ध हो रही है। इसके परिणामस्वरूप एक और वैज्ञानिक, प्रत्यक्षवादी एवं तार्किक दृष्टिकोण का प्रसार नहीं हो पा रहा है जिसके कारण इन देशों ने अनेक प्रकार के अंधविश्वास तथा अतार्किक विचार प्रचलित हैं जिन्होंने इन देशों की जनसंख्या की इच्छा और क्रिया की क्षमता को दुर्बल करके उसमें एक प्रकार की निष्क्रियता उत्पन्न कर दी है। दूसरी ओर, इन देशों के जनसाधारण में परिवर्तन का भय भी उत्पन्न कर दिया है जिसके फलस्वरूप विकास में बाधा पड़ रही है। विकसित तथा विकासशील देशों के अंतर के लिए उत्तरदायी कारकों को स्टैली ने न तो जलवायु से संबंधित किया है और न ही प्रजाति से बल्कि इन कारकों को सामाजिक एवं सांस्कृति मानते हुए इनको आदत, विचार पद्धति एवं आचार से संबंधित किया है।

   (ख) अप्रभावशाली, अप्रशिक्षित, अयोग्य तथा भ्रष्ट प्रशासन– स्टैली ने गारनर के इस मत से सहमति प्रकट की है कि अप्रभावशाली, अप्रशिक्षित, अयोग्य तथा भ्रष्ट प्रशासन विकासशील देशों में प्रबल समस्याएं उत्पन्न कर रहा है। विकास प्रगतिवादी नीतियों के

अनुसरण तथा विवेकपूर्ण योजनाओं के क्रियान्वयन पर आधारित होता है और यह कार्य अधिकांशतः प्रशासन पर निर्भर करता है। अगर प्रशासन अयोग्य और भ्रष्ट है तो तीव्र विकास सहानुभूति का अभाव (Lack of Sympathy), आचारिकतावाद (Ritualism), संभ्रान्तवर्गवाद (Elitism), लालफीताशाही (Red Tapism), नैत्यवाद (Routinism), शासकीय आलस्य (Official lethargy) इत्यादि। कर्मचारीतंत्र के ये दोष विकास के प्रति न तो जागरूक हैं और न उत्तरदायी। प्रशासन का यह स्तर जनसाधारण से कटकर रह गया है और इस पर वास्तविक प्रजातांत्रिक नियंत्रण नहीं है। स्वयं सत्ताधारी वर्ग भी निहित स्वार्थों के कारण इस पर अंकुश लगाने पर असमर्थ रहा है।

(ग) उच्चतर भौतिक तथा सामाजिक प्रौद्योगिकी का अभाव– स्टैली ने विकासशील देशों में उच्चतर भौतिक तथा सामाजिक प्रौद्योगिकी के अभाव को विकास में एक बाधा बताया है। प्रौद्योगिकी की विज्ञान का व्यावहारिक तथा उपयोगी पक्ष माना जाता है। विकास की गति तभी तेज हो सकती है जब आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक आदि क्षेत्रों में उच्चतर अथवा विकसित प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाए। आर्थिक विकास के लिए उच्चतर भौतिक प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है। भौतिक प्रौद्योगिकी से अभिप्राय कल–पुर्जों तथा यंत्रों आदि से है और सामाजिक प्रौद्योगिकी से अभिप्राय सामाजिक परिवर्तन व पुनर्निर्माण के लिए रची गई विधियों, उपायों और पद्धतियों से है। उच्चतर भौतिक प्रौद्योगिकी के उपयोग से उत्पादन क्षेत्र में ऊर्जा और समय की बचत होती है तथा उत्पादन की मात्रा में वृद्धि एवं स्तर में सुधार होता है। इसी प्रकार उच्चतर सामाजिक प्रौद्योगिकी के उपयोग से प्रकार्य विरोधी संस्थाओं, हानिकारक प्रथाओं तथा दूसरी सामाजिक बुराइयों को समाज से दूर करने में सहायता मिलती है। अगर किसी देश में उच्चतर भौतिक एवं सामाजिक प्रौद्योगिकी का अभाव है तो यह तत्व भी विकास में बाधक सिद्ध होता है।

(घ) विकास की प्रबल प्रेरणा और इच्छा का अभाव– किसी देश के नागरिकों में विकास की प्रबल प्रेरणा और इच्छा का विद्यमान होना विकास के लिए आवश्यक दशा का स्थान रखता है। जैसाकि इस कथन से स्पष्ट है कि जहाँ इच्छा होती है, वहाँ मार्ग भी निकल आता है। अगर किसी देश के जनसाधारण में स्वयं विकास की प्रेरणा और इच्छा है तो सरकार के द्वारा विकास के लिए कितने ही प्रयत्न क्यों न किए जाएं, तीव्र विकास नहीं हो सकता। अगर किसी देश के साधारण नागरिकों में अपनी दरिद्र एवं हीन दशा को बदलने और सुधारने की चेतना तथा इच्छा नहीं है, अगर उनकी प्रत्याशाओं का स्तर नीचा है, अगर वे परिवर्तन से डरते हैं और नवीनता से घबराते हैं, अगर उनकी प्रथाएं

तथा परम्पराएं विकास विरोधी हैं, अगर उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरोध की प्रवृत्ति पाई जाती है, तो ये सभी तत्व विकास में कठोर बांधा उत्पन्न कर सकते हैं। भारत में विकास की मंदगति के लिए अन्य कारकों के साथ–साथ यह कारक भी बड़ी सीमा तक उत्तरदायी रहा है।

(ड़) सहयोग की क्षमता का अभाव– सामूहिक प्रयत्न और परिश्रम विकास के लिए आवश्यक परिस्थिति का स्थान रखते हैं और यह तभी संभव हो सकता है जब किसी समाज के सदस्यों में सहयोग एवं सहकारिता की भावना एवं क्षमता मौजूद हो। जिन समाजों में जाति, प्रजाति एवं वर्ग के आधार पर कठोर संस्तरण पाया जाता है, वहाँ विभिन्न सामाजिक श्रेणियों के बीच पूर्वाग्रह, पक्षपात, और सामाजिक दूरी भी तीव्रतर पाई जाती है। ये तत्व सहकारिता एवं सहयोग की क्षमता के विकास में बाधक सिद्ध होते हैं जिसके फलस्वरूप सामूहिक प्रयत्न एवं परिश्रम संभव नहीं हो पाता और विकास में बाधा पड़ती है। भारत में विद्यमान जाति व्यवस्था ने पिछले हजारों वर्षों से सहकारिता, सहयोग और सामूहिक परिश्रम को कठिन बनाए रखा है जिससे विकास की गति मंद रही है।

2. कीनलेसाइड के मतानुसार (According to Kenleyside)–

जी हैम्बिग (G. Hambidge) द्वारा संपादित पुस्तक "Dynamic of Development" में कीनलेसाइड ने अपने एक लेख में विकासशील समाजों में विद्यमान विकास संबंधी समस्याओं का विश्लेषण किया है। कीनलेसाइड ने निम्नलिखित बाधाओं की ओर संकेत किया है–

1. जलवायु (Climate)
2. बीमारी (Disease)
3. सीमित साधन (Limited Resources)
4. साम्राज्यवादी विरासत (Colonial Heritage)
5. अत्यधिक जनसंख्या (Excess Population)
6. प्रतिकूल सामाजिक परंपराएं (Adeverse Social Traditions)
7. एक प्रभावशाली मध्यवर्ग की अनुपस्थिति (Absence of an Effective Middle Class)
8. पूँजी की कमी (Lack of Capital)
9. कुशल श्रम का अभाव (Lack of Skilled Labour)
10. अक्षय प्रशासन (Incompetent Administration)

2. संयुक्त राष्ट्र संघ की समीक्षानुसार–

सन् 1959 में प्रकाशित समीक्षा(Review), जिल्द सं0 5 में "What is Economic Development" शीर्षक के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O) द्वारा निम्नलिखित समस्याओं की ओर संकेत किया गया है–

1. अपर्याप्त कृषि उत्पादन।
2. अपर्याप्त आर्थिक संरचना तथा उत्पादन एवं वितरण संबंधी कारकों का अभाव।
3. जन प्रशासन में दोष एवं निर्बलता।
4. विकासशील देश की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के कारण सीमाबद्धता।
5. जनांककीय एवं सामाजिक समस्याएं।
6. बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या।
7. सामाजिक अभिवृत्तियाँ।

3. डी एस0 नाग के अनुसार–

नाग ने अपनी पुस्तक "Problem of Undeveloped Economy" में भारत के विशेष प्रसंग में विकास संबंधी सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। नाग ने जिन समस्याओं की ओर संकेत किया है, वे निम्नलिखित हैं–

1. कठोर धार्मिक अभिवृत्ति
2. जाति व्यवस्था
3. संयुक्त परिवार
4. प्राचीन संस्थाओं के प्रति रूढ़िवादी दृष्टिकोण।

5. गुन्नार मिर्डर के अनुसार–

गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक में दक्षिण एशिया के देशों में विद्यमान विकास संबंधी बाधाओं एवं समस्याओं का विश्लेषण किया है। मिर्डल ने इस क्षेत्र, विशेषतया भारत में धर्म को विकास में सबसे बड़ी बाधा माना है। मिर्डल का मत है कि दक्षिणी, पूर्वी एशिया में धार्मिक अभिवृत्ति इतनी कठोर है कि इसने समाजिक परिवर्तन, आधुनिकीकरण एवं विकास में एक प्रतिकूल और नकारात्मक कारक का कार्य किया है। मिर्डल ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि विश्व के इस क्षेत्र में जो परंपरागत और धर्म द्वारा स्वीकृत विश्वास प्रचलित हैं, वह सामान्यतया अतार्किक हैं। इसलिए इन विश्वासों ने न तो सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन दिया है और नही आधुनिकता संबधी आदर्शों एवं मूल्यों को प्रतिस्थापित होने दिया है। मिर्डाल ने लिखा है कि भारत में सामाजिक संस्तरण जो समाज

की मूलभूत विशेषता है, के पीछे धार्मिक स्वीकृति रही है। इस संस्तरण ने एक ओर आर्थिक विषमता को बढ़ावा दिया है और दूसरी ओर पंचवर्षीय योजनाओं के पर्याप्त क्रियान्वयन में समस्या करके विकास की गति को मंद कर दिया है।

विकासशील समाज की समस्याओं को मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. आर्थिक समस्याएँ
2. सामाजिक समस्याएँ
3. राजनैतिक एवं प्रशासनिक समस्याएँ
4. अन्य–इसी के अंतर्गत अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को भी सम्मिलित किया जाता है

प्रस्तुत अध्ययन में हम इन समस्याओं का विस्तृत वर्णन करेंगे जिसमें विकासशील समाज जैसे भारत आदि देश विशेष रूप से त्रस्त हैं।

1. निर्धनता की समस्या
2. बेरोजगारी की समस्याएँ
3. भिक्षावृत्ति की समस्याएँ
4. जनसंख्या विस्फोट की समस्या
5. जातिवाद की समस्याएँ
6. साम्प्रदायिकता
7. लोक जीवन में भ्रष्टाचार
8. क्षेत्रवाद
9. कृषि और भूमि संबंधी समस्याएँ
10. रूढ़ियाँ तथा धार्मिक नियोजन
11. नियोजन के प्रति उदासीनता
12. श्रम समस्याएँ

जैसा कि उपरोक्त विवेचना के आधार पर स्पष्ट है कि अनेक समाजशास्त्रियों एवं विद्वानों ने विकासशील समाज की समस्याओं की स्पष्ट व्याख्या की है। संक्षेप में विकासशील समाजों की समस्याओं को निम्नांकित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. बेराजगारी की समस्या
2. निर्धनता या गरीबी की समस्या
3. जनसंख्या आधिक्य या जनसंख्या विस्फोट की समस्या
4. भिक्षावृत्ति का विकराल स्वरूप
5. कृषि योग्य भूमि की कमी

6. सांप्रदायिकता एवं जातिवाद की समस्याएं
7. वैचारिक स्वतंत्रता की कमी या अभाव
8. राजनैतिक तथा प्रशासनिक समस्याएं
9. जनता का विकास एवं नियोजन के प्रति उदासीनता
10. आय एवं श्रम का असमान वितरण
11. जीवन स्तर अथवा रहन–सहन का निम्न स्तर
12. शिक्षा के प्रचार–प्रसार की कमी
13. क्षेत्रवाद की समस्या
14. नियति की समस्या
15. नवीन अविष्कार के प्रयोगों के प्रति उदासीनता
16. रूढ़िवादी दृष्टिकोण
17. उच्च स्तरीय मशीनों, यंत्रों एवं प्रौद्योगिकी का अभाव
18. प्रशिक्षण एवं कुशल श्रम का अभाव
19. असमानतावादी दृष्टिकोण
20. हम की भावना का अभाव

## 7.6 विकसित एवं विकासशील समाज में अंतर

विकसित एवं विकासशील समाज के अंतर को पार्सन्स ने क्रिया संबंध सिद्धांत के अन्तर्गत निश्चित संरूप विकल्प के आधार पर विकसित किया है। पार्सन्स का मानना है कि किसी भ परिस्थिति में कर्ता के सामने दो विकल्प होते हैं, जिसमें से वह एक को स्वीकार करता है तथा दूसरे को अस्वीकार करता है। यदि कर्ता ऐसा निर्णय न करें तो वह लक्ष्य को नहीं प्राप्त करता है। वैसे ये विकल्प समाज विशेष की संस्कृति द्वारा स्वीकार अथवा अस्वीकार किए जाते हैं। प्रत्येक सांस्कृतिक व्यवस्था में ये विकल्प आदर्शमूलक पहलू से संबंधित होते हैं। संरूप विकल्प पार्सन्स के अनुसार पाँच प्रकार के होते हैं।

1. परिणाम पक्षीय अथवा तात्कालिक संतुष्टि संबंध
2. स्वहित अथवा सामूहिक हित संबंधी
3. सार्वभौमिक अथवा विशेष पक्षीय
4. गुणात्मक अथवा परिणाम पक्षीय
5. विशिष्ट पक्षीय अथवा व्यापक पक्षीय

हासलिट ने पार्सन्स का संदर्भ देते हुए लिखा है कि विकासशील समाजों में आर्थिक समानो तथा सामाजिक लक्ष्यों के निर्धारण में प्रदत्त संबंध व्यवहार अपनाया जाता है। लोग अर्जन संबंधी व्यवहार

नहीं अपनाते यही कारण है कि विकासशील समाज में प्रदत्त प्रास्थिति की प्रधानता है। विकासशील समाज में विशिष्ट पक्षीय संबंधी विशेषता पाई जाती है, जबकि विकसित समाज में सार्वभौमिक पक्ष प्रधान होता है। विकासशील समाजों में लोगों का आर्थिक कृत्य व्यापक पक्षीय होता है जबकि विकसित समाजों में विशिष्ट हुआ करता है।

एस0एच0 फ्रैकिल ने अपनी पुस्तक "The Economic Impact on Underdeveloped Countries" में स्पष्ट किया है कि विकासशील समाजों के जनसाधारण की इच्छाओं एवं प्रत्याशाओं पर विकसित देशों की आय तथा उपभाग के स्तर का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ रहा है और विकासशील समाजों का जनसाधारण उसी जीवन स्तर की मनोकामना कर रहा है जो पाश्चात्य समाजों में प्राप्त किया जा चुका है। विकसित एवं विकासशील समाज में अंतर को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. विकसित समाज की अधिकांश जनसंख्या विभिन्न प्रकार के औद्योगिक कारखानों एवं उद्योग धंधों पर कार्यरत होते हैं जबकि विकासशील समाज में जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि कार्यों पर आधारित होते हैं।
2. विकसित समाज में जनसंख्या घनत्व कम पाया जाता है जबकि विकासशील समाज में जनसंख्या के घनत्व में असमानता पाई जाती है।
3. विकसित समाज में प्रति व्यक्ति आय अधिक होती है जबकि विकासशील समाज में प्रति व्यक्ति आय निम्न होती है या काफी कम होती है।
4. विकसित समाज में प्रति व्यक्ति आय की दर उच्च होने के कारण व्यक्ति के जीवन स्तर का ढंग प्रायः उच्च होता है, जबकि विकासशील समाज में प्रति व्यक्ति आय कम तथा असमान होने के कारण जनसंख्या का जीवन स्तर प्रायः निम्न पाया जाता है।
5. विकसित समाज में नियोजन की प्रक्रिया काफी तीव्र होती है, जिससे उत्पादन क्षमता में तीव्रता से बढ़ोत्तरी होती है जबकि विकासशील समाज में नियोजन की प्रक्रिया की गति धीमी होने की वजह से विकास की प्रक्रिया तथा उत्पादन क्षमता भी धीमी गति से होती है।
6. विकसित समाज में नित नए उपकरणों तथा नए अविष्कारों के कारण कृषि में उत्पादन क्षमता में निरंतर वृद्धि होती रहती है जबकि विकासशील समाजों में परंपरागत कृषि शैली के कारण उत्पादन क्षमता में वृद्धि नहीं हो पाती।
7. विकसित समाजों में सुदृढ़ शिक्षा व्यवस्था पाई जाती है जिससे इन समाजों में साक्षरता की उच्च दर पाई जाती है जबकि विकासशील समाज में शिक्षा व्यवस्था उचित न होने के कारण साक्षरता–दर का प्रतिशत भी काफी कम पाया जाता है।
8. विकसित समाज में उत्पादित वस्तुओं के आयात एवं नियति की प्रक्रिया उच्च होती है जबकि विकासशील समाजों में आयात–निर्यात की प्रक्रिया काफी निम्न होती है।

9. विकसित समाज में महिलाओं की प्रास्थिति काफी उच्च पाई जाती है। जबकि विकसशील समाज में परंपरागत जीवन शैली होने के कारण महिलाओं की प्रास्थिति निम्न पाई जाती है।

10. विकसित समाज में नियंत्रण के साधन कठोर एवं सुदृढ़ होने के कारण कानून को विशेष महत्व दिया जाता है जबकि विकासशील समाज में नियंत्रण के औपचारित साधन जैसे धर्म, परंपराएं तथा रीति–रिवाज का महत्व अधिक होने के कारण कानूनों की महत्ता प्रायः कम पाई जाती है।

11. विकसित समाज में कर्म को विशेष महत्व दिया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप अर्जित प्रास्थिति का विशेष महत्व होता है जबकि विकासशील समाज में आज भी प्रदत्त प्रास्थिति का विशेष महत्व होता है।

12. विकसित समाज वास्तव में प्रौद्योगिकीय समाज माना जाता है जबकि विकासशील समाज में प्रौद्योगीकरण इसे अविकसित एवं अप्राप्त माना जाता है।

## 7.7 विकसित एवं विकासशील देश में नगरीकरण की प्रक्रिया

नगरीकरण का तात्पर्य नगर निर्माण एवं नगरों की वृद्धि की एक प्रक्रिया है। वास्तव में नगरीकरण को अगर सरल शब्दों में परिभाषित किया जाए तो ग्रामीण जनसंख्या का नगरीय क्षेत्रों में जाना तथा नगरीय विशेषताओं को धारण करना ही नगरीकरण है। थामसन वारन ने इस संबंध में कहा है कि ''यह ऐसे समुदायों के व्यक्तियों का जो प्रमुख रूप से या पूर्णरूप से कृषि से जुड़े हुए हैं। उन समुदायों में जाना है जो साधारणतया (आकार) में उनसे बड़े हैं और जिनकी गतिविधियाँ मुख्य रूप से सरकार, व्यापार उत्पादन या इनसे संबंद्ध कारोबारों पर केन्द्रित हैं।

इसी प्रकार एन्डरर्सन का मानना है कि नगरीकरण एक तरफा प्रक्रिया न होकर दुररफा प्रक्रिया है। इसमें केवल गाँवों से शहरों में जाना नहीं होता परंतु इसमें प्रवासी के दृष्टिकोणों, विश्वासों, मूल्यों और व्यवहारों के स्वरूपों में भी परिवर्तन होता है।

उन्होनें नगरीकरण की पाँच विशेषताओं का उल्लेख किया है।[17]

1. मुद्राअव्यवस्था
2. सरकारी प्रशासन
3. सांस्कृतिक परिवर्तन
4. लिखित अभिलेख
5. अभिनव परिवर्तन

नगरीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय सामाजिक संस्थाओं का स्वरूप भी बदल रहा है। इसके कारण संस्थाएं अनौपचारिक स्वरूप धारण कर रही हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक है। यही कारण है कि विकासशील देश आज आधुनिकीकरण की प्राप्ति के लिए नगरीकरण को प्रश्रय दे रहे हैं।

**नेल्सन एडरसन** का मानना है कि जीवन के मार्ग के रूप में शहरीपन केवल शहरों एवं कस्बों तक ही सीमित नहीं हैं। यद्यपि दूसरा विकास विशाल नगर केद्रों में भी होता है। यह व्यवहार का ढंग है। जिसका अर्थ है कि कोई भी अपने विचारों तथा आचरण से शहर बन सकता है। भले ही निवास एक गाँव में करता है। दूसरी ओर एक अत्यंत अशहरीकृति शक्ति शहर के एक अति नगरीकृत क्षेत्र में निवास कर सकता है।

प्रमुख समाजशास्त्री **विरेन्द्र सिंह** का मानना है कि विकासशील देशों (जैसे भारत आदि) की यह विशेषता है कि वहाँ कभी–कभी या तो तीव्र गति से अथवा धीमी गति से नगरीकरण की प्रक्रिया कार्य करती है, जिसके कारण समाज का एक पहलू प्रभावित होता है तो अन्य पूर्ववत बने रहते हैं। ऐसा भी अनुभव किया जाता है कि वह भाग जो परिवर्तित हो रहा था। स्थिर अवस्था में तब तक बना रहता है। जब तक कि अन्य भाग उसकी बराबरी में नहीं आ पाते। अविकसित राष्ट्र जहाँ नगरीकरण की प्रक्रिया को अब कार्यशील माना जाता है। उसकी तुलना पश्चिमी देशों में हो रहे नगरीकरण से की जाती है भारत वर्ष में नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण केवल नगरों में जनसंख्या की वृद्धि हो। विशेष उल्लेखनीय नहीं है अपितु नए–नए स्थान भी नगरीय विशेषताओं को धारण कर लेते हैं। आज इस ब्रह्मांड में जो विश्वव्यापी नगरीकरण की प्रक्रिया कार्यशील है उसकी कई विशेषताएँ होनी चाहिए। संभवतः इन्हीं विशेषताओं की प्राप्ति के लिए विकासशील देश नगरीकरण की प्रक्रिया को अपना रहे हैं। दूसरी ओर विकासशील राष्ट्रों को विदित है कि इन विशेषताओं की प्राप्ति व पश्चिमी देशों की नगरीकरण के कारण ही संभव हो सकती है।

विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया विकास की मौजूदा प्रवृत्तियों पर निर्भर करती है। किंतु यह भी वास्तविकता है कि विकसित देशों की तुलनात्मक रूप में विकासशील देशों की अपेक्षा विकास की प्रक्रिया कम है ऐसा माना जाता है कि नगरीकरण का स्तर विकसित और विकासशील देश में एक बहुत बड़ अंतर आय वृद्धि है। 1960 के दशक में 35 देशों में लगभग प्रति व्यक्ति आय 2 डालर प्रति दिन थी जबकि नगरीकरण 15% था जबकि 2010 के दशक में 254 देशों की आय लगभग समान ही थी। जबकि नगरीकरण की दर लगभग 30% थी। अतः स्पष्ट होता है कि राजस्व तो स्थित है परंतु नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि हो रही है।

विकासशील देशों के यदि बड़े नगरों को देखा जाए तो यहाँ की आबादी न्यूयार्क या पेरिस के बड़े नगरों के समान ही है किंतु आय के स्तर में काफी असमानता पाई जाती है, जिसका प्रमुख कारण ग्रामीण जनता का शहरी प्रवजन प्रमुख है। विकासशील देशों में वर्तमान समय में कई नगर तीव्र गति से विकास कर रहे हैं तथा उत्पाद का स्तर भी उच्च है, किंतु ग्रामीण प्रवजन इस विकास की दर में असमानता लाने में एक प्रमुख भूमिका का निर्वहन कर रहा है, क्योंकि नगरों में प्रवजन के पश्चात् इन ग्रामीण जनता का एक रूप समूह नहीं होता जो नगरीय जीवन में कई समस्याओं को जन्म देता है। 2006 से 2011 के पाँच सालों के आंकड़ों को यदि देखा जाए तो लगभग 20 लाख से अधिक ग्रामीण जनसंख्या नगरों की ओर प्रवजन करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने विकसित एवं विकासशील दोनों समाजों को एक नए स्वरूप में ढालने का प्रयास किया है, जिसमें एक ओर विकास की दर एवं प्रति व्यक्ति आय को तो बढ़ावा मिला है। वही दूसरी ओर असमानताओं के बावजूद प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई है।

## 7.8 विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण उत्पन्न प्रमुख समस्याएं

विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण की समस्या को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. **मलिन बस्तियों में वृद्धि–** विकासशील देशों में प्रमुख समस्या उभर कर सामने आती है वह है प्रवजन के द्वारा जनसांख्यिकीय बदलावों का आाना ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवजन के दौरान प्रायः युवा पुरुष नगरों की ओर रोजगार के अवसरों की तलाश में आते हैं। नगरीय जीवन के सीमित साधन नए प्रवासियों का सामना प्रायः नहीं कर पाते जिससे आवास एवं सुख–सुविधाओं की कमी के कारण झुग्गी–झोपड़ियों एवं मलिन बस्तियों का तीव्रता से निर्माण होने लगता है जो कई नई समस्याओं को जन्म देती है। जैसे अपराध, आत्महत्या, नशाखोरी, ड्रग्स, मृत्यु दर और शिशु दर की अधिकता आदि।
2. **बेरोजगारी–** विकसित एवं विकासशील देशों की आर्थिक समस्याओं में बेरोजगारी एक प्रमुख समस्या मानी जाती है। इन दोनों क्षेत्रों में काम की अनियमितता तथा आय असमानता प्रमुख है। कई विकसित देशों को असुरक्षित आर्थिक वृद्धि से एक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, जिससे उद्योगों में विशेषकर पारंपरिक उद्योगों में भारी गिरावअ देखने को मिलती है। जिससे मंदी के दौर में कर्मचारियों की संख्या कम करने से कई बार बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होने लगती है।
3. **पर्यावरणीय समस्या–** विकसित देशों में पर्यावरणीय समस्याएं विकासशील देशों की तुलना में सर्वाधिक पाई जाती हैं, अनेक उद्योग–धंधों, उच्च यंत्रों से सुसज्जित कारखानों, यातायात के साधन आदि से पर्यावरणीय प्रदूषण को सर्वाधिक बढ़ावा मिला है, जिससे स्वास्थ्य संबंधी कई प्रकार की समस्याओं का जन्म हुआ है। जिसे परिणामस्वरूप श्वसन, हृदय संबंधी बीमारियाँ तथा फेफड़े के कैंसर में तीव्रता से वृद्धि हुई है, अतः यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होती कि नगरीकरण की प्रक्रिया ने जल, वायु, ध्वनि तथा जलवायु प्रदूषण को बढ़ाने में एक प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है।
4. **पेयजल की समस्या–** नगरीकरण के कारण विकसित एवं विकासशील देशों में एक प्रमुख समस्या पीने के पानी की कमी है। कारखानों से निकलने वाले औद्योगिक अपशिष्ट को प्रायः नदी, नालों एवं समुद्र में विसर्जित कर दिया जाता है जिससे प्रायः नदी का जल दूषित हो जाता है। तत्पश्चात् वही जल आपूर्ति की जाती है। जो वर्तमान में कई देशों की जनता के स्वास्थ्य के लिए एक प्रमुख खतरा बन गया है।
5. **जलवायु परिवर्तन–** नगरीकरण तथा औद्योगीकरण ने विकसित एवं विकासशील दोनों देशों के जलवायु को परिवर्तित कर दिया है। औद्योगिक क्षेत्रों की वहुलता के कारण वायुमंडल का ताप अत्यधिक बढ़ गया है जो तीव्रता से बढ़ता जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचने वाली अधिकांश सौर ऊर्जा वनस्पति एवं मिट्टी के पानी को वाष्पीकरण कर देती है। शहरों में जहाँ कम वनस्पति और मिट्टी होती है अधिकांश सूर्य की ऊर्जा को इमारतों और डामर द्वारा अवशोषित कर लेती है। उच्च सतह के तापमान के लिए अग्रणी वाहन कारखानों और औद्योगिकरण और घरेलू ताप ओर कूलिंग इकाइयाँ भी अधिक गर्मी जारी करती हैं।
6. **खाद्य असुरक्षा–** जुलाई 2013 की संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक मामलों की एक रिपोर्ट के अनुसार जलवायु एवं पर्यावरणीय परिवर्तन से 2050 तक 2.4 बिलियन से अधिक लोगों को खाद्य असुरक्षा का सामना करना पड़ सकता है। संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों के मुताबिक पर्यावरणीय परिस्थितियों में बदलाव और शहरी क्षेत्रों की बढ़ती आबादी का मिश्रण बुनियादी स्वच्छता प्रणालियों और स्वास्थ्य देखभाल पर रोग लगाएगा और संभवतः एक मानवीय और पर्यावरणीय आपदा पैदा करेगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विकास एक ऐसे परिवर्तन को लक्षित करता है जो प्रगति की ओर सदैव उन्मुख होते हैं, किंतु यह भी सत्य है कि विकास किसी समाज में सकारात्मक भी हो सकता है और नकारात्मक भी। नगरीकरण की प्रक्रिया के संदर्भ में भी कहा जा सकता है कि चाहे विकसित देश हो या विकासशील देश दोनों ही समाजों में नगरीकरण ने जहाँ पर विकास के कई नवीन मार्गों को प्रशस्त करके समाज को एक नई दिशा प्रदान की है वही दूसरी ओर कई प्रकार की समस्याओं को भी जन्म दिया है।

## 7.9 सारांश

संपूर्ण विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीकरण की प्रक्रिया से समस्त विश्व अछूता नहीं है। चाहे वह विकसित समाज या देश हो या विकासशील समाज या देश। दोनों ही देश नगरीकरण की प्रक्रिया तथा विशेषताओं को अपना रहे हैं। वास्तव में नगरीकरण आर्थिक विकास से जुड़ी हुई एक प्रक्रिया है, जो उत्पादक क्षमता को बढ़ाकर उद्योगों एवं सेवाओं की हिस्सेदारी को भी बढ़ावा देता है, नगरीकरण की प्रक्रिया ने विकसित एवं विकासशील दोनों देशों में विकास की वृद्धि दर को तो तीव्र किया है किंतु कई समानताओं के बावजूद मौलिक अंतर को भी स्पष्ट किया है। जिससे प्रमुख रूप से प्रति व्यक्ति आय में असमानता, जीवन प्रत्याशाओं में मौलिक असमानता तथा समाज के प्रत्येक क्षेत्र में मौलिक असमानताएँ आदि प्रमुख हैं।

विकसित एवं विकासशील इन दोनों ही देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया ने प्रगति, विकास एवं उन्नति की दिषा को उन्नत किया है वहीं दूसरी ओर कई प्रकार की समस्याओं को भी जन्म दिया है, जिसमें प्रमुख रूप से मलिन बस्तियों का निर्माण, वेतन असंगतियाँ, स्वास्थ्य से संबंधित कई गंभीर बीमारियाँ, बेराजगारी, अपराध, बाल अपराध, वेश्यावृत्ति, ड्रग्स, नशाखोरी, मद्यपान, पर्यायावरणीय प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, जल प्रदूषण तथा खाद्य असुरक्षा आदि प्रमुख हैं।

## 7.10 बोध प्रश्न एवं लघु प्रश्नावली

### 1. बोध प्रश्न

सत्य/असत्य

1. विकसित समाज में साक्षरता दर अधिक होती है– सत्य/असत्य
2. विकसित एवं विकासशील दोनों देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया समान रूप से होती है– सत्य/असत्य
3. विकासशील देश में जनसंख्या को आधिक्य होता है– सत्य/असत्य
4. विकासशील समाज में रोजगार के अवसरों की प्रचुरता होती है– सत्य/असत्य
5. विकसित समाज में प्रत्याशाओं का उच्च स्तर होता है– सत्य/असत्य

**उत्तर**

**1. सत्य, 2. सत्य 3. सत्य, 4. असत्य, 5. सत्य।**

### लघु प्रश्नावली

1. विसित समाज किसे कहते हैं।
2. विकासशील समाज किसे कहते हैं।
3. विकासशील समाज की परिभाषाएं लिखिए।
4. विकसित एवं विकासशील समाज में अंतर।

5. एन्डरर्सन द्वारा लिखित नगरीकरण की पाँच विशेषताओं का उल्लेख करिए।
6. विकसित एवं विकासशील समाज की विशेषताए।

## 7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकसित एवं विकासशील समाज को परिभाषित कीजिए?
2. विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया?
3. विकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं का सविस्तार उल्लेख कीजिए?
4. विकासशील समाज की प्रमुख समस्याओं को अलग–अलग समाजशास्त्रियों के विचारों के अनुसार परिभाषित कीजिए?
5. विकसित समाजों में नगरीकरण की प्रक्रिया का उल्लेख करिए?

ईकाई– 8

# पूर्व औद्योगिक, औद्योगिक, उत्तर औद्योगिक एवं औपनिवेशिक नगर
# (PRE-INDUSTRIAL, INDUSTRIAL, POST-INDUSTRIAL AND COLONIAL CITY)

इकाई की रुपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 पूर्व औद्योगिक नगरीय वर्गीकरण

- 8.2.1 पारिस्थितिकीय व्यवस्था
- 8.2.2 राजनीतिक व्यवस्था
- 8.2.3 अर्थव्यवस्था का ढांचा
- 8.2.4 निष्कर्ष

8.3 औद्योगिक नगर

- 8.3.1 कार्य के तरीके
- 8.3.2 गतिशीलता एवं भंगुरता
- 8.3.3 अवैयक्तिक सामाजिक संवाद
- 8.3.4 समय एवं गति का दबाव
- 8.3.5 पारिवारिक जीवन एवं व्यक्ति
- 8.3.6 मानवनिर्मित शहरी पर्यावरण
- 8.3.7 उद्योगवाद का अर्थ
- 8.3.8 औद्योगिक नगरों की विशेषताएं
- 8.3.9 निष्कर्ष

8.4 उत्तर औद्योगिक नगर

8.5 औपनिवेशिक नगर

8.6 नव औपनिवेशिक नगर

8.7 अभ्यास प्रश्न

8.8 संदर्भ ग्रन्थ

## 8.0 उद्देश्य (Objectives)

यह अध्ययन आपको पूर्व औद्योगिक नगर (Pre-industrial City), औद्योगिक नगर (Industrial City), उत्तर औद्योगिक नगर (Post-industrial ) औपनिवेशिक नगर (Colonial City) अर्थ और अंतर समझने में सहायता करेगा।

## 8.1 प्रस्तावना (Introduction)

शहरों की सामाजिक संरचना को समझने के लिए हमें नगरीय स्वरूपों के विकास, पूर्व औद्योगिक नगरों में समय के साथ आए बदलावों पर नजर डालना आवश्यक होता है। इसके बाद हम यूरोप में नगरीकरण की ओर बढ़ते हैं और औद्योगिक क्रांति का मूल्यांकन कर पाते हैं। औद्योगिक क्रांति के कारण ही औद्योगिक नगरों का विकास हुआ है। औद्योगिक नगर सामाजिक संरचनाओं में भी बदलाव लाते हैं। उदाहरण के लिए श्रम का वर्गीकरण, सामाजिक स्तरों का विभाजन, संस्कृति आदि। पूर्व औद्योगिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में परिवर्तन का विस्तार नये शहरी केंद्रों की तरफ होना लोगों के अनुभवों, जीवनशैली और परिस्थितियों में बदलाव के लिहाज से निस्संदेह क्रांतिकारी था। यह इकाई आपको उत्तर औद्योगिक और औपनिवेशिक नगरों के बारे में भी जानकारी उपलब्ध करा सकेगा। उत्तर औद्योगिक नगर शहरीकरण के मौजूदा पैटर्न से संबद्ध हैं। वर्तमान में शहरीकरण का सर्वाधिक विकास दक्षिणी गोलार्द्ध के निर्धन देशों में और भारत व चीन जैसी उभरती वैश्विक शक्तियों में नजर आता है। अध्याय के अंत में हम औपनिवेशिक नगरों पर भी चर्चा करेंगे। इसके अंतर्गत शहरीकरण की प्रक्रिया पर उपनिवेश काल के प्रभाव को भी समझेंगे।

## 8.2 पूर्व औद्योगिक नगरीय वर्गीकरण (The Pre-Industrial City Typology)

गिडियन होबर्ग ने शहरों का वर्गीकरण किया है, जिसमें पूर्व औद्योगिक नगरों को एक प्रकार बताया गया है। वह किसी नगर में औद्योगीकरण के बाद आए बदलावों से पूर्व की विशेषताओं का उल्लेख करते हैं। होबर्ग स्पष्ट करते हैं कि दुनियाभर के वे नगर जो पूर्व औद्योगिक दायरे में आते हैं, एकसमान विशेषता और कारकों वाले होते हैं। इनमें सर्वप्रथम है तकनीक का मनुष्य और पशुओं पर आधारित होना। दूसरा, अवैयक्तिकता का नहीं होना और जन्मजात पहचान की सामाजिक व्यवस्था। तीसरी पहचान यह थी कि इन शहरों में शासक अभिजात्य वर्ग और शेष आबादी के बीच विभाजन स्पष्ट नजर में आता है। होबर्ग पूर्व औद्योगिक नगरों की अलग तरीके से तस्वीर पेश करते हैं। वह बताते हैं कि ये नगर प्राथमिक तौर पर राजकीय और धार्मिक केंद्रों के तौर पर पहचान रखते थे, व्यापारिक गतिविधियां इसके बाद आती थीं। कार्यों में विशेषज्ञता बेहद सीमित थी और वस्तुओं का उत्पादन पशुओं एवं मनुष्यों की शक्ति ( Animat) पर निर्भर करता था। श्रम का विभाजन बेहद सीमित होता है और दस्तकार उत्पादन के हर चरण में स्थान रखते थे। कार्यों का निष्पादन पारंपरिक तरीकों से ही करने की अवधारणा मजबूत थी, जबकि सामाजिक व्यवस्था आविष्कारों को बढ़ावा देने की पक्षधर नहीं थी। उपलब्धियों के बजाय जन्मजात गुणों को महत्व दिया जाता था, इसके तहत किसी व्यक्ति के लिए वही कार्य निहित था, जिस कर्म को करने वाले परिवार में उसका जन्म हुआ हो। इससे कोई व्यक्ति नगर के विशेष निर्धारित हिस्से में ही अपना काम और जीवनयापन करता था और ऐसा कम ही देखा जाता था कि कोई व्यक्ति सामाजिक नियंत्रण के इस दायरे से बाहर निकलता हो। लोग एक दूसरे से भलीभांति परिचित होते थे और मजबूत सगोत्रीय, सजातीय नियंत्रण से बंधे रहते थे। परिणामतः सार्वभौमिकता के स्थान पर स्थानीयता या व्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाता था। पूर्व औद्योगिक नगरों में न्याय भी इस पर निर्भर नहीं करता था कि किसी ने क्या किया है, बल्कि इससे तय होता था कि उसकी पहचान, परिवार क्या है। संक्षेप में पूर्व औद्योगिक नगरों में जन्मजात महत्व को उपलब्धियों पर और व्यक्तित्व या स्थानीयता को वैश्विकवाद पर अधिक महत्व दिया जाता था। वर्ग और जातीय व्यवस्था लचीली नहीं थी, जबकि शिक्षा अमीरों का विशेषाधिकार थी।

### 8.2.1 पारिस्थितिकी व्यवस्था (Ecological Organization)

होबर्ग बताते हैं कि पूर्व औद्योगिक नगरों का अस्तित्व भोजन एवं अन्य कच्चे माल पर निर्भर था, जिसके लिए वहां छोटे बाजार थे। उन्होंने पाया कि सभी पूर्व औद्योगिक नगरों में पारंपरिक समूहों और पृथक्कृत समूहों के बीच कड़ा विभाजन था। कई जगह तो ऐसे समूहों को चहारदीवारी के बाहर या गेटों पर ताले लगाकर रखा जाता था, ताकि वे पारंपरिक समाज तक न पहुंच सकें। औपनिवेशिक नगरों में भी साथ रहने वाले अलग–अलग समूहों के बीच परस्पर घृणा–द्वेष रहता था। व्यवसाय उस परंपरा का परिणाम था, जिसमें जन्म के आधार पर ही व्यक्ति का कर्म तय कर लिया जाता था। सामाजिक वर्गीकृत ढांचे और मान्यताओं के कारण इन नगरों में पारिस्थितिकी विभाजन के विभिन्न पहलू सामने आते हैं। इस वजह से समाज में मुख्यतः दो श्रेणियां उभरती हैं, पहली शिक्षित अभिजात्य वर्ग जो सभी मुख्य शक्तियों पर अधिकार रखते हैं और दूसरा अशिक्षित आबादी। पूर्व औद्योगिक नगरों में मध्यमवर्ग की कोई अवधारणा नहीं थी, क्योंकि उस दौर में ऐसे कोई पद, कार्य थे ही नहीं, जिनमें यह वर्ग आगे बढ़ पाता। इन नगरों में लोगों को मालूम था कि उनका स्थान, पहचान क्या है और वे उसी हिसाब से जीवन जीते थे। होबर्ग बताते हैं कि वंश परंपरा में संबंध आयु और लिंग के आधार पर तय किए जाते थे। कम उम्र के बच्चे, किशोर–युवा माता–पिता और अन्य वयस्कों से संबद्ध रहते थे। शक्ति और आयु का महत्व जातीय व्यवस्था से भी जुड़ा था, क्योंकि अधिकतर मामलों में देखा जाता था कि किसी परिवार–वंश में अधिकार पिता से पुत्र को –विशेषतः सबसे बड़े पुत्र को– हस्तांतरित होते थे। महिलाओं की भूमिका सहायक के तौर पर ही थी, वे पहले पिता और बाद में पति के साथ इसका निर्वहन किया करती थीं।

### 8.2.2 राजनीतिक व्यवस्था (Political Organization)

पूर्व औद्योगिक नगरों में परंपरागत रूप से समान कर्म वाले लोगों –उदाहरण के लिए बुनकर, लोहार आदि शिल्पी– के संघों और वित्तीय संस्थाओं का राजनीतिक असर रहता था। होबर्ग पाते हैं कि भिखारी और चोर भी सामूहिक रूप से व्यवस्थित रहा करते थे। इन समूहों का मूल्यों के निर्धारण, किसी व्यवसाय पर आधिपत्य रखने का एकाधिकार सा चलता था। ऐतिहासिक रूप से इन समूहों (Guilds) को आधुनिक राजनीतिक दलों का पूर्ववर्ती स्वरूप माना जा सकता है। पूर्व औद्योगिक नगरों में ये समूह ऐसे कार्यों से भी जुड़े रहते थे, जो वित्तीय गतिविधियों से संबद्ध न हों। उदाहरण के लिए उनके अपने पैतृक, पारंपरिक संत, देव हुआ करते थे जिनके लिए वे धार्मिक पर्वों का आयोजन करते थे।

### 8.2.3 अर्थव्यवस्था का ढांचा (The Economic Organization)

पूर्व औद्योगिक नगर सामाजिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप विकसित होते थे, जिनें न तो तकनीक का समावेश था, न ही आर्थिक उत्पादन बढ़ाने के कोई मानक। लोगों और सामान के परिवहन का साधन या तो पैदल ही चलना था या फिर घोड़ागाड़ी और इसी तरह के अन्य साधन। शासकों, धर्म और जाति के नियमों का पालन करना सबका दायित्व सा था। नगर दरअसल, राजनीतिक, प्रशासकीय और धार्मिक केंद्रों के तौर पर किलों के रूप में विकसित हुए थे। बाजार और हस्तशिल्प ही व्यापार एवं उद्योग के परिचायक थे। होबर्ग बताते हैं कि पूर्व औद्योगिक नगरों की संरचना कुछ ऐसी थीः

1. नगर का केंद्रीय इलाका सार्वजनिक भवन या धार्मिक केंद्रों के लिए उपलब्ध कराया जाता था। मुख्य बाजार भी यहां होता था, लेकिन उसका स्थान शहर के केंद्र या ऐसी जगह नहीं था, जिसे भूभाग के लिहाज से बेहतर माना जा सके।

2. नगर पारंपरिक और जातीय समूहों के आधार पर कार्य के लिहाज से विभाजित था। अधिकतर व्यापारी और हस्तशिल्पी अपने घरों में रहकर ही काम किया करते थे।
3. पूर्व औद्योगिक नगरों में भूउपयोग को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था। इसके चलते वित्तीय, शिल्प और आवासीय सुविधाएं जहां–तहां अवस्थित थीं।

**बॉक्स 1: होबर्ग के अनुसार पूर्व औद्योगिक नगरों के गुण**

**1. शक्ति का निर्जीव आधार 2. दासों, श्रमिकों पर निर्भरता 3. नगरों की कम आबादी 4. कुल जनसंख्या के हिसाब से नगरों का बहद छोटा अनुपात 5. नगरों का चहारदीवारी के भीतर होना 6. नगरों में आंतरिक दीवारों का निर्माण 7. अभिजात्य जागीरदारों का आधिपत्य 8. अभिजात्यों की जीवनशैली में अंतर 9. अभिजात्य वर्ग में दखलंदाजी नहीं कर पाने की व्यवस्था 9. अभिजात्यों के बेहद बड़े घर और भूखंड 10. अभिजात्य वर्ग सुविधाभोगी था और उद्योग, वित्त से अधिक संबंधित नहीं रहता था 11. अभिजात्य वर्ग की महिलाएं कामकाज से दूर रहती थीं, सुस्त–आलसी थीं 12. शिक्षा अभिजात्य वर्ग तक ही सीमि थी 13. व्यापारी वर्ग को अभिजात्य से अलग रखा जाता था 14. व्यापारियों को विदेशी माना जाता था और उन पर विधर्मी विचारों को बढ़ाने का संदेह किया जाता था 15. सफल व्यापारी अपने धन का उपयोग अभिजात्य पहचान हासिल करने में करते थे 16. नगर की तीन श्रेणियां थीं 17. समाज का एक मुख्य शासक था 17. ठोस जातीय ढांचा 18. कपड़े पहनने, बातचीत का तरीका और अन्य व्यवहार वर्गीकरण के हिसाब से तय होते थे 19. शिल्पियों और व्यापारियों के संघों की मौजूदगी 20. समय का निर्धारण अनियमित था 21. विश्वास करने, श्रेय देने की व्यवस्था नहीं थी 22. केंद्र से दूर आवासीय व्यवस्था घटती जाती थी 23. अभिजात्य वर्ग नगर के केंद्र पर अधिकार रखते थे 24. नगर के केंद्रों को विशेष प्रतीकों से पहचाना जा सकता था 25. बहिष्कृत समाज शहर से बाहर, जबकि पारंपरिक केंद्र के भीतर रहता था 26. काम के आधार पर आवासीय क्षेत्रों का निर्धारण 27. भू उपयोग के विशेषज्ञ वर्गीकरण का अभाव**

**स्रोतः होबर्ग (1960), रेडफोर्ड (1979)**

()

❖ Existence of an outcast group City centre has symbolic sites ❖ Outcasts are located on the urban periphery ❖ Part-time farmers on the periphery ❖ Ethnic quarters within the city ❖ Residential areas are differentiated by occupation ❖ Lack of functional specialization of land use❖ Lack of functional specialization of land use

### 8.2.4 निष्कर्ष (Conclusion)

पश्चिमी और अन्य देशों के पूर्व औद्योगिक पुराने और नये नगरों के अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि इन नगरों में सामाजिक विभाजन, परिवार–जातीय संबंध, राजनीतिक व्यवस्थाओं, धर्म, शिक्षा–संचार का अलग गुणात्मक सिस्टम था। व्यक्तिगत और वित्तीय गतिविधियों को इन नगरों में कम महत्व दिया जाता था, इसके चलते उत्पादन संबंधी क्रियाकलापों को सामाजिक स्तर पर बेहद कम ही प्रोत्साहन मिलता था। धार्मिक और राजनीतिक गतिविधियों को नियंत्रित करने वाले अभिजात्य वर्ग के लिए वित्तीय कार्यों से जुड़ना सीमाओं से बाहर जाने जैसा माना जाता था। धार्मिक और राजनीतिक व्यवस्था परंपराओं, रीतियों के संरक्षण को समर्पित थी। राजनीतिक व्यवहार वंश–पद के अनुक्रम में चलता था और परिवार व सामाजिक स्थिति के आधार पर तय होता था। जादू–टोना जैसे विश्वासों पर आधारित धार्मिक मान्यताओं की आम जीवन में गहरी पैठ थी। संक्षेप में, पूर्व औद्योगिक सामाजिक व्यवस्था दृढ़, परंपराबद्ध और वित्तीय उत्पादन कार्यों से विलग थी। यद्यपि पूर्व औद्योगिक नगरों में वैश्विक व्यवस्था का अभाव

था, फिर भी इनके स्वतंत्र इकाइयों के रूप में पहचान थी। ऐसे नगरों का एक–दूसरे से सामीप्य होने के बावजूद सामाजिक संवाद की स्थिति अधिक बेहतर नहीं थी। पूरा नगर विविधतापूर्ण भले ही हो सकता था, लेकिन इसमें रहने वाले समूहों के बीच सामाजिक संवाद और संपर्क का सर्वथा अभाव था।

## 8.3 औद्योगिक नगर (The Industrial Cities)

किसी नगर की नगर के तौर पर पहचान की वजह सिर्फ साथ रहने वाली आबादी की विविधता से ही नहीं होती, बल्कि काम के अधिक मौके और विभिन्न तरह के कार्यों की उपलब्धता भी इसका बड़ा कारक है। जनसंख्या घनत्व किसी नगर को नहीं बनाता है, बल्कि जनसंख्या का अर्थपूर्ण ढांचे में व्यवस्थित होना नगर का परिचायक है (Anderson, N. 1964 : pp.134)। नगर के गुणों को हम निम्नवत समझेंगेः

### 8.3.1 कार्य के तरीके (Ways of Work)

नगरों में कार्य का सीधा अर्थ औद्योगिक कार्यों से लगाया जाता है, लेकिन यह सिर्फ फैक्ट्री के कार्यों से ही संबंधित नहीं होता। वित्त, परिवहन, यातायात, संचार और कई अन्य सेवाएं भी इसमें शामिल होती हैं। मुख्यतः खेती से इतर सभी कार्य नगरीय कार्यों के विभिन्न प्रकारों में शामिल किए जा सकते हैं। इन नगरों में स्थित कार्यक्षेत्रों में काम करने वालों की क्षमता में बढ़ावे के लिए मशीनों के उपयोग और तकनीकी तरीकों के इस्तेमाल की अवधारणा है।

### 8.3.2 गतिशीलता एवं भंगुरता (Mobility and Transiency)

नगरों में लोगों का आना–जाना लगातार बना रहता है। इसके अलावा एक शहर से दूसरे शहर के बीच भी लोगों के आने–जाने का सिलसिला रहता है। इस आवागमन की बड़ी वजह लोगों में धन, शक्ति और रचनात्मकता के बेहतर अवसर तलाश करने की उम्मीद होती है। लोगों की यह गतिशीलता नगरों के अधिक से अधिक औद्योगिक होने की वजह बनती हैं, जबकि नगरों का औद्योगीकरण भी शहरों के बीच गतिशीलता को बढ़ावा देता है। इसके अलावा एक ही नगर में गतिशीलता का एक उदाहरण लोगों को बेहतरी की आस में अपनी नौकरी में बदलाव करना है। इस तरह की गतिशीलता व्यावसायिक गतिशीलता कहलाती है। यह गतिशीलता किसी व्यक्ति के निचले पद से उच्च पद पर शिफ्ट होने के तौर पर भी सामने आती है।

### 8.3.3 अवैयक्तिक सामाजिक संवाद (Impersonal Social Interaction)

नगरों में सामाजिक संवाद प्रायः अवैयक्तिक होता है। नगरीय जीवन में गुप्त रहने या अपरिचित होने का तत्व शामिल होता है। फिर भी नगरों में पारिवारिक सदस्यों, दोस्तों और पड़ोसियों के बीच सामूहिक संवाद की स्थिति उपलब्ध होती है। सहयोग की भावना के पैटर्न में समुदाय की व्यवस्था यहां कम दिखती है, लेकिन इस तरह की नयी व्यवस्थाओं को नेटवर्क के तौर पर जाना जाता है। इससे बड़े–संयुक्त परिवारों, पड़ोसियों की पुरानी व्यवस्था जरूर कम होती है, लेकिन मित्रता का नेटवर्क बना रहता है।

### 8.3.4 समय एवं गति का दबाव (Time and Tempo Compulsions)

औद्योगिक कार्यों की प्रकृति के कारण शहरी समाज का जीवन समयबद्ध हो जाता है। नियमितता और पाबंदी को लेकर शहरी लोगों को कई व्यवस्थागत नियमों का पालन करना अनिवार्य हो जाता है। दूसरी ओर, ग्रामीण जीवन प्राकृतिक चक्र पर निर्भर करता है, लेकिन शहरी जीवन घड़ी की सुइयों पर चलता है। उदाहरण के लिए उद्योगों में काम करने वाले लोगों के कार्य के घंटे तय होते हैं, इसी तरह परिवहन का समय तय होता है आदि।

### 8.3.5 पारिवारिक जीवन एवं व्यक्ति (Family Living and the Individual)

पारंपरिक रूप से परिवार उत्पादन और उपभोग (Production and Consumption) की इकाई है। इस इकाई में (मुख्यतः संयुक्त परिवारों में) किसी व्यक्ति की स्थिति (Status) परिवार में उसकी सदस्यता से तय होती है। औद्योगिक नगरों में संयुक्त परिवारों की व्यवस्था धीरे–धीरे ढह जाती है और एकल परिवार उभरते हैं। इसके चलते परिवार अपने कुछ पुराने कार्यों से दूर हो जाती है, जिसका असर शैक्षिक और वित्तीय स्थिति पर नजर आता है। ऐसे नगरों में प्ले स्कूल, क्रैश, डे–केयर सेंटर जैसे संस्थान संयुक्त परिवारों में निभाई जाने वाली भूमिकाओं का निर्वहन करते नजर आते हैं।

### 8.3.6 मानवनिर्मित शहरी पर्यावरण (The Man-Made Urban Environment)

शहरी पर्यावरण यांत्रिक (Mechanical) और मानवनिर्मित होता है। नगरों को अप्राकृतिक माना जाता है, क्योंकि यहां रास्ते, बाग–बगीचे, गलियां आदि जीवनोपयोगी साधनों का निर्माण और रचना मानव द्वारा ही की जाती है। पेयजल लाइनों, सीवर, बिजली सप्लाई, गैस पाइपलाइन आदि कार्यों के चलते नगरों में जनसुविधाएं जुटाने के लिए पर्यावरण में कई परिवर्तन किए जाते हैं। उदाहरण के लिए नगरों में परिवहन सुविधा भूमि पर उपलब्ध होने के अलावा भूमिगत और जमीन से ऊपर भी उपलब्ध होती है। गलियों में लोगों के सुविधाजनक तरीके से आने–जाने के लिए बिजली से रोशनी की व्यवस्था होती है, जबकि फोन लाइनें पुराने किसी भी तरीके से बेहतर संचार सुविधा मुहैया कराती हैं।

### 8.3.7 उद्योगवाद का अर्थ (Meaning of Industrialism)

उद्योगवाद का संबंध उन कार्यों से है जो किसी शहर में संपन्न किए जाते हैं। मानवीय हाथों से किया जाने वाला श्रम मशीनों की ओर स्थानांतरित हो जाता है। समय के साथ ये मशीनें भी और अधिक आधुनिक व दक्ष मशीनों से बदल ली जाती हैं। कार्यशैली को बेहतर बनाने के लिए रचनात्मक तरीकों का विकास किया जाता है। उद्योगों में अकुशल श्रम (Unskilled Labour) धीरे–धीरे समाप्त होता जाता है।

### 8.3.8 औद्योगिक शहरों की विशेषताएं (The Features of an Industrial City)

1. शहरों में बाजार की नयी भूमिका उभरी है। नगरों में एक ही तरह के सामान एक बाजार में बेचने की बाध्यता नहीं है, बल्कि यहां हर वस्तु और हर सेवा के लिए स्पेशल मार्केट विकसित होते हैं। इन बाजारों में ग्राहक स्वयं आ सकते हैं या अपनी जरूरत का सामान उपलब्ध कराने के लिए ऑर्डर बुक करा सकते हैं। नगर कई विशेष सेवाओं का भी बाजार उपलब्ध कराता है,

उदाहरण के लिए प्रकाशन, वित्त–बीमा, मशीनरी और उपकरणों के विक्रय केंद्र आदि। ये सभी सेवाएं एक–दूसरे से अलग होती हैं, लेकिन एक–दूसरे से संबद्ध भी रहती हैं।

2. औद्योगीकरण के बढ़ावे से नगरों में परस्पर निर्भरता बढ़ जाती है, लेकिन इसके साथ ही परस्पर प्रतिद्वंद्विता का भाव भी उभरता है। बड़े शहरों और छोटे शहरों में कई सेवाओं–कार्यों को लेकर जुड़ाव बना रहता है।
3. नगरों में रहने वाले लोग सामान्यतः औद्योगिक कार्यों से ही संबद्ध रहते हैं। यहां कार्य विशेष हो जाते हैं, जिसके चलते कार्य को संपन्न करने के लिए विशेषज्ञता अनिवार्यता बन जाती है। ऐसे में किसी व्यक्ति का महत्व उसके कार्य के आधार पर तय होता है, लेकिन यह अवैयक्तिक नहीं होता। इसकी वजह यह है कि उस व्यक्ति के कार्य पर दूसरे श्रमिक निर्भर करते हैं, जबकि वह स्वयं दूसरे लोगों के कार्यों पर निर्भर करता है।
4. नगरों में ग्राहक और विक्रेता के बीच होने वाले सौदों को नियमित करने के लिए विनियमन प्राधिकरण (Regulating Authority) की जरूरत होती है। प्राधिकरण की आवश्यकता वजन, माप, मुद्रा नियमन, विवादों के निस्तारण और बाजारों की स्थापना के लिए हुई। ये प्राधिकरण कार्यों को संतुलन में रखता है और सरकार की तरह व्यवस्थित रहता है। यूं तो हर स्तर पर सरकार रहती है, लेकिन मुख्य सामाजिक प्राधिकरण को स्थानीय सरकार माना जा सकता है।
5. औद्योगिक नगर सामान्यतः नियोजित होते हैं। इस योजना में गलियों के पैटर्न, पार्क, आवासीय क्षेत्र आदि विकसित किए जाते हैं। इसके अलावा औद्योगिक क्षेत्रों और सुविधाओं का विकास भी इसके तहत किया जाता है। नगरों में ऐसे लोग भी होते हैं जो बस्तियों के पुनर्वास और आवासीय कार्यक्रमों को लेकर काम करते हैं।

### 8.3.9 निष्कर्ष (Conclusion)

औद्योगिक नगरों का अर्थ ऐसे नगरों से है जो औद्योगीकरण की प्रक्रिया से जुड़े हुए हैं। पूर्व औद्योगिक नगर वे हैं, जहां औद्योगीकरण की प्रक्रिया का विकास नहीं हुआ, लेकिन उनकी व्यवस्था में कुछ दूसरे कारकों का योगदान रहा।

## 8.4 उत्तर औद्योगिक समाज (Post Industrial Society)

उत्तर औद्योगिक नगर नगरीय व्यवस्था और कारकों का उभरता हुआ सेट है जो औद्योगिक नगरों के करीब दो सदियों की कार्यशैली से इसे अलग करता है। दूसरी ओर, यह नगर पर्याप्त रूप से इतने व्यक्त नहीं हैं कि ये अपना खुद का कोई ना स्थापित या परिभाषित कर सकें। ऐसे में उत्तर औद्योगिक शब्द बताता है कि हमने विकास की कई सीमाओं को पार किया है, जबकि अब भी कई ऐसे रास्ते बाकी हैं, जो अपरिचित हैं और जिन पर आगे बढ़ना है।

उत्तर औद्योगिक शब्द का प्रयोग सबसे पहले वर्ष 1919 में भारतीय सांस्कृतिक सुधारक एके कुमारस्वामी (Gappert, 1979: 31) ने किया, लेकिन इसे लोकप्रियता हार्वर्ड के समाजविज्ञानी डेनियल बेल के 'The Coming of Post-Industrial Society:A Venture in Social Forecasting (1973)' से मिली। बेल के अनुसार उत्तर औद्योगिक समाज की अवधारणा सामान्यीकरण की है। डेनियल बेल बताते हैं कि इसके तात्पर्य को पांच कारकों या घटकों में इस समाज की कार्यशैली के जरिये सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। ये पांचों कारक निम्नवत हैं (Bell, 1973: 14):

1. **वित्तीय सेक्टर (Economic sector)**: वस्तुओं के उत्पादन से सेवा–सुविधाओं की वित्तीय व्यवस्था की ओर बदलाव।
2. **कार्य विभाजन (Occupational Distribution)**: पेशेवर (Professional) और तकनीकी वर्ग की श्रेष्ठता
3. **ध्रुवीय सिद्धांत (Axial principle)**: सैद्धांतिक ज्ञान ही आविष्कार और नवोन्मेषण का स्रोत और समाज के लिए नीति निर्धारण का केंद्र या धुरी।
4. **भविष्योन्मुखता (Future Orientation)**: तकनीक का नियंत्रण और तकनीक आधारित मूल्यांकन।
5. **निर्णय क्षमता (Decision Making)**: नयी बौद्धिक तकनीक (Intellectual Technology) की रचना।

बेल बताते हैं कि अमेरिका में औद्योगिक सभ्यता के इतिहास में पहली बार वर्ष 1956 में श्रम व्यवस्था बेहद विकट स्थिति में पहुंच गई थी। तब अधिकारी वर्ग की संख्या श्रमिक, कर्मचारियों की संख्या से अधिक हो गई। उन्होंने पाया कि 1950–1960 के दशक में अधिकारी वर्ग यानी व्हाइट कॉलर वर्कर्स की श्रेणी में जबर्दस्त उछाल आया क्योंकि व्यावसायिक और तकनीकी नौकरियों के लिए उच्चशिक्षित लोगों की आवश्यकता महसूस हुई। इसके तहत वैज्ञानिकों, इंजीनियरों के पद सर्वाधिक विकसित हुए। वह बताते हैं कि इसका परिणाम इन टेक्नोक्रेट के ज्ञान के आधार पर विकसित भविष्य के समाज के रूप में सामने आएगा। इस आधार पर वह औद्योगिक और उत्तर औद्योगिक नगरों के अंतर को भी समझाते हैं। बेल बताते हैं कि औद्योगिक नगर मशीनों और मानव के संयोजन से वस्तुओं के उत्पादन का माध्यम था। वहीं, उत्तर औद्योगिक नगर ज्ञान के आधार पर व्यवस्थित हैं, जिसका उपयोग सामाजिक नियंत्रण, परिवर्तन और नवोन्मेषण के मार्गदर्शन में किया जाता है। इस सबसे नये सामाजिक संबंधों और ढांचों का विकास होता है, जिन्हें राजनीतिक रूप से प्रबंधन किया जाता है। (Bell, 1973: 20)

हालांकि बेल की अवधारणा को बिना आलोचना के मुश्किल से ही स्वीकार किया जाता रहा है (Gappert, 1979: 31–7), लेकिन उत्तर औद्योगिक शब्द का सामान्य बोलचाल में निरंतर करीब तीन दशक से सामाजिक और आर्थिक स्थिति को समझने में होने वाला उपयोग बेल की 1973 में की गई सामाजिक संबंधों और वित्तीय संगठनों की प्रकृति में बदलावों के उभरने की भविष्यवाणी को दृढ़ करता है। डगलस वी शॉ बताते हैं कि उत्तर मध्ययुगीन के अंत और आधुनिक युग के प्रारंभ में उत्पादन के तरीकों में गुणवत्ता और मात्रात्मक लिहाज से खासा सुधार आया। शिल्पकला को छोड़कर अधिकतर बुनियादी उत्पादन नगरों के बाहर होने लगा। इसके अलावा पारंपरिक व्यवस्था से इतर भी नगरों में आर्थिक कार्यशैली का विकास हुआ। 18वीं सदी के अंत में कोयले और भाप की शक्ति के उपयोग के जरिये उत्पादन के तरीकों में बदलाव और बढ़ोतरी दर्ज की गई। इससे उत्पादन श्रम की प्रकृति में भी परिवर्तन परिलक्षित हुआ। श्रम की विस्तृत आवश्यकता ओर संयोजन की आवश्यकता के साथ फैक्ट्रियां शहरी विकास के इंजन के तौर पर उभरीं और इनकी वजह से नगरीय ढांचों में पर्याप्त बदलाव भी आया। कामयाब उत्तर औद्योगिक नगर अभूतपूर्व गति से विकसित हुए और औद्योगिक विकास के जरिये वित्तीय लाभ के जो नये संसाधन विकसित हुए, उन्होंने पारंपरिक तरीकों के समर्थकों को अचंभित सा कर दिया। इसके साथ ही सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर क्षेत्रों की वृद्धि ने इन समर्थकों को और निराश किया। (Chudacoff and Smith, 1994: 78–107; Cowen, 1998: 3–31; Hohenberg and Lees, 1985: 179–214). विश्लेषणात्मक उद्देश्य से बेल ने समाज को तीन

श्रेणियों में बांटा है– सामाजिक ढांचा, संस्कृति और राजनीति। उत्तर औद्योगिक नगरों की अवधारणा बुनियादी सामाजिक ढांचे में बदलाव पर आधारित है, जिसका तात्पर्य अर्थव्यवस्था, तकनीकी, व्यावसायिक ढांचे में बदलाव से भी है। यद्यपि सामाजिक ढांचा, राजनीति और संस्कृति एक–दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं, लेकिन यह नही माना जाता है कि इन तीनों के मध्य बेहद सामंजस्यपूर्ण संबंध रहते हैं। वास्तव में इन तीनों में से किसी भी एक में होने वाला परिवर्तन बाकी दोनों के लिए परेशानियों का सबब बन सकता है (Bell 1976).

**बॉक्स 2: उत्तर औद्योगिक नगर**

**आर्थिक संपन्न और पूर्ण विकसित देशों में अपेक्षाकृत नये तरह के नगर उभर रहे हैं। ऐसे उत्तर औद्योगिक नगर, जिनकी वित्तीय व्यवस्था उत्पादन आधारित (Manufacturing Base) नहीं है, सेवा क्षेत्र (Service Sector) में बड़ी संख्या में रोजगार उपलब्ध कराते हैं। उदाहरण के लिए कुछ नगरों की पहचान कारपोरेट्स के मुख्यालय होते हैं तो कुछ को सरकारी, गैर सरकारी संस्थानों की मौजूदगी से जाना जाता है। इसी तरह शोध एवं विकास (R&D), स्वास्थ्य सेवाएं, पर्यटन से कई नगर पहचान बनाते हैं। इस तरह आरएंडडी, पर्यटन, स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा, वित्त, टेलीकम्यूनिकेशन और सरकारी संस्थान आदि क्षेत्रों में लोगों को रोजगार मिलता है। इससे ये नगर उन नगरों से बुनियादी तौर पर अलग हो जाते हैं, जिनका वित्तीय आधार औद्योगिक व्यवस्था रही है।**

## 8.5 औपनिवेशिक नगर (Colonial Cities)

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (Encyclopaedia Britannica) में रिचर्ड जी फॉक्स ने औपनिवेशिक नगरों को वह नगर बताया है जो पूंजीवादी वैश्विक व्यवस्था के विस्तारवादी दौर में यूरोप और उत्तरी अमेरिका के प्रभुत्व या शासन क्षेत्र में शामिल हो गए। औपनिवेशिक व्यवस्था के तहत उपनिवेश के तौर पर स्थापित समाज के लिए अपनी उत्पादकता में इस तरह फेरबदल करना आवश्यक हो गया कि इससे मिलने वाला धन मूल देश यानी प्रभुत्ता वाले देश को पहुंचाया जा सके, जबकि इसके लिए निष्पादित किए जाने वाले सभी कार्यों का केंद्र उपनिवेश ही हो। इन उपनिवेशों की मुख्य सांस्कृतिक भूमिका इस गैरबराबरी के रिश्ते में प्रभुत्वसंपन्न राष्ट्र की संस्थाओं को अपने यहां स्थान और सुविधाएं उपलब्ध कराना ही थी। उपनिवेशों में राजनीतिक व्यवस्था के नाम पर ऐसी ब्यूरोक्रेसी, पुलिस और सेना थी, जिसके जरिये प्रभुत्वसंपन्न देश उपनिवेश पर अपनी सत्ता कायम रखते थे। बैंक, कारोबारी और साहूकारों की अर्थव्यवस्था का मकसद भी उपनिवेशों से धनसंपदा को शासक देश तक पहुंचाना था।

18वीं सदी से 20वीं सदी के मध्य तक भारत में ब्रिटिशाधीन बांबे और कलकत्ता, चीन और पश्चिमी अफ्रीका में यूरोपियन व्यापारिक केंद्र तथा ईस्ट अफ्रीकन व डच ईस्ट इंडियन जैसी व्यवस्थाएं उपनिवेशिक नगरीय व्यवस्थाओं का प्रकार थीं। मूल पूंजीवादी देशों ने औपनिवेशिक नगरों को दुनिया के कई क्षेत्रों में स्थित पूर्व पूंजीवादी देशों, समाजों में अपने लाभ के लिए विकसित किया। लेकिन मूल शासक देश और इन उपनिवेशों के बीच गैरबराबरी का ऐसा सिस्टम भी उन्होंने बनाए रखा, जिससे औपनिवेशिक देश वैश्विक पूंजीवादी व्यवस्था में खुद को स्थापित नहीं कर सकें। इस तरह विकसित हुई नगरीय सभ्यताओं में शासक और शासित देशों के मिश्रण का ऐसा घालमेल सा विकसित हुआ, जिसके

गुण दोनों –यानी शासक और शासित– में से किसी से भी पूरी तरह मेल नहीं खाते थे। इस तरह के नये सामाजिक बदलाव मुख्यतः औपनिवेशिक देशों के अभिजात्य वर्ग में दिखाई देते थे। उदाहरण के लिए मूल स्थानीय आबादी के बीच ही बिल्कुल नये तरह की जीवनशैली वाले वर्ग विकसित होने लगे। औपनिवेशिक नगरों का मूल उद्देश्य ऐसे निम्न मध्यमवर्ग लोगों, कारोबारियों, साहूकारों, नौकरीपेशा लोगों को तैयार करना था, जो शासक वर्ग के औपनिवेशिक राजनीतिक लक्ष्यों और आर्थिक मकसदों को पूरा करने में मदद कर सकें।

उदाहरण के लिए 19वीं सदी के मध्य में भारत में रहे एक ब्रिटिश प्रशासक थॉमस बेबिंगटन मैकॉले ने भारत में पश्चिमी शिक्षा के माध्यम से ऐसे अभिजात्य वर्ग की स्थापना की रूपरेखा तैयार की, जो उसके ही कथन में 'जन्म और रंग से भारतीय हो, लेकिन विचार, शिक्षा और बुद्धि से अंग्रेज हो।' औपनिवेशिक शिक्षित निम्न मध्यम वर्ग के लोग अकसर अपनी संस्कृति में उन तरीकों से सुधार के प्रयास करने लगे, जैसा शासक वर्ग चाहता था। इसके लिए वे नये नगरीय संस्थानों के विकास की मांग करते, जिनमें स्कूल, जनकल्याणकारी संस्थाएं, सांप्रदायिक या धर्मनिरपेक्ष सुधार समूह शामिल होते। लेकिन एक या दो पीढ़ी के बाद ही यह वर्ग राष्ट्रवादी नेतृत्व, उपनिवेशविरोधी आंदोलनों का प्रमुख अंग बन गया। इस तरह औपनिवेशिक नगर जो शासक वर्ग के शोषण का एक माध्यम बन गए थे, वे ही उपनिवेशविरोधी अभियान के अगुआ बन गए। यहां सबसे विशेष बात यह थी कि इन आंदोलनों के नेता वही निम्न मध्यम वर्ग के लोग थे, जिन्हें शासक वर्ग ने विकसित किया था, जबकि इन लोगों के जागरण का जरिया भी वे ही स्कूल, अखबार और अन्य नगरीय सांस्कृतिक सुधार कार्यक्रम बने, जिनकी शुरुआत शासक वर्ग ने ही अपने लाभ के लिए की थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद एशिया और अफ्रीका के कई देश स्वतंत्र हो गए। हालांकि, इसके बाद इन देशों में पश्चिमी शासक वर्ग का राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं रह गया, लेकिन इन देशों ने वित्तीय रूप से औद्योगिक तौर पर सक्षम देशों से संबंध बनाए रखा। यूरोपियन देशों की औपनिवेशिक परंपरा ने इन देशों को वित्तीय और व्यापारिक रूप से उच्च स्तर दिलाया। उदाहरण के लिए ब्रिटिश शासन सदियों तक अमेरिका से खाद्यान्न और अफ्रीका से खनिजसंपदा का लाभ लेता रहा, जिसके बूते लंदन अंतर्राष्ट्रीय कारोबारी केंद्र बन गया। इसी तरह डच, फ्रेंच, स्पेनिश और पुर्तगाली नगर भी औपनिवेशिक परंपरा की बदौलत व्यापार के वैश्विक क्षेत्र, बंदरगाहों के तौर पर विकसित हो गए। दूसरी ओर, उत्तर–दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका और अन्य जगहों पर नगर जहां औपनिवेशिक प्रशासकीय केंद्रों के तौर पर उभर रहे थे, वहीं उनमें यह भाव भी विकसित हो रहा था कि उनके यहां का जो उत्पादन शासक देशों को भेजा जा रहा है, उसे रोका जाए।

**1. स्पेनिश–अमेरिकन उपनिवेशः** लैटिन अमेरिका में स्पेनिश औपनिवेशिक नगरों का विकास 16वीं सदी में हुआ। स्पेनिश औपनिवेशिक नीतियों के चलते इन नगरों में उत्पादन और खनिजकर्म को स्थानीय लोगों की पहुंच से बाहर रखा गया, जिससे यहां का सारा धन स्पेन में चला गया। यहां औपनिवेशिक केंद्र दो स्थानों पर विकसित किए गए। पहला समुद्रतटीय क्षेत्रों में ऐसे स्थानों पर जो बंदरगाह (जैसे मेक्सिको का वेरा क्रूज) के लिए उपयुक्त हों, ताकि स्पेन से जलमार्ग के जरिये संपर्क बना रहे। दूसरा देश के भीतर ऐसे स्थान, जहां स्पेनिश आधिपत्य हो (जैसे पेरू का लीमा)। दोनों तरह के नगर मूलतः एकसमान थे, लेकिन दोनों जगह बाजारों का अभाव था, जबकि वहां भारी संख्या में सेना तैनात रखी जाती थी। स्मिथ अपने अध्ययन में पाते हैं कि देश के भीतरी हिस्सों में स्थापित उपनिवेश परिवहन की बेहतर सुविधा से भी वंचित रखे जाते थे। कोशिश यह थी कि इन तक किसी बाहरी की पहुंच न हो सके और

इस तरह ये स्पेनिश उपनिवेश यूरोपियन नगरों से बिल्कुल अलग थे, जहां व्यापारिक मार्ग स्थापित किए जा चुके थे। 20वीं सदी तक लैटिन अमेरिकी देशों पर स्पेनिश उपनिवेश के दौरान उभरा पिछड़ापन हावी रहा। इसके बाद ही वहां सामाजिक और वित्तीय क्रियाकलापों में आधुनिक तौरतरीकों के समावेश की दिशा में प्रयास शुरू किए गए।

**2. उत्तरी अमेरिकी उपनिवेशः** ब्रिटिश शासनकाल में उत्तर अमेरिकी उपनिवेश प्रारंभ में सैन्य छावनियों और बाजार दोनों के तौर पर विकसित किए गए। हालांकि, नाइजीरिया और टिवलैंड में ब्रिटिश उपनिवेश का असर बाजारों के विकास से अधिक सांस्कृतिक प्रभावों पर नजर आया। बोहन्ना के अनुसार ब्रिटिश के आगमन के बाद इन क्षेत्रों में जनजातियों, कबीलों के मध्य होने वाली लड़ाइयां समाप्त हो गई, जबकि सुरक्षा और नयी सड़कों के नेटवर्क से यहां बाजार और व्यापार के नये रास्ते खुले। उत्तरी नाइजीरिया पहुंची कारोबारी कंपनियों ने टिवलैंड को वैश्विक वित्तीय व्यवस्था की मुख्यधारा से जोड़ा। टिव संस्कृति पर इसका जो सबसे बड़ा असर हुआ, वह था यूरोपियन मुद्रा से इसका परिचय।

मुद्रा का मूल गुण यह है कि यह हर तरह के विनिमय का मानक माध्यम है। टिवलैंड के लोगों ने इस विनिमय व्यवस्था को तीन भागों में बांट दिया, पहला सामान की खरीद, दूसरा प्रतिष्ठा से जुड़ी चीजें लेना और तीसरा महिलाओं पर अधिकार। बोहन्ना बताते हैं कि जब तक मुद्रा से टिव लोग परिचित नहीं थे, उनके लिए विनिमय की तीनों जरूरतों को आपस में बदल पाना संभव नहीं था, लेकिन मुद्रा के बारे में जानने के बाद उन्होंने एक अलग ही तरीका अपना लिया। मुद्रा व्यवस्था से जुड़ने के बाद टिव लोग पैसे देकर पत्नियां खरीदने लगे तो पैसे के लिए बेटियों को बेचने लगे। मुद्रा के अपने तरीके होते हैं, विनिमय व्यवस्था जाति या स्टेटस के बजाय व्यक्ति के आधार पर चलती है। ऐसे में टिवलैंड में मुद्रा बहुकेंद्रित वित्तीय व्यवस्था के बजाय एकल बनती गई, लेकिन इस सबके चलते टिव संस्कृति का काफी ह्रास हुआ। टिव लोगों को पैसे के लिए पत्नी–बेटी को बेचना अपमानजनक तो लगता था, लेकिन मुद्रा व्यवस्था ने उनकी संस्कृति को इतना प्रभावित कर दिया था कि उनके पास इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं बचा था। संक्षेप में मुद्रा एकल आधारित बाजार को विकसित तो कर सकती है, लेकिन इस बाजार के बदलने की संभावना बेहद क्षीण होती है। इसी तरह बाजार पारंपरिक संस्कृति में अलग तरह का मनोविज्ञान पैदा करता है, इसके चलते ही टिवलैंड के वैवाहिक बाजारों में महिलाओं का मोलभाव करना संभव हो सका।

**3. अफ्रीकन उपनिवेशः** यद्यपि अफ्रीका ने प्रत्यक्ष यूरोपियन शासन से पूर्व ही क्रमागत विकास और ऐतिहासिक परिवर्तनों का अनुभव किया था, लेकिन औपनिवेशिक अनुभव इन सबमें ऐसा रहा, जिसका असर लंबे समय तक बना रहा। वस्तुतः 19वीं सदी के उत्तरार्ध, यहां तक कि 1960 तक अफ्रीका का बड़ा हिस्सा उपनिवेश बना रहा। इसकी चार बड़ी वजहें उभरकर आती हैं। पहली यह कि उपनिवेशकाल में अफ्रीका में नैरोबी, जोहान्सबर्ग, अबीदजान जैसे बड़े नगरों का विकास हुआ, जिनका उपनिवेशकाल से पहले कोई अस्तित्व नहीं था। इन समेत कोटोनू, लिब्रविले, बांगुई, बोके, टमाले, इनुगु, लुबुमाशी, वांजा जैसे नगर उपनिवेशकाल में व्यापार और प्रशासकीय गतिविधियों के केंद्र के तौर पर विकसित हुए। ये सभी नगर समुद्रतटों या जलमार्गों पर स्थित थे और इनके विकास का एकमात्र लक्ष्य शासक देश से इनकी सीधी पहुंच बनाए रखना था।

उपनिवेशकाल का सबसे अधिक प्रभाव अफ्रीका की वित्तीय व्यवस्थागत ढांचे पर नजर आता है। ब्रिटिश, फ्रेंच, बेल्जियन, पुर्तगाली उपनिवेश के अनुभवों की अमिट छाप अफ्रीकी वित्तीय व्यवस्था के घटकों में साफ देखी जा सकती है। हालांकि, औपनिवेशिक वित्तीय कार्यशैली का सीधे तौर पर सामान्यीकरण

करना संभव नहीं, लेकिन खनन, कृषि, उत्पादन, प्लांटेशन, परिवहन और संचारिक गतिविधियों में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का पालन औपनिवेशिक असर को परिलक्षित करता है। अफ्रीका को पिछले दो–तीन दशकों में दुनिया के बाकी देशों से पिछड़ जाने, अलग–थलग पड़ने और गरीब हो जाने का डर सताता रहा है। फिर भी छोटे अभिजात्यों, पूंजीपतियों ने अफ्रीका के नगरों पर ध्यान केंद्रित किया और अपनी कार्यकुशलता, नियंत्रण, संसाधनों और संबंधों के जरिये खुद को समृद्ध बनाया है। (Simon, 1992: 34–5). इस तरह उच्च आय के छोटे क्षेत्रों की मौजूदगी के बावजूद बेहद बड़ी आबादी के कारण अफ्रीकन नगर गरीबी और विकासहीनता में फंस गए हैं। औपनिवेशिक काल से इतर सहारा अफ्रीकी नगर नयी वैश्विक अर्थव्यवस्था में हाशिये पर जा पहुंचे हैं (Paddison, 2001).

## 8.6 नव औपनिवेशिक नगर (The Neocolonial City)

शहरी विकास का सबसे नया स्वरूप नव औपनिवेशिक नगरों का है। इन नगरों का विकास वैश्विक पूंजीवादी व्यवस्था के दायरे से बाहर हुआ है, जिसे अकसर तीसरी दुनिया भी कहा जाता है। इन नगरों का विकास पूंजीवादी एकाधिकार और जनसंचार के मूल के आधार पर हुआ है। तीसरी दुनिया के नगरों में अग्रणी औद्योगिक देशों ने औद्योगिक उत्पादन में अपनी पूंजी का निवेश किया है। ऐसे नगरों में कई सांस्कृतिक भूमिकाओं का निर्वहन निवेश करने वाले देश करते हैं।

**बॉक्स 3**

**औपनिवेशिक नगर 19वीं सदी और 20वीं सदी के प्रारंभिक दौर में यूरोपियन साम्राज्यवादी के वैश्विक आधिपत्य की कोशिशों का परिणाम हैं। औपनिवेशिक नगर अपनी व्यापारिक गतिविधियों, निजी जरूरतों–स्थितियों और पश्चिमी नगरीय गुणों व स्थानीय पारंपरिक मान्यताओं के मिश्रण से अद्वितीय बन जाते हैं।**

नव औपनिवेशिक नगरों में शहरी फैक्ट्रियां, वेतनभोगी श्रम, आवासीय सुविधा, विकासशील अवस्थापना ढांचा, नगरीय परिवहन और संचार सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों से इन नगरों में भारी मात्रा में पलायन दर्ज किया जाता है। इसके बावजूद ये नगर औद्योगिक नगरों से संबंध के चलते सांस्कृतिक रूप से औद्योगिक नगरों से भिन्न नहीं होते हैं। एक प्रमुख अंतर यह है कि नव औपनिवेशिक नगरों में वस्तुओं का उत्पादन अपने उपभोग के लिए नहीं, बल्कि निर्यात के लिए किया जाता है। हालांकि, बहुत छोटी मात्रा में स्थानीय अभिजात्य वर्ग को उत्पादन के उपभोग का लाभ दिया जाता है। नव औपनिवेशिक नगर स्थानीय आंतरिक क्षेत्रों के लिए सुविधाप्रदाता नहीं होता, बल्कि यह विस्तृत वैश्विक अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन जाता है। इन नगरों से जुड़े ग्रामीण क्षेत्र इसलिए महत्वपूर्ण होते हैं कि वे भारी मात्रा में और आसानी से श्रमिक उपलब्ध कराते हैं।

नव औपनिवेशिक नगरों में बड़े पैमाने पर होने वाला शहरीकरण औद्योगिक नगरों के शहरीकरण से भिन्न होता है। इन नगरों में एक अनौपचारिक अर्थव्यवस्था भी पनपती है, जिसके उत्पादक इन नगरों की निर्धन आबादी, छोटे फेरीवाले, घरों में कामकाज करने वाले, कचरा बीनने वाले आदि होते हैं जो उत्पादन, विक्रेता और ग्राहक की भूमिकाओं में रहते हैं। सामान्यतः इन लोगों की छवि बेहद तुच्छहोती है, जिनकी नगरीय व्यवस्थाओं में भूमिका हाशिये पर रहती है। इनमें से अधिकतर लाग बेरोजगार होते हैं जो अकसर प्रेरणा के अभाव में शहरी जीवनशैली में पिछड़कर आपराधिक गतिविधियों में भी शामिल हो

जाते हैं, इसके बावजूद नगरीय व्यवस्था इनके अनुपयोगी होने के बावजूद उन्हें व्यवस्था में मौजूद रहने देता है, इसे गरीबी की संस्कृति कहते हैं। यह माना जाता है कि ये लोग नगरों से बाहर सार्वजनिक जमीनों पर कब्जा कर बस्तियां बसा लेते हैं, जिनसे नगर को नुकसान होता है। जेनिस पर्लमैन (The Myth of Marginality, 1976) इस धारणा को अस्पष्ट करार देते हैं। वह कहते हैं कि इसके चलते नव औपनिवेशिक नगरों की प्रकृति में मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों का महत्व ठीक से पता नहीं चल पाता है।

वैश्विक बाजार से प्रतिस्पर्धा के लिए यह आवश्यक होता है कि तीसरी दुनिया के नगरों में उत्पादित वस्तुएं निवेश करने वाले विकसित, औद्योगिक नगरों की तुलना में सस्ती हों। इन नगरों में श्रम का भुगतान काफी सस्ता होता है, क्योंकि श्रमिकों के लिए उपयोगी कई सेवाएं और छोटी वस्तुएं अनौपचारिक अर्थव्यवस्था से उपलब्ध हो जाती हैं। लैरिसा लोम्निट्ज 'Networks and Marginality: Life in a Mexican Shantytown (1977)' में बताती हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों से इन नगरों में आने वाले लोग और बस्तियों के निवासी मेड, माली, घरेलू सहायक के तौर पर औद्योगिक कर्मियों और मध्यमवर्गीय परिवारों में काम करते हैं। इसके लिए वे इन सेवाओं के औपचारिक सेक्टर से काफी कम भुगतान लेते हैं (तुलनात्मक रूप से औद्योगिक नगरों में घरेलू कामकाज और दाई के कार्यों का भी न्यूनतम श्रम मूल्य तय रहता है)।

अनौपचारिक नगरीय अर्थव्यवस्था सुरक्षा प्रदान नहीं करती है। ऐसे में नव औपनिवेशिक नगरों की बस्तियों में रहने वाले लोगों को आर्थिक संकटों से निपटकर खुद को बचाए रखने के लिए नये सांस्कृतिक, सामाजिक तरीकों का विकास करना पड़ता है। बस्तियों में अलगाव के बजाय लोग संबंधों और परस्पर निर्भरता के मजबूत ताने–बाने से जुड़े हुए होते हैं। इसका आधार सजातीय, पारंपरिक व्यवस्था और मित्रता, समान मतों का मजबूत नेटवर्क होता है। यह नेटवर्क ही बस्ती में रहने वाले बेरोजगारों, आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में उनके योगदान के बदले सहायता और सहारा देता है। इस तरह ये नेटवर्क नव औपनिवेशिक नगरों के लिए आवश्यक बन जाते हैं और व्यवस्था में इन लोगों के हाशिये पर होने की धारणा को दरकिनार करते हैं। ग्रामीण और किसान पृष्ठभूमि से निकलकर बस्तियों में रहकर नगरीय व्यवस्था में खुद को स्थापित रखने वाले लोगों को 'Peasant Urbanites' कहा जाता है। अफ्रीकी नगरों में जनजातीय, आदिवासी आबादी का मूल स्थानों से पलायन बड़ी मात्रा में हुआ है और ये जनजातियां नव औपनिवेशिक नगरों में खुद को पारंपरिक तरीकों–मान्यताओं के आधार पर परस्पर सहायता, निर्भरता के नेटवर्क के जरिये शहरी परिवेश में नये सिरे से स्थापित कर रहे हैं, इस प्रक्रिया को 'Retribalization' कहा जाता है। इसी तरह मैक्सिको की बस्तियों में संयुक्त परिवारों की अवधारणा समाप्त होने के बजाय मजबूत और विस्तृत हुई है। ब्रायन रॉबर्ट्स बताते हैं कि शहरी विकास में ये नयी समान मत–पंथ, संप्रदाय आधारित व्यवस्था भी अहम भूमिका निभाती है (Cities of Peasants: 1978)। वह बताते हैं कि ग्वाटेमाला में यहूदी लोगों (Pentecostal) और अन्य प्रोटेस्टेंट (Protestant) समूहों के नेटवर्क न सिर्फ अपने समूहों के लोगों की सहायता करते हैं, बल्कि उनकी भी मदद करते हैं जो मत, जातीय रूप से उनसे भिन्न हैं। फिर भी यह सुनिश्चित नहीं हो पाता कि बस्तियों की अनौपचारिक अर्थव्यवस्था से जुड़े लोग असुरक्षा और गरीबी के कारण शहरी जीवन परिस्थितियों में पूरी तरह व्यवस्थित हो सकेंगे, जबकि औद्योगिक नगरों में श्रकि वर्ग ऐसा कर पाने में सफल रहा है। हालांकि, कुछ शोधकर्ता मानते हैं कि इस वर्ग में क्रांति की संभावनाएं और क्षमताएं मौजूद हैं, लेकिन अधिकतर का मत यह है कि निम्नतम श्रमिक वर्ग होने के

कारण इन लोगों का इस तरह के किसी क्रांतिकारी गतिविधि में शामिल होने की उम्मीद लगभग नगण्य रहती है। बस्तियों में रहने वाले अधिकत लोग स्वरोजगार करते हैं और श्रममूल्य, वेतन की व्यवस्था में शामिल नहीं होने के कारण उन नगरीय लोगों से अलग होते हैं, जिन्हें वे सेवाएं उपलब्ध कराते हैं। यह अनौपचारिक व्यवस्था दरअसल, वर्गों के बीच प्रतिद्वंद्विता के भाव को कम करती है।

करने में मददगार होती है। इसके बजाय मध्यम वर्ग और बस्ती में रहने वाले लोग अपने वास्तविक शत्रु या प्रतिद्वंद्वी के रूप में पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों और अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवादी व्यवस्था से समझौता करके चलने वाली अपने ही देश की सरकार को देखते हैं। इससे यह बात उभरकर सामने आती है कि नव औपनिवेशिक नगरों में वर्गशोषण के बजाय हर वर्ग के लोगों के दुःखों, खराब परिस्थितियों को दूर करने के लिए वैश्विक अर्थव्यवस्था के तहत बाहरी आर्थिक संबंधों को लेकर बहुत अधिक काम करने की जरूरत है।

## 8.7 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. पूर्व औद्योगिक नगरों और औद्योगिक नगरों से आप क्या समझते हैं? इनके अंतर भी स्पष्ट करें।
2. क्या आप मानते हैं कि भारत एक औपनिवेशिक देश है? यदि हां तो इसे स्पष्ट करें।
3. हम उत्तर आधुनिक नगरों के युग में रहते हैं या औद्योगिक नगरों के? विस्तार से समझाएं। (अपने उत्तरों को पर्याप्त उदाहरणों से स्पष्ट करें)

## 8.8 संदर्भ ग्रन्थ (References)


1- Abrahamson, Mark, 1976. Urban Sociology, Prentice Hall, Inc., Englewood Cliffs, New Jersey.
2- Bell, D. 1974. The Coming of Post Industrial Society : A Venture in Social Forecasting, London: Heinemans.
3- Bell, D. 1974. The Cultural Contradictions of Capitalism, London: Heinemann.
4- Bell, D. 1980, 'The Social Framework of the Information Society in T. Forester (ed.) The Microelectronies Revolution, Oxford : Blackwell.
5- Bell, Daniel 1989 ''The Third Technological Revolution.'' Dissent 36:164–176.
6- B.D.S.O.W.F.J, Z.P.S., 2003. Cities of the World, U.S.A.: Rowman & Littlefield Publishers.
7- Castells, M.B. 2000, The Rise of the Network Society. Oxford. Blackwell Publishing.
8- Gist, N.P., Fawa S.F. 1964. Urban Society. New York: Thomas Y. Grewell Company.
9- Knox, Paul and Pinch, Steven. 2010. Urban Social Geography. New Delhi: Pearson.
10- Paddison, Ronan. 2001. Handbook of Urban Studies.New Delhi: Sage Publications.
11- Pallen, J.J. 1975. The Urban World. USA: McGrew Hill.
12- Sjoberg, Gideon 1960. The Pre-Industrial City. The Free Press.

ईकाई– 9

# नगरों का आंतरिक ढांचाः केंद्रीय क्षेत्र सिद्धांत, वर्गीकृत क्षेत्र, बहुल केंद्र सिद्धांत, स्टार सिद्धांत

# (INTERNAL STRUCTURE OF CITIES: CONCENTRIC ZONE THEORY, SECTOR THEORY, MULTIPLE NUCLEI THEORY, STAR THEORY)

इकाई की संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 परिचय

9.2 नगरीय पारिस्थितिकीय प्रक्रियाएं

9.3 केन्द्रीय व्यावसायिक क्षेत्र

9.4 संकेन्द्रित क्षेत्र मॉडल

9.5 सेक्टर मॉडल

9.6 बहुल केंद्र मॉडल

9.7 तारा सिद्धांत

9.8 समीक्षा

9.9 निष्कर्ष

9.10 अभ्यास प्रश्न

9.11 अध्ययन सामग्री

## 9.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई में हम विभिन्न सिद्धांतों के अध्ययन के जरिये नगरों के आंतरिक ढांचे को समझने का प्रयास करेंगे।

## 9.1 परिचय (Introduction)

समाज/समुदाय (The Community) और नगर अमेरिकी समाजशास्त्र की शुरुआत से ही अध्ययन के दो मुख्य घटक रहे हैं। वर्ष 1920 में रॉबर्ट ई. पार्क और अर्नेस्ट डब्ल्यू. बर्गेस के नेतृत्व में शिकागो विश्वविद्यालय में मानव पारिस्थितिकी का अध्ययन विकसित हुआ। प्रारंभिक मानव पारिस्थितिकी विशेषज्ञ वनस्पतियों और पशुओं की पारिस्थितिकी के मूल सिद्धांतों के जरिये ही मानव समुदाय के अध्ययन कर रहे थे। पार्क, बर्गेस और शिकागो स्कूल ऑफ सोशियोलॉजिस्ट्स ने नगरों के आंतरिक ढांचे के आधार पर अध्ययन प्रारंभ किया, जिसे उन्होंने नगरीय समूहों के पारिस्थितिक पैटर्न (Ecological Pattern) कहा है।

## 9.2 नगरीय पारिस्थितिक पैटर्न (Urban Ecological Pattern)

प्रारंभिक नगरीय समाजविज्ञानियों ने नगरीय विकास और भूउपयोग में आने वाले परिवर्तनों के संबंध में पांच पारिस्थितिकी प्रक्रियाओं की पहचान की। ये प्रक्रियाएं हैं केंद्रीकरण (Centralisation), विकेंद्रीकरण (Decentralisation), आक्रमण/घुसपैठ (Invasion), उत्तराधिकार/वंशानुक्रम (Succession) और पृथक्कीकरण (Segregation). केंद्रीकरण मानव प्रवृत्ति से जुड़ी प्रक्रिया है। स्वाभाविक तौर पर लोग किसी सामाजिक, आर्थिक क्रियाकलाप के लिए एक केंद्रीय स्थान पर जुटते हैं। नगरीय क्षेत्रों में केंद्रीय व्यवसाय क्षेत्र (Centralised Business Districts: CBD) लोगों के बीच परस्पर संबंध, विश्वास और संचार का बेहतरीन उदाहरण है। विकेंद्रीकरण का तात्पर्य उन कार्यों के निष्पादन के स्वभाव से है, जिन्हें केंद्रीय बिंदु से अलग रहकर किया जाता है। इसे उपनगरीय क्षेत्रों में शॉपिंग सेंटर के तेजी से विकास से समझा जा सकता है। यह प्रक्रिया बताती है कि विकेंद्रीकरण के जरिये व्यावसायिक गतिविधियां केंद्र बिंदु यानी सीबीडी से नगरों के कई अन्य क्षेत्रों की तरफ विस्तारित हुई हैं।

पृथक्कीकरण नगरीय निवासियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, जिसके तहत समान सामाजिक, पारंपरिक और जातीय गुणों के आधार पर लोग एक–दूसरे के निकट रहना अधिक पसंद करते हैं। अमेरिका में यहूदी, कैथोलिक या काले लोगों के विशेष सामाजिक मान्यताओं, अभिलक्षणों के चलते समीप रहना पृथक्कीकरण की प्रक्रिया का उदाहरण है। किसी समूह के साथ रहने की इच्छा के आधार पर पृथक्कीकरण स्वैच्छिक हो सकता है या फिर सामाजिक और आर्थिक भेद के आधार पर अनैच्छिक। आक्रमण या घुसपैठ की प्रक्रिया तब सामने आती है, जब कोई समूह अपने पुराने क्षेत्र को छोड़कर सामाजिक और आर्थिक आधार पर भिन्न विचारों, गुणों वाले दूसरे समूहों के क्षेत्र में प्रवेश करता है। इस प्रक्रिया के पश्चात यदि संबंधित क्षेत्र में घुसे नये लोग पुराने लोगों को हटा देते हैं या क्षेत्र में अपना आधिपत्य स्थापित कर लेते हैं तो इसे उत्तराधिकार की प्रक्रिया कहा जाता है।

## 9.3 केंद्रीय व्यावसायिक क्षेत्र (The Central Business District)

केंद्रीय व्यावसायिक क्षेत्र (सीबीडी) की अवधारणा का शास्त्रीय वर्णन सर्वप्रथम वर्ष 1942 में अर्ल एस. जॉनसन ने किया। उन्होंने केंद्रीय व्यावसायिक क्षेत्र को नगरीय क्षेत्रों के ऐसे पारिस्थितिक (Ecological) और बिंदु के तौर पर स्थापित किया, जो समय और आर्थिकी के लिहाज से आसानी से सबकी पहुंच में हो। सीबीडी भौगोलिक रूप से भी प्रायः नगरीय क्षेत्र का केंद्र रहता था, इसके चलते यहीं बाजार स्थापित होते जो विक्रय के लिए आसपास के क्षेत्रीय बाजारों (Regional Market) पर निर्भर रहते थे।यह प्रमुख नगरों/राजधानी (Metropolis) का वह क्षेत्र होता था, जहां उच्च शिक्षित, विशेषज्ञ व्यक्ति और संस्थान (विशेषकर वित्तीय संस्थान) मौजूद रहकर पूरे इलाके की बाजारी गतिविधियों को अपने निर्देशन और समन्वय के जरिये प्रभावित करते थे।

सभी अन्य क्षेत्रों से आने वाला जमीनी यातायात (Ground Transportation) सीबीडी पर ही समाप्त होता था और 1930–40 में हवाई यातायात भी इनसे जुड़ गया। परिवहन सुविधा के इन समापन बिंदुओं को शहरी समाजशास्त्रियों ने यातायात सुविधा में विराम के तौर पर प्रस्तुत किया है। यातायात–परिवहन

में विराम का अर्थ उस व्यवस्था से है, जिसमें सामान को परिवहन सुविधा के एक माध्यम से ढुलान करने के बाद दूसरे माध्यम में लदान किया जाता है। उदाहरण के लिए सड़क मार्ग पर ट्रकों के जरिये लाया जाने वाला माल ट्रेनों पर लादा जाता है और फिर पानी के जहाजों तक पहुंचता है। इसी तरह जहाज जिस माल को लाते हैं, उसे ट्रेनों और ट्रकों के माध्यम से पहुंचाया जाता है। इस आधार पर यह संकल्पना विकसित हुई कि यातायात सुविधा के इन्हीं विराम बिंदुओं पर नगरों–शहरों का विकास होता गया।

चूंकि सीबीडी परिवहन सुविधा का केंद्र था, यह संचार (Communication) व्यवस्था का भी केंद्र बना, जहां किसी भी अन्य क्षेत्र के मुकाबले कहीं अधिक फोन कॉल्स होती थीं। अखबारों, रेडियो स्टेशनों के दफ्तरों की मौजूदगी से सीबीडी सूचनाओं (Information) का भी केंद्र बन गया। पैदल आवाजाही और वाहनों के भारी संचालन के चलते सीबीडी किसी नगर का सबसे अधिक यातायात वाला क्षेत्र था, जबकि नगर की आर्थिक गतिविधियों वाला क्षेत्र होने से यहीं बैंकों, वित्तीय संस्थानों, स्टॉक मार्केट की भी स्थापना हुई।

हालांकि, औद्योगिक इकाइयों की स्थापना इससे दूर की जाती थी, लेकिन संबंधित कंपनियों के मुख्यालय भी सीबीडी में ही होते थे। इसकी वजह सीबीडी में वित्तीय संस्थानों की नजदीकी और संचार व सूचनाओं की प्रचुर उपलब्धता थी। इसके अलावा वित्तीय संस्थानों और इनमें कार्य करने वाले लोगों की जरूरत के मुताबिक यहां कानूनी, कार्यालयी, भोजन, चौकीदारी समेत तमाम व्यक्तिगत सेवाओं की भी पर्याप्त सुविधा मौजूद थी। सीबीडी रिटेल शॉपिंग सेंटर के तौर पर भी काम करता था, जहां बड़े डिपार्टमेंटल स्टोर, सामग्री विशेष की खास दुकानें, लक्जरी शॉप आदि विकसित हुईं। इसके अलावा क्षेत्रीय और राष्ट्रीय थोक विक्रेताओं–ग्राहकों, दूसरे शहरों के उपभोक्ताओं, पर्यटकों और अन्य लोगों की सुविधाओं के लिए यहां होटल भी बने। सीबीडी में मनोरंजन की भी सुविधा थिएटर आदि के तौर पर मौजूद थीं, जबकि धार्मिक क्रियाकलापों के लिए यहां चर्च भी थे।

1942 में जॉनसन की बताई सीबीडी की इस अवधारणा में समय के साथ कई परिवर्तन भी सामने आए। औद्योगिक क्षेत्रों और शॉपिंग सेंटरों का उपनगरीय क्षेत्रों में विकसित होना, लक्जरी होटलों का सीबीडी से निकलकर नगरीय क्षेत्रों से बाहर हाईवे के किनारे और एयरपोर्ट के आसपास स्थापित होना और रिटेल विक्रय केंद्रों का उपनगरीय क्षेत्रों में बढ़ना जैसे परिवर्तन बाद में सामने आए। इसके बावजूद आर्थिक क्रियाओं के निष्पादन का सीबीडी का प्राथमिक कार्य आज भी विद्यमान है। विकेंद्रीकरण (Decentralization) ने सीबीडी के लिए चुनौती पेश की है, लेकिन अब भी नगरीय व्यवस्थाओं की मूलभूत गतिविधियों को बाहरी क्षेत्रों में पूरी तरह विस्थापित नहीं किया गया है।

सीबीडी का भविष्य वर्तमान में आशंकाओं के घेरे में है। अमेरिका में शहरी नागरिकों के पास अब भी सीबीडी को लेकर आशान्वित रहने के कई कारण मौजूद हैं और कुछ नगरों में सीबीडी की अवधारणा को पूरी तरह नष्ट होने से बचाया भी गया है, लेकिन संकट से उबरने की ऐसी सफलताओं की संख्या काफी कम है। इस तरह का नुकसान सीबीडी की नियति सा नजर आता है। कुछ शहरी समाजशास्त्री मानते हैं कि सीबीडी की अवधारणा पूरी तरह खत्म होने के कगार पर है, लेकिन कुछ मानते हैं कि रिटेल बाजार सीबीडी से दूसरे वैकल्पिक क्षेत्रों में विकसित होंगे और सीबीडी का महत्व सिर्फ इसकी वित्तीय और संचारिक सुविधाओं के लिए रह जाएगा। अधिकतर यह मानते हैं कि शहरों में सीबीडी का एकाधिकार और वर्चस्व कम होगा, लेकिन इस तरह के केंद्र बने रहेंगे। सरकारी नीतियों और शहरी

विकास के परिणामस्वरूप हाल में कुछ सीबीडी में नये दफ्तरों, भवनों और सम्मेलन केंद्रों के निर्माण से तस्वीर कुछ बदली है। ऐसे में सीबीडी के अस्तित्व को लेकर भविष्यवाणी करना अभी जल्दबाजी माना जा सकता है।

## 9.4 केंद्रीकृत क्षेत्र मॉडल (The Concentric Zone Model)

**जोन 1:** 1920 में शिकागो विश्वविद्यालय के अर्नेस्ट डब्ल्यू बर्गेस और रॉबर्ट टी पार्क ने केंद्रीकृत क्षेत्र मॉडल प्रस्तुत किया। इस मॉडल में किसी शहर के ढांचे को पांच केंद्रीकृत वृत्तों के जरिये दर्शाया गया है जिसका केंद्र सीबीडी यानी जोन 1 होता है **(देखें चित्र)**।

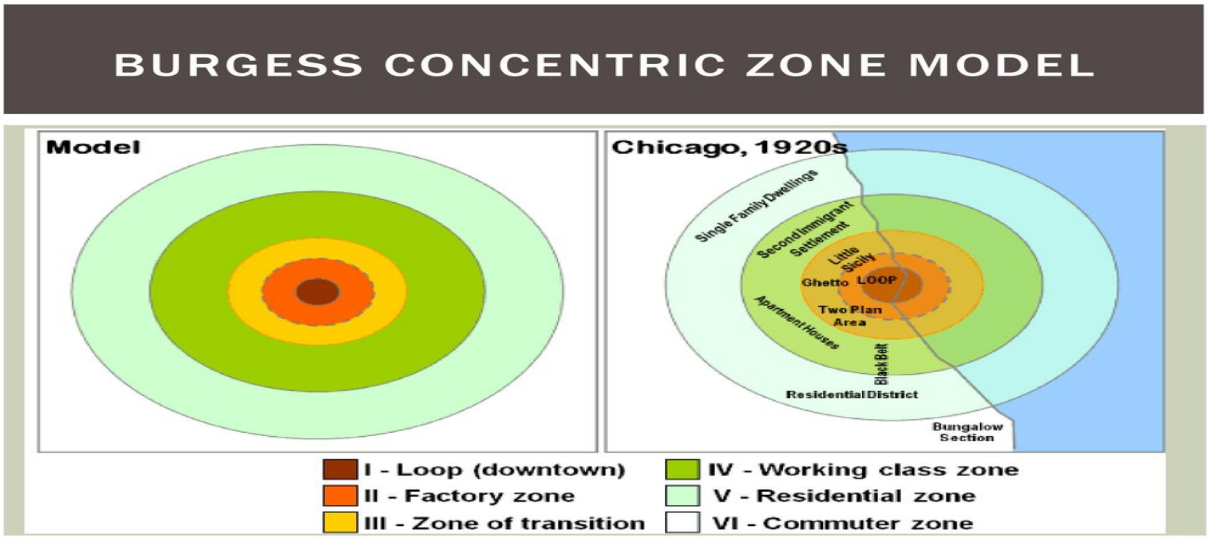


**जोन 2:** चित्र के अनुसार बर्गेस ने समझाया कि सभी वृत्तों का केंद्रबिंदु सीबीडी है। सीबीडी के चारों ओर अगला यानी दूसरा जोन संक्रमणकालिक क्षेत्र (Transitional Zone) कहलाता है। इसकी वजह यह है कि यह क्षेत्र लगातार परिवर्तनशीलता के दायरे में रहता है, क्योंकि केंद्र में स्थित सीबीडी इस क्षेत्र को अपनी भूमिकाओं के हिसाब से प्रभावित कर अपना दायरा बढ़ाने की कोशिश करता रहता है। इस जोन की आंतरिक सीमा हल्के उत्पादन कारखानों और गोदामों की होती है। इस क्षेत्र में आवासीय भवन किसी शहरी इलाके के सबसे पुराने घर होते हैं, जिन्हें लगातार उपयोग किया जा रहा है। वास्तव में ये आवास इतने बड़े थे कि व्यावसायिक गतिविधियों के लिए इन्हें छोटे कमरों, अपार्टमेंट में परिवर्तित किया जा सके। इनमें से कई घर दरअसल गरीबों को छोटे अपार्टमेंट उपलब्ध करने के लिए बनाए गए थे।

इस जोन के आवासीय भवनों का किराया शहर के अन्य क्षेत्रों के मुकाबले काफी कम था, लिहाजा इस क्षेत्र में ऐसे लोगों को आसानी से रहने की सुविधा उपलब्ध होती थी, जो महंगा किराया चुका पाने में सक्षम नहीं थे। हालांकि, पृथक्कृत समाज के लोगों (विशेषतः शरणार्थियों) को आवास के बदले में बेहद कम और गुणवत्ता के लिहाज से निम्नतम सुविधाएं ही उपलब्ध हो पाती थीं। मकान मालिक रखरखाव यानी मेंटेनेंस के मानकों से इसलिए समझौता करते थे कि उन्हें खर्च किए बिना लाभ मिलता रहे। इस तरह इस जोन में स्थित पुराने आवासीय भवन संबंधित लोगों के लिए मुनाफे का जरिया थे। दूसरी ओर, चूंकि जमीन की अपनी काफी कीमत होती थी, लिहाजा मकान मालिक अकसर पुराने भवनों के पूरी तरह

नष्ट हो जाने तक का इंतजार किया करते थे। इस प्रवृत्ति को टैक्स के उन नियमों ने भी बढ़ावा दिया, जिसके तहत संपत्ति पर मार्केट वैल्यू के बजाय उसके उपयोग और स्थिति के आधार पर कर वसूला जाता था। ट्रांजिशनल जोन किसी शहरी इलाके की वह जगह है, जहां मुख्य बस्ती होती है। इस बस्ती में अप्रवासी लोग रहा करते हैं। इस जोन के हर ब्लॉक, हर कमरे में रहने वाले लोगों की संख्या शहर के दूसरे इलाकों के मुकाबले कहीं अधिक होती है। यही नहीं, इस क्षेत्र में आपराधिक गतिविधियों, शिशु मृत्यु दर, यौनरोग और अन्य संक्रामक बीमारियों का खतरा भी अन्य क्षेत्रों से कहीं अधिक होता है। प्रति व्यक्ति आय की सबसे कम दर, बेरोजगारी की सर्वोच्च दर और मनोरोगियों की बड़ी तादाद भी इसी क्षेत्र में पाई जाती है।

**जोन 3:** शहर का तीसरा जोन वह हिस्सा है, जहां अधिकतर औद्योगिक इकाइयों और दफ्तरों के कामकाजी लोगों (Blue Collar Class) के आवास होते हैं। शरणार्थियों की दूसरी–तीसरी पीढ़ी के वे लोग, जो रोजगार के बेहतर अवसर हासिल कर पाते हैं बस्तियों से निकलकर इस क्षेत्र में घर खरीद लेते हैं। इस क्षेत्र में छोटे भूभाग पर बने घरों के दाम अधिक होते हैं, जबकि मकानों की मरम्मत–रखरखाव की बेहतर व्यवस्था और समुचित साफ–सफाई भी रहती है। इस क्षेत्र में स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था, क्लब, पारंपरिक चर्च और स्थापत्य कला भी नजर आती है। इस क्षेत्र में चार परिवारों के रहने लायक फ्लैट्स वाले भवन, डुप्लेक्स आदि निर्मित होते हैं। इस क्षेत्र के आसपास ही शॉपिंग ब्लॉक्स होते हैं, जो सीबीडी को इस क्षेत्र से जोड़ने वाली सड़कों पर स्थित रहते हैं। समकालीन अमेरिकी शहरों में यह जोन अक्सर पक्षियों के पानी पीने, स्नान के लिए रखे जाने वाले खास पात्रों (Birdbaths), मडोना (Madonna) यानी ईसा की मां की प्रतिमाएं, रॉट आयरन से तैयार कलाकृतियों से अलंकृत किए नजर आते हैं। इस क्षेत्र में लोगों की औसत आयु अधिक होती है। यहां ऐसे बुजुर्ग अधिक रहते हैं जो अपने घर, आसपड़ोस को छोड़कर नहीं जाना चाहते। हालांकि, इनमें से कुछ क्षेत्रों में नवयुगल भी रहने लगे हैं।

**जोन 4:** बर्गेस के अनुसार शहर का जोन 4 आवासीय क्षेत्र है, जहां काफी महंगे आवास होते हैं। इस क्षेत्र में अमेरिका में ही जन्मे श्वेत (White) लोग और वहां की सामाजिक व्यवस्था में आत्मसात कर लिए गए बाहरी सजातीय लोग घर बनाते हैं। यहां आवासीय भूभाग पिछले जोन से कहीं बड़े होते हैं और घर गलियों से काफी दूरी पर बनाए जाते हैं। हरे लॉन, पेड़–पौधे आदि भी इस क्षेत्र में बहुतायत में रहते हैं। इसके अलावा यहां उच्च किराये वाले अपार्टमेंट, रेजीडेंशियल होटलों में शहरी मध्यमवर्गीय परिवार रहते हैं, जो अपना खुद का मकान नहीं खरीदते हैं। यहां रहने वाले लोग मध्यमवर्ग का उच्चशिक्षित तबका है, जो दफ्तरों में काम करते हैं, सेल्स पर्सनल होते हैं और इनमें से कुछ छोटे कारोबारी भी होते हैं। ये लोग बहुत सुविधाजनक तो नहीं, लेकिन आराम से जीवन जीते हैं। इस क्षेत्र में सड़कें, गलियां सुंदर, साफसुथरी नजर आती हैं, जबकि यहां स्थापित शॉपिंग सेंटरों की वास्तुकला आकर्षक थीम आधारित होती है। आवासीय कॉलोनियों के पैटर्न में सामाजिक संस्थाओं, सम्मेलन स्थलों, चर्चों आदि की भी व्यवस्था यहां होती है।

**जोन 5:** इस क्षेत्र को कम्यूटर जोन कहा जाता है, क्योंकि यहां अधिकतर ऐसे लोगों की आवाजाही लगी रहती है जो यात्री होते हैं या जिनके आवास स्थिर न हों। इस क्षेत्र में आवासीय और सामाजिक पैटर्न और व्यवस्थाओं का मॉडल अस्पष्ट रहता है। यह ऐसा क्षेत्र है, जिसे अकसर वाहनचालक सीबीडी तक सीधे पहुंचने के लिए इस्तेमाल करते हैं। इस क्षेत्र से गुजरकर वे शहरी सड़कों, गलियों में व्यस्त यातायात से बच जाते हैं। इस क्षेत्र में विकास असमान नजर आता है। एकसमान वास्तुशैली और दाम

वाले आवासों का क्लस्टर बस्तियों और व्यावसायिक क्षेत्रों के बीच दिखता है। इस क्षेत्र में अक्सर उपनगरीय क्षेत्रों से सटे रहने वाले इलाके में ही ग्रामीण बस्तियां या अलग–थलग रहने वाले समुदाय ही आवास बनाते हैं।

पांचों जोन के अध्ययन से हम यह समझ पाते हैं कि केंद्रीकृत मॉडल के अनुसार कोई शहर पानी में उठने वाली लहर की तरह विकसित होता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि किसी जोन में बदलाव तब संपन्न होता है, जब दूसरे जोन की आबादी उसमें प्रवेश करे और फिर धीरे–धीरे उस जोन की पुरानी आबादी को स्थानांतरित कर दे। सीबीडी का विकास अंतर राष्ट्रीय जोन में हर अगले सटे जोन के आंतरिक किनारे में आबादी और व्यवस्था के प्रवेश से होता है। केंद्रीकृत मॉडल का सिर्फ कम्यूटर जोन खुले भूभाग के चलते बाहर की ओर विकास के लिए स्वतंत्र होता है।

## 9.5 सेक्टर मॉडल (The Sector Model)

शहरी विकास के सेक्टर मॉडल की अवधारणा होमर हॉइट ने वर्ष 1934 में अमेरिका के 64 नगरों के अध्ययन से सामने आई जानकारियों, डाटा के आधार पर की थी। इनमें से अधिकतर शहर मध्यम या छोटे आकार के थे, लेकिन न्यूयॉर्क, शिकागो, डेट्रॉइट, वॉशिंगटन और फिलाडेल्फिया जैसे नगरों का अध्ययन विस्तृत डाटा का पूरक बना। हॉइट ने सबसे पहले औसत किराये और अन्य जानकारियों का नक्शा तैयार किया। इनके आधार पर उन्होंने नगरों के पारिस्थितिकीय ढांचे के पैटर्न को समझने और सामान्यीकरण का काम किया। एक बार पैटर्न साफ हो जाने के बाद उन्होंने ढांचे में आए बदलावों और विविधता पर फोकस किया। इस अध्ययन से हॉइट ने साफ किया कि किराये में विविधता सामान्य तौर पर किसी एक इलाके की विशेष पहचान या गुण के तौर पर सामने आती है। इसके अलावा उन्होंने केंद्रीकृत मॉडल के बजाय मैप को किराये के पैटर्न पर तैयार किया, जो किसी पाई (Pie) के अलग–अलग आकार में कटे हुए टुकड़ों की तरह नजर आता है (देखें चित्र)।

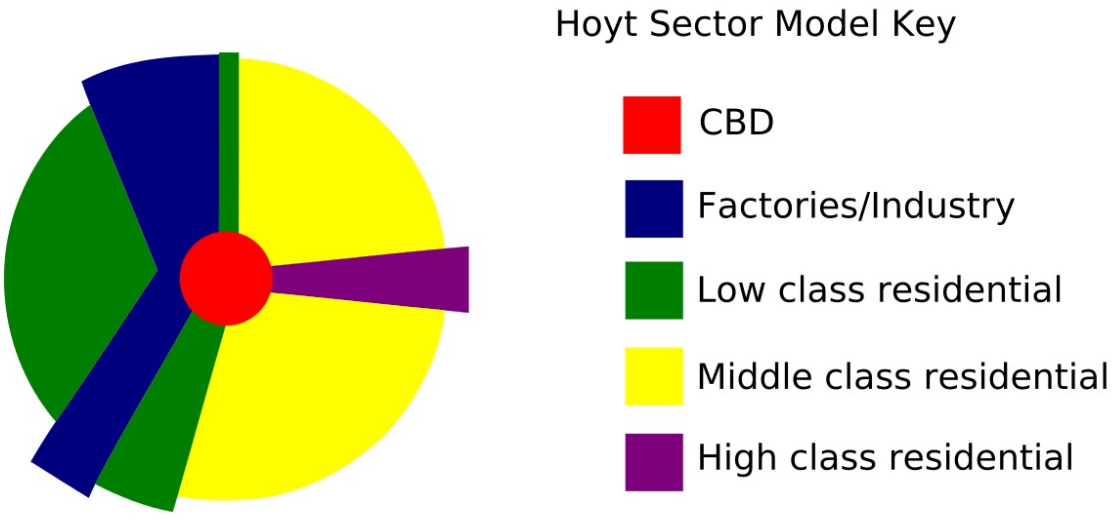

चित्र से स्पष्ट होता है कि हर सेक्टर में भूउपयोग और किराये का मूल्य समान हैं। हॉइट बताते हैं कि किराये का मूल्य किसी क्षेत्र के भूउपयोग का निर्धारण करता है और भूउपयोग किसी शहर में मुनाफे का प्रत्यक्ष या परोक्ष माध्यम है। इसका उदाहरण यह है कि सीबीडी में गैर आवासीय भूमि को वाणिज्यिक, औद्योगिक प्रयोग के लिए इस्तेमाल किया जाने लगता है या फिर कुछ ऐसा किया जाता है कि यह भूमि मुनाफे का माध्यम बने। इस प्रक्रिया से हर उद्देश्य के लिए बाजार मूल्य तय करने की प्रवृत्ति सामने आती है, जिससे हर तरह की भूमि का भी बाजार मूल्य तय किया जाता है। इस प्रकार किसी भी तरह के भूखंड की कीमत उस जमीन से मुनाफे की उम्मीद और जमीन के उपयोग की प्रकृति और इस उपयोग के जरिये उच्चतम लाभ कमाने की संभावनाओं के आधार पर निर्धारित की जाती है। इन मानकों के आधार पर ही किसी जमीन का भूउपयोग और उसका मूल्य तय किया जाता है। उदाहरण के लिए, उत्पादन इकाइयों की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि ट्रक और रेल यातायात की सुविधा उपलब्ध हो। ऐसे में इस तरह की इकाइयों की स्थापना हाईवे और रेल मार्गों के नजदीक ही करना जरूरी होता है। उत्पादन इकाई की स्थापना के लिए जमीन के बड़े क्षेत्रफल की आवश्यकता होती है और इसके लिए प्रति वर्गफीट के हिसाब से जमीन का मूल्य बहुत अधिक हो जाता है। दूसरी ओर, सीबीडी में बैंकिंग, रिटेल कारोबार अधिक विकसित होते हैं, क्योंकि जमीन बहुत महंगी होने के बावजूद भूखंड क्षेत्रफल की कम आवश्यकता के चलते ये वहां स्थापित हो पाते हैं। हॉइट अपने अध्ययन में पाते हैं कि अमेरिका के हर शहर में कम से कम एक बैंक केंद्रीय चौराहों पर स्थित है। वित्तीय गतिविधियां जमीन की कीमत का उच्चतम लाभ दिलाती हैं, इसीलिए बैंक, स्टॉक और कमोडिटी एक्सचेंज अधिकतर नगरों में बीचोंबीच स्थित होते हैं। पार्किंग, बस डिपो, ऑटोमोबाइल शोरूम समेत वे सभी व्यावसायिक गतिविधियां, जिनके लिए अधिक जमीन की आवश्यकता है, वे सीबीडी के किनारे पर अथवा नजदीकी सड़कों पर स्थापित होती हैं। वे उपभोक्ता जो महंगे दाम चुका सकते हैं, शहर के सर्वश्रेष्ठ क्षेत्रों में भूखंड लेते हैं। हॉइट बताते हैं कि यह पूरी व्यवस्था उच्चतम किराया मूल्य वाले सेक्टर पर आधारित है। सेक्टर प्रायः शहर के केंद्र से प्रारंभ होता है और नगरीय क्षेत्र के किनारे तक विस्तारित होता जाता है।

इस सेक्टर के दोनों किनारों पर बिल्कुल सटा हुआ दूसरा सेक्टर है, जहां किराये की दरें दूसरे नंबर पर आती हैं, इसी तरह तीसरे सेक्टर में किराये का मूल्य तीसरे स्थान पर रहता है। निचले किराये वाले क्षेत्र अपने सेक्टर में ही अवस्थित होते हैं और उच्चतम किराये वाले सेक्टर से इनकी दूरी उतनी रहती है, जितना संभव हो। पूरी व्यवस्था का केंद्र सीबीडी ही होता है। हॉइट मानते हैं कि विकास उन क्षेत्रों की ओर अधिक होता है, जहां जमीन की पर्याप्त उपलब्धता हो और इनकी कीमत कम हो। उच्च किराये वाला मूल क्षेत्र शहरी इलाके में विकास की प्रक्रिया को अपनी ओर आकर्षित करने के साथ बाकी सेक्टर में भी गतिविधियों को प्रभावित करता है। इसके चलते किराये वाले अन्य क्षेत्रों को इस खिंचाव को रोकने के लिए कई तरह के प्रयास करने होते हैं। हॉइट का मॉडल यह स्पष्ट करता है कि उच्च किराया मूल्य वाले क्षेत्र से नजदीकी किसी सेक्टर को प्रतिष्ठित करती है।

हॉइट ने उच्च किराये वाले क्षेत्रों के विकास की वजह बनने वाले कारकों को भी स्पष्ट किया है। पहला कारक यह है कि ऐसे क्षेत्र यातायात की स्थापित व्यवस्थाओं के आसपास विकसित होते हैं। दूसरा, ऐसे क्षेत्र ऐसे ऊंचे स्थानों पर विकसित होते हैं, जो बाढ़, नदियों के किनारों, जलप्रवाह, समुद्र के किनारों से दूर हों और इनका उपयोग औद्योगिक उद्देश्य के लिए नहीं किया जाता है। इसके साथ ही खुले–स्वतंत्र भूभाग के अलावा वहां प्राकृतिक व्यवधान नहीं होने का भी ख्याल रखा जाता है। तीसरा, यह क्षेत्र उन लोगों की ओर बढ़ता है, जिन्होंने खुद को पहले ही सीबीडी से दूर खुद को स्थापित कर लिया है। चौथा कारक कार्यालयी भवन, बैंक, स्टोर आदि होते हैं, जो उच्च किराये वाले क्षेत्र को अपनी

ओर खींचते हैं। पांचवां कारक अस्थिर आबादी वाले क्षेत्र में उच्चस्तरीय आवासीय क्षेत्र का विकास है। छठा कारक यह है कि विकास एक ही दिशा में लंबे समय तक लगातार चलता है।

हॉइट का यह मॉडल नगरीय विकास को लेकर कई ऐसी चीजों का वर्णन करता है जो केंद्रीकृत मॉडल में पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाती हैं। उदाहरण के लिए केंद्रीकृत मॉडल में सीबीडी में उच्च किराया मूल्य के भवनों को अपवाद के तौर पर देखा जाता है। जबकि सेक्टर मॉडल में इस तरह के भवन सीबीडी से सेक्टर के विस्तार का मूल बिंदु बन जाते हैं। सेक्टर मॉडल केंद्र से बाहर की ओर होने वाले विकास का विसतार से वर्णन करता है। हालांकि, केंद्रीकृत मॉडल की तरह ही सेक्टर मॉडल भी उपनगरीय क्षेत्रों में विकास के पैटर्न को स्थापित नहीं कर पाता है। सेक्टर मॉडल में भी नगरीय इलाकों के पुराने भागों का ही वर्णन किया गया है।

## 9.6 बहुल नाभिक/केंद्र मॉडल (The Multiple Nuclei Model)

शहरी विकास का तीसरा मॉडल चॉन्सी डी हैरिस और एडवर्ड अलमैन ने 1945 में प्रस्तुत किया। इस मॉडल में नगरों में भूउपयोग की ऐसी प्रकृति स्थापित होती है, जिसमें नगर अनेक क्षेत्रों से मिलकर बना नजर आता है। हर क्षेत्र एक अलग केंद्र या नाभिक से जुड़ा होता है और विकास को अपनी ओर खींचता है **(चित्र देखें)**।

**Harris and Ullman's Multiple Nuclei Model**

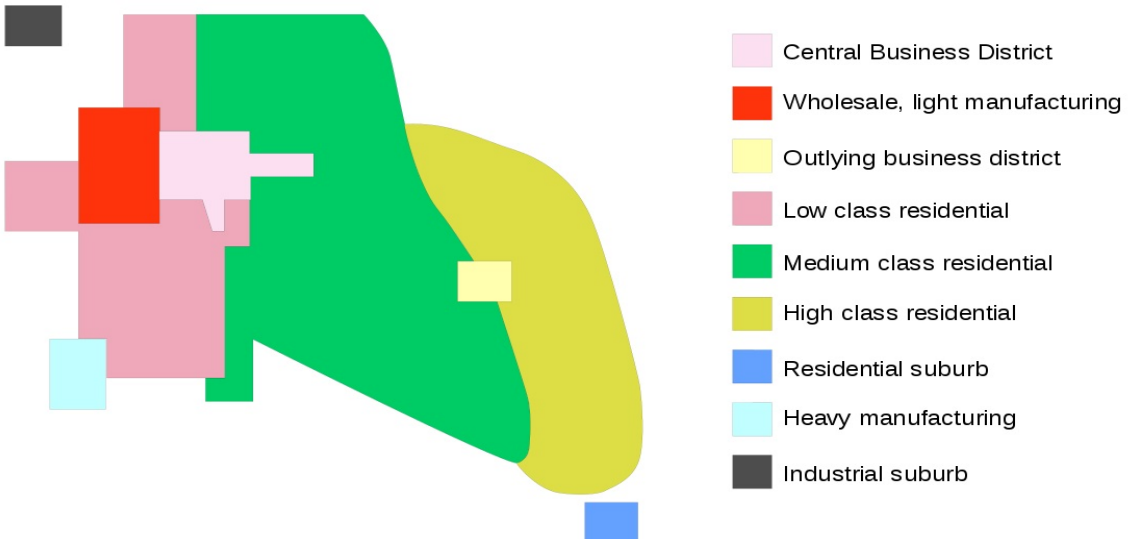


इस मॉडल में किसी नगरीय व्यवस्था को इन नौ क्षेत्रों, जिन्हें अलग–अलग केंद्र या नाभिक माना जा सकता है, में बांटा गया है। 1. सीबीडी (CBD) 2. थोक और हल्की उत्पादन इकाइयां (Wholesale and Light Manufacturers) 3. निम्न वर्ग आवास (Low Class Residential) 4. मध्य वर्ग आवास (Middle Class Residential) 5. उच्च वर्ग के आवास (High Class Residential) 6. भारी उत्पादन इकाइयां (Heavy Manufacturers) 7. उप व्यावसायिक क्षेत्र (Sub Business District- SBD) 8. आवासीय उपनगर (Residential Suburbs) 9. औद्योगिक उपनगर (Industrial Suburbs)। हैरिस और अलमैन बताते हैं कि इनमें से कुछ केंद्र तो किसी शहर के

शुरुआती दौर से ही अस्तित्व में रहते हैं। दूसरे केंद्रों में निरंतर विकास के दौरान इन केंद्रों के बीच दूरी घटती जाती है और धीरे–धीरे वे शहरी क्षेत्र में शामिल हो जाते हैं। ऐसे हर नाभिक को हम ऐसे द्वीपीय क्लस्टर भी मान सकते हैं, जहां भूउपयोग एकसमान रहता है। उदाहरण के लिए शहर के किसी हिस्से में अगर कोई बड़ा अस्पताल स्थापित हो तो इसके आसपास ही मेडिकल स्कूल, अन्य क्लीनिक–अस्पताल, रिसर्च लैब, डॉक्टरों के आवास–दफ्तर, मेडिकल स्टोर, मेडिकल सप्लाई की दुकानें भी स्थापित होने लगती हैं। इनके अलावा इन सब इकाइयों में काम करने वाले लोगों की सुविधा के लिए इसी क्लस्टर में रेस्टोरेंट और अन्य सेवाओं का भी विकास होता है। इसी तरह कोई विश्वविद्यालय या महाविद्यालय एक ऐसा केंद्र बन जाता है, जो अपने आसपास छोटे इंस्टीट्यूट, निजी स्कूल, पुस्तकालयों, बुक स्टोर, शोध संस्थानों, एकेडमिक संस्थानों और शिक्षा व्यवसाय से जुड़ने वाले उपक्रमों के विकास को आकर्षित करता है।

हैरिस और अलमैन बताते हैं कि किसी नाभिक की स्थिति (Location) चार कारकों का परिणाम होती है। पहला, निश्चित प्रक्रिया वाली गतिविधियां विशेष सुविधाओं वाले क्षेत्र में पनपती हैं, उदाहरण के लिए रेल नेटवर्क और पानी की पर्याप्त उपलब्धता। दूसरा, एकसमान क्रियाकलापों वाले उपक्रम किसी क्लस्टर में समूह के तौर पर स्थापित हो जाते हैं, इससे इस समूह को कानूनी, भूउपयोग समेत विभिन्न जरूरतों के लिए अधिकारियों से भी सहयोग मिलने की संभावनाएं रहती हैं। इसके अलावा नगरीय भवनों के नजदीक होने से इस क्लस्टर को स्टॉक, वित्तीय सलाहकार, बैंकिंग आदि कार्यों में भी मदद मिल जाती है। तीसरा, उपक्रमों के बीच परस्पर विरोधी कार्यशैली दोनों के मध्य अवरोध उत्पन्न कर सकता है। उदाहरण के लिए निजी आवासीय क्षेत्र के आसपास उत्पादन इकाइयां स्थापित कर दी जाएं तो इनसे उठने वाला शोर आवासों में रहने वाले लोगों के लिए नुकसानदेह होगा, लिहाजा इकाइयां आवासों से दूर क्लस्टर में लगती हैं। चौथा, एकसमान प्रकृति वाले कार्यों के लिए जमीन का बड़ा दायरा आवश्यक होता है। ऐसे में इस तरह के क्लस्टर कम किराये वाले क्षेत्रों में स्थापित होते हैं। उदाहरण के लिए फैक्ट्रियों की स्थापना शहर से अधिकतर बाहरी क्षेत्रों में की जाती है।

बहुल केंद्र मॉडल शहरी विकास के पैटर्न, शॉपिंग सेंटरों के विस्तार, इंडस्ट्रियल पार्कों के विकास और उपनगरीय क्षेत्रों में क्लस्टर विकास को बेहतर तरीके से स्पष्ट करता है। यह मॉडल शहरी विकास के कई ऐसे पहलुओं को छूता है, जिन्हें हम वर्तमान में प्रत्यक्ष महसूस कर सकते हैं। उदाहरण के लिए नगरों में हो रहा एयरपोर्ट का विस्तार, मोटल–रेस्टोरेंट के नये क्लस्टरों का विकास, छोटी औद्योगिक इकाइयों का विकास। हालांकि, कोई भी मॉडल किसी शहर विशेष की व्यवस्था को पूर्णरूप से व्याख्यायित नहीं कर सकता, लेकिन इन मॉडलों में वर्णित पैटर्न, कारकों के आधार पर शहरी विकास को समझा जा सकता है। तीनों मॉडलों को एकसाथ रखकर भी विकास की प्रक्रिया जानी जा सकती है। उदाहरणः शोधकर्ताओं ने अक्सर पाया है कि किसी शहर में पारिवारिक गुण, आवासीय पैटर्न और शिक्षा का स्तर केंद्रीकृत मॉडल को स्थापित करता है, जबकि प्रतिष्ठित क्षेत्रों की मौजूदगी से सेक्टर पैटर्न की पुष्टि होती है।

## 9.7 तारा सिद्धांत (Star Theory)

स्टार सिद्धांत नगरीय पारिस्थितिकी सिद्धांतों का सबसे पुराना मॉडल है, जिसके आधार पर 1920 से 1930 तक बाकी सभी सिद्धांतों के विकास में मदद मिली। 1903 में आरएम हर्ड ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। उन्होंने पाया कि नगर अपने केंद्र से बाहर की ओर यातायात–परिवहन वाले क्षेत्रों

की ओर विकसित होता है। इससे शहर किसी तारे के आकार में विकसित होता है। धीरे–धीरे तारे की दो पंक्तियों के बीच का खाली स्थान भी विकसित होता जाता है। विकास का यह पैटर्न ऐसे शहरों में देखा जा सकता है जो बाहरी क्षेत्रों से आने वाली आबादी के चारों ओर बसने से धीरे–धीरे विकसित होते हैं।

## 9.8 समीक्षा (Criticism)

शहरी ढांचे के अध्ययन में पारिस्थितिकी पहलू के उपयोग की सीमा यह है कि यह अक्सर उन कारकों को उभार नहीं पाता, जो भूउपयोग पैटर्न और आवासीय पैटर्न को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए किसी शहर की पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था इसके ढांचागत विकास के काम में शक्तिशाली और प्रभावी कारक हो सकता है। एक या दो पारंपरिक रूप से समान सामाजिक वर्गों से विकसित होने वाले शहर और कई अलग–अलग पारंपरिक मान्यताओं वाले समूहों से जुड़कर बने शहर में अंतर साफ महसूस किया जा सकता है। दूसरा कारक है स्थानीय संस्कृति, इतिहास और रीति–रिवाज जो शहर के किसी एक क्षेत्र की पहचान बनते हैं।

प्रारंभिक विशेषज्ञ शहरी विकास को लेकर उन प्रवृत्तियों की स्पष्ट भविष्यवाणी नहीं कर सके जो द्वितीय विश्वयुद्ध से उभरकर सामने आईं। उस दौर में अमेरिका की पूर्वी और मध्यपश्चिमी शहरों में आबादी लगातार कम हुई, जबकि पहले अनुपयोगी समझी जाने वाली दक्षिझी और पश्चिमी 'सनबेल्ट' में स्थित शहरों अलाबामा, फ्लोरिडा, जॉर्जिया आदि शहरों में रोजगार, व्यापार और जनसंख्या में इजाफा हुआ। इसके अलावा सभी जगह शहर ऑटोमोबाइल क्रांति से विकेंद्रीकृत होते गए। शहरों के सीबीडी का महत्व समय के साथ कम होता गया। शहर बाहर की ओर विकसित होते गए और नगरीय इलाकों के आपस में जुड़ने से विकास और सघन होता गया, जबकि नगरीय पारिस्थितिकी विशेषज्ञों ने इसकी कल्पना नहीं की थी। समकालीन विशेषज्ञों ने अपने दौर के विकास के अध्ययन का ही तरीका विकसित किया है। आज कंप्यूटर और आधुनिक सांख्यिकी तकनीकों का इस्तेमाल नगरीय विकास और इसके प्रभावी कारकों का अध्ययन करने में किया जाता है।

## 9.9 निष्कर्ष (Conclusion)

हम जान चुके हैं कि कोई भी मॉडल द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिकी शहरों में सामने आने वाले नगरीय विकास का अंदाजा नहीं लगा सका। विभिन्न घटनाओं से शहरों का विस्तार हुआ, जिनमें सरकारी मदद से सस्ते आवासों का निर्माण, ऑटोमोबाइल सेक्टर में लगातार इजाफा, नगरों के जातीय गुणों में बदलाव, सरकारी मदद से सड़कों का विकास समेत कई कारक शामिल हैं। लेकिन, आज के शहरों का विकास पुराने नगरों से ही हुआ है, लिहाजा किसी नगर के मौजूदा ढांचे को तुलनात्मक रूप से समझने के लिए उसी नगर के पुराने विकास ढांचे को समझना आवश्यक होता है। इसलिए प्रतिपादित मॉडल में स्थापित कारक आज भी अध्ययन के लिए प्रासंगिक हैं।

## 9.10 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. समालोचनात्मक दृष्टि से शहरों के आंतरिक ढांचों को लेकर प्रतिपादित सिद्धांतों का विस्तार से वर्णन करें।
2. सेक्टर सिद्धांत और बहुल केंद्र सिद्धांत का अंतर स्पष्ट करें।

3. सीबीडी क्या है, विस्तार से समझाएं?
4. शहरी पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं का वर्णन करें। इन तीनों का प्रतिपादन किसने किया?

## 9.11 अध्ययन सामग्री (Suggested Readings)

1. McGee, Reece. 1977. Sociology: An Introduction. The Dryden Press.

2. Stanley D. Brunn, Maureen Hays-Mitchell, Donald J. Zeigler.2012. Cities of the World: World Regional Urban Development. Rowman & Littlefield.

3. Tischler, Henry. 2010. Introduction to Sociology. Wadsworth Cengage Learning. USA.

i. Earl S. Jhonson, "The function of the Central Business District in the Metropolitan Community," in Paul K. Hapt and Albert J. Reiss, Jr. (eds.), Cities and Society (Glencoe, III.: Free Press, 1957).

ii. Earnest Burgess, "The Growth of the City'" in Robert Park, E. W. Burgess, and R.D. Mckenzie (eds.), The city (Chicago: University of Chicago Press, 1925).

iii. Homer Hoyt, The Structure and growth of Residential Neighborhoods in the United States (Washington, D.C.: Federal Housing Administration, 1939).

iv. Chauncy Harris and Edward L. Ullman, "'The nature of Cities," Annals of the American Academy of Political and Social Science 242 (November 1945), pp 7-17

# ईकाई– 10

## शहरों की अवस्थिति : केन्द्रीय स्थान सिद्धांत, विशिष्ट कार्य, नगरीय प्राथमिकता एवं श्रेणी–आकार नियम

**Location of Cities: Central Place Theory, Specialized Functions, Urban Primary and Rank-size Rule**

इकाई की रुपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 परिचय

10.2 शहरों की अवस्थिति

- 10.2.1 केन्द्रीय स्थान सिद्धांत
- 10.2.2 मूल अवधारणा
- 10.2.3 समालोचना
- 10.2.4 निष्कर्ष

10.3 विशेष कार्य

- 10.3.1 मूल अवधारणा
- 10.3.2 भारत में उपयोगिता
- 10.3.3 निष्कर्ष

10.4 नगरीय प्राथमिकता

- 10.4.1 मूल अवधारणा
- 10.4.2 समालोचना
- 10.4.3 भारत में उपयोगिता
- 10.4.4 निष्कर्ष

10.5 श्रेणी–आकार नियम

- 10.5.1 मूल अवधारणा
- 10.5.2 समालोचना
- 10.5.2 भारत में उपयोगिता
- 10.5.3 निष्कर्ष

10.6 अभ्यास प्रश्न

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 10.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे कि:

1. नगरों की अवस्थिति का क्या अर्थ है और यह क्यों महत्वपूर्ण है?
2. नगरों की अवस्थिति के संबंध में विभिन्न सिद्धांत क्या हैं?
3. भारत के सन्दर्भ में इन सिद्धांतों की क्या और कितनी उपयोगिता है?

## 10.1 परिचय (Introduction)

मनुष्य द्वारा भूमि पर आधिपत्य एवं उपयोग नगरों के चारों ओर ही रहता है। वैश्वीकरण के दौर में कोई व्यक्ति चाहे जहां रहता हो, वह शहरों से दूर नहीं होता। हालांकि, अवस्थिति (Location) का कारक मानव अस्तित्व के लिये शहरों की जीवनशक्ति (Vitality) के निर्धारण में अहम भूमिका निभाता है। प्राचीन काल में अधिकतर नगरों का विकास जल संसाधनों, उपजाऊ भूमि और परिवहन सुविधाओं से युक्त स्थानों पर ही होता था। अकादमिक (Academically) तौर पर अर्थशास्त्र एवं भूगोल के आधार पर अवस्थिति सिद्धांत (Location Theory) को 'आर्थिक गतिविधियों की भौगोलिक अवस्थिति' (Geographical location of economic activities) से समझा जा सकता है (Encyclopaedia of Britannica). इसी तरह मानवीय भूगोल (Human Geography) में इस सिद्धांत को स्थानिक विश्लेषण (Spatial Analysis) अथवा स्थानिक विज्ञान (Spatial Science) माना जाता है। विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि धरती पर नगरों का विकास अनियोजित (Unplanned) और अतार्किक (Illogical) रूप से नहीं हुआ, बल्कि इनके पीछे अवस्थिति का एक सामान्य सिद्धांत अंतर्निहित था। अलमैन (Ullman, 1941) बताते हैं कि शहर एक ऐसे सेवा केन्द्र को विकसित करते हैं, जिनके जरिये वितरण का समुचित समायोजन संभव हो पाता है (Distribution Theory). इस तरह के सेवा केन्द्र आकार, अवस्थिति, कार्यशैली और संसाधनों के वितरण की विस्तृत श्रृंखला और श्रेणियों में अवस्थित होते हैं, जिनकी मदद से नगरों में असमान विकास की समस्या को दूर किया जा सकता है। कार्ल मार्क्स का संसाधनों के असमान वितरण का सिद्धांत विभिन्न अध्येताओं के लिये सामाजिक–स्थानिक विश्लेषण का माध्यम रहा है।

## 10.2 शहरों की अवस्थिति (Location of Cities)

शहर और शहरी घटक विभिन्न पहलुओं के चलते हमेशा महत्वपूर्ण बने रहे हैं। आबादी और सुविधाओं के लिहाज से समान नगर अपने कार्यों की वजह से परस्पर भिन्न हो सकते हैं। बीती सदियों में वितरण, अवस्थिति और शहरी समायोजनों का विस्तार से अध्ययन किया गया है। वॉन (Von, 1826) ने शहरों के संबंध में पहली सैद्धांतिक स्थापना दी। उन्होंने बताया कि आदर्श परिस्थितियों में शहर केन्द्रीय क्षेत्र (Central Area) के तौर पर विकसित होंगे, जबकि बाहरी घेरे (Outer Ring) के क्षेत्र शहर बन जायेंगे। शहरों को मूल्यविहीन (Value free) घटक नहीं माना जा सकता है, बल्कि यह शहरों में रहने वाले लोगों के सांस्कृतिक मूल्यों को लेकर आगे बढ़ता है। यह विचार कोल (Kohl, 1841) के अध्ययन में और विस्तार से सामने आता है। वह शहरों के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण को समझाने के अलावा परिवहन सुविधाओं के इस पर असर को भी स्पष्ट करते हैं। कुछ वर्ष बाद 1894 में

कूली (Cooley) ने भी परिवहन सुविधाओं (विशेषतः रेल) के शहरों के विकास और अवस्थिति पर प्रभाव को स्पष्ट किया। इस तरह यह स्पष्ट होता है कि शहरों की स्थापना के लिये उपयुक्त अवस्थिति के चयन में कई तरह के कारक महत्वपूर्ण होते हैं। विभिन्न शोधकर्ताओं ने इन्हें ध्यान में रखते हुए महत्वपूर्ण सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। हम इन्हीं सिद्धांतों को जानने की कोशिश करेंगे, ताकि शहरी व्यवस्था (Urban System) में नगरों की अवस्थिति के संबंध में बेहतर समझ विकसित कर सकें।

### 10.2.1 केन्द्रीय स्थान सिद्धांत (Central Place Theory)

यह सिद्धांत क्रियात्मक गतिशीलता के आधार पर शहरों के महत्व को स्पष्ट करता है। यह सिद्धांत क्रिस्टेलर (Christaller) ने प्रतिपादित किया, जिसे बाद में ऑगस्ट लॉश (August Losch) ने नये सांचे में ढाला। दोनों ही सिद्धांत समायोजन की कार्यपद्धति (Function of Settlements) एवं स्थानिक अवस्थिति (Spatial Location) के बीच मजबूत संबंध विकसित करने के साथ शहरी व्यवस्था में वितरण की एकरूपता को स्पष्ट करते हैं। वाल्टर क्रिस्टेलर मूलतः एक भूगोलविद् थे। उन्होंने अपनी पुस्तक (Central Place in Southern Germany, 1933) में केन्द्रीय स्थान सिद्धांत को पहली बार स्पष्ट किया। दक्षिणी जर्मनी के अध्ययन में निगमन सिद्धांत (Deductive Theory) के उपयोग से उन्होंने ऐसे नियमों की तलाश का प्रयास किया, जिनके जरिये शहरों–नगरों की संख्या, वितरण और आकार को समझा जा सके। उनके निष्कर्ष निम्नवत रहेः

1. सभी शहरी क्षेत्र समतल (Flat) भूमि पर, सीमित स्थानों पर विकसित हुए
2. सभी शहरी क्षेत्र समरूप (Homogeneous) थे और इनकी कोई सीमा (Boundary) नहीं थी
3. सभी क्षेत्रों में आबादी का समान रूप से वितरण देखा गया
4. सभी व्यवस्थापन (Settlements) समान दूरी (Equidistant) पर थे, जिनकी स्थिति त्रिकोणीय जालक (Triangular Lattice Pattern) बनाती है, जिनसे संसाधनों का समान वितरण संभव हो पाता है
5. शहरी क्षेत्रों में व्यवसायियों के पूंजीवादी लक्ष्य निर्धारित होते हैं, जिसके लिये उन्हें कड़ी स्पर्धा से भी जूझना होता है
6. उपभोक्तावादी (Consumerism) शैली यहां सर्वोच्च होती है, अधिकतर लोग समान आय वर्ग वाले होते हैं और समान क्रयक्षमता (Purchasing Power) के साथ वस्तुओं और सेवाओं की मांग में भी समानता पायी जाती है
7. उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं संबंधी अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिये नजदीकी केन्द्रीय स्थान तक जाते हैं, उनका प्रयास कम से कम दूरी तय करने का होता है
8. वस्तुओं और सेवाएं उपलब्ध कराने वाले व्यवसायी या सेवाप्रदाता अत्यधिक लाभ कमा पाने में सक्षम नहीं होते, शहर के आंतरिक क्षेत्रों में सप्लायरों का एकाधिकार देखा जाता है

**महत्वपूर्ण तथ्य (Important Fact)**

**वॉल्टर क्रिस्टेलर जर्मन भूगोलविद् थे, जिन्होंने ग्रेडमैन (Gradman, 1916) के कार्यों के आधार पर उपरोक्त अवधारणाओं को प्रतिपादित किया। ग्रेडमैन के अनुसार, 'शहरों की विशिष्ट भूमिका आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों के केन्द्रबिन्दु बनने की थी, जो स्थानीय अर्थव्यवस्था के साथ आसपास के क्षेत्रों में भी वित्तीय स्थिति को बनाये रखने में सुविधाजनक स्थिति बना सके। इसके लिये स्थानीय उत्पादों का संग्रहण, निर्यात और स्थानिक जरूरतों के हिसाब से वस्तुओं एवं सेवाओं का आयात इस केन्द्रबिन्दु के ही माध्यम से होता था।'**

### 10.2.2 मूल अवधारणा (Basic Assumption)

केन्द्रीय स्थान सिद्धांत के प्रमुख पहलू निम्नवत हैं:

1. **केन्द्रीयता (Centrality):** यहां केन्द्रीयता का तात्पर्य उस स्थान से है, जो अपने आसपास के क्षेत्रों में वस्तुओं और सेवाओं को प्रदान करने का केन्द्र हो। वस्तुओं की मांग में रोजमर्रा की जरूरतों (जैसे फल, सब्जियां, अनाज आदि) से लेकर कभीकभार की वस्तुओं (बाइक, फ्रिज आदि) तक शामिल होती हैं। हालांकि, केन्द्रीय स्थान की कार्यशैली और अहमियत वस्तुओं की मात्रात्मक एवं गुणवत्तापरक उपलब्धता पर निर्भर होती है।
2. **पूरक क्षेत्र (Complementary Areas):** ये क्षेत्र केन्द्रीय स्थान की परिधि में अवस्थित होते हैं। इनका महत्व एवं आकार केन्द्रीय स्थान पर निर्भर होता है।
3. **प्रारंभिक आबादी (Threshold Population):** इसका अर्थ केन्द्रीय स्थान में किसी उत्पाद के लिये उपलब्ध न्यूनतम ग्राहकों की संख्या से है। यह संख्या किसी विशेष वस्तु अथवा सेवा की व्यवस्था एवं उपलब्धता बनाये रखने का अहम कारक है। उदाहरण के लिये फ्रिज, मोटरसाइकिल आदि अपेक्षाकृत कम और कभीकभार बिकने वाले उत्पाद हैं और इसका उत्पादन बनाये रखने के लिये बहुत बड़ी संख्या में ग्राहकों की उपलब्धता आवश्यक है, दूसरी ओर फल, सब्जियां, अनाज और घरेलू जरूरत की चीजें अधिक मात्रा में बिकती हैं और ग्राहकों की कम संख्या के बावजूद इनकी मांग लगातार बनी रहती है।
4. **वस्तुओं और उत्पादों की शृंखला (Range of Goods and Services):** वस्तुओं की शृंखला ग्राहक तक पहुंच की अधिकतम दूरी तक पर निर्भर करती है, यह निर्भरता दरअसल यह होती है कि ग्राहक की किसी वस्तु तक जाने के लिये यह दूरी तय करने की कितनी इच्छा है।

यह स्पष्ट है कि इस सिद्धांत की बुनियादी अवधारणा शृंखला और प्रारंभिक आबादी पर ही निर्भर है। ये दोनों वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धता को निर्धारित करने वाले अहम कारक हैं।

### 10.2.3 आलोचना (Criticism)

1. केन्द्रीय स्थान सिद्धांत की आलोचना का एक बिन्दु यह है कि यह वास्तविक स्थान को अवधारणाओं में बांधकर बेहद सीमित कर देता है।
2. यह मानना कि सभी क्षेत्र समतल (Flat) हैं और सभी क्षेत्रों में वस्तुओं–सेवाओं का वितरण एकसमान रूप से होता है, वस्तुतः काल्पनिक है। वस्तुओं की शृंखला वाला पहलू भी इसलिये प्रभावी नहीं दिखता, क्योंकि सीमित शृंखला वाले बाजार सिकुड़ जायेंगे, विशेषतः उस दौर में जहां मॉल और ऑनलाइन सेवाएं तेजी से बढ़ रही हैं और ग्राहक माउस के एक क्लिक पर दुनियाभर से मनचाहा उत्पाद हासिल कर सकते हैं।
3. व्यवस्थाओं का षट्भुजीय पैटर्न व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। बाजार क्षेत्र की मूल प्रवृत्ति अन्य किसी भी आकार के बजाय वृत्ताकार रूप में अवस्थित होने की होती है। कामिल बताते हैं कि, 'वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धता, विविधता, गुणवत्ता और मात्रा जितनी अधिक होगी, उतनी ही अधिक दूरी लोग उन्हें हासिल करने के लिये तय करने के इच्छुक होंगे।'
4. पूंजीवादी दौर में साफसुथरे और समान प्रतिस्पर्धी बाजार की उम्मीद करना काल्पनिक लगता है। अधिकतम लाभ कमाने की इच्छा रखने वाले उद्यमी खुद को बाकी सभी उद्यमियों से आगे रखने के लिये ऐसे प्रयास करेंगे, जिनसे बाजार वृत्ताकार बन जायेगा। इससे कम से कम यह

तय हो पायेगा कि बाजार कम से कम एक प्रारंभिक आबादी को उत्पाद मुहैया कराने का लक्ष्य पूरा कर सकेगा।

5. केन्द्रीय स्थान अलग–अलग होते हैं, ऐसे में सैद्धांतिक रूप से एक निश्चित एवं स्पष्ट केन्द्र की उपस्थिति असंभव है।
6. ग्राहकों की आवाजाही का पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है, क्योंकि कई बार यह बजट एवं उत्पाद की वास्तविक आवश्यकता पर निर्भर करता है। यह भी संभव है कि कई बार ग्राहक बाजार तक पहुंचने के बावजूद वस्तु इसलिये नहीं ले सकता है, क्योंकि वह उसके बजट से बाहर है। इस तरह किसी दैनिक जीवनचर्या के लिये आवश्यक उत्पाद के लिये ग्राहकों का लंबी दूरी तय करना आवश्यक नहीं है। हालांकि, कभीकभार खरीद की जाने वाली वस्तु के लिये जरूर ग्राहक आवश्यकता होने पर लंबी दूरी तय कर सकते हैं।
7. तकनीकी विकास और सरकारी नीतियां भी बाजार की जरूरतों को पूर्ण करने में अहम भूमिका का निर्वाह करती हैं। उदाहरण के लिये ऑनलाइन शॉपिंग, होम डिलीवरी जैसी सुविधाएं और वस्तुओं के दामों पर सरकारी नियंत्रण आदि।
8. वॉल्टर ने हर केन्द्र के लिये एक विशेष आयाम पर ही कार्य करने की अवधारणा दी, जबकि वर्तमान दौर में हर केन्द्र बहुआयामी (Multifunctional) हैं।

### 10.2.4 भारत के सन्दर्भ में उपयोगिता (Applicability in India)

केन्द्रीय स्थान सिद्धांत अपनी स्थायी अवधारणा के कारण प्रवृत्ति में उच्च मानकाधीन (Normative) होते हैं। भारतीय प्रशासनिक ढांचा विभिन्न पदक्रमों में बंटा हुआ है। राजधानी के उच्चतम स्तर से शुरू होकर यह जिला, तहसील, खंड यानी ब्लॉक, निकाय और ग्राम पंचायत तक जाता है। इसके अलावा भारत में शहरी–ग्रामीण व्यवस्थाओं को जनसंख्या घनत्व, ढांचागत बुनियादी सुविधाओं आदि से देखा जाता है, लिहाजा यहां इस सिद्धांत को लागू कर पाना बेहद मुश्किल है। हालांकि, जर्मनी में स्थान परिवर्तन नीतियों के लिये इसे मार्गदर्शक सिद्धांत माना जाता है। इसके अलावा यह सिद्धांत वहां के क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों का अहम हिस्सा है।

### 10.2.5 निष्कर्ष (Conclusion):

ऑगस्ट लॉश ने अपनी पुस्तक Economics of Location में केन्द्रीय स्थान सिद्धांत को नवीनीकृत किया है। उन्होंने बताया कि बाजार का आकार और विस्तार इसके ग्राहकों को प्रभावित करता है। क्रिस्टेलर के समतल विचार के विपरीत ऑगस्ट ने स्पष्ट किया है कि सतह के समस्थानिक होने के अलावा यह आवश्यक है कि वहां वस्तुओं और सेवाओं की निर्बाध आपूर्ति बनी रहे। उद्यमी पूंजीवादी व्यवस्था के तहत काम करते हैं, जो वस्तुओं और सेवाओं के दाम में वृद्धि से उपभोक्ताओं–ग्राहकों को प्रभावित करता है। क्रिस्टेलर मानते हैं कि वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिये शृंखलाबद्ध पदानुक्रम की व्यवस्था है, वहीं ऑगस्ट मानते हैं कि पदानुक्रम (Hierarchy) का हर केन्द्र अलग–अलग सेवाएं और वस्तुएं उत्पादित करता है। क्रिस्टेलर ने अपने पदानुक्रम का वितरण उतरते हुए क्रम (Descending Order) में किया है, जिसके उच्चतम पायदान पर महानगर हैं, जबकि लॉश ने इसे चढ़ते हुए क्रम (Ascending Order) में समझाया है। इस तरह यह स्पष्ट होता है कि क्रिस्टेलर ने जो योजनागत प्रस्ताव दिये हैं, वे उच्च विकसित शहरों में ही उपयोगी हैं, लेकिन ऑगस्ट का तरीका उच्च आबादी घनत्व वाले क्षेत्रों पर भी लागू हो सकता है। वस्तुतः दोनों ही विचार क्षेत्र विशेष के विश्लेषण के बजाय संयुक्त सिद्धांत हैं।

## 10.3 विशेष कार्य सिद्धांत (Specialized Function Theory)

शहरी संस्कृति के विस्तार के परिणामस्वरूप शहरों की संख्या में तो बढ़ोतरी हुई ही, उनके कार्यों और महत्व में भी वृद्धि हुई। शहर आकार, अवस्थिति के हिसाब से तो एक–दूसरे से अलग होते ही हैं, उनका महत्व भी उनकी आवश्यकता, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यशैली आदि के लिहाज से अलग–अलग हो जाता है। विभिन्न शोधकताओं ने आकार, अवस्थिति, सामाजिक–सांस्कृतिक महत्व के आधार पर नगरों को वर्गीकृत करने के प्रयास किये हैं, लेकिन कार्यों के आधार पर इसका निर्धारण ही वर्गीकरण के मजबूत सिद्धांत की स्थापना के लिये सबसे उचित माना जाता है। शहरों की कार्याधारित व्याख्या ही शहरी अध्ययन का महत्वपूर्ण पहलू है, क्योंकि यह क्षेत्रीय योजना (Regional Planning) के लिये सुदृढ़ आधार प्रदान करती है (Velapurgore, Rathod and Kagapur, 2008). ऑरेसो, हैरिस और हॉवर्ड नेल्सन जैसे शोधकर्ताओं ने भी कार्यों के आधार पर ही शहरों का वर्गीकरण किया है।

### 10.3.1 मूल अवधारणा (Basic Assumption)

कार्यों के आधार पर शहरों को विभिन्न क्षेत्रों (Zones and Regions) में वर्गीकृत किया गया है। शोधकर्ताओं ने इसके लिये विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखा है। इसे समझने के लिये हम दुनियाभर में शोधकर्ताओं द्वारा किये गये वर्गीकरणों का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

**ऑरेसो का मॉडल (Aurousseau's Model):** ऑरेसो ने वर्ष 1924 में विशेष कार्य सिद्धांत प्रतिपादित किया। उन्होंने शहरी भूगोल (Urban Geography) को शहरी अध्ययन का सहायक मानने के बजाय मुख्य कारक और स्वतंत्र अध्ययन क्षेत्र माना और तर्क दिया कि यह शहरी योजना के लिये अहम पहलू है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद शहरी भूगोल मुख्य कारक बन गया, क्योंकि शहरों की विकास योजनाओं और भौगोलिक विकास के लिये यह महत्वपूर्ण था। वर्ष 1921 में ऑरेसो ने शहरों को साधारणतम स्वरूपों के आधार पर वर्गीकृत किया। उन्होंने शहरों को छह वर्गों में विभाजित किया था। ये निम्नवत हैं:

1. प्रशासन (Administration)
2. सुरक्षा (Defence)
3. संस्कृति (Culture)
4. उत्पादन (Production)
5. संचार (Communication)
6. मनोरंजन (Recreation)

शहरी केन्द्र विभिन्न कार्यों–उद्देश्यों की पूर्ति में मानवीय आबादी के लिये महत्वपूर्ण कारक की तरह होते हैं। ये कार्य शहरी केन्द्रों की व्यवस्था पर निर्भर करते हैं। प्रशासन की इसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, लिहाजा कार्यों के लिहाज से इस पर ही सबसे अधिक दायित्व भी रहता है। इस तथ्य को इस तरह समझ सकते हैं कि विभिन्न कालों (Era) में राजाओं ने प्रशासनिक शहरों की स्थापना की। भारत में दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी है, ऐसे में अधिकतर प्रमुख सरकारी कार्यालय वहीं हैं। सुरक्षा नागरिकों के लिहाज से बेहद अहम हिस्सा है, विशेषकर सीमावर्ती क्षेत्रों में इसका महत्व और बढ़ जाता है। सांस्कृतिक नगरों का महत्व राष्ट्रीय संपत्ति के तौर पर जाना जाता है।

**महत्वपूर्ण तथ्य (Important Fact)**

**मार्कल ऑरेसो आस्ट्रेलियाई भूगोलविद्, अनुवादक, भूगर्भशास्त्री थे। प्रथम विश्व युद्ध के बाद वह आस्ट्रेलियाई सेना में शामिल हो गये। भूगोल में उनका 50 साल से अधिक का योगदान रहा। जनसंख्या समस्या और व्यवस्थागत पैटर्नों पर आधारित उनके बौद्धिक कार्य, शोध 1918–27 के बीच प्रकाशित हुए। 1923 में उन्हें न्यूयॉर्क स्थित अमेरिकन ज्योग्राफिकल सोसाइटी में भूगोलविद् के रूप में नियुक्ति मिली। उन्होंने अमेरिका में चार वर्ष तक आईजे बोमैन, हार्लेन बैरोज और मार्क जेफरसन जैसे प्रसिद्ध भूगोलवेत्ताओं के साथ काम किया। 1920 में अपने जीवनवृत्त में ऑरेसो ने स्वयं उस अवधि का एक भूगोलविद् के तौर पर विस्तार से वर्णन किया है। वह मानते थे कि उनके योगदान को हमेशा उपेक्षित किया गया। वह कहते हैं, 'मैं उभरता सितारा था, लेकिन मैं क्षितिज से आगे नहीं बढ़ सका।'**

**आलोचना (Criticism):** ऑरेसो ने शहरों का वर्गीकरण उनके कार्य महत्व के आधार पर किया है, जिसे वर्गीकरण का सबसे विश्वसनीय तरीका माना जाता है। फिर भी निम्न कारणों के चलते यह सिद्धांत आलोचनामुक्त नहीं है:

1. विशेष कार्य सिद्धांत को अत्यधिक सामान्यीकृत (Over Generalized) माना जाता है।

2. किसी शहर का एक विशेष श्रेणी में वर्गीकरण सामान्यतः विभिन्न अन्य श्रेणियों में उसकी भूमिका को नगण्य कर देता है।

3. किसी श्रेणी का मानक बिंदु (Cut-off Point) शोधकर्ता के विवेकाधीन (Arbitrary) होता है, इसके चलते यह व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) बन जाता है।

4. वित्तीय आयामों को इस प्रक्रिया में नजरअंदाज कर दिया जाता है। जबकि यह पहलू इस लिहाज से अहम है कि कोई शहर उसमें रहने वाले लोगों की जरूरतों के अलावा बाहरी सटे हुए क्षेत्रों के लोगों के लिये भी सुविधाएं जुटाने का काम करता है।

5. ऑरेसो ने कार्यमहत्व को लेकर कई श्रेणियां दी हैं, जिनके चलते भ्रम (Confusion) की स्थिति बनती है। इसकी वजह यह है कि इन श्रेणियों में कार्यमहत्व और स्थानिक (Locational) गुणों को संयुक्त किया गया है। उदाहरण के लिये संचार सुविधा के अंतर्गत आने वाले वर्गों के वस्तुओं के स्थानांतरण के कार्य को यहां स्पष्ट नहीं किया गया है।

6. तटीय, सीमावर्ती और पुलों से युक्त शहर कार्यों के संपादन के लिये अवस्थिति (Location) के महत्व को स्पष्ट करते हैं। ऐसे शहरों में संचार–परिवहन की बेहतर सुविधाएं अधिक अहम होती हैं। इसी तरह धार्मिकयात्रा के केन्द्र (Pilgrimage Centres) एवं सांस्कृतिक शहर भौगोलिक रूप से दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों, घाटियों और नदियों के किनारे स्थित होने के बावजूद अहमियत रखते हैं।

7. विश्वविद्यालयी शहर (University Towns) जैसे विशेषण मिथ्यासंज्ञा (Misnomer) प्रतीत होते हैं, क्योंकि ये किसी शहर के सिर्फ एक गुण को ही उभारते हैं, जबकि उस शहर के वातावरण में कई और भी अहम पहलू उपलब्ध होते हैं।

**निष्कर्ष (Conclusion):** ऑरेसो का वर्गीकरण कई महत्वपूर्ण पहलुओं को उभारने के साथ भावी परिष्कृत सिद्धांतों के लिये अवसर भी प्रदान करता है। यह ऐसी व्यापक व्यवस्था है, जो शहरी केन्द्रों के वर्गीकरण के लिये शहरी गतिविधियों के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करती है। हालांकि, कार्याधारित विविधताओं और संबंधित गतिविधियों को लेकर यह धुंधली तस्वीर ही सामने रख पाती है, जिसके लिये और अधिक काम की जरूरत महसूस होती है।

**हैरिस का वर्गीकरण सिद्धांत (Harris's Model of Classification):** पूर्ववर्ती वर्गीकरण व्यवस्था से हैरिस ने असंतुष्टि जतायी। उन्होंने शहरों की एकनिष्ठता एवं विशेष कार्यों को अत्यधिक महत्व दिये जाने के विरोध में तर्क दिये। अपने शोधकार्य 'A Functional Classification of The Cities in The United States' में उन्होंने जनसंख्या को वर्गीकरण का मुख्य घटक माना और इसे दो मुख्य कारकों आधिपत्य एवं रोजगार में विभाजित किया। उन्होंने शहरों को नौ वर्गों में बांटा है:

1. उत्पादन (Manufacturing)
2. खुदरा बिक्री (Retailing)
3. विविधता (Diversified)
4. थोक बाजार (Wholesaling)
5. यातायात–परिवहन (Transportation)
6. खनन (Mining)
7. रिजॉर्ट (Resorts)
8. अन्य (Others)

**महत्वपूर्ण तथ्य (Important Fact)**

**हैरिस ने अपने शोधकार्य Salt Lake City: A Regional Capital में शहरों के सेवा संबंधी कार्यों और इनके प्रभाव का अध्ययन किया है। 1941 में उन्होंने एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन ज्योग्राफर्स के साथ शोधपत्र A Functional Classification of Cities in the United States प्रस्तुत किया, जिसे शहरी भूगोल के क्षेत्र में बेहद अहम माना जाता है। उन्होंने 1943 में जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी के लिये लेख भी लिखे। इन शोधकार्यों और आलेखों ने शहरी अध्ययन के क्षेत्र में हैरिस को विशिष्ट विद्वान के तौर पर स्थापित किया।**

**Source: Chicago chronicle (2004)**

**हैरिस मॉडल की अवधारणा (Assumptions of Harris's Model):** हैरिस ने जिन अवधारणाओं के आधार पर अपना सिद्धांत प्रस्तुत किया, वे निम्नवत हैं:

1. भूमि समतल नहीं है (बर्गीज मॉडल का सुधारीकरण)। बड़े शहर में इस तरह की समतल जमीन और ऐसी भौगोलिक अवस्थिति को तलाशना खासा मुश्किल होगा, जो शहर की सभी गतिविधियों, विकास और उन्नति की दिशा को तय कर सके।

2. शहर में रहने वाले लोगों के बीच संसाधनों का समान रूप से वितरण होता है, सुविधाओं के उपभोग में पदानुक्रम की कोई व्यवस्था नहीं होती है, न ही संसाधनों के विशिष्ट उपभोग की कोई व्यवस्था रहती है।

3. जनसंख्या घनत्व की प्रकृति समरूप होती है। शहर में आबादी समान रूप से विस्तृत होती है, विशेष क्षेत्र में सघन नहीं। यह इसलिये भी आवश्यक है कि जनसंख्या का असमान वितरण बाजारों पर प्रत्यक्ष रूप से असर डालता है।

4. शहरों में परिवहन लागत समान होती है। ग्राहकों पर यात्रा व्यय का अधिक असर नहीं होता है।

5. क्षेत्रविशेष में विशेष गतिविधि को बढ़ावा देने का मूल लक्ष्य अधिकतम लाभ हासिल करना होता है। औद्योगिक विकास भी इस पर निर्भर करता है। हालांकि, इसके लिये श्रम मूल्य (labour Cost), परिवहन मूल्य (Transportation Cost), बाजारों की निकटता आदि पहलू भी ध्यान में रखने होते हैं। इन सबके जरिये परिवहन मूल्य को कम करने के साथ वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धता को बेहतर बनाया जा सकता है।

**आलोचना (Criticism):** हैरिस के शहरों के वर्गीकरण के मॉडल को प्रतिमान माना जाता है। इसके बावजूद उनके सिद्धांत की बेहद कच्चे आंकड़ों (Raw data) पर आधारित श्रेणियों की वजह से आलोचना की जाती है। मोजर और स्कॉट ने 1961 में जनसंख्या, ढांचागत सुविधाओं, आवासीय व्यवस्था, जनांकिकी (Demographic) परिवर्तन आदि के आधार पर शहरों के वर्गीकरण की 57 श्रेणियां विकसित की हैं।

**हॉवर्ड नेल्सन का मॉडल (Howard Nelson's Model):** नेल्सन ने पूर्ववर्ती मॉडलों में सामने आयी कमियों को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने सिद्धांत के लिये 1950 की जनगणना के आधार पर शहरी क्षेत्रों, महानगरों में 10000 और इससे अधिक जनसंख्या पर मुख्य औद्योगिक समूहों पर फोकस किया। खेती, अवस्थापना विकास जैसे कम महत्व के बिन्दुओं को उन्होंने घटा दिया और अंतिम रूप से नौ गतिविधि समूहों की श्रेणी तय की। उन्होंने विभिन्न वर्गों के आकार के हिसाब से विभिन्न श्रेणियां तय कीं, जिससे शहरों के विशेषीकरण (Specializatuon) की समस्या का निदान हो सका। नेल्सन ने सांख्यिकीय Standard Deviation (SD) के आधार पर शहरों के आकार और रोजगार की स्थिति को स्पष्ट किया, जिससे शहरों की विशिष्टता को समझ पाना संभव हो सका।

नेल्सन से स्पष्ट किया कि किसी शहर को एक से अधिक गतिविधियों को श्रेणियों की विविधता के हिसाब से विशेषीकृत किया जा सकता है। निम्नवत सारिणी से समझा जा सकता है कि वर्ष 1950 में अमेरिकी शहरों में प्लस1, प्लस2, प्लस3 आदि श्रेणियों में शहरी गतिविधियों की क्या स्थिति थी। नेल्सन की इस सारिणी में शहरों की नौ प्रमुख गतिविधियों की प्रतिशतता को स्पष्ट किया गया है। उदाहरण के लिये यदि किसी शहर को Pf 2F के रूप में वर्गीकृत किया गया है तो इसका अर्थ यह है कि यहां व्यावसायिक सेवाओं में रोजगार की उपलब्धता 22.87 प्रतिशत से अधिक लेकिन 28.76 प्रतिशत से कम

है, इसी तरह वित्तीय, बीमा–बैंक एवं रियल एस्टेट के क्षेत्र में रोजगार का प्रतिशत 4.44 से अधिक किन्तु 5.69 से कम है। इस तरह यह श्रेणी मानक विचलन (Standard Deviation) को स्पष्ट करती है और शहरी केन्द्रों के महत्व को सामने रखती है। कोई शहर जो नेल्सन की इस वर्गीकरण सारिणी में किसी एक मानक पर भी शामिल नहीं होता है और औसत गतिविधियां ही वहां होती हैं, उन्हें विविध श्रेणी में रखा जाता है।

*Nelson's Nine Activity Groups (1950)*

| | *Manu-facturing* | *Retail Trade* | *Professional Service* | *Trans-portation and Communi-cation* | *Personal Service* | *Public Adminis-tration* | *Wholesale Trade* | *Finances Insurance and Real Estate* | *Mining* |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | *Mf* | *R* | *Pf* | *T* | *Ps* | *Pb* | *W* | *F* | *Mi* |
| Average | 27.07 | 19.23 | 11.09 | 7.12 | 6.20 | 4.58 | 3.85 | 3.19 | 1.62 |
| Standard Deviation | 16.04 | 3.63 | 5.89 | 4.58 | 2.07 | 3.48 | 2.14 | 1.25 | 5.01 |
| Average Plus 1 SD | 43.11 | 22.86 | 16.98 | 11.70 | 8.27 | 8.06 | 5.99 | 4.44 | 6.63 |
| Average Plus 2 SD | 59.15 | 26.49 | 22.87 | 16.28 | 10.34 | 11.54 | 8.13 | 5.69 | 11.64 |
| Average Plus 3 SD | 75.19 | 30.12 | 28.76 | 20.86 | 12.41 | 15.02 | 10.27 | 6.94 | 16.65 |

**निष्कर्ष (Conclusion):** हॉवर्ड के मॉडल को विभिन्न विद्वानों ने प्रयोग किया है। भारत में महाराष्ट्र के नगरों के अध्ययन में इस सिद्धांत के इस्तेमाल से स्पष्ट हुआ कि लातूर जिला खनन एवं वानिकी कार्यों, उदगिर जिला कृषि कार्यों, अहमदपुर एवं लातूर जिला घरेलू उद्योगों, उदगिर निर्माण कार्यों, लातूर और निलंग वाणिज्यिक एवं व्यापारिक कार्यों में विशेष हैं और इन सभी नगरों में कार्यों की अन्य श्रेणियां भी उपलब्ध हैं। वहीं औसा तहसील ऐसी रही, जिसे किसी भी श्रेणी में शामिल नहीं किया जा सका (Velapurak ,Rathod and Kalgapure, 2001). इससे यह स्पष्ट होता है कि नेल्सन का यह सिद्धांत अविकसित या विकासशील औद्योगिक क्षेत्रों के लिये उपयोगी नहीं है।

### 10.3.2 भारत में उपयोगिता (Applicability in India)

भारतीय शोधकर्ताओं ने जनसंख्या आधारित वर्गीकरण को कमजोर माना है, क्योंकि यहां हुए विभिन्न शोधों से स्पष्ट हुआ कि वित्तीय गतिविधियां ही लोगों को मुख्यतः समूहों में बांट सकती हैं। इस आधार पर वित्तीय गतिविधियों की तीन श्रेणियां तय की गयी हैं, जिनके आधार पर यह तय हो पाता है कि किस समूह का शहरी गतिविधियों पर आधिपत्य है और कौन सा समूह निचले पायदान पर है। जानकी, अमृत लाई, केएन सिंह, प्रकाश राव, ओपी सिंह, रफीउल्लाह, महामाया मुखर्जी, काजी अहमद, अनंत पद्मनाभन, अशोक मित्रा आदि विद्वानों ने शहरों को अपनी श्रेणियों में वर्गीकृत किया है। लेकिन इनमें से कोई भी वर्गीकरण न तो दूसरे से बेहतर है, न ही किसी मायने में कमतर। लेकिन ये सभी वर्गीकरण क्षेत्रीय–स्थानिक स्तर पर किसी शहर के कार्यों की भूमिका को स्पष्ट करते हैं।

प्रकाश राव ने किसी शहर में शहरी सेवाओं, सुविधाओं, बस परिवहन, ग्राहक वर्ग आदि को आंकिक ग्रेड के रूप में प्रदर्शित किया। रफीउल्लाह ने शहरी कार्यों की रैंकिंग वेबर के मॉडल के आधार पर की। तिवारी ने एक कदम आगे बढ़ाते हुए मध्य प्रदेश के शहरों को IBM 7044 कंप्यूटर प्रणाली के आधार पर वर्गीकृत किया और विभिन्न मानकों के अनुसार इनका विश्लेषण किया। ओपी सिंह ने भारत में केन्द्रीय स्थानों के कार्यमहत्व का विश्लेषण किया है। उन्होंने कार्य पदानुक्रम और कार्य विशेषीकरण के आधार पर इन्हें विभाजिक किया। पोठाना ने आन्ध्र प्रदेश के शहरों का वित्तीय गतिविधियों के आधार पर विश्लेषण किया। महापात्रा, त्रिपाठी और सिन्हा ओडिशा के छोटे शहरों में वित्तीय आधार पर कार्य महत्व का विस्तार से अध्ययन किया। रजा, अग्रवाल और मंदिरा दत्ता भारतीय वित्तीय व्यवस्था में महानगरीय केन्द्रों की कार्यशैली और आधिपत्य का परीक्षण किया। अशोक मित्रा का वर्गीकरण 1961, 1971 एवं 1991 की जनगणना में श्रमिक–कर्मचारी वर्ग की श्रेणियों पर आधारित है। 1991 में शहरी श्रेणियों को उनकी कार्य विशिष्टता के आधार पर वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया। इस प्रक्रिया को थोड़ा नया रूप देते हुए इसमें पांच वित्तीय श्रेणियां बांटकर इनमें औद्योगिक गतिविधियों को चिह्नित किया गया। ये इस प्रकार हैं:

1. प्राथमिक गतिविधियां (Primary Activities)
    - कृषि (Cultivation)
    - कृषि श्रमिक (Agriculture Labourers)
    - पशुधन, वानिकी, मत्स्यपालन, पौधरोपण, औद्यानिकी एवं अन्य गतिविधियां (Livestock, forestry, fishing, plantation, orchards and allied activities)
    - खनन एवं उत्खनन (Mininig and quarrying)
    -
2. उद्योग (Industry): उत्पादन, प्रसंस्करण, सेवा एवं रखरखाव
    - घरेलू उद्योग (Household Industry)
    - अन्य उद्योग (Other than household industry)
    - निर्माण श्रमिक (Construction workers)
3. व्यापार एवं वाणिज्य (Trade and Commerce)
4. परिवहन (Transport): यातायात, परिवहन, भंडारण एवं संचार
5. सेवाएं (Services)

हालांकि, भारत के सन्दर्भ में ये सभी शोध प्राथमिक रूप से 1951 और इसके बाद के वर्षों पर ही आधारित रहे। ऐसे में इनकी विफलता के पीछे बड़ी वजह यह रही कि ये सभी शोधकार्य जनगणना के आंकड़ों पर आधारित थे, अन्य विशेष पहलुओं पर नहीं। 1951 की जनगणना में श्रमिक वर्ग के निर्धारण में कई कमियां सामने आई हैं। इसमें गैर कृषि, असंगठित कृषि जैसे वर्ग ठीक से शामिल नहीं किये गये थे। ये कमियां 1961 की जनगणना में इन श्रेणियों को शामिल कर दूर की गयीं: कृषक, कृषि श्रमिक,

खनन, पशुधन, वन, मत्स्यपालन, शिकार, औद्यानिकी, घरेलू उद्योग, उत्पादन उद्योग, निर्माण, व्यापार एवं वाणिज्य, परिवहन, भंडारण एवं संचार, अन्य सेवाएं। 1971 की जनगणना के बाद विकास पैटर्न को ध्यान में रखते हुए वानिकी, खनन, पशुपालन, औद्यानिकी आदि गतिविधियों को अलग–अलग श्रेणियों में बांट दिया गया। पहले ये सभी एक ही श्रेणी में रखे गये थे। हालांकि, वर्ष 1981 की जनगणना के बाद यह श्रेणियां और भी परिष्कृत स्वरूप में वर्गीकृत की गयीं। ये निम्नवत थीं:

1. कृषक (Cultivator)
2. घरेलू उद्योग (Household Industry)
3. कृषि श्रमिक (Agricultur Labourer)
4. अन्य श्रमिक–कामकाजी (Other Workers)
5. सीमांत श्रमिक (Marginal Workers)

### 10.3.3 निष्कर्ष (Conclusion)

भारत में शहरों के वर्गीकरण के लिये कोई विशेष सिद्धांत उपयोगी नहीं है। अलग क्षेत्रों, विकास आयु, विभिन्न कार्य श्रेणियों आदि के चलते भारतीय शहरों में विविधता के कारण कोई एक श्रेणी बनाना मुश्किल है।

## 10.4 नगरीय प्राथमिक सिद्धांत (Urban Primary Theory)

प्रख्यात भूगोलविद् मार्क जेफरसन ने 1939 में यह सिद्धांत प्रतिपादित किया। प्राथमिक शहर का तात्पर्य उस शहर से है, जो किसी देश अथवा क्षेत्र का सबसे बड़ा शहर हो। इस आधार पर शहरों को उनके आकार के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। प्राथमिक शहर वितरण (Primate City Distribution) रैंक के आधार पर किया जाने वाला वितरण है, जिसमें एक सबसे बड़ा शहर होता है और इसके आसपास छोटे नगर–कस्बे व्यवस्थित होते हैं। इसे किंग इफेक्ट (King Effect) कहा जाता है। (Wall and Knaap, 2005). वस्तुतः सभी देशों में ऐसे प्राथमिक शहर की अवधारणा नहीं है, लेकिन जिन देशों में है, वहां अन्य शहर सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, परिवहन आदि सुविधाओं के लिये प्राथमिक शहर से जुड़े होते हैं। किसी शहर के प्राथमिक होने की स्थिति का निर्धारण कुछ खास मानकों और सूत्रों के आधार पर किया जाता है। यह निम्नवत है:

P1= C1 (C1+C2+C3+C4)*100
P1= Primacy index
C1, C2, C3, C4 is the population of the country in order 1,2,3,4
If P1 is > or = 50, then it will be a primate city

**महत्वपूर्ण तथ्य (Important Fact)**

**मार्क जेफरसन (1863-1949) 1919 में पेरिस पीस कांफ्रेंस में गये अमेरिकी प्रतिनिधिमंडल में मुख्य मानचित्रकार के तौर पर शामिल थे। वह मिशीगन स्टेट नॉर्मल कॉलेज (अब ईस्टर्न मिशीगन यूनिवर्सिटी) में 1901 से 1939 तक भूगोल विभागाध्यक्ष भी रहे। ज्योफ्री जे मार्टिन लिखित जेफरसन की जीवनी *Mark Jefferson geographer* को 1968 में ईस्टर्न मिशीगन यूनिवर्सिटी प्रेस (ईएमयू) ने प्रकाशित किया। ईएमयू में एक भवन का नाम मार्क जेफरसन के नाम पर रखा गया है।**

**Source: www.wikipedia.com**

### 10.4.1 मूल अवधारणा (Basic Assumption)

जेफरसन ने लंदन समेत यूरोपीय शहरों का तुलनात्मक विश्लेषण किया। अपने अध्ययन के आधार पर वह जिस निष्कर्ष पर पहुंचे, उसके प्रमुख बिन्दु निम्नवत हैं:

1. जन्म दर के मृत्यु दर से अधिक हेने और रोजगार के बेहतर अवसर उपलब्ध होने पर शहर विकसित होते हैं।

2. क्षेत्र की उत्पादन क्षमता और संचार सुविधाओं के लिहाज से लाभकारी पक्ष लोगों को रोजगार की उपलब्धता की उम्मीद में आकर्षित करता है।

TABLE I—PRIMATE CITIES IN RELATION TO THE SECOND AND THIRD CITIES OF THEIR COUNTRIES

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. Austria | 1934 | 100- 8- 6 | Vienna 1874, Graz 153, Linz 109 |
| 2. Denmark | 1935 | 100-11- 9 | Copenhagen 843, Aarhus 91, Odense 76 |
| 3. Hungary | 1936 | 100-13-12 | Budapest 1052, Szeged 140, Debrecen 125 |
| 4. United Kingdom | 1931 | 100-14-13 | London 8204, Liverpool 1178, Glasgow 1089 |
| 5. Mexico | 1930 | 100-18-13 | Mexico 1029, Guadalajara 184, Monterrey 137 |
| 6. Rumania (1) | 1937 | 100-18-17 | Bucharest 643, Chişinău 114, Cernăuţi 110 |
| 7. Peru | 1930 | 100-20-13 | Lima 370, Callao 75, Arequipa 46 |
| 8. Argentine Rep. | 1937 | 100-22-13 | Buenos Aires 2290, Rosario 510, Córdoba 302 |
| 9. Turkey (1) | 1935 | 100-23-16 | Istanbul 741, İzmir 171, Ankara 123 |
| 10. Rumania (2) | 1912 | 100-23-21 | Bucharest 338, Jassy 76, Galatz 72 |
| 11. Cuba | 1935 | 100-25-24 | Habana 550, Holguín 135, Camagüey 133 |
| 12. Bolivia | 1936 | 100-26-22 | La Paz 200, Cochabamba 52, Oruro 45 |
| 13. Finland | 1936 | 100-26-25 | Helsinki 284, Viipuri 73, Turku 71 |
| 14. Chile | 1930 | 100-30-11 | Santiago 696, Valparaiso 193, Concepción 78 |
| 15. Belgium | 1936 | 100-30-18 | Brussels 905, Antwerp 273, Ghent 164 |
| 16. Czechoslovakia | 1930 | 100-31-15 | Prague 849, Brno 265, Moravská Ostrava 125 |
| 17. Philippines | 1936 | 100-31-12 | Manila 355, Cebu 110, Iloilo 46 |
| 18. Germany (1) | 1933 | 100-32-15 | Berlin 4242, Hamburg-Altona 1372, Cologne 757 |
| 19. France | 1936 | 100-32-20 | Paris 2830, Marseilles 914, Lyons 571 |
| 20. Bulgaria | 1934 | 100-35-24 | Sofia 287, Plovdiv 100, Varna 70 |
| 21. Brazil (1) | 1892 | 100-38-36 | Rio de Janeiro 523, Bahia 200, Pernambuco 190 |
| 22. Turkey (2) | 1914 | 100-38-25 | Constantinople 1000, Smyrna 375, Damascus 250 |
| 23. Norway | 1930 | 100-39-21 | Oslo 253, Bergen 98, Trondheim 54 |
| 24. Greece | 1928 | 100-40-10 | Athens-Piraeus 592, Thessaloniki 237, Patras 61 |
| 25. Portugal | 1930 | 100-40- 4 | Lisbon 594, Oporto 232, Coimbra 27 |
| 26. Austria-Hungary | 1910 | 100-41-25 | Vienna 2150, Budapest 880, Prague 541 |
| 27. Germany (2) | 1895 | 100-43-22 | Berlin 1810, Hamburg-Altona 773, Munich 407 |
| 28. United States | 1930 | 100-43-27 | New York 7781, Chicago 3374, Philadelphia 2083 |
| 29. Colombia | 1937 | 100-43-36 | Bogotá 420, Barranquilla 180, Medellín 150 |
| 30. China | 1936 | 100-44-37 | Shanghai 3490, Peiping 1556, Tientsin 1292 |

(Source: Geographical Review, 1939)

3. ये कारक शहर के विकास में मदद करते हैं, समय और परिस्थितियों के हिसाब से इनमें अंतर हो सकता है।

4. इन सब कारणों से कोई शहर प्राथमिक शहर बनता है। एक बार किसी शहर के प्राथमिक शहर के तौर पर विकसित होने के बाद यह विशेष उत्पादों का भंडारगृह सा बन जाता है और आकार, गुणों, विशेषताओं में अन्य शहरों से बिल्कुल अलग होता है।

5. मार्क ने अपने अध्ययन में पाया कि चूंकि उस दौर में अधिकतर देश ब्रिटिश सत्ता के अधीन थे, लिहाजा इन सभी शहरों के लिये लंदन प्राथमिक शहर के तौर पर उभरा।

### 10.4.2 आलोचना (Criticism)

प्राथमिक शहर सिद्धांत के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं को निम्न बिंदुओं से स्पष्ट किया जा सकता है:

1. प्राथमिक शहर सिद्धांत शहर में केन्द्रीकृत संचार एवं परिवहन सुविधा की उपलब्धता पर जोर देता है।

2. यह विदेशी निवेश और परिवहन व्यवस्था को आकर्षित करता है और बढ़ावा देता है।

3. वैश्विक पैमाने पर यह किसी देश के लिये बेहतर है।

4. इसकी वजह से शहरी समूह में उत्तरगामी विकास होता है।

5. यद्यपि आर्थिक तौर पर निवेश और लाभ, उत्पादन में बढ़ोतरी होती है, लेकिन इसकी वजह से शक्तियों और संसाधनों के असमान वितरण के कारण विभिन्न क्षेत्रों के बीच असमानता भी बढ़ती है।

6. आर्थिक, संसाधन और अवसर के लिहाज से क्षेत्रों के बीच की यह असमानता लोगों को प्राथमिक शहर की ओर रोजगार की आस में आकर्षित करती है।

7. उच्च प्रतिस्पर्धात्मक क्षेत्र की वजह से प्रतिभा पलायन की दिक्कत सामने आती है।

8. देश के अन्य हिस्सों में परिवहन–यातायात सुविधा की बेहद सीमित व्यवस्था रहती है जिसके चलते इन क्षेत्रों में कार्यों के सफल निष्पादन में दिक्कतें आती हैं।

### 10.4.3 भारत में उपयोगिता (Applicability in India)

भारत में कोई प्राथमिक शहर नहीं है। संघीय, पंथनिरपेक्ष एवं सामाजिक गणराज्य होने के कारण यहां ऐसे एक ही केन्द्र वाले समूह की संभावना नहीं है, जो अन्य क्षेत्रों से अलग ही विकसित हों। यद्यपि दिल्ली भारत की राजधानी है, लेकिन यह देश के चार महानगरों में कोलकाता एवं मुंबई के बाद यानी तीसरे स्थान पर आती है। इससे स्पष्ट है कि भारत में प्राथमिक शहर के सिद्धांत की अधिक उपयोगिता नहीं है।

### 10.4.4 निष्कर्ष (Conclusion)

यद्यपि प्राथमिक शहर परिवहन सुविधाओं, व्यापारिक–व्यावसायिक गतिविधियों, आकार एवं सांस्कृतिक स्थितियों के लिहाज से महत्वपूर्ण होता है, लेकिन इसके हावी होने से आसपास के अन्य क्षेत्रों का विकास बाधित होता है। भारत में विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ), स्मार्ट सिटी आदि भी इसी तरह के प्रयास हैं। डेविड हार्वे कहते हैं, इस तरह के जोन और कुछ नहीं, लेकिन चारों ओर गरीबी के बीच समृद्धि के केन्द्र हैं।

## 10.5 श्रेणी–आकर सिद्धांत (Rank-size Theory)

जॉर्ज जिफ ने वर्ष 1949 में श्रेणी–आकार नियम दिया। कुमारी (2014) के अनुसार यह किसी क्षेत्र में समग्र व्यवस्थाओं के विश्लेषण का माध्यम है। इसके अलावा यह विश्लेषण प्रक्रिया का ऐसा साधन है जो शहरी क्षेत्रों में श्रेणी (Rank) और जनसंख्या के संबंधों की बेहतर तरीके से व्याख्या करने में मदद करता है। शहरी केन्द्रों को उनकी जनसंख्या के आधार पर पदानुक्रम श्रेणी दी जाती है। जिफ का सूत्र (Formula) निम्नवत है:

Pr=P1/P2 n यहां Pr का अर्थ संबंधित शहर की जनसंख्या से है, P1 = सबसे बड़े शहर की जनसंख्या है और r = शहरों की सूची में संबंधित शहर की श्रेणी (Rank)

यह सैद्धांतिक वितरण बहुत बड़ी संख्या में छोटे कस्बों–समुदायों, अधिक संख्या में मध्यम आकार के नगरों और बेहद सीमित संख्या में महानगरों का निर्धारण करता है।

### 10.5.1 मूल अवधारणा (Basic Assumption)

1. किसी देश के सभी शहरों को उनके आकार के अनुसार घटते हुए क्रम में श्रेणी (Rank) में निर्धारित किया जायेगा।

2. शहरों का निर्धारण सबसे बड़े शहर के आधार पर किया जायेगा। उदाहरण के लिये:

   - सबसे बड़े शहर की रैंक एक होगी
   - सबसे बड़े शहर की जनसंख्या से आधी आबादी वाले शहर का दूसरा स्थान होगा

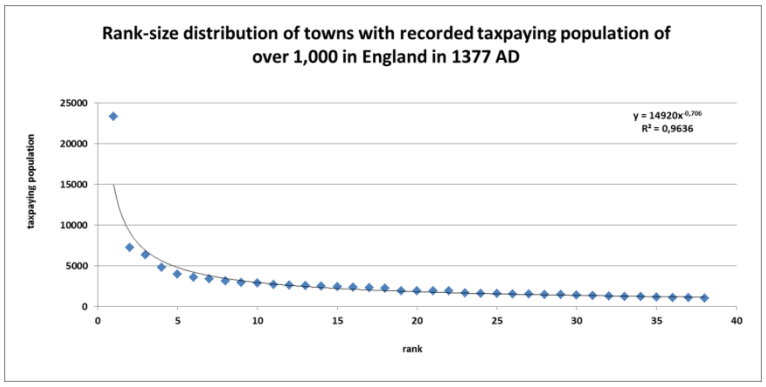


   - सबसे बड़े शहर की एक तिहाई जनसंख्या वाला शहर सूची में तीसरी श्रेणी के स्थान पर रहेगा। अन्य शहर भी इसी आधार पर सूची में श्रेणी पायेंगे।

3. किसी शहर की जनसंख्या को शहर की श्रेणी संख्या से गुणा किया जाये तो वह सबसे बड़े शहर के बराबर हो जायेगा। यह निगमन (Deduction) के सिद्धांत पर आधारित नहीं है, बल्कि विविधताओं और एकता के मूल सिद्धांत पर आधारित है।

### 10.5.2 आलोचना (Criticism)

यह सिद्धांत हालांकि कई शहरों पर लागू होता है, लेकिन वैश्विक स्तर पर यह पूरी तरह उपयोगी नहीं है। इसके प्रमुख कारण निम्न हैं:

1. यह नियम उन शहरों के लिये अधिक उपयोगी है, जो पहले से विकसित हैं और जिनका अस्तित्व लंबे समय से बना हुआ है।

2. शहर का आकार में बड़ा होना बेहद आवश्यक है।

3. शहर में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक तौर पर स्थायित्व होना आवश्यक है।

4. स्टीवर्ट (1958) ने 72 देशों के अध्ययन के लिये इस नियम का इस्तेमाल किया और बताया कि जिफ के इस सिद्धांत में कई विसंगतियां हैं, क्योंकि यह सिर्फ प्रायोगिक परीक्षण करता है, बुनियादी और ठोस सैद्धांतिक प्रस्थापना नहीं कर पाता।

### 10.5.3 भारत में उपयोगिता (Applicability in India)

बीएल सिंह (1985), सरनजीत कुमार साहा (1987), किरन कुमारी (2014) ने बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश के अध्ययन के लिय इस सिद्धांत का प्रयोग किया। इन सभी ने पाया कि भारत के शहर मुख्यतः प्राथमिक ही हैं। पूर्वी भारत में शहरों की रैंक जिफ के फार्मूले के अनुसार निर्धारित रैंक से बिल्कुल अलग है।

### 10.5.4 निष्कर्ष (Conclusion)

2011 की जनगणना के अनुसार भारत 120 करोड़ की आबादी के साथ दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है। मूलतः पारंपरिक रूप से ग्रामीण देश होने के कारण भारत की 68 फीसदी आबादी गांवों में रहती है। अब अगर विकसित देशों के साथ भारत की तुलना की जाती है तो यहां छोटे शहरों की संख्या महानगरों की अपेक्षा काफी अधिक मिलती है। उदाहरण के लिये भारत के कुल 605054 नगरों में से 338713 ऐसे हैं, जहां आबादी एक हजार से कम है। यह संख्या कुल नगरों की संख्या का 50 प्रतिशत है, लेकिन ये 15 करोड़ से अधिक आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं। सिर्फ 536 शहरी नगर ऐसे हैं, जहां जनसंख्या एक लाख या इससे अधिक है और यहां 22 करोड़ से अधिक आबादी रहती है। (Luckstead, Devadoss and Danforth, 2017). इस तरह भारत विकासशील देश होने के कारण अभी श्रेणी–आकार नियम के मानकों के लिये उपयुक्त नहीं है।

## 10.6 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. शहरों की अवस्थिति (Location) से आप क्या समझते हैं, विस्तार से बताएं।

2. शहरों की अवस्थिति के संदर्भ में प्रमुख सिद्धांतों की व्याख्या करें।

3. विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या के साथ भारत में इनकी उपयोगिता को भी स्पष्ट करें।

## 10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

Alexandersson Gunnar (2005), "The Industrial Structure of American Cities", Routleg publication, New York

Cooley, C.H. (1894), "the theory of transportation", The American Economic Association, volume -9, pg 1-148.

J.G.Kohl (1850), Kumari Kiran (2014), IOSR Journal of Humanities and Social Science (IOSR-JHSS, Volume 19, Issue 9, Ver. VI (Sep. 2014), PP 50-59, e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.

Jefferson ,Mark (1939),The Law of the Primate City, Geographical Review, Vol. 29, No. 2 , pp. 226-232 ,American Geographical Society

R. Wall and B. v.d. Knaap* , Netscape: Europe and the Evolving World City Network, GSWC research bulletain 186, Edited and posted on the web on 5th November 2005

Velapukar, B.G,Rathod H.B and Kalgapure ,A.A (2001),"A study of functional classification in latur district (M.S.), Shodh, Samiksha aur Mulyankan (International Research Journal)—ISSN-0974-2832 Vol. II, Issue-5 (Nov.08-Jan.09)

इकाई– 11

# नगरीय परिवार, नगरीय सामाजिक स्तरीकरण एवं व्यवसायिक विभाजन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 नगरीय परिवार का अर्थ एवं परिभाषा

11.3 नगरीय परिवार की विशेषताएँ

11.4 नगरीय परिवार में आधुनिक प्रवृत्ति का प्रभाव

11.5 नगरीय परिवार में विघटन के कारण

11.6 सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

11.7 सामाजिक स्तरीकरण के आधार

11.8 सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूप

11.9 नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के आधार

11.10 भारत में नगरीय सामाजिक स्तरीकरण

11.11 व्यवसायिक विभाजन का अर्थ एवं परिभाषा

11.12 व्यवसायिक विभाजन के प्रकार

11.13 व्यवसायिक विभाजन के परिणाम

11.14 व्यवसायिक विभाजन का नगरीकरण व आधुनिकीकरण में योगदान

11.15 सारांश

11.16 लघु उत्तरीय प्रश्नावली

11.17 निबंधात्मक प्रश्न

11.18 संदर्भ ग्रंथ सूची

## 11.0 उद्देश्य

1. नगरीय परिवार के स्वरूप, विशेषतायें तथा आधुनिक प्रवृत्तियों को स्पष्ट करना।
2. वर्तमान समय में नगरीय परिवार के विघटन के लिए उत्तरदायी मुख्य कारणों की व्याख्या।
3. सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ तथा परिभाषाओं को स्पष्ट करना।
4. सामाजिक स्तरीकरण के प्रमुख आधार क्या है? तथा भारत में नगरीय सामाजिक स्तरीकरण की स्पष्ट रूपरेखा को स्पष्ट करना।

5. व्यवसायिक विभाजन के अर्थ तथा परिभाषाओं को स्पष्ट करते हुए उसके प्रकार तथा परिणामों की व्याख्या।
6. नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण में व्यावसायिक विभाजन के योगदान को स्पष्ट करना।

## 11.1 प्रस्तावना

परिवार किसी भी समाज की प्राथमिक एवं मौलिक इकाई मानी जाती है। औद्यौगीकरण तथा नगरीकरण की प्रक्रिया ने समाज में अनेकों प्रकार का परिवर्तन किया है, जिससे परिवार भी अछूता नहीं है। रोजगार के सुअवसर, बेकारी तथा उच्च जीवन की लालसा ने ग्रामीण समाज से पलायन को तीव्र गति से बढ़ावा दिया है। जिसने परम्परागत परिवारों के स्वरूपों को परिवर्तित कर दिया है। जिसने संयुक्त परिवार को विघटित करके एकाकी परिवार के रूप में परिवर्तित कर दिया है। ऐसा माना जाता है कि समाज में कोई भी परिवर्तन दो प्रकार की स्थितियों को जन्म देता है – सकारात्मक तथा नकारात्मक। जहां एक ओर नगरीय परिवार ने परम्परागत स्वरूप को परिवर्तित किया है। वहीं वैचारिक स्वतंत्रता के साथ–साथ आर्थिक सुदृढ़ता भी प्रदान की है तथा महिलाओं को भी एक बराबरी का स्थान प्रदान किया है।

भारत में सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार जाति व्यवस्था को माना जाता है। जिसमें प्रायः सामाजिक गतिशीलता का अभाव पाया जाता है। सरल शब्दों में यदि कहा जाये तो सामाजीकरण विभेदीकरण की प्रक्रिया पर आधारित होते हैं। जिसमें व्यक्ति विभिन्न वर्गों में आधारित होता है तथा प्रतिष्ठा की दृष्टि से ऊँचे एवं नीचे पदों पर आधारित होता है। कहने का आशय यह है कि नगरीय समुदाय में व्यक्ति अपनी कार्यकुशलता एवं योग्यता के आधार पर किसी भी वर्ग को प्राप्त कर सकता है। जिसमें जाति को कोई विशेष महत्व प्रदान नहीं किया जाता। यही कारण है कि नगरीय समुदाय में भी व्यवसायिक विभाजन में जातिगत व्यवस्था का कोई स्थान नहीं होता।

## 11.2 नगरीय परिवार का अर्थ एवं परिभाषा

जैसा कि हम सब जानते हैं कि परिवार एक मौलिक एवं सार्वभौमिक इकाई होती है। ऐसा माना जाता है कि परिवार सामाजिक व्यवस्था का एक प्रमुख आधार है जो व्यक्ति का सामाजीकरण एवं मानवीयकरण करता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री चार्ल्स कूले परिवार को एक प्रमुख प्राथमिक समूह माना है। प्रमुख समाजशास्त्री यंग और मैक के अनुसार– ''परिवार सबसे पुराना एवं मौलिक मानव समूह है। पारिवारिक ढ़ांचे का विशिष्ट स्वरूप एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न हो सकता है। पर यह सब जगह विद्यमान अवश्य रहता है। परिवार के दो प्रमुख कार्य होते हैं। 1–बच्चों का पालन पोषण करना और 2–उन्हें समाज की संस्कृति से परिचित कराना अर्थात् उनका समाजीकरण करना। अतः परिवार वह सामाजिक संस्था है। जिसका प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी स्थिति में सदस्य अवश्य होता है। और आश्रित भी होता है। यह मानव जाति के आत्म संरक्षण, वंशवर्धन तथा जातीय जीवन की निरंतरता को बनाए रखने का प्रमुख साधन है।''[1]

वास्तव में परिवार आंग्ल भाषा के फैमिली (family) का हिन्दी रूपांतरण है जो फैमुलस (लैटिन भाषा) से बना है। फैमुलस शब्द का अर्थ सर्वेंट (servent) होता है अर्थात् परिवार के प्रत्येक सदस्यों की पारस्परिक निर्भरता एवं सेवा भाव अलग–अलग समाजशास्त्रियों ने परिवार की अलग–अलग परिभाषाएं दी हैं जो निम्नांकित हैं।[2]

मैकाइवर एवं पेज– ''परिवार निश्चित यौन सम्बन्ध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों के जनन एवं पालन पोषण की व्यवस्था करता है।

डी0 एन0 मजूमदार– ''परिवार व्यक्तियों का वह समूह है जो एक छत के नीचे रहते हैं। मूल और रक्त सम्बन्धी सूचकों से सम्बन्धित होते हैं तथा स्थान, रूचि, कृतज्ञता की अन्योन्याश्रितता के आधार पर संबंध की जागरूकता रखते हैं।

मर्डोक– ''परिवार एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसके लक्षण सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग और जनन है।

आर्गबर्न एवं निमकॉफ– ''परिवार, पति और पत्नी की संतान रहित या संतान सहित या केवल पुरूष या स्त्री की बच्चों सहित कम या अधिक स्थायी समिति है।

इस सम्बन्ध में डॉ0 रंजना अग्रवाल का मानना है कि हम परिवार को जैविकीय संबंधों पर आधारित एक सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। जिसमें माता–पिता एवं बच्चे होते हैं तथा जिसका उद्देश्य अपने सदस्यों के लिए सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग, यौन–संतुष्टि, प्रजनन, समाजीकरण और शिक्षा की सुविधाएं जुटाना है।[3]

किसी भी समाज की सामाजिक संरचना को यदि देखें तो सम्पूर्ण समाज दो भागों में विभाजित है। ग्रामीण तथा नगरीय, ग्रामीण विशेषताओं वाले समाज को ग्रामीण समुदाय तथा नगरीय विशेषताओं वाले समाज को नगरीय समुदाय कहा जाता है। परिवार समाज की प्राथमिक और मौलिक इकाई मानी जाती है जो किसी भी समाज की आधारभूत इकाई होने के साथ अपना एक महत्वपूर्ण स्थान लिए हुए है। परिवार की संरचना तथा स्वरूप समाज को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली एक संस्था होती है। नगरीय परिवार तथा ग्रामीण परिवार में यदि अन्तर स्पष्ट करें तो दोनों संस्थाओं में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। वास्तव में नगर आधुनिकीकरण तथा औद्योगिकीरण की देन माना जाता है। जिसने ग्रामीण समुदाय के स्वरूप तथा संरचना में अनेकों परिवर्तन कर दिए हैं। वास्तव में नगरीय परिवार परम्परागत परिवार से पूर्णतया भिन्न होते हैं। इस सन्दर्भ में प्रमुख समाजशास्त्री आर्गबर्न का मानना है कि ''सामाजिक संस्था के रूप में अन्य संस्थाओं की तरह परिवार में भी परिवर्तन हो रहा है। ये परिवर्तन विभिन्न देशों में औद्योगीकरण, नगरीकरण और पृथकता की मात्रा के अनुसार भिन्न–भिन्न है।''

परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। परन्तु नगरीय परिवार ग्रामीण परिवारों से भिन्न होते हैं, क्योंकि उनकी संस्कृति एवं सामाजिक पृष्ठभूमि अलग होती है। प्रत्येक नगर और महानगर की संरचना भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है और इसका प्रभाव व्यक्ति के स्तर, स्थिति और भूमिकाओं पर पड़ता है। प्राविधिक तथा आर्थिक परिवर्तन से समाज में परिवर्तन आया है। यह अन्तर परिवार में भी देखने को मिलता है।

अनेक समाजशास्त्रीयों ने नगरीय परिवार की विशेषताओं के आधार पर नगरीय परिवार की अनेक परिभाषाओं की व्याख्या की है जो निम्न है–

इलिएट तथा मेरिल– ''परिवार को एक प्राणीशास्त्रीय इकाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जो पति–पत्नी और उसके बच्चों द्वारा निर्मित होती है।''

आगबर्न और निमकॉफ– ''परिवार पति–पत्नी का एक न्यूनाधिक स्थायी संगठन है जिसमें बच्चे हो या न हो, अथवा पुरूष और स्त्री अकेले ही निवास करते हैं।

बिसेंज और बीसेज– ''परिवार को एक स्त्री, उसके बच्चे तथा उनकी देखभाल के लिए एक आदमी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

परिवार में होने वाले परिवर्तन के संदर्भ में आगबर्न का मानना है कि सामाजिक संस्था के रूप में अन्य संस्थाओं की भांति परिवार में भी परिवर्तन हो रहा है। ये परिवर्तन विभिन्न देशों में औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा पृथकता की मात्रा के अनुसार भिन्न–भिन्न हैं। नगर से अभिप्राय ऐसी केन्द्रीयकृत बस्तियों के समूह से है जिसमें सुव्यवस्थित केद्रीय व्यापार क्षेत्र, प्रशासनिक इकाई, आवागमन के विकसित साधन तथा अन्य नगरीय सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। परिवार के नगरीय स्वरूप का उदय अनेक परिवर्तनों के कारण हुआ है।[5]

इसी प्रकार राल्फ टर्नर का मानना है कि परिवार में प्रभुसत्ता और सम्पत्ति का अधिकार, पुरूषों के हाथ में रहता था। अतः परिवार का स्वरूप मुख्य रूप से संयुक्त होता था। धीरे–धीरे औद्योगिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप अनेक ग्रामवासी रोजगार की तलाश में नगरों की ओर आने लगे, जिससे नगरीकरण में वृद्धि होने लगी। परन्तु उनका मूल परिवार गांव में ही रहता था। अतः परिवार का स्वरूप मुख्य रूप से संयुक्त होता था। अतः ग्रामीण संयुक्त परिवार, एकल परिवार में परिवर्तन होने लगे। नगरीय परिवार मुख्य रूप लघु आकार का एकल परिवार है। जिसके कारण ऐसे परिवारों में संयुक्त परिवार, एकल परिवारों में परिवर्तित होने लगे। जिसके कारण ऐसे परिवारों में संयुक्त परिवार की अनेक परंपरागत विशेषताओं का अभाव पाया जाने लगा।[6]

नेल्स एंडरसन के अनुसार– ''जब घर कार्य का मुख्य स्थल था तो यह आशा की जाती थी कि जीवन कार्य में प्रवेश के लिए जो प्रशिक्षण आवश्यक था। उसे परिवार प्रदान करता था। फिर भी बच्चों को कारखाने के कामगार के रूप में अथवा किसी कार्यालय में एकाउंटेंट के रूप में प्रशिक्षित करना परिवार के लिए सम्भव नहीं था। अब शिक्षा और प्रशिक्षण परिवार से बाहर चले गये हैं। लेकिन बच्चों का सामाजीकरण का पक्ष अब भी परिवार में ही निहित है।''[7]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीय परिवार नगरीय विशेषताओं से युक्त तथा ग्रामीण समुदाय के परिवार से भिन्न एक ऐसा परिवार है जो समाज में सामाजीकरण एवं मानवीयकरण की भूमिका का निर्वह्न करता है। वास्तव में नगरीय परिवार पूर्णतः एकाकी परिवार होते हैं। जिसमें पति, पत्नी और उनके बच्चे सम्मिलित होते **हैं।**

## 11.3 नगरीय परिवार की विशेषताएँ

नगरीय परिवार की विशेषताओं की निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. **केन्द्रक परिवार–** नगरीय समाज में प्रायः केन्द्रक या एकल परिवार की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। एकल परिवार की वृद्धि का एक प्रमुख कारण नगरों में निवास की कमी को माना जा सकता है। सीमित आय में व्यक्ति बड़े मकान का किराया वहन नहीं कर पाता। अतः व्यक्ति केवल अपने परिवार जिसमें उसकी पत्नी तथा बच्चे होते हैं गांव से नगर में साथ लेकर आता

है। जिन्हें वह छोटे व सीमित स्थान पर रखा सकता है। यही कारण है कि धीरे–धीरे हमारे परम्परागत संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं।

2. **जन्मदर की कमी**– नगरीय समाज या नगरीय परिवार की एक प्रमुख विशेषता जन्मदर की कमी होना है। नगरों में जीवन–यापन करना ग्रामीण समाज की तुलना में अधिक खर्चीला होता है। अतः परिवार को सीमित करने के लिए बच्चों का जन्मदर प्रायः कम होता है।
3. **व्यक्तिवादिता**– नगरीय परिवार में व्यक्ति पूर्णतः व्यक्तिवादी होता है। वास्तव में नगरों में व्यक्तियों के मध्य प्राथमिक सम्बन्ध न होकर द्वितीयक सम्बन्धों पर आधारित होता है। जिसमें व्यक्ति पूर्णतया स्वार्थ सम्बन्धों को ज्यादा महत्व देता है। अपने स्वार्थ और महत्वकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए व्यक्ति किसी भी माध्यम को अपना सकता है।
4. **अस्थिरता**– नगरीय परिवार प्रायः अस्थिर होते हैं। आर्थिक सुदृढ़ता के लिए माता–पिता दोनों कार्यरत् होते हैं। ऐसी स्थिति में पूरा परिवार एक साथ नहीं रह पाते और माता और पिता दोनों अलग–अलग स्थानों पर नौकरी करते हैं। जिससे बच्चे भी कभी माता के पास और कभी पिता के पास रहते हैं। इस सम्बन्ध में नेल्स एंडरसन का मानना है कि कुछ अपवादों को छोड़कर आधुनिक परिवार एक पीढी तक की व्यवस्था है। यह व्यवस्था बच्चों के नाबालिग रहने तक रहती है तथा बच्चों के विवाह होने एवं बाहर जाने पर समाप्त हो जाती है। जिन परिवारों के पास संपत्ति है। वे कुछ लम्बे समय तक बने रहते हैं पहले परिवार की शक्ति सदस्यों की संख्या पर निर्भर करती थी और बच्चों को वरदान माना जाता था। नगरीय जीवन शैली वाले समुदायों में इस सोच में बदलाव आ रहा है।[8]
5. **महिलाओं की उच्च स्थिति–** नगरीय समाज में प्रायः महिलाओं की स्थिति उच्च होती है। जहां पर महिलाओं की स्थिति पुरूषों की तरह समान होती है। महिलाओं की आश्रितता पुरूषों पर अब घट गयी है। नगरीय जीवन में महिलाओं की शिक्षा, नौकरी तथा व्यवसाय या व्यापार करने की स्वतंत्रता प्राप्त होने लगी है। अर्थोपार्जन के क्षेत्र में तो महिलाओं की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है तथा प्रत्येक क्षेत्र में वह पुरूषों के समान कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य कर रही है। परिवार की सम्पत्ति में भी महिलाओं के अधिकार समान रूप से बढ़े हैं। इस संबंध में एन्डरसन के मतों को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है–

   1–लड़कियां अपने माता–पिता को छोड़कर रोजगार के उद्देश्य से बाहर आती है। उनका बाहर रहना किसी प्रकार का संकट उत्पन्न नहीं करती।

   2– पहले की तरह, विवाह अब पारिवारिक कार्य न होकर व्यक्तिगत कार्य हो गये है। इसका अर्थ है कि लड़के व लड़कियों को अपने जीवन साथी के चुनाव की काफी स्वतंत्रता है। यद्यपि उच्चवर्गीय परिवार में रिश्तेदारों की ओर से नियंत्रण की मनोवृत्ति पायी जाती है।

   3– लड़कियों तथा लड़कों को अपनी शिक्षा और व्यवसाय के चुनाव के बारे में निर्णय करने की अधिक स्वतंत्रता है।
6. **परम्परागत व्यवसाय का पतन–** नगरीय परिवार में धीरे–धीरे परम्परागत व्यवस्था का पतन हो रहा है। शिक्षा के कारण व्यक्ति स्वयं परम्परागत व्यवसाय को अपनाना नहीं चाहता है। नई पीढ़ी किसी ऑफिस या आर्थिक रूप से सुदृढ़ व्यवसाय में कार्य करना अधिक पसंद करते हैं। वास्तव में नगरीय क्षेत्र में अब परम्परागत व्यवसाय की शिक्षा का भी अभाव है। इस सम्बन्ध में नेल्स एन्डरसन का मत है कि जब घर कार्य का मुख्य स्थल था, तो यह आशा की जाती थी कि जीवन कार्य में प्रवेश के लिए जो प्रशिक्षण आवश्यक था, उसे परिवार प्रदान करता था। फिर भी बच्चों को कारखाने में कामगार के रूप में अथवा किसी कार्यालय में एकाउंटेंट के रूप में

प्रशिक्षित करना परिवार के लिए सम्भव नहीं था। अब शिक्षा और प्रशिक्षण परिवार से बाहर चले गये हैं। लेकिन बच्चों का सामाजीकरण का पक्ष अब भी परिवार में ही निहित है।

7. **धार्मिकता और आध्यात्मिकता में कमी–** नगरों में विभिन्न धर्म, जाति के लोग निवास करते हैं औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया ने लोगों में वैचारिक स्वतंत्रता का विकास किया है। साथ–साथ काम करने के कारण विभिन्न धर्म, जाति और समुदाय के व्यक्ति अब धार्मिक विचारों, संस्कृति, परम्परावादी विचारों तथा रूढ़िवादी विचारों का त्याग कर रहे हैं कहने का तात्पर्य यह है कि प्रगतिवादी दृष्टिकोण विकसित हो जाने के कारण व्यक्ति अब धार्मिकता और आध्यात्मिक विचारों को कम महत्व देने लगे हैं।
8. **वैवाहिक सम्बन्धों में अस्थिरता**– जैसा कि हम सब जानते हैं कि नगरीय समाज में आर्थिक सुदृढ़ता के लिए महिला और पुरूष दोनों का कार्यरत् होना आवश्यक हो गया है। जिससे जीवन–यापन सुचारू रूप से चल सके। आत्मनिर्भर एवं धनोपार्जन के कारण महिलायें पुरूष को सहयोगी एवं समकक्ष हो जाती है। एक अलग व्यक्तित्व होने के कारण अपना भला–बुरा अच्छे से समझने लगी है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था होने के कारण पुरूषों की सोच में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आता है। अतः दोनों में वैचारिक मतदभेद होने के कारण नगरीय समाज में तलाक या विवाह–विच्छेद के मामलों में तीव्रता से बढ़ोत्तरी हो रही है।
9. **परिवार एवं नातेदारी के महत्व में कमी**– प्राचीन काल में परिवार व्यक्ति के सामाजीकरण एवं मानवीयकरण में अपनी विशेष भूमिका का निर्वह्न करता था। साथ ही रिश्तेदारी तथा नातेदारी को विशेष महत्व दिया जाता था। किन्तु नगरीय समाज में इन दोनों का महत्व धीरे–धीरे कम होने लगा है। समय की कमी तथा महानगरों में आवासीय कमी के कारण व्यक्ति अतिथि सत्कार जैसी बातों को कोई विशेष महत्व नहीं देता है।
10. **शिक्षा का विशेष महत्व**– ग्रामीण समाज की तुलना में नगरीय समाज में शिक्षा का अपना विशेष महत्व है। नगरीय परिवार में बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जिससे बच्चे उच्च पदों को प्राप्त कर सके। संसाधनों की कमी के बावजूद भी नगरीय परिवार में प्रत्येक व्यक्ति अच्छी से अच्छी शिक्षा अपने बच्चों को देना अपना परम कर्त्तव्य समझता है।
11. **अनुशासन का अभाव**– ग्रामीण समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली होने के कारण परिवार के बुजुर्ग सदस्यों या मुखिया का परिवार के प्रत्येक सदस्य पर अनुशासन एवं नियंत्रण रहता था। किन्तु नगरीय परिवार में एकल परिवारों की अधिकता होने के कारण यह अनुशासन एवं नियंत्रण की प्रक्रिया पूर्णतः समाप्त हो गयी है। माता–पिता दोनों के कार्यरत् होने की दशा में बच्चे स्वतंत्र हो जाते हैं जिसके कई दुष्परिणाम भी सामने आने लगे हैं तथा नगरों में कई अपराधिक घपटनायें, नशाखोरी, वैश्यावृत्ति एवं जुआखोरी इसी अनुशासन एवं नियंत्रण के अभाव में बढ़ रही है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर नगरीय विशेषताओं को भली प्रकार से समझा जा सकता है। हालांकि ये सभी विशेषतायें स्थायी नहीं होती है। क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। अतः समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप नगरीय विशेषताओं में भी धीरे–धीरे परिवर्तन आते रहते हैं। इस सम्बन्ध में एंडरसन का मानना है कि ''परिवर्तन की यह दिशा ग्रामीण पीरवार से नगरीय परिवार की ओर तथा नगरीय परिवार से उन्मुक्त परिवार की ओर है। नगरीय परिवार का यह परिवर्तन हितकर हो या नहीं, परन्तु उस परिवर्तन को सभी को स्वीकार करना होगा।

## 11.4 नगरीय परिवार में आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रभाव

आधुनिक समाज में नगरीय परिवार की संरचना में धीरे–धीरे कई परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं आधुनिक प्रवृत्तियों के नगरीय जीवन में प्रभाव को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. संयुक्त परिवार प्रणाली में बच्चों के पालन–पोषण सम्बंधी अधिकांश कार्य परिवार के बुजुर्ग सदस्यों द्वारा किये जाते थे, किन्तु आधुनिक प्रवृत्तियों के कारण पति और पत्नी दोनों के कार्यरत् होने की दिशा में यह कार्य अन्य संस्थाओं एवं समितियों द्वारा किया जाने लगा है। जैसे– शिशुशालाओं, किडंरकार्डन स्कूल आदि।
2. आधुनिक प्रवृत्तियों के कारण प्राचीन पारिवारिक मनोरंजन के साधनों में कमी आने लगी है। प्राचीन समय में सिनेमा, रेडियो तथा बच्चों के द्वारा विभिन्न प्रकार के खेलकूद मनोरंजन के प्रमुख साधन माने जाते थे। परन्तु नगरीय परिवार में टी0वी0 वीडियो गेम, केबल चैनल आदि ने मनोरंजनात्मक गतिविधियां को घर में कैद करके रख दिया है। साथ ही खेल संबंधी सामूहिकता को भी खत्म कर दिया है।
3. आधुनिक प्रवृत्तियों ने नगरीय परिवार में यौन उन्मुक्तता को बढ़ावा दिया है। नगरीय परिवार में वैवाहिक और यौन संबंध के प्राचीन नियम धीरे–धीरे कम पड़ने लगी हैं वैश्यावृत्ति तथा कार्लगर्ल का व्यवसाय नगरीय समाज में तीव्र गति से बढ़ रहा है। जो पारिवारिक तनाव का एक प्रमुख कारण बन गया है। सदरलैंड और वुडवर्ड का मानना है कि यौन नियमों में परिवर्तन से परिवार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।''[9]
4. नगरीय समाज ने स्त्री और पुरुषों के समानता के स्तर पर ला दिया। नगरीय परिवार में एक महिला की प्रस्थिति पुरुषों के समकक्ष मानी जाती है। प्रत्येक क्षेत्र में महिला को समान अधिकार प्राप्त हो गये हैं प्राचीन समय के समान महिला एक श्रमिक या दासी न होकर पुरुष की सहयोगी बन गयी हैं। जो पुरूषों के समान कन्धे से कन्धा मिलाकर उसे प्रत्येक क्षेत्र में अपना योगदान देने में भी पीछे नहीं रहती है। प्रमुख समाजशास्त्री मोरेर का इस सम्बन्ध में कहना है कि ''अनेक परिवारों में पति अब परिवार का अध्यक्ष नहीं रह गया है। यद्यपि यह तथ्य है कि वह अब भी पारिवारिक नाम और धार्मिक नाम प्रदान करता है जिसको उसकी पत्नी अधिक औपचारिक अवसरों पर प्रयोग करती है। पत्नी परिवार में अपने को यदि पति से श्रेष्ठ नहीं तो बराबर अवश्य पाती है। वह परिवार समूह के भाग्य पर सहानुभूतियुक्त परन्तु दृढ़ हाथ से शासन करती है। वह अब अन्य दिनों के समान श्रमिक अथवा दासी नहीं रही।[10]
5. आधुनिक प्रवृत्तियों ने नगरीय परिवार के बच्चों को परिवार का मुख्य केन्द्र बिन्दु बना दिया है। परिवार द्वारा समस्त कार्य बच्चों को ध्यान में रखकर तथा बच्चों की इच्छाओं पर आधारित हो गये हैं डांट फटकार तथा शारीरिक दण्ड अब प्राचीन दकियानूसी विचारधारा माना जाने लगा है। इस सम्बन्ध में अर्नेस्ट मौरर का मानना है कि ''वे वास्तव में दृश्य पर छा जाने की प्रवृत्ति रखते हैं। उनकी इच्छायें परिवार की नीति–निर्धारित करती है। इस प्रकार बच्चों पर केन्द्रित परिवार की ओर प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। जिसमें बालक का कही मुख्य स्थान होता है।''[11]

नगरीय परिवार में आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रमुख प्रभाव परिवार का सीमित या छोटा होने पर पड़ा है। गर्भ निरोधक साधनों एवं औषधियों के जरिये हम दो और हमारे दो के प्रचलन से जन्म दर धीरे–धीरे

कम होने लगी है। जिससे नगरीय परिवार छोटे होते जा रहे हैं फोल्सम के शब्दों में दो बालकों का परिवार वर्तमान व्यापक सामाजिक मानदण्ड अथवा आदर्श है।''[12]

अस्थिरता की बढ़ोत्तरी–प्राचीन काल से ही परिवार समाज की प्रथम एवं मौलिक इकाई मानी जाती थी, किन्तु नगरीय परिवारों में विवाह मात्र एक सामाजिक समझौता माने जाने लगा है। जिससे सदस्यों के मध्य मामूली विवाद में ही वैवाहिक सम्बन्ध टूटने लगते हैं, जिससे परिवार बिखर जाते हैं। ''आधुनिक परिवार प्राचीन और मध्यकालीन परिवार की अपेक्षा कही अधिक दुर्बल और अस्थिर है।''

## 11.5 नगरीय परिवार में विघटन के कारण

आधुनिक परिवार प्रणाली की विवेचना से स्पष्ट होता है कि कई कारण ऐसे हैं जो नगरीय परिवार को धीरे–धीरे अस्थिर तथा विघटित करने में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वह्न कर रहे हैं। निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर इसे भली प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **व्यक्तिवादी प्रवृत्ति**–नगरीय परिवार एकाकी परिवार होने के कारण धीरे–धीरे व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का परिवार बन गया है। आधुनिक जीवन शैली। पाश्चात्यीकरण तथा अंतर्जातीय विवाह ने व्यक्ति को एक तरह से स्वार्थी बना दिया है। जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जीवन–यापन तथा महत्वकांक्षाओं की पूर्ति के कारण ही परिवार से जुड़ा रहता है। इच्छाओं तथा महत्वकांक्षाओं की पूर्ति न होने की दशा में प्रायः परिवार विघटित होने लगते हैं।
2. **कार्यरत् महिलाओं की निरंतर वृद्धि–** अच्छे जीवन स्तर तथा आर्थिक सुदृढ़ता के लिए नगरीय समाज में पति और पत्नी दोनों का कार्यरत् होना आवश्यक माना जाने लगा है। जिससे नगरीय परिवार में कार्यरत् महिलाओं की निरंतर वृद्धि हो रही है। चूंकि भारतीय परम्परागत समाज में घर की पूर्ण जिम्मेदारी तथा समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व केवल एक महिला का ही माना जाता है। ऐसी स्थिति में एक महिला द्वारा घर की पूर्ा जिम्मेदारी तथा कार्यालय के समस्त कार्यों का निर्वह्न एक साथ कर पाना संभव नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में प्रायः परिवार विघटित होने लगते हैं।
3. **सामंजस्य में अस्थिरता**–जैसा कि हमस ब जानते हैं कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। किन्तु यह भी वास्तविकता है कि परिवर्तन के साथ–साथ उसमें अनुकूल सामंजस्य बिठाना भी आवश्यक होता है। नगरीय परिवार में नियंत्रण एवं अनुशासन के अभाव में प्रत्येक व्यक्ति अपने हिसाब से जीवन यापन करना चाहता है। जिससे परिवार के सदस्यों के मध्य सामंजस्य में अस्थिरता आने लगती है। जिससे परिवार विघटित होने लगता है।
4. **समय का अभाव**–नगरीय समाज में परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अलग–अलग तरह की नौकरी तथा व्यवसाय से जुड़ा रहता है। व्यवसाय में विविधता के कारण परिवार के सदसवयों को एक दूसरे के लिए वक्त नहीं मिल पाता। जिससे परिवार के सदस्यों के मध्य अन्तर्क्रिया करने के कम से कम अवसर प्राप्त होते हैं। अतः समय की कमी भी पारिवारिक विघटन का एक प्रमुख कारण माना जा सकता है।
5. **अनुशासनक का अभाव**–नगरीय परिवार में माता–पिता दोनों के कार्यरत् होने की दशा में माता–पिता का अपने बच्चों पर नियंत्रण प्रायः समाप्त हो गया है। नियंत्रण के अभाव में बच्चे बुरी आदतों का शिकार हो जाते हैं। जो आगे चलकर परिवार को विघटित कर देता है।

उपरोक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त पारिवारिक विघटन अथवा अस्थिरता के सम्बन्ध में अनेक समाजशास्त्रीयों एवं विद्वानों ने अपने अलग–अलग मत प्रस्तुत किये हैं जिन्हें निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।[14]

1–**फोल्सम ने पारिवारिक विघटन के चार कारक माने हैं––**

परिस्थिति सम्बन्धी या गैट–व्यक्तित्व कारक–जैसो बुरा स्वास्थ्य, बुरी आर्थिक परिस्थितियां, सम्बन्धियों का हस्तक्षेप, किसी प्रकार का दुर्भाग्य, आवांछित सन्तान इत्यादि।

2–व्यक्तित्व के दोष–पति–पत्नी में से किसी में मानसिक विकार, मद्य सेवक नपुंसकता, बांझपन, अस्वाभाविक यौन प्रवृत्तियां या व्यक्तित्व की विकृतियां का होना।

3–व्यक्तित्व विभिन्नतायें–पति–पत्नी में बौद्धिक, सामाजिक, कलात्मक, पृष्ठभूमि, आर्थिक तथा वेदनाशक्ति सम्बन्धी अन्तर होना।

4–असंगत कार्य–नैराश्य इत्यादि का होना।

ब–**क्रूगर का मत**–पारिवारिक विघटन के मुख्य कारण विभिन्न प्रकार के तनाव है। क्रूगर ने पारिवारिक तनावों के निम्नलिखित पक्ष बतलाये हैं–

1. सामान्य उद्देश्य समाप्त हो जाना और पारिवारिक लक्ष्यों का स्थान व्यक्तिगत लक्ष्यों द्वारा लिया जाना।
2. सब सहयोगी प्रयासों का बन्द हो जाना।
3. परस्पर सेवाओं का बन्द हो जाना।
4. पति–पत्नी के सम्बन्धों की घनिष्ठता समाप्त हो जाना।
5. अन्य सामाजिक समूहों के साथ परिवारों के बाहरी सम्बन्धों में परिवर्तन होना।
6. पति–पत्नी की उद्वेगात्मक मनोवृत्तियों का परस्पर विरोधी हो जाना या उनकी जगह पर उदासीनता की अभिवृत्ति का स्थापित हो जाना।

स– मोरेर का मत

**मोरेर ने निम्नलिखित चार तनावों का वर्णन किया है–**

1. आर्थिक तनाव
2. सांस्कृतिक तनाव
3. जीवन निर्वाह् के ढ़ंग से सम्बंन्धित तनाव

**द–बर्गेस का मत–बर्गेस के अनुसार अग्रलिखित सात प्रकार के तनाव परिवार का विघटन करते हैं।**

1. **आर्थिक**
2. यौन संबंधी
3. स्वास्थ्य संबंधी
4. आदर सम्बन्धी
5. संस्कृति संबंधी
6. स्वभाव सम्बन्धी
7. जीवन प्रतिमान संबंधी

उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है। परिस्थिति तथा आधुनिकीकरण के इस दौर में नगरीय परिवार की संरचना में कई सकारात्मक और नकारात्मक परिवर्तन आये हैं, किन्तु यह भी

वास्तविकता है कि परिवार नामक संस्था का कभी अन्त हनीं हो सकता। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध समाजशास्त्री ब्रजेश एवं लॉक का मानना है कि बदलती हुई परिस्थितियों से सामंजस्य करने के परिवाार के लम्बे इतिहास के कारण और व्यक्तित्व के विकास में तथा व्यक्तिगत संतोष में स्नेह के आदान–प्रदान के उसके काम में महत्व के कारण। इन दोनों कारणों से यह भविष्यवाणी करना सुरक्षित मालूम पड़ता है कि परिवार जीवित रहेंगे।

## 11.6 सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

प्राचीन काल से ही यदि हम समाज की उत्पत्ति व विकास के सम्बंध में अध्ययन करें, तो ज्ञात होता है कि प्रत्येक समाज अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समाज को संगठित एवं व्यवस्थित एवं व्यवस्थित रखने के लिए समाज के प्रत्येक सदस्य को कुछ अधिकार एवं भूमिकाएं सौंपता है। समाज में रहने वाला प्रत्येक सदस्य भी अपनी योग्यता एवं कार्यकुशलता के आधार पर समाज में एक विशेष प्रस्थिति एवं पद को प्राप्त करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपनी योग्यता एवं कुशलता के आधार पर सामाजिक व्यवस्था में स्तरों के रूप में बंट जाता है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति या समूहों को उच्च या निम्न पद या प्रस्थिति प्राप्त होती है। वास्तव में सम्पूर्ण समाज में व्यक्तियों एवं समूहों के मध्य उच्चता और निम्नता का यही क्रम सामाजिक स्तरीकरण कहलाता है। मनुष्यों की शारीरिक, नैतिक, आर्थिक एवं व्यवसायिक भिननता समाज को विभिन्न समूहों में विभक्त कर देती है। नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न पक्षों को समझने से पूर्व सर्वप्रथम सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ तथा उसकी विशेषताओं को समझना आवश्यक है। सामाजिक स्तरीकरण के सन्दर्भ में अनेक समाजशास्त्रियों एवं विद्वानों ने इसकी अनेकों परिभाषायें दी हैं, जो निम्नांकित हैं–

1. जिस्बर्ट के अनुसार–''सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ समाज को कुछ ऐसे स्थायी समूहों और श्रेणियों में विभाजित कर देने वाली व्यवस्था से है जिसकते अन्तर्गत सभी समूह उच्चता एवं आधीनता के सम्बन्धों द्वारा एक दूसरे से बधें हैं।[15]
2. मूरे ने सामाजिक स्तरीकरण को स्पष्ट करते हुए कहा है कि स्तरीकरण समाज का एक ऐसा विभाजन है। जिसमें सम्पूर्ण समाज को कुछ उच्च तथा निम्न सामाजिक इकाईयों में विभक्त कर दिया जाता है।

   सदरलैंड तथा वुडवर्ड ने सदस्यों की स्थिति सम्बन्धी भिन्नता के आधार पर सामाजिक स्तरीकरण को परिभाषित किया है। आपके अनुसार, 'स्तरीकरण केवल विभेदीकरण की वह प्रक्रिया है। जिसमें कुछ व्यक्तियों को दूसरे व्यक्तियों की तुलना में उच्च स्थिति प्राप्त होती है।[16] पी0 गिसबर्ट के अनुसार– ''सामाजिक स्तरीकरण समाज का उन स्थायी समूहों अथवा श्रेणियों में विभाजन है, जो कि उच्चता एवं अधीनता के सम्बंधों से परस्पर सम्बंध होते हैं।
3. पारसन्स के शब्दों में– ''किसी समाज व्यवस्था में व्यक्तियों को दूसरे व्यक्तियों की तुलना में उच्च स्थान प्राप्त होता है।'
4. किंग्सले डेविस ने सामाजिक संस्तरण को सामाजिक असमानता का पर्यायवाची शब्द मानते हुए लिखा है–''सामाजिक असमानता अचेतन रूप से विकसित पद्धति है। जिसके द्वारा समाज यह आश्वासन देते हैं कि सबसे महत्वपूर्ण पदों पर सोच–विचार कर सबसे अधिक योग्य व्यक्तियों की नियुक्तियां होती हैं।[17]
5. विलियम्स ने विस्तृत व्याख्या करते हुए पद–व्यवस्था के रूप में सामाजिक संस्तरण का विश्लेषण किया जो किसी विशिष्ट समाज में विशेष अर्थ रखता है। उसके विचार से किसी पद–व्यवस्था का विश्लेषण निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है।[18]

अ– अधिकारों का वितरण। उदाहरणार्थ–आय, सम्पत्ति, सुरक्षा, स्वास्थ्य, सत्ता आदि।
ब–समाज के सदस्यों का पदसोपान क्रम (प्रतिष्ठा और आदर)
स–पद की कसौटियाःव्यक्तिगत गुण अथवा उपलब्धियां, पारिवारिक सदस्यता, सम्पत्ति या संचित सामग्री या शक्ति।
द–पद के प्रतीक जैसे–जीवन शैली, वेशभूष या परिधान, आवास, संगठनात्मक सदस्यता इत्यादि
य–पदसोपान में परिवर्तनों की सुविधा, कठिनाई या आवृत्ति।
र–व्यवस्था में समान स्थिति वाले व्यक्तियों या समूहों के बीच एकता।

1–अन्तःक्रिया प्रतिमान, गुटसंरचनाःसंगठन सदस्यता, अन्तर्विवाह आदि।
2–विश्वासों, मनोवैज्ञानिकों, मूल्यों की समानता या असमानता।

3–संस्तरण स्थितियों की चेतना।

4–सामूहिक क्रिया जैसे–वर्ग कल्याण।

भारत के प्रसिद्ध समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह लिखते हैं कि ''सामाजिक स्तरीकरण का संबंध क्रमबद्धता, सामाजिक समानता, सामाजिक न्याय, शक्ति तथा मनुष्य की प्रकृति से है।[19]

इसी प्रकार सामाजिक संस्तरण की अवधारणा को सरल शब्दों में स्पष्ट करते हुए पारसन्स ने कहा कि किसी समाज की सामान्य मूल्य व्यवस्था के मानदण्डों के आधार पर व्यक्तियों की स्थितियों को ऊँचा या नीचा समझा जाता है तथा मनुष्यों में असमानता पाई जाती है। सामाजिक मूल्यों के साथ आचरण की अनुरूपता की मात्रा मनुष्यों में एक दूसरे से कम या अधिक सम्मान, अधिकार या सुविधाएं प्रदान करेन में सहायक होती हैं। यह मूल्यांकन सामाजिक संस्तरण को जन्म देता है।''[20]

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक स्तरीकरण समाज में जीवनयापन करने वाले विभिन्न व्यक्तियों के मध्य असमानता की स्थिति स्पष्ट करते हैं। अलग–अलग स्तरों में बंटे हुए समाज के प्रत्येक सदस्य इसी उच्च एवं निम्न स्थिति के अनुरूप दूसरे सदस्यों के साथ व्यवहार करते हैं।

## 11.7 सामाजिक स्तरीकरण के आधार

जैसा कि हमस ब जानते हैं कि समाज को संगठित एवं व्यवस्थित रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के कुछ अधिकार एवं कर्त्तव्य होते हैं जिसके आधार पर वह समाज को व्यवस्थित रखने में अपना सहयोग प्रदान करता है। यह अधिकार एवं कत्तर्व्य व्यक्ति की समाज में स्थिति को भी निर्धारित करते हैं। प्रत्येक समाज की परिस्थिति के अनुरूप स्तरीकरण के कुछ विशेष आधार होते हैं जो भिन्न–भिन्न समाज एवं समुदाय में अलग–अलग प्रकार के होते हैं। विभिन्न विद्वानों तथा समाजशास्त्रियों ने सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न आधारों का उल्लेख किया है।''[21]

1. प्राणिशास्त्रीय आधार
   1–आयु
   2–शिशु
   3–किशोर
   4–युवा

5–प्रौढ़ या वृद्ध

प्राणिशास्त्रीय आधार पर आयु का विशेष स्थान होता है। जैसे–जैसे आयु में परिपक्वता आती है। वैसे–वैसे अनुभव भी बढ़ता है जो व्यक्ति की समाज में उच्च एवं निम्न स्थिति को परिलक्षित करता है।

2–प्रजाति–प्रजाति जन्मजात शारीरिक लक्षण को परिलक्षित करता है। प्रजाति के आधार पर भी कुछ प्रजातियां अपने को उच्च तथा कुछ प्रजातियां अपने को निम्न मानती हैं।

3–लिंग–प्राचीन काल से ही स्त्री और पुरूष में भेद लिंग के आधार पर किया जाता है। पितृसत्तात्मक समाज में जहां एक और पिता की स्थिति उच्च होती है। वही मातृसत्तात्मक समाज में माता की स्थिति उच्च होती है।

## 2– सामाजिक आधार

1–जातिगत आधार– भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार जातिगत रहा है। जातिगत आधार पर कई जातियां उच्च होती हैं और कई जातियों को निम्न श्रेणी में रखा जाता है। वास्तव में जातिगत स्तरीकरण जन्म पर आधारित होती है तथा इसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

2– अजातिगत वर्ग आधार सामाजिक स्तरीकरण के द्वितीय महत्वपूर्ण आधार अजातिगत (सामाजिक) आधार में एक समाज के अंतर्गत पद स्तरों की एक व्यवस्था उन्नत हो जाती है। जिसके आधार पर समाज विभिन्न स्तरों पर विभाजित हो जाता है। इटेलियन समाजशास्त्री विलफ्रेडो पेरेटो के अनुसार प्रत्येक सामाजिक संरचना के किसी–न–किसी आधार पर ऊँच–नीच का एक संस्तरण अवश्य हो जाता है। सामान्यतः प्रत्येक समाज दो स्तरों उच्च स्तर तथा निम्न स्तर के विभाजित किया जा सकता है। उच्च स्तर के लोगों के हाथों में शक्ति होती है, जो प्रायः समाज के शासक होते हैं। यह वर्ग प्रभावशाली होता है। जिनके हाथ में समाज का शासन नहीं होता। वह निम्न प्रस्थिति को प्राप्त करता है।

ग–शिक्षा–स्तरीकरण में एक प्रमुख आधार शिक्षा का होता है। शिक्षित वर्ग के सदस्यों की सामाजिक स्थिति अशिक्षित वर्ग से उच्च मानी जाती है।

घ–कार्यकुशलता–वर्तमान समय में व्यक्ति की कार्यकुशलता के आधार पर व्यक्ति का पद एवं योग्यताक ता स्तर निश्चित होता है। जैसे–डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर एवं कलैक्टर।

3–आर्थिक आधार– आर्थिक आधार पर सम्पत्ति एवं धन को मुख्य स्थान दिया जाता है। कार्ल–मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी समाज में सम्पूर्ण सदस्य दो वर्गों में विभक्त होते हैं। प्रथम वर्ग पूंजीपति वर्ग है। जिनका उत्पादन के साधनों पर अधिकार होता है। द्वितीय वर्ग अपूंजीपति वर्ग या श्रमिक वर्ग जो पूंजीपति वर्ग द्वारा स्थापित उद्योगों में उत्पादन कार्य में सक्रिय भाग लेते हैं तथा जिसके बदले पारिश्रमिक लेते हैं। इस प्रकार समाज दो वर्गों पूंजीपति वर्ग तथा श्रमिक वर्ग में विभक्त हो जाता है।

ख–व्यवसाय–सामाजिक स्तरीकरण के आर्थिक आधार का दूसरा प्रमुख आधार व्यवसाय है। औद्योगिक समाज में विभिन्न व्यवसायों की बहुलता होने के कारण समाज प्रायः चार वर्गों में विभक्त होता है। प्रथम तथा द्वितीय वर्ग में अधिकारी वर्ग तथा तृतीय वर्ग में कर्मचारी वर्ग तथा चतुर्थ श्रेणी में मजदूरी वर्ग होते हैं।

4–राजनीतिक आधार–सामाजिक स्तरीकरण को निर्धारित करने में राजनीतिक आधार एक महत्वपूर्ण आधार है। राजनीतिक आधार एक महत्वपूर्ण आधार है। राजनीतिक सत्ता के आधार पर समाज दो वर्गों शासक तथा शासित में विभक्त होता है। जिस वर्ग के हाथ में शासन की बागडोर होती है। उसकी प्रस्थिति उस वर्ग के सदस्यों से उच्च होती है। जिनके हाथों में शासन की सत्ता नहीं होती है।

5–धार्मिक आधार– धार्मिक आधार सामाजिक स्तरीकरण का एक महत्वपूर्ण आधार है जैसे रोमन कैथोलिक चर्च का एक विश्वव्यापी स्तरीकरण है। जिसके शीर्ष पर पोप होते हैं। इसके फैले हुए कई कार्य विभिन्न शासक तंत्रीय कार्यालयों और शाखाओं द्वारा सम्पन्न होते हैं और अन्य शासन तंत्रों की भांति यहां भी सभी यह नियुक्ति द्वारा भरे जाते हैं।

6–सांस्कृतिक आधार– सांस्कृतिक आधार पर स्तरीकरण भाषा बौद्धिक कुशलता, कलात्मक कुशलता आदि आधारों पर समाज में स्तरीकरण दृष्टिगोचर होता है।

## 11.8 सामाजिक, स्तरीकरण के स्वरूप

सामाजिक व्यवस्था में जब समाज के प्रत्येक सदस्य उच्च एवं निम्न पदों एवं प्रस्थिति के आधार पर विभाजित होते हैं, तब वह सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न स्वरूपों एवं प्रकारों को भी निश्चित करते हैं। विभिन्न समाजशास्त्रीयों एवं विद्वानों ने सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूपों को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। विभिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूपों को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया है।

1–पिटरिम सोरोकिन[22] सोरोकिन के अनुसार सामाजिक स्तरीकरण के तीन प्रमुख प्रकार या स्वरूप है–आर्थिक, राजनीतिक तथा व्यावसायिक। सामान्य रूप से ये तीनों प्रकार के स्तरीकरण एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं। ऐसा देखा गया है कि एक क्षेत्र में जिस व्यक्ति की स्थिति ऊँची होती है। वह दूसरे क्षेत्र में भी ऊँची स्थिति ऊँची होती है। वह दूसरे क्षेत्र में भी ऊँची स्थिति को प्राप्त करता है। जबकि एक क्षेत्र में निम्न स्थिति वाला व्यक्ति अन्य क्षेत्र में भी निम्न स्थिति का ही अधिकारी होता है।

सोरोकिन ने सामाजिक स्तरीकरण के तीन प्रमुख स्वरूपों की विवेचना को अलग–अलग रूपों में प्रस्तुत किया है।

1. **आर्थिक स्तरीकरण–**आर्थिक क्षेत्र में पाए जाने वाले स्तरीकरण का आधार आय, सम्पत्ति पर अधिकार तथा पेशा हो सकता है। चूंकि ये सभी आधार परिवर्तनशील हैं। अतः आर्थिक स्तरीकरण में उतार–चढ़ाव भी सम्भव है। आर्थिक उतार–चढ़ाव के सम्बन्ध में सोरोकिन के निष्कर्ष इस प्रकार है–
    - औसत सम्पत्ति तथा आय अलग–अलग समाज व समूह में अलग–अलग होती है।
    - औसत सम्पत्ति तथा आय एक ही समाज या समूह में अलग–अलग समय में अलग–अलग हो सकती है।
    - आर्थिक समृद्धि या पतन का कोई चिर स्थायी नियम या प्रवृत्ति नहीं होती है। अर्थात् आर्थिक समृद्धि का बढ़ना या घटना अनेक कारकों तथा परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

- इस दृष्टिकोण से केवल व्यापार चक्र ही नहीं, अपितु वृहतर सामाजिक, आर्थिक चक्र भी हो सकते हैं।
- अन्तहीन आर्थिक प्रगति का सिद्धान्त गलत है। क्योंकि समाज या समूह के जीवन में आर्थिक पतन की स्थिति भी स्वभाविक हो सकती है।

2. **राजनीतिक स्तरीकरण**–सभ्यता एवं विकास व समाज के आकार व प्रकार में विस्तार के साथ–साथ जैसे–जैसे राजनैतिक संरचना व संगठन में जटिलता बढ़ती गई। वैसे–वैसे राजनीतिक स्तरीकरण भी उत्तरोत्तर जटिल होता गया। आज स्थिति यह है कि जिस समाज में जिस प्रकार की सरकार है। जैसे प्रजातंत्र, तानाशाही आदि के अनुसार राजनीतिक क्षेत्र में स्थितियों का बंटवारा या स्तरीकरण है। जैसे राजनीतिक स्तरीकरण में सर्वोच्च स्थान राष्ट्रपति का उसके बाद उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, उपप्रधानमंत्री, मंत्री, उपमंत्री आदि। इस सम्बंध में सोरोकिन के कुछ निष्कर्ष इस प्रकार हैं–

- जब एक जटिल राजनीतिक संगठन का आकार बढ़ता है। अर्थात् जब उसकी सदस्यता बढ़ती है, तो राजनीतिक स्तरीकरण भी बढ़ जाता है। इसके विपरीत संगठन का आकार घटने से स्तरीकरण भी कम हो जाता है।
- जब राजनीतिक संगठन के सदस्यों में भिन्नता या विषमता बढ़ती या घटती है, तो राजनीतिक स्तरीकरण भी विस्तृत या संकुचित हो जाता है।
- जब उपरोक्त दोनों कारक घटते या बढ़ते हैं, तो राजनीतिक स्तरीकरण के घटने या बढ़ने की सम्भावना और भी बढ़ जाती है।
- जब उपरोक्त कारकों में कोई एक या दोनलों कारक एकाएक बढ़ जाते हैं। जैसे कि सैनिक विषय अथवा विद्रोह या क्रान्ति द्वारा सरकार को पलट देना। उस अवस्था में राजनीतिक स्तरीकरण में भी गम्भीर परिवर्तन व विस्तार हो सकता है।
- जब उपरोक्त कारकों में एक बढ़ता है और दूसरा घटता है,तो वे एक–दूसरे के प्रभाव को रोक लेते हैं।

व्याासायिक स्तरीकरण–सोरोकिन के अनुसार व्यावसायिक स्तरीकरण के दो दृष्टिकोणों का विवेचन किया है।

1–अन्तव्यावसायिक स्तरीकरण
2–अन्तः व्यावसायिक स्तरीकरण

**अन्तर्व्यावसायिक स्तरीकर**ण–विभिन्न व्यवसायों की अच्छाई या बुराई (उत्तमता या अधमता) के आधार पर व्यावसायिक स्तरीकरण किया जाता है। अर्थात् विभिन्न व्यवसायों व उनको अपनाने वाले लोगों को ऊँच–नीच के क्रम में रखा जाता है।

**अन्तः व्यावसायिक स्तरीकरण**–इसका अर्थ है कि एक ही प्रकार के व्यवसाय में विभिन्न स्तरों का अर्थात् विभिन्न स्थिति वाले व्यक्तियों का होना। एक ही प्रकार का पेशा करने वाले सभी लोगों की स्थिति एक सी नहीं होती है। उनमें भी आपस में ऊँच–नीच का एक संस्तरण हो सकता है। शशि के जैन के अनुसार स्तरीकरण असमानता का वह स्वरूप है। जिसमें समाज के सदस्य

ऊँचे–नीचे पदों या स्थितियों पर विभाजित रहते हैं जो स्तरीकरण के स्वरूप या प्रकार को निश्चित करते हैं।[23]

1. **दासता**–दासता स्तरीकरण का वह स्वरूप है जो समाज को दो वर्गों मे विभातित करता है जिन्हें स्वामी तथा दास कहा जाता है। किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के द्वारा प्रथा या प्रचलन के रूप में अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों को दास रखने की क्षमता और दासों की संख्या के आधार पर स्तरीकरण होता था।
2. **एस्टेट**–एस्टेट सामाजिक संस्तरण का वह स्वरूप है जो दासता के पश्चात् सामन्तवादी युग में विकसित हुआ। राजनीतिक क्षेत्र में विशिष्ट अधिकारों से युक्त समूह को एस्टेट या जागीरदारी कहा जाता है। एस्टेट जनसंख्या का वह भाग है जिसे संस्तरण में उच्च स्थान और विशेष सामाजिक अधिकार तथा सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। इन अधिकारों और सुविधाओं को कानूनी अभिमति प्राप्त होती है। एस्टेट व्यवस्था के अन्तर्गत सामन्तवादी समाज तीन ऊँचे और नीचे समूहों में विभाजित था। जिसमें प्रथम स्थान पुजारियों का था, जो पूजा–पाठ करते थे। दूसरा स्थान भद्र पुरूष या कुलीन व्यक्ति का था, जो युद्ध इत्यादि के समय सुरक्षा की जिम्मेदारी निभाते थे। और तीसरे स्थान पर श्रम करने वाले सामान्य लोग थे।
3. **जाति**– यह प्रतिबंधित संस्तरण का वह स्वरूप है। जिसमें जन्म के साथ व्यक्ति की प्रस्थिति जीवन पर्यन्त हेतु निर्धारित हो जाती है। जाति क साथ धार्मिक अभिनति जुड़ गई है। जाति की व्याख्या एक कठोर वर्ग के रूप में की गई है और स्थिति समूह के रूप में भी यद्यपि जाति प्रथा एक अपरिवर्तनीय स्थायी व्यवस्था प्रतीत होती हैं फिर भी गतिशील तथ्य है। जाति अन्तर्विवाही एवं जन्मजात समूह है। जिसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता।
4. **वर्ग**–सामाजिक वर्ग स्तरीकरण का वह प्रकार है। जो आधुनिक युग में अधिक प्रचलित है। वर्ग ऊँची–नीची स्थिति वाले आर्थिक समूहों के रूप में समझे जा सकते हैं। जिन्हें कोई धार्मिक या कानूनी अभिनति प्राप्त नहीं होती। वर्ग स्तरीकरण का मुक्त स्वरूप है। वर्ग के सदस्य अपनी स्थिति के अनुसार अन्य समूहों को ऊँचा या नीचा समझकर व्यवहार करते हैं।
5. **प्रस्थिति समूह**– आधुनिक समाजों में उपभोग स्तरीकरण का मुख्य आधार बन रहा है। मैक्स वेबर ने उपभोग की मात्रा को आधार मानकर ऊँचे नीचे सामाजिक स्तर का निर्धारण करने का प्रयत्न किया है। अधिक खर्च करने वाले उच्च प्रस्थिति में होते हैं।

3–रामनाथ शर्मा एवं राजेन्द्र कुमार शर्मा के अनुसार[24]

1. जाति पर आधारित स्तरीकरण–
    1. जाति जन्मजात होती है।
    2. जति में खान–पान सम्बन्धी निश्चित नियम होते हैं।
    3. अधिकांश जातियों के व्यवसाय निश्चित होते हैं।
    4. जाति में ऊँच–नीच और छूआछुत के नियम होते हैं।
    5. जाति अन्तर्विवाही होते हैं।
    6. जाति में बन्द स्तरीकरण पाया जाता है। (जन्म पर आधारित)
2. वर्ग पर आधारित स्तरीकरण–
    1. वर्ग की सदस्यता हैसियत, जीवन का स्तर आदि वस्तुगत बातों पर आधारित है।
    2. वर्ग व्यवस्था जाति व्यवस्था के समान प्रजातन्त्र में बाधक नहीं है।
    3. वर्ग व्यवस्था जाति व्यवस्था के समान प्रजातन्त्र में बाधक नहीं है।
    4. वर्गों में सामाजिक दूरी अत्यधिक नहीं होती।

5. वर्गों में स्तरीकरण पाया जाता है। (व्यक्तिगत क्षमता के आधार पर)

3. लिंग पर आधारित स्तरीकरण–अधिकांश मानव समाजों में स्त्री–पुरूष की सामाजिक स्थिति समान नहीं होती और इसलिए लिंग–भेद के आधार पर स्तरीकरण दिखलाई पड़ता है। आधुनिक समाज में इस प्रकार का लिंगभेद पर आधारित स्तरीकरण समाप्त हो रहा है।
4. आयु पर आधारित स्तरीकरण–प्रत्येक समाज में आयु के आधार पर व्यक्ति के कार्यों, उत्तरदायित्वों, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि में अन्तर किया जा सकता है। और इस प्रकार विभिन्न आयु में स्तरीकरण अलग दिखलाई पड़ता है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचना के आधार कहा जा सकता है कि वर्तमान समाज में सामाजिक स्तरीरण के अनेकों स्वरूप पाये जाते हैं। जिसके विभिन्न आधार होते हैं। किन्तु संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूपों में मुख्य रूप से आर्थिक, राजनीतिक, व्यावसायिक, शिक्षा, व्यक्ति की प्रस्थितियां तथा प्रजाति आदि है।

## 11.9 नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के आधार

समाज के सन्दर्भ में यदि बात की जाए तो प्रत्येक समाज चाहे उसकी सामाजिक संरचना किसी भी प्रकार की क्यों न हो, किसी न किसी आधार पर ऊँची और नीची स्थितियों वाले विभिन्न समूहों में विभक्त होते हैं ऐसा किसी भी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती, जो अलग–अलग प्रस्थितियों में विभाजित न हो, नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के आधारों पर यदि बात की जाए, तो नगरीय समाज निम्नांकित आधारों पर विभाजित होता है–

1. आयु
2. लिंग
3. शिक्षा
4. पारिवारिक पृष्ठभूमि
5. व्यवसाय
6. सम्पत्ति

नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के दो प्रमुख भागों में विभाजित है[25]

1- पूर्व–औद्योगिक समाजों में सामाजिक स्तरीकरण–औद्योगिक समाज की पूर्व–औद्योगिक समाज से भिन्नता सामाजिक स्तरीकरण के आधार पर की जा सकती है। जोबर्ग के अनुसार–''पूर्व औद्योगिक नगरों में वर्ग के आधार पर स्तरीकरण पाया जाता था। कुछ व्यवसाय अधिक महत्व के थे एवं उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर अधिक मूल्यवान माना जाता था। उनसे सम्बन्ध सामाजिक शक्ति एवं प्रतिष्ठा व्यक्ति को सामाजिक पद सोपानक्रम में उच्च स्थान दिलाने का कार्य करती थी। सम्पूण्र जनसंख्या में से लगभग 5–10 प्रतिशत जनसंख्या नगर में प्रभावी होती थी। पूर्व–औद्योगिक समाज के नगरों का सामाजिक स्तरीकरण औद्योगिक समाज के नगरों का साजिक स्तरीकरण औद्योगिक समाज के स्तरीकरण से मूल रूप से सामाजिक वर्गों की गतिशीलता का अभाव था। सामाजिक वर्गों की सदस्यता में परिवर्तन करने के सामाजिक अवसर लगभग नहीं थे। व्यक्ति सामाजिक संरचना के जिस स्तर में होता था। उसी में वह जीवन भर

रहता था। समाज के सबसे ऊँचे स्तर जिसकी संख्या कुल जनसंख्या की बहुत कम होती थी। समाज के सम्पूर्ण वर्गों पर उस वर्ग का प्रभाव बहुत अधिक पाया जाता था।[26]

2. औद्योगिक नगरों में सामाजिक स्तरीकरण–औद्योगिकरण की प्रक्रिया को विशेष बल मिला है। औद्योगिकरण की प्रक्रिया की तीव्र गति के साथ ही समाज में श्रम–विभाजन और बड़े–बड़े नगरों का विकास तीव्र गति से हुआ, जिसका प्रभाव समाज व्यवस्था पर अनेकों रूपों में पड़ा और दूसरी ओर नगर की कठोर समाज व्यवस्था के नियमों में शिथिलता उत्पन्न हुई। नगर की सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक वर्गो की भिन्नता का एक आधार जीवनशैली भी है। वोशकोफ ने जीवन शैली के आधार पर निम्न वर्ग बताए हैं–उच्च, मध्यम और निम्न वर्ग। नगरों में सामाजिक वर्गों की भिन्नता स्पष्ट की है। उच्च, मध्यम और निम्न वर्ग की जीवन शैली भिन्न होती है। वे सामाजिक स्तर के आधार पर जीवन की प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त करते हैं।

## 11.10 भारत में नगरीय सामाजिक स्तरीकरण

भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण का एक विशेष स्वरूप पाया जाता है। जिसे जाति व्यवस्था कहा जाता है। किसी भी व्यक्ति को जाति जन्म से प्राप्त होती थी तथा व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपनी जाति को परिवर्तित नहीं कर सकता था। इसलिए जाति व्यवस्था को एक बन्द वर्ग कहा जाता है। जाति व्यवस्था में प्रत्येक जाति अपनी जाति की विभिन्न इकाईयों पर परस्पर निर्भर पायी जाती थी। साथ ही सम्पूर्ण जाति व्यवस्था पवित्रता एवं अपवित्रता पर आधारित थी। जिसकते आधार पर ही व्यक्ति को समाज में पद एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति होती थी।

इस सम्बन्ध में आन्द्रे बिताई का मत है कि जाति व्यवस्था के विभिन्न वर्ग की एक–दूसरे से सह–सम्बद्धता प्रमुख रूप भारतीय ग्रामों तक सीमित है। नगरों में भी जाति व्यवस्था पायी जाती है। यद्यपि नगरों में जाति व्यवस्था के संगठन का स्वरूप ग्रामों में पायी जाने वाली जाति–व्यवस्था के संगठन के स्वरूप से भिन्न है। ग्रामों में जाति–व्यवस्था आधिक जटिल है। संगठन के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाता है। जबकि नगरों में जाति व्यवस्था के नियमों का पालन कराना कठिन कार्य है। आधुनिक औद्योगीकरण की प्रक्रिया के प्रभाव से नगरों में जाति व्यवस्था में हो रहे अनेकों परिवर्तनों ने नगरों में आवागमन के साधन में वृद्धि व्यवसाय की परिस्थिति ने जाति नियमों के पालन के अवसर कम कर दिए हैं।''[27]

भारतीय नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के सम्बन्ध में यदि बात की जाए, तो वर्तमान समय में नगरीय समाज में नये सामाजिक वर्ग विकसित हो रहे हैं। ये चार नये सामाजिक वर्ग निम्नवत् हैं–

1. उच्च वर्ग
2. उच्च मध्यम वर्ग
3. मध्यम वर्ग
4. निम्न वर्ग

इन वर्गों में सामाजिक पद एवं प्रतिष्ठा के समस्त नियम भी नवीन हैं जो परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में नगरों के विकास, नगरीकरण, पश्चिमीकरण तथा औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने जातिगत व्यवस्था पर अनेकों परिवर्तन ला दिए हैं।

जिससे जातीय आधार या नियम धीरे–धीरे शिथिल हो रहे हैं। जातिगत बंधनों के स्थान पर शिक्षा, व्यवसाय एवं आर्थिक सुदृढ़ीकरण को विशेष स्थान दिया जाने लगा है। यही कारण है कि योग्यता एवं कुशलता के आधार पर ही नगर में पाएए जाने वाले अलग–अलग वर्गों की सामाजिक प्रस्थिति अलग–अलग प्रकार की होती है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री अनिल भट्ट का मानना है कि भारती समाज के नगरों की सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया मूल रूप से सामाजिक गतिशीलता व्यक्तिगत प्राप्ति से सम्बन्धित है। सामाजिक आर्थिक आधार जाति से अलग होकर नवीन भूमिका में विकसित हो रहे हैं।

इसी प्रकार कारविन का मानना है कि उभरते हुए नगरों की सामाजिक संरचना में जाति का महत्व धीरे–धीरे कम होकर सामाजिक वर्गों का महत्व बढ़ रहा है। जो इस बात का प्रतीक है कि वर्ग की संरचना पर धन, उच्च शिक्षा एवं उच्च प्रतिष्ठा के पदों का प्रभाव पड़ता है। नगर के सामाजिक पदसोपान–क्रम के निर्माण में जाति कमे स्थान पर ध्यान, उच्च शिक्षा, उच्च प्रतिष्ठा के पद महत्वपूर्ण हो रहे हैं मौरिस ने भारत में सामाजिक स्तरीकरण की व्याख्या करते हुए लिखा है कि ''ग्रामों के स्तरीकरण पर जहाँ बन्द सामाजिक व्यवस्था के नियमों का प्रभाव पड़ता है। वहाँ नगरों में खुली समाज–व्यवस्था के नियमों का प्रभाव पड़ता है तथा व्यक्ति के व्यक्तिगत गुणों के विकास एवं उनके द्वारा प्राप्त सामाजिक प्रतिष्ठा उनकी सामाजिक प्रस्थिति निर्मित करते हैं।

योगेन्द्र सिंह के अनुसार–''उच्च जाति के सामाजिक प्रभाव में कमी आई है तथा मध्य नगरीय स्तर पर यह प्रक्रिया अधिक महत्व की है।'[28]

## 11.11 व्यवसायिक विभाजन का अर्थ एवं परिभाषा

वर्तमान युग आधुनिक समाज का युग माना जाता है। वास्तव में आधुनिक समाज में व्यवसाय को वर्ग निर्धारण का एक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। समाज में जहां एक ओर व्यवसाय आर्थिक सुदृढीकरण को बढ़ावा देता है, वहीं व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का भी प्रतीक माना जाता है। वास्तव में समाज जैसे–जैसे आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर हो रहा है। वैसे–वैसे समाज में व्यवसायिक विभाजन भी तीव्रता से हो रहा है। व्यावसायिक विभाजन उन समाजों में अधिक देखने को मिलता है। जिन्होंने औद्योगीकरण की प्रक्रिया को आत्मसात् किया है। इस संदर्भ में शशि0 के0 जैन का मानना है कि व्यवसाय पर निर्धारित वर्ग संरचना की व्याख्या में एक मुख्य कठिनाई यह है कि उच्च वर्ग के अधिकांश लोगों को किसी व्यावसायिक श्रेणी में शामिल करना, पैतृकता से प्राप्त सम्पत्ति और प्रतिष्ठा को किसी व्यवसाय के साथ जोड़ा जाना तथा व्यवसाय के आधार पर किसी की आर्थिक, प्रतिष्ठा का अनुमान लगाना कठिन है। भारत में एक ही व्यवसाय में लगे लोगों की आर्थिक शक्ति में अन्तर होता है। एक क्लर्क अपनी उपर की आमदन से पर्याप्त धनी हो जाता है, जबकि उसी के साथ कार्य करने वाला दूसरा क्लर्क कठिनता से घर का खर्च चलाता है। एक ही स्तर की नौकरी करने वाले लोगों की पैतृक आर्थिक पृष्ठभूमि का अन्तर भी उनके उपयोग के स्तर में और तदनुसार उनकी सामाजिक स्थिति में अन्तर कर देता है।[29]

विरेन्द्र सिंह के अनुसार–''प्रत्येक जटिल समाज में श्रम विभाजन तथा पदों की उच्चता, न्यूनता देखने को मिलती है। समाज का नेतृत्व उन्हीं लोगों के हाथ में है जो उच्च पदों को सुशोभित करते हैं। ऐसे लोग जो उच्च पदों पर आसीन हैं। उनकी संख्या सीमित है। इसके विपरित निम्न पद वाले लोगों की संख्या अधिक, जिनमें वे लोग आते हैं। जो हाथ से काम करते हैं या शारीरिक श्रम के जीविकोपार्जन करते हैं। इन्हें श्रमिक भी कहा जाता है।

लिपसेट तथा बेनडिक्स ने लिखा है कि सामान्य शब्दों में एक व्यक्ति जो अपनी व्यावसायिक प्रस्थिति को बढ़ाता है। वह साधारणतया अपनी सामाजिक प्रस्थिति को भी बढ़ाने का प्रयास करता है। लेकिन अगर व्यावसायिक प्रस्थिति जारी है या कम हुई है, तो वह व्यक्ति अपने पहले जैसी सामाजिक स्थिति को बनाए रखने का प्रयास करता है। सामाजिक स्थिति का प्रत्यक्ष प्रभाव व्यावसायिक विकास पर पड़ सकता है। उसी प्रकार व्यवसायिक प्रस्थिति सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए जिम्मेदार हो सकती है।'

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यवसायिक विभाजन के आधार पर हो। व्यक्ति को पद और प्रतिष्ठा का मूल्यांकन होता है जो व्यक्ति की समाज में आर्थिक स्थिति का आंकलन भी करता है तथा व्यक्ति की समाज में विभिन्न वर्गों में भी विभाजित करता है। वास्तव में कोई भी व्यवसाय व्यक्तियों द्वारा पारिश्रमिक प्राप्त करने का मुख्य स्रोत है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्द्ध प्रतिष्ठा मात्र किसी व्यवसाय के कार्यात्मक महत्व, जो परिवर्तनशील तत्व है। या उस व्यवसाय की कमी या उससे उपलब्ध आय पर आश्रित नहीं है, बल्कि व्यवसायों में अपेक्षित कौशल, उनके लिए अपेक्षतः प्रशिक्षण एवं ज्ञान, उनमें व्यस्त लोगों के प्रतिष्ठा, उनका अभाव, उन व्यवसायों में संभाव्य वैयक्तिक स्वतंत्रता की मात्रा तथा अन्य अनेक अयुक्तिक तत्वों पर आधारित है। जो लोगों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यों के मूल्यांकन का प्रभावित करते हैं और जो मूल्यांकन विभिन्न समाजों में तथा एक ही समाज में विभिन्न कालों में भिन्न–भिन्न होता है।[30]

सरल शब्दों में यदि व्यवसायिक विभाजन के अर्थ को परिभाषित किया जाए, तो किसी भी समाज में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपनी योग्यता एवं कुशलता के आधार पर आर्थिक सुदृढ़ता के लिए किये गया कोई भी व्यवसाय, जो उसे समाज में अन्य लोगों से विभक्त करता है। व्यवसायिक विभाजन कहलाता है।

## 11.12 व्यवसायिक विभाजन के प्रकार

व्यवसायिक विभाजन दो प्रकार के होते हैं।

- क्षैतिज विभाजन–क्षैतिज विभाजन का तात्पर्य होता है कि व्यक्ति के व्यवसायगत स्थिति में किसी प्रकार का कोई भी परिवर्तन न होना।
- लम्बवत् विभाजन–लम्बवत् विभाजन में उन परिवर्तनों को सम्मिलित किया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की परम्परागत प्रस्थिति में परिवर्तन आ जाते हैं। जैसे कोई भी व्यक्ति योग्यता और कुशलता के आधार पर एक साधारण व्यक्ति से उच्च पदों को प्राप्त कर लेता है।

वास्तव में व्यवसायिक विभजान को व्यावसायिक गतिशीलता के आधार पर देखा जा सकता है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति व्यवसायिक गतिशीलता के आधार पर ही विभिन्न प्रकार के व्यवसायों की प्राप्त कर सकता है। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन स्तर में परिवर्तन लाने तथा उच्च जीवन शैली को अपनाने की इच्छा के कारण परम्परागत व्यवसाय को छोडकर उच्च व्यवसाय को अपनाना चाहते हैं इस सम्बन्ध में प्रो0 राधाकमल मुखर्जी का मानना है कि जातीय परिवर्तनों की गत्यात्मकता के आर्थिक और सामाजिक दोनों पक्ष हैं। आर्थिक पक्ष तथाा सम्बन्ध जातियों के व्यावसायिक विशिष्टीकरण में होने वाले सामाजिक गतिशीलता एक प्रक्रिया है। जिसके परिणामस्वरूप लोग समाज में एक स्थिति से दूसरी स्थिति को प्राप्त करते हैं।

लिपसेट ने दो प्रकार की व्यावसायिक गतिशीलता का उल्लेख किया है[31]

1. अंतर पीढ़ीगत गतिशीलता–इसके अंतर्गत उस गतिशीलता को सम्मिलित किया जाता है जैसे यदि कोई लड़का अपने पिता की भांति परम्परागत पेशा (शारीरिक श्रम सम्बन्धी) छोड़कर सफेदपोश में आ जाये।
2. आंतरिक पीढ़ीगत गतिशीलता–यह वह गतिशीलता है जो एक ही पेशे अथवा एक ही धरातल पर होती रहती है। सामाजिक गतिशीलता की इच्छा जाति समूहों के माध्यम से मुखर हुई जो क्षैतिज एकीकरण में वृद्धि के कारण संचार–साधनों में सुधार के साथ हुई। विस्तृत क्षेत्र में रहने वाली सम्बद्ध जातियां गतिशीलता की प्रक्रिया में खींच आई।

   व्यवसायिक विभाजन को व्यवसायिक स्तरीकरण के आधार पर यदि देखा जाए तो प्रसिद्ध समाजशास्त्री सोरोकिन ने व्यवसायिक स्तरीकरण के दो प्रकार बताये हैं।[32]

1–अन्तर्व्यावसायिक स्तरीकरण– सोरोकिन ने रास की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए अन्तर्व्यावसायिक स्तरीकरण के दो प्रमुख आधार बताये हैं–

- समग्र रूप में एक समूह के जीवन अस्तित्व के लिए एक व्यवसाय या पेशे का महत्व।
- एक पेशे की सफलतापूर्वक करने के लिए आवश्यक बुद्धि की मात्रा।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि सम्पूर्ण सामाजिक संगठन व नियंत्रण के दृष्टिकोण से जो पेशा महत्वपूर्ण है और जिसे करने के लिए अधिक मात्रा में बुद्धि की जरूरत होती है उस पेशे का और उसे करने वाले लोगों का स्थान अन्तर्व्यावसायिक स्तरीकरण में ऊँचा होता है। अधिकांश व्यावसायिक कार्यों का सम्बन्ध सामाजिक संगठन और नियंत्रण से होता है और उस दृष्टिकोण से उस कार्य का जितना महत्व होगा और उसे सफलतापूर्वक करने के लिए जितनी मात्रा में बुद्धि की आवश्यकता होगी उसी क्रम या अनुपात में उस कार्य को करे वाले समूह को विशेषाधिकार प्राप्त होंगे और अन्तर्व्यावसायिक संस्तरण में उस समूह की स्थिति उतनी ही उच्चतर होगी।

2– अन्तः व्यावसायिक स्तरीकरण–एक ही प्रकार के व्यवसाय में विभिन्न स्तरों का अर्थात् विभिन्न स्थिति वाले व्यक्तियों का होना। यह मानी हुई बात है कि एक ही प्रकार का पेश करने वाले सभी लोगों की स्थिति एक सी नहीं होती है। उनमें भी आपस में ऊँच–नीच का एक संस्तरण हो सकता है। सोरोकिन के अनुसार किसी भी व्यवसायिक समूह के सदस्यों को तीन स्तरों पर बांट सकते हैं–

- व्यवस्थापक, साहसिक या मालिक जो कि आर्थिक तौर पर स्वतं होते हैं और अपने व्यवसाय व कर्मचारियों के संगठन व नियंत्रण के मामले में स्वयं ही सर्वोच्च अधिकारी होते हैं।
- उच्चतर श्रेणी के कर्मचारी जैसे–निर्देशक मैनेजर बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के सदस्य आदि ये व्यवसाय के स्वयं मालिक नहीं होता। वे अपनी सेवाओं को बेचते हैं और वेतन प्राप्त करते हैं और व्यवसाय से सम्बंधित महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।
- वेतनभोगी साधारण कर्मचारी जो कि उच्चतर श्रेणी के कर्मचारियों से कहीं कम होता है और उन्हें अधीनस्थ रहकर काम करना पड़ता है। सोरोकिन के अनुसार इन प्रमुख स्तरों के अतिरिक्त विभिनन व्यावसायों में उनकी प्रकृति के अनुसार अनेक अन्तः व्यावसायिक स्तरीकरण हो सकते हैं। उदाहरणार्थ–डाक विभागीय कमचारी के रूपा में सर्वोच्च पद पर डायरेक्टर होता है। उसके बाद क्रमशः पोस्टमास्टर–जनरल, डाक अधीक्षक, पोस्ट मास्टर, डिप्टी पोस्टमास्टर, सहायक

पोस्टमास्टर, इंस्पेक्टर, सुपरवाइजर, व्यावसायिक स्तरीरण का एक उत्तम उदाहरण है। विशेष योग्यता, कुशलता, सेवा की अवधि आदि के आधार पर अन्तः व्यावसायिक स्थिति ऊँची उठ सकती है। अर्थात् पदोन्नति हो सकती है। उसी प्रकार अकुशलता या अपराध के आधार पर एक व्यक्ति वर्तमान पद से नीचे भी उतारा जा सकता है।''

विद्याभूषण एवं डी0आर0सचदेव[33] का मानना है कि सम्पत्ति ही इस बात का अधिकांशतः निर्णय करती है कि किसी व्यक्ति की शिक्षा क्या होगी और इस शिक्षा की बदौलत कौन से व्यवसाय उसके लिए खुले हैं। सामाजिक वर्ग एवं वयवसाय के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध हैं व्यवसाय भले ही प्रस्थिति का पूर्णता सही सूचक न हो। परन्तु फिर भी इससे सामाजिक वर्ग, इसके जीवन–यापन की विधि समाान्य सामाजिक स्थिति का पता चलता है।

विद्याभूषण तथा ढी.आर सचदेव ने इस सम्बंध में आगे लिखा है कि इसी प्रकार अकृषिकर क्षेत्रों में भी व्यवसाय सामाजक स्थिति का एक उपयोगी सामान्य सूचक है। तथाकथित सफेदपोश व्यवसायों की सामाजिक प्रस्थिति अन्य व्यवसायों की अपेक्षा अधिक है। चाहे उसके आय कम ही हो, कम वेतन पाने वाले अध्यापक का सामाजिक पद अधिक वेतन पाने वाले मिस्त्री से अकि हे। स्पष्टतया, आया सामाजिक स्थिति का निर्धारण नहीं करती। मंत्रियों, सचिवों आयुक्तों का सामाजिक पद धनी व्यापारियों के सामाजिक पद से अधिक ऊँचा है। चाहे पूर्वोत्तकों की आर्थिक स्थिति निम्न ही क्यों न हो। व्यवसाय सम्बन्धी सामाजिक पद का सर्वेक्षण संयुक्त राज्य में ''राष्ट्रीय मतशोध केन्द्र द्वारा 1947 में किया गया था।[34]

इसी प्रकार डेविस के अनुसार,– विभिन्न व्यवसायों के उपेक्षित स्तर–निर्धारण के दो प्रमुख तत्व हैं–

–किसी व्यवसाय का कार्यात्मक महत्व।

–मांग की अपेक्षा उस व्यवसाय के आदमियों की कमी[35]

हेनरी जॉनसन के अनुसार[36]

1–एक ही व्यवसाय में विभिन्न बुद्धि, वैभव, ज्ञान और कौशल के व्यक्ति होते है। इसलिए किसी व्यवसाय की प्रतिष्ठा की व्याख्या सामाजिक गुणों के आधार पर होनी चाहिए। न कि व्यवसाय के कार्यात्मक महत्व के संदर्भ में।

2– एक ही व्यवसाय में विभिन्न कार्य या नौकरिया होती हैं, जो मान अथवा प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं इस प्रकार किसी व्यवसाय के कार्यत्मक हत्व का अनुमान लगाते समय उस व्यवसाय की विभिन्न व्यावसायिक दशाओं को भी ध्यान में रखना चाहिए।

3– किसी व्यवसाय को करने वाले व्यक्तियों की उस व्यवसाय में सफलता की मात्रा भिन्न–भिन्न हो सकती है। इसलिए किसी व्यक्ति के लिए उसके व्यवसाय की प्रतिष्ठा का अंकन करते समय उसकी वयावसायिक कुशलता को ध्यान में रखना होगा।

4–अपेक्षित कार्यात्मक महत्व निरंकुश समाज की अपेक्षा छोटी सामाजिक प्रणाली में सामान्यतः अधिक सुगमता से आंका जा जा सकता है। कार्यात्मक महत्व में काफी विभिन्नताएं हो सकती है।

## 11.13 व्यवसायिक विभाजन के परिणाम

व्यवसायिक विभाजन के निम्न परिणाम हो सकते है–

1. वर्गों का विकास–व्यवसायिक विभाजन के परिणामस्वरूप नये–नये वर्गों का उदय होता है। जिसमें प्रत्येक वर्ग के अपने व्यवहार, मूल्य तथा व्यवसाय होत हैं। जो सम्पूर्ण समाज में एका विशिष्ट पद एवं प्रस्थिति का प्रदान करता है। जो प्रायः उच्च एवं निम्ना प्रस्थिति एवं पदों में विभाजित होते हैं।
2. संगठनों का विकास–व्यवसायिक विभाजन से अनेक नये–नये संगठनों का विकास होता है, जो व्यक्ति के सम्बन्धों एवं प्रस्थिति का भी निर्धारण करते हैं।
3. व्यवसायिक गतिशीलता में वृद्धि–व्यवसायिक विभाजना के फलस्वरूप व्यवसायिक गतिशीलता को भी बढ़ावा मिलता है।
4. धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन–व्यवसायिक विभाजन का एक प्रमुख परिणाम धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन को माना जाता है। ग्रामीण समाज से निकल कर व्यक्ति जब नगरीय समुदाय में प्रवेश करता है, तो वह अनेक धर्म एवं जाति के लोगों के सम्पर्क में आता है। जिसके परिणामस्वरूप बहुत सी धार्मिक मान्यताएं बदल जाती है। तथा व्यक्ति अंधविश्वास एवं पारम्परिक रूढ़िवादिता को त्याग कर तार्किकता को अपनाता है।
5. जाति प्रथा में परिवर्तन–व्यावसायिक विभाजन को धर्म निरपेक्षीकरण की भावना को विकसित करने में अपनी अहम् भूमिका का निर्वह्न किया है। व्यवसायिक विभाजन के कारण व्यक्ति के जातिगत कठोर बंधन धीरे–धीरे शिथिल हो रहे हैं जिससे व्यक्ति अपने कट्टर धार्मिक नियमों को परिवर्तित करके प्रत्येक जाति के साथ मिलजुल कर कार्य करना ज्यादा पसंद करते हैं।
6. जातिगत व्यवसाय में परिवर्तन–प्राचीन काल से प्रत्येक जाति को जातिगत व्यवसाय को सदैव से ही प्रमुख माना जाता था। किन्तु वर्तमान समय में व्यावसायिक विभाजन के कारण वयक्ति की योग्यता एवं कुशलता को विशेष महत्व दिया जाता है। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति अपनी रूचि एवं कार्य कुशलता के आधार पर अपने व्यवसाय का चुनाव करता है। अतः: व्यवसायिक विभाजन का एक प्रमुख परिणाम यह रहा कि व्यक्ति के प्राचीनतम जातिगत व्यवसाय में धीरे–धीरे परिवर्तन आने लगा है।

## 11.14 व्यावसायिक विभाजन का नगरीकरण व आधुनिकीकरण में योगदान

व्यावसायिक विभाजन का नगरीकरण व आधुनिकरण की प्रक्रिया में निम्नांकित योगदान को स्पष्ट किया जा सकता है।[37]

- ✓ आधुनिकीकरण को व्यक्त करने वाले परिवर्तन को जन्म देता है।
- ✓ व्यावसायिक गतिशीलता में वृद्धि को स्पष्ट करता है।
- ✓ अर्जित योग्यताओं के आधार पर व्यवसायगत परिस्थितियों को व्यक्त करता है।
- ✓ जीवन स्तर के नवीन आयामों का विकास।
- ✓ यातायात तथा संचार के नवीन साधनों का विकास।

- ✓ सामाजिक समानता तथा न्याय को बढ़ा। महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में परिवर्तन
- ✓ रहन–सहन के स्तर में परिवर्तन
- ✓ नवीन मूल्यों का विकास
- ✓ जातीय रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वास का ह्रास।

आधुनिकीकरण की प्रक्रियायें [38]

1. आर्थिक संरचनात्मक स्तर पर पुरानी पारिवारिक एवं सामुदायिक अंकरणीय अर्थव्यवस्था के स्थान पर यांत्रिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह जजमानी प्रथा जैसी परम्परागत व्यवस्था को तोड़ने के लिए भी उत्तरदायी है।
2. राजनैतिक संरचनात्मक स्तर पर शक्ति संरचना का उन्मूलन करके और उसके स्थान पर जनतांत्रिक शक्ति संरचना की स्थापना करके जो कि आवश्यक रूप से व्यक्तिपरक होती है।
3. सांस्कृतिक स्तर पर मूल्यों के क्षेत्र में परितर्वन पवित्र मूल्य व्यवस्था से धर्म निरपेक्ष मूल्य व्यवस्था में परिवर्तन के द्वारा लाया जा रहा है।
4. सामाजिक संरचनात्मक स्तर पर अर्जित प्रस्थिति भूमिका की अपेक्षा परंपरागत पदत्त भूमिका व प्रस्थिति में कमी आयी।

## 11.15 सारांश

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीयकरण एवं आधुनिकता के परिणाम स्वरूप नगरीय परिवर्तन परम्परागत परिवर्तन से पूर्णतया भिन्न विशेषताओं वाले होते जा रहे हैं जिसमें स्वार्थ को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है। जिससे परिवार की एकात्मकता धीरे–धीरे कमजोर होने लगी है। इसी प्रकार यदि नगरीय सामाजिक स्तरीकरण की बात करें, तो ऐसा माना जाता है कि प्रत्येक समाज किसी–न–किसी आधार पर ऊँची या नीची स्थितियों वाले विभिन्न समूहों में विभाजित रहता है। नगरीय समाज भी इससे अछूता नहीं है। नगरीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण प्रायः आयु, शिक्षा, लिंग, पारिवारिक पृष्ठभूमि, व्यवसाय, सम्पत्ति तथा वर्गों इत्यादि अनेक आधारों पर विभक्त रहता है। जो व्यक्ति की उच्च तथा निम्न प्रस्थिति को भी विभक्त करता है।

इसी प्रकार व्यवसायिक विभाजन के आधार पर प्रत्यके व्यक्ति अपनी योग्यता, रूचि एवं कार्यकुशलता के आधार पर अपने व्यवसाय का चुनाव करता है तथा उसी व्यवसाय के आधार पर अपना सम्पूर्ण जीवन यापन करता है। व्यवसायगत विभाजन व्यक्ति को समाज में प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से एक अलग पहचान तथा प्रस्थिति को स्पष्ट करता है जिससे व्यक्ति में सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा मिलता है तथा व्यक्ति का वर्गगत् विभाजन के साथ–साथ वैचारिक स्वतंत्रता की भावना को भी बढ़वा मिलता है।

## 11.16 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नगरीय परिवार की विशेषतायें लिखिये?
2. केन्द्रक परिवार किसे कहते हैं
3. सामाजिक स्तरीकरण के प्राणिशास्त्रीय आधार को स्पष्ट करिये।
4. अजातिगत वर्ग आधार किसे कहते हैं?

5. सोरोकिन ने सामाजिक स्तरीकरण के कौन से तीन प्रमुख स्वरूप बताये हैं?
6. नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के प्रमुख आधारों की विवेचना कीजिए?

## 11.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नगरीय परिवार की परिभाषा तथा विशेषताओं को स्पष्ट करिए?
2. नगरीय परिवार की आधुनिक प्रवृत्ति का प्रभाव तथा विघटन के कारणों को स्पष्ट करिए?
3. व्यवसायिक विभाजन के अर्थ तथा परिभाषा को स्पष्ट करिये
4. व्यवसायिक विभाजन का नगरीकरण तथा आधुनिकीकरण में योगदान को स्पष्ट करिये?
5. भारत में नगरीय सामाजिक स्तरीरण की व्याख्या कीजिए

## 11.18 संदर्भ ग्रंथ सूची


1. रंजना अग्रवाल, ''शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस'', ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र, 2014, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, पे0नं0 257
2. रंजना अग्रवाल, ''शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस'', ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र, 2014, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, पे0नं0 257–258
3. रंजना अग्रवाल, ''शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस'', ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र, 2014, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, पे0नं0258
4. रंजना अग्रवाल, शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस, (ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र), 2014, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, पे0नं0 261
5. रंजना अग्रवाल, शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस, (ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र), 2014, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, पे0नं0 261
6. रंजना अग्रवाल, शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस, (ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र), 2014, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, पे0नं0 261–262
6. वी0एन0सिंह, जनमेजय सिंह, 'नगरीय समाजशास्त्र, 2005, विवेक प्रकाशन, पे0सं0 42
7. रंजना अग्रवाल, शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस, (ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र), 2014, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, पे0नं0 264
8. Sutherland And Woodword, Introductory Of Sociology, P 608
9. Earnest R. Mowre:THE FAMILY 1932, 274–275
10. Earnest R. Mowre:THE FAMILY Chicago press, 1932, 274
11. राजेन्द्र कुमार शर्मा, नगरीय समाजशास्त्र, 2003, एटलांटिक पब्लिशर्स, दिल्ली, पृ0सं0 65–67
12. Folsom, J.K., The Family And The Democratic Society, P 188
13. राजेन्द्र कुमार शर्मा, नगरीय समाजशास्त्र, 2003, एटलांटिक पब्लिशर्स, पे0नं0 62
14. राजेन्द्र कुमार शर्मा, नगरीय समाजशास्त्र, 2003, एटलांटिक पब्लिशर्स, पे0नं065–67
15. P.Gisbert, fundamentals of sociology, p. 303
16. Sutherland and woodward:introductory sociology, p 156
17. kingsley devis:human society, p 369
18. R.m.williams:American society, p 91-92
19. Y.Singh:Social Stratification Change In India, P-1
20. शशि के जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र', रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0सं0 119
21. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 121–124

22. रवीन्द्र नाथ मुखर्जी, सामाजिक विचारधारा (कॉम्ट से मुकर्जी तक), 2009, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पृ0सं0 325–327
23. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर,पृ0सं0 124–129
24. रामनाथ शर्मा एवं राजेन्द्र कुमार शर्मा,'समाजशास्त्र के सिद्धान्त', 1995, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स', पृ0सं0–304–306
25. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर,पृ0सं0 135
26. jobber, pre industrial cities, p 110
27. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 136
28. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 136–137
29. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 133
30. विद्याभूषण, आर0 सचदेव, समाजशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल, पृ0सं0359
31. Lipest And Bendix, Mobility In Industrial Society Berpdy, University Of California Press, 1966
32. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, 'सामाजिक विचारधारा, 2009, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पृ0सं0 327––328
33. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, 'सामाजिक विचारधारा, 2009, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पृ0सं0 357
34. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, 'सामाजिक विचारधारा, 2009, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पृ0सं0 357
35. davis, human society, p 368
36. Johnson, Henry M.Society, P 487.490
37. विरेन्द्र,सिंह, पृ0सं0 254
38. उपरोक्त, पृ0सं0 254–255

इकाई– 12

# नगरीय जीवन, ग्रामीण नगरीय सततता (Urban Life, Rural Urban Continuum )

**इकाई की रुपरेखा**
**12.0 उद्देश्य**
**12.1 परिचय**
**12.2 नगरीय जीवन**
**12.3 ग्रामीण–शहरी सततता**
**12.4 निष्कर्ष**
**12.5 अभ्यास प्रश्न**
**12.6 सन्दर्भ ग्रन्थ**

## 12.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे कि–

- शहरी जीवन का तात्पर्य क्या है
- ग्रामीण–शहरी सततता का अर्थ क्या है

## 12.1 परिचय (Introduction)

शहरी जीवन क्या है?**नगरीय** जीवन के बारे में हम क्यों जानना चाहते हैं?**नगरीय** जीवन ग्रामीण जीवन से अलग कैसे है? सामाजिक संबंधों और सामाजिक संस्थानों पर **नगरीय** जीवन का क्या असर होता है? ऐसे कई प्रश्न हैं, जिनके उत्तर प्राप्त करने के लिये **नगरीय** जीवन की गहरी सैद्धांतिक समझ होना आवश्यक है। इस इकाई में हम विभिन्न विचारों के जरिये **नगरीय** जीवन को समझने का प्रयास करेंगे और यह भी जानेंगे कि ग्रामीण–शहरी सततता का अर्थ क्या है।

## 12.2 नगरीय जीवन (Urban Life)

शहरी माहौल और लोगों के संबंध को पारंपरिक रूप से अधिकतर नकारात्मक तौर पर देखा जाता है।**नगरीय** जीवन के संबंध में जनधारणा और सामाजिक सिद्धांत, जिनमें कई कलाकारों, लेखकों, फिल्मकारों, संगीतकारों आदि की व्याख्याएं भी शामिल होती हैं, अकसर नकारात्मक छवि प्रस्तुत करने की भूल करते हैं। वे अपने विचार पर दृढ़ दिखते हैं और **नगरीय** जीवन की कमियों–बुराइयों पर जोर देते हुये इन्हें **नगरीय** माहौल में निहित खामियों का कारण मानते हैं। यह ध्रुवीकरण **नगरीय** जीवन के संदर्भ में सामाजिक सिद्धांतों में भी स्पष्ट परिलक्षित होती है। समाज विज्ञानियों ने विचित्रता, कृत्रिमता, व्यक्तिदवाद और विभिन्नताओं को **नगरीय** माहौल के बुनियादी तत्वों के तौर पर माना है जो मानव व्यवहार और सामाजिक संगठन को प्रभावित करते हैं। इस दृष्टिकोण ने **नगरीय** सामाजिक भूगोल और समाजशास्त्र तथा अन्य संबंधित सिद्धांतों के अध्ययन पर गंभीर असर डाला है। दुर्खेम, वेबर, सिमेल और टॉनीस जैसे यूरोपियन सामाजिक दार्शनिकों का लेखन इसे बल देता है, जो 19वीं सदी की औद्योगिक क्रांति से संबद्ध शहरीकरण और शहरीवाद के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभावों को समझने का प्रयास

करते हैं। समाज के स्तर और नैतिक व्यवस्था का समन्वय इस समाजशास्त्रीय विश्लेषण का आधारबिंदु है। असल में तर्क निम्नानुसार चलता है। पूर्व औद्योगिक समाज छोटा था, जिसमें सजातीय आबादी रहा करती थी और सभी लोग एक–दूसरे को जानते–पहचानते थे। वे सभी समान कार्य करते थे और उनके लक्ष्य, अभिरुचियां भी समान थीं। इस सबके चलते वे सभी एकसमान विचार, सोच और व्यवहार करते थे और समान मूल्य और नियम का पालन करते थे।

दूसरी ओर, बड़े नगरों में (जैसाकि दुर्खेम भी बताते हैं) बेहद गतिशील सघन आबादी पायी जाती है जो आर्थिक विशिष्टताओं, परिवहन सुविधाओं के आविष्कार और संचार तकनीकी के परिणामस्वरूप आर्थिक और सामाजिक संगठन का नया स्वरूप बनाते हैं। इस शहरीकृत, औद्योगिक समाज में अधिक से अधिक लोगों से संपर्क तो होता है, लेकिन परिवारों और दोस्तों के साथ बनने वाले प्रगाढ़ प्राथमिक संबंध यहां सतत नहीं रह पाते। इसके अलावा सामाजिक विभिन्नताएं जीवनशैली में बदलाव का कारण बनती हैं, जिसका असर मूल्यों और आकांक्षाओं पर भी पड़ता है। यह सब सामाजिक सहमति और समन्वय को कमजोर करने का कारण बनते हैं और सामाजिक व्यवस्था के लिये चुनौती बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में सामाजिक संगठनों के प्रति तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाया जाता है, ताकि औपचारिक नियंत्रण का प्रसार किया जा सके और जहां यह नाकाम रहता है वहां सामाजिक विघटन तथा विपथगामी व्यवहार में बढ़ोतरी देखी जाती है (Knox and Pinch, 2010).

## सैद्धांतिक दृष्टिकोण (Theoretical perspective)

- **मुख्य कार्यात्मक धारणा Major assumptions Functionalism:** नगर समाज से जुड़े कई महत्वपूर्ण कार्यों का निष्पादन करते हैं, लेकिन इनके कई असामान्य पहलू भी सामने आते हैं। सिद्धांतकारों में **नगरीय** जीवन के लाभ और खामियों की विवेचना पर अंतर दिखता है। यह इस पर निर्भर करता है कि नगरों के भीतर सामुदायिक एवं सामाजिक संयोजन किस स्तर का है।
- **संघर्ष या टकराव का सिद्धांत Conflict theory:** नगरों का संचालन राजनीतिक और आर्थिक अभिजात्य वर्ग द्वारा किया जाता है जो संसाधनों का उपयोग अपने स्तर को और बढ़ाने में करते हैं। इसके लिये वे निर्धन और निर्बल, उपेक्षित वर्गों के संसाधनों पर भी अधिकार जमा लेते हैं। सामाजिक पृष्ठभूमि की विभिन्नताएं शहरों में मानकों और मूल्यों के संघर्ष को जन्म देती हैं।
- **प्रतीकात्मक परस्पर किया Symbolic interactionism:** नगरों में रहने वाले लोगों के **नगरीय** जीवन को लेकर अनुभव, विचार और अंतःक्रियाएं अलग–अलग होती हैं। नगर अस्त–व्यस्त स्थान नहीं हैं, बल्कि वे ऐसे स्थान हैं जहां मजबूत मूल्य और मानक भी अस्तित्वमान हैं।

## शहरी जीवन और समुदाय की प्रकृति (Nature of Urban Life and Community)

शहरी और ग्रामीण जीवन के असर का तुलनात्मक समाजशास्त्रीय लेखन सर्वप्रथम जर्मन समाजशास्त्री फर्डिनेंड टोनिस (1855–1936) ने किया था। टोनिस ने पारंपरिक सामाजिक संबंधों, परिवार, परिजन, मित्र आदि के परस्पर प्रगाढ़ संबंध, नैतिक एकजुटता और धार्मिक संबंधों के महत्व को समझाने के लिये गेमाइनशाफ्ट (Gemeinschaft) शब्द का प्रयोग किया, जिसका अर्थ समुदाय होता है। इसी तरह उन्होंने गेसेलशाफ्ट (Gesellschaft) शब्द का इस्तेमाल किया, जिसका अर्थ है सहयोग या सहचर्य। इसके तहत उन्होंने सामाजिक संबंधों के व्यक्तिवादी स्वरूप, सामुदायिकता के अभाव, दूसरों से अलग रहने की इच्छा और अवैयक्तित्व को स्पष्ट किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि गांवों में समुदाय आधारित

संबंध पाये जाते हैं, जबकि बड़े नगरों में ये पारंपरिक संबंध छिन्न–भिन्न हो चुके हैं। टोनिस ने इसे समस्यात्मक रुझान माना है।

एक अन्य जर्मन विद्वान जॉर्ज सिमेल (1858-1918) का लेखन भी टोनिस के समकालीन था। सिमेल समूहों के आकार के सामाजिक प्रभावों के अध्ययन में रुचि रखते थे। सिमेल ने भी नगरों का अध्ययन किया और पाया कि वहां लोग बहुत बड़ी संख्या में परस्पर संवाद कायम करते हैं। उनके अनुसार नगरों के रहने वाले लोग नगरीय जीवन के अनुरूप तौर–तरीके विकसित करते हैं। वे संवेदनशीलता की भावना को चंद लोगों तक सीमित कर लेते हैं और परिस्थितियों के अनुरूप संवेदनाओं के बजाय बौद्धिक व्यवहार करते हैं। चूंकि, नगरों में रहने वाले लोग हर उस व्यक्ति के साथ संपर्क नहीं बना सकते, जिससे वे मिलते हैं। इसके लिये वे अवैयक्तित्व व्यवहार करने लगते हैं, जिसे सिमेल ने विरक्तिपूर्ण बर्ताव (Blais Attitude) कहा है। इस व्यवहार के तहत शहरों में रहने वाले लोग किसी काम को करने से पहले विकल्पों और निर्णयों पर विचार करते हुये परिणामों का अनुमान निकालते हैं। उदाहरण के लिये, वे किसी राहगीर को उसका पूछा पता बताने में अच्छी तरह से मदद कर सकते हैं, लेकिन किसी भिक्षु को मदद करने से सीधे इनकार करते हैं। चयन का यह तरीका स्वार्थी प्रतीत होता है, लेकिन यह उन लोगों को **नगरीय** जीवन की अनेकानेक मांगों से निपटने में सहायता करता है। साथ ही इसके जरिये उन्हें वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी मिलती है, जो पारंपरिक समुदायों में दबी हुयी थी।

सिमेल ने **नगरीय** अनुभवों पर ध्यान केन्द्रित किया, जिसके लिये उन्होंने शहरीकरण (यानी **नगरीय** क्षेत्रों के विकास) के बजाय शहरीवाद (शहरी क्षेत्रों में जीवन) पर अपनी राय दी। "The Metropolis and Mental Life" निबंध में **नगरीय** जीवन के प्रति उनके विचारों की झलक मिलती है, जिसमें उन्होंने सामाजिक मनोविज्ञान पर और गहराई से काम किया है। नगरों का एक विशिष्ट लक्षण यह है कि वहां रहने वाले लोगों को बेहद तीव्र तंत्रिका उत्तेजनाओं से गुजरना पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन की गति, ग्रहणशीलता और कल्पनाशीलता धीमी होती है, जबकि **नगरीय** क्षेत्रों में आवाजों, गंधों, दृश्यों में लगातार ताबड़तोड़ बदलाव होता है। सिमेल बताते हैं कि नगरों में रहने वाला व्यक्ति भेदभाव करना सीख जाता है, वह तर्कसंगत और जोड़–तोड़ करने लगता है और उसमें विरक्तिपूर्ण व्यवहार जन्म लेता है। सामाजिक रूप से अलग–थलग रहने वाला यह व्यक्ति दिल के बजाय दिमाग से काम लेता है, वह न तो सामाजिक गतिविधियों में पूरी तरह शामिल होता है, न ही उनकी चिंता करता है। **नगरीय** लोग श्रम विभाजन की आर्थिकी के अभ्यस्त हो जाते हैं और धन के उपयोग के तरीके सीख लेते हैं। नगरों में स्वतंत्रता तो होती है, लेकिन दैनिक दिनचर्या की संकीर्णता की बहुत अधिकता पायी जाती है, व्यक्तिगत और आध्यात्मिक विकास के नये आयाम भी मिलते हैं, लेकिन अलगाव की भावना इन सब पर भारी पड़ सकती है।

टोनिस और सिमेल के ही समकालीन फ्रेंच समाजविज्ञानी एमाइल दुर्खेम (1858–1917) ने ग्रामीण और **नगरीय** संबंधों को महत्व दिया। दुर्खेम की रुचि एकजुटता में थी, यानी वह बंधन तत्व जो लोगों के बीच पाया जाता है और उन्हें जोड़े रखता है। उन्होंने महसूस किया कि पारंपरिक समुदायों में सामाजिक बंधनों में यांत्रिक एकजुटता (Mechanical Solidarity) पायी जाती है। टोनिस के गेमाइनशाफ्ट की ही तरह यांत्रिक एकजुटता भी समानता, साझा मूल्य एवं विश्वास और श्रम के छोटे विभाजन पर निर्भर करती है। यहां व्यक्तिगत अंतर न्यूनतम होते हैं। दुर्खेम ने जैविक एकजुटता (Organic Solidarity) का विचार दिया, जिसमें सामाजिक बंधन विभिन्नताओं और अंतरों पर आधारित होते हैं।

औद्योगिक समाजों में श्रम विभाजन और इनसे उपजने वाले नये सामाजिक बंधनों के जरिये यह एकजुटता उभरती है। अपने समकालीनों से इतर बदलते सामाजिक बंधनों के प्रति आशावादी रवैया अपनाते हुये दुर्खेम ने तर्क दिया कि नगरों में व्यक्ति समान चिंताओं के बंधन से कम जुड़ते हैं, लेकिन विशेष भूमिका को निभाते हुये उनमें महत्वपूर्ण, सकारात्मक, अंतर्निर्भरता विकसित होती है।

## शहरीवादः जीवन का एक तरीका (Urbanism as a Way of Life)

शहरी समाजशास्त्र से संबंधित और प्रभावी दृष्टिकोण कुछ वर्ष बाद शिकागो में विकसित हुआ, जिसे Wirthian theory of urbanism, as a way of life कहा जाता है। लुईस वर्थ के विचारों में मानवीय पारिस्थितिकी निहित थी, लेकिन निश्चित सिद्धांतों की वह शृंखला उपलब्ध है, जो व्यक्ति और समूह के व्यवहार के लिये भी प्रासंगिक हैं। वर्थ ने**नगरीय** जीवन के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिणामों (यानी शहरीवाद) को स्पष्ट किया। उन्होंने तीन कारकों को शहरीकरण में बढ़ोतरी की वजह मानाः

- जनसंख्या का बढ़ता आकार
- जनसंख्या का बढ़ता घनत्व
- जनसंख्या में विभिन्नताएं और विजातीयता का बढ़ावा

शहरीवाद जीवन जीने का एक तरीका है। यह समाज के ऐसे संगठन को प्रदर्शित करता है, जिसके सदस्यों में आर्थिक कार्यों को पूर्ण करने के लिये श्रम, तकनीक के उच्च स्तर, उच्च गतिशीलता, अंतर्निर्भरता पायी जाती है और जो सामाजिक संबंधों के लिहाज से अवैयक्तिक है। लुईस वर्थ ने शहरीवाद के चार लक्षण बताये हैंः

- **भंगुरता (Transiency)**: किसीइ **नगरीय** व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संबंध बेहद अल्पकालिक होता है। वह अपनी पुरानी जान–पहचान को भूलकर नये लोगों के साथ नये संपर्क–संबंध स्थापित करने में लगा रहता है। चूंकि वह अपने पड़ोसियों, सामाजिक सदस्यों से बहुत अधिक संबद्ध नहीं होता, लिहाजा वह उन्हें छोड़कर जाने में किसी तरह की परेशानी महसूस नहीं करता है।
- **सतहीपन (Superficiality)**:नगरीय व्यक्ति का दूसरे लोगों से संवाद और संपर्क बेहद सीमित संख्या में होता है। इन लोगों से भी उसके संबंध अवैयक्तिक और औपचारिक होते हैं। लोग एक–दूसरे से विशिष्ट भूमिकाओं के तौर पर मिलते हैं। वह तभी अधिक लोगों से संपर्क बनाने का प्रयास करते हैं, जब जीवन की आवश्यकताओं के लिये यह जरूरी हो।
- **गुमनामी (Anonymity)**:नगरीय लोग एक–दूसरे को कभी गहराई से नहीं जानते हैं। पड़ोसियों के बीच जो सामान्य परिचय और प्रगाढ़ता पायी जाती है, वह **नगरीय** लोगों के बीच नजर नहीं आती है।
- **व्यक्तिवाद (Individualism)**:नगरीय लोग अपने स्वयं के निहित स्वार्थों को अधिक महत्व देते हैं।

वर्थियन सिद्धांत के अनुसार शहरों में सामाजिक जीवन (शहरीवाद) के कुछ प्रमुख लक्षणों में अपराध की बढी दर, बीमारियां, सामाजिक विघटन हैं, जो बेहद बड़े आकार और विजातीय–विविध **नगरीय** जीवन का परिणाम है। समुदायों में मौजूद सामाजिक नेटवर्क पर विचार करते हुये बैरी वेलमैन (1999) बताते हैं कि हमें एसा विशिष्ट सामुदायिक संबंध हासिल है, जो हमें विभिन्न संसाधनों तक पहुंच देता है। हम चाहें तो उसी स्थान पर रह सकते हैं, जहां हमें रोजगार मिलता है या फिर किसी ऐसे स्थान पर रह

सकते हैं, जहां से हमें कार्यस्थल तक परिवहन सुविधा मिल रही हो। या फिर हम ऐसा स्थान चुन सकते हैं, जहां से हमारे बच्चों के लिये स्कूल और शिक्षा की सुविधाएं नजदीक हों। ये सभी संसाधन हमारे सामाजिक नेटवर्क में उपलब्ध होते हैं। वेलमैन के अनुसार हमें बिखरा हुआ नेटवर्क उपलब्ध है, जो निरंतर बदलता रहता है। शहरीकरण के इस दौर में हमारे अधिकतर नेटवर्क छिन्न–भिन्न हो चुके हैं। लोग अपने पड़ोसियों में भी बेहद कम को जानते हैं और अपने प्रतिवेश के बाहर लोगों से संबंध बनाये रखते हैं। हालांकि, लोग अब भी सहयोगी–समन्वयकारी नेटवर्क बनाने की कोशिश करते हैं, चाहे वे एक–दूसरे से दूर ही क्यों न रह रहे हों। दोस्तों को अपने घर पर बुलाना, क्लब मीटिंग में शामिल होना इसके उदाहरण हैं। इसके अलावा लोग नियमित रूप से खरीदारी, मनोरंजन गतिविधियों से दूसरे प्रतिवेशों में जाते हैं।

## शहरी माहौल में सामाजिक संवाद (Social Interaction in Urban Environments)

शहरी जीवन को समझने के लिये **नगरीय** प्रतिवेश को समझना आवश्यक है। यह व्यक्तियों के बीच प्राथमिक और द्वितीयक संबंधों को निर्धारित करता है। यह पाया गया है कि व्यक्तिगत गतिशीलता आधुनिक नगरीय नियोजन और सामाजिक मूल्यों का परिणाम है। उदाहरण के लिये कॉलिन वार्ड बताते हैं कि आधुनिक आवासीय इस्टेट ने सामुदायिक भावनाओं को नष्ट कर दिया है और सामाजिक व्यवस्था के बजाय अभिभावकीय अधिकार को विकसित किया है, जिसमें माता–पिता बच्चों की बाहरी गतिविधियों को नियंत्रित, प्रतिबंधित करते हैं। इसके चलते व्यक्ति के जीवन में पहले की तरह स्थानीयता के आधार पर होने वाली दोस्ती का विकास बंद हो गया है। (Ward, 1978). इसी तरह सुसैन केलर बताती हैं कि अमेरिका में आर्थिक संगठनों और सामाजिक मूल्यों में बदलाव के चलते संगठित और स्वाभाविक प्रतिवेश यानी पड़ोसियों से संबंध में लगातार गिरावट आयी है। वह इसके चार प्रमुख कारक बताती हैंः

- मास मीडिया, यात्रा, स्वयंसेवी संगठनों समेत सूचनाओं और विचाारों के अत्यधिक स्रोत तथा स्थानीय क्षेत्र के बाहर रोजगार
- स्थानीय सीमाओं के बाहर बेहतर परिवहन सुविधाएं
- लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं में विभिन्नताओं की बढ़ोतरी और यह अंतर पड़ोसियों से संवाद को कम करने की ओर झुकाव बढ़ाता है
- बेहतर सामाजिक सेवाएं और आर्थिक सुरक्षा

इन तर्कों के बीच हमें यह भी देखना होगा कि आवासीय प्रतिवेश आज भी सामाजिक जीवन को बढ़ावा देने का माध्यम है, विशेषतः अगतिशील समूहों (निर्धन, बुजुर्ग, महिलाएं, छोटे बच्चे आदि)। यहां तक कि अधिक गतिशील वर्ग भी स्थानीय संवाद और संबंधों को लेकर संवेदनशील हो सकते हैं। अधिकतर लोग परस्पर सुरक्षा और ऐसे ही अन्य बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये पड़ोसियों से संपर्क और संबंध रखते हैं।

## शहरी निवासियों के प्रकार (Types of Urban Residents)

प्रतीकात्मक संवाद की परंपरा **नगरीय** निवासियों की विभिन्न जीवनशैलियों को समझने की कोशिश करती है। समाजशास्त्री हरबर्ट गैन्स (1982) ने एक **नगरीय** निवासियों का वर्गीकरण किया, जिसमें उनकी अलग–अलग जीवनशैलियों और अनुभवों को आधार बनाया गया। गैन्स ने पांच प्रकार बताये हैं। पहला है, सार्वलौकिक या बहुलसांस्कृतिक। ये वे लोग हैं जो किसी नगर के सांस्कृतिक आकर्षण, रेस्टोरेंट और अन्य बेहतरीन सुविधाओं के चलते यहां रहते हैं। इनमें छात्र, लेखक, संगीतकार और अन्य

बुद्धिजीवी शामिल हैं। अविवाहित और संतानविहीन दंपतियां अगला प्रकार है जो अपने कार्यस्थल के नजदीक होने के कारण नगरों में रहते हैं और नगरों में उपलब्ध मनोरंजनात्मक सुविधाओं का लाभ लेते हैं। शादी करने या संतानोत्पत्ति के बाद वे परिवार के साथ उपनगरीय इलाकों की ओर चले जाते हैं। तीसरा प्रकार है पारंपरिक ग्रामीणों का, जो विभिन्न पारंपरिक समूहों में निश्चित पड़ोसियों के साथ रहते आये हैं और हाल में पलायन कर नगरों में पहुंचे हैं। गैन्स के अनुसार इन तीनों प्रकार के लोगों को नगरों में अवसर नजर आते हैं और अलगाव के भाव से इतर नगरों को लेकर उनके अनुभव सकारात्मक रहते हैं।

लेकिन, दो अंतिम प्रकार के निवासी वे हैं जो नगरों में अलगाव की भावना महसूस करते हैं और बेहद निम्न गुणवत्ता का जीवन जीते हैं। इनमें पहला है वंचित समूह। ये वो लोग हैं जो औपचारिक शिक्षा के निम्न स्तर तक पहुंच पाते हैं, निर्धनता में या लगभग निर्धनता में रहते हैं और बेरोजगारी से जूझ रहे होते हैं या बेहद निम्नतम श्रममूल्य पर काम करते हैं। वे जिन क्षेत्रों में रहते हैं, वे अव्यवस्थित होते हैं या वहां कचरे के ढेर होते हैं। ऐसे लोग अपराधों में संलिप्त होते हैं और अपराधों से पीड़ित होने की सर्वाधिक दर भी इन लोगों में ही पायी जाती है। अंतिम प्रकार है फंसे हुये लोग। जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है कि ये ऐसे लोग हैं, जो अपने प्रतिवेश को छोड़कर जाना चाहते हैं, लेकिन विभिन्न कारणों से ऐसा करने में सक्षम नहीं हो पाते। ये शराबी या नशे के आदी हो सकते हैं या फिर बुजुर्ग अथवा दिव्यांग, बेरोजगार होने के कारण वे बेहतर क्षेत्र में जा नहीं सकते।

इस वर्गीकरण पर विचार के दौरान यह ध्यान में रखना जरूरी है कि **नगरीय** निवासियों की सामाजिक पृष्ठभूमि (सामाजिक वर्ग, जाति, परंपरा, लिंग, आयु आदि) उन्हें किसी जीवनशैली और निवास के प्रकार को अपनाने के लिये बाध्य करती है। हमारी सामाजिक पृष्ठभूमि कई तरह की सामाजिक असमानताओं को जन्म देती है और हमारे जीवन की गुणवत्ता व स्तर अकसर इन्हीं आयामों के इर्द–गिर्द घूमता है। उदाहरण के लिये, श्वेत और समृद्ध लोग, जिनके पास धन की अधिकता है, वे नगरों में उपलब्ध श्रेष्ठ संसाधनों का आनंद लेते हैं, जबकि अश्वेत और निर्धन लोगों को नगरीय जीवन का निम्नतम अनुभव झेलना होता है। इसी तरह दुष्कर्म और यौन शोषण जैसे अपराधों के डर से महिलाएं पुरुषों के मुकाबले रात को निकलने से बचती हैं। बुजुर्ग लोग शारीरिक बाधाओं के चलते डकैती को लेकर आशंकित रहते हैं। वहीं, समलैंगिक लोगों को सामाजिक बहिष्कार और कई बार हिंसा का भी शिकार बनना पड़ता है। इस प्रकार यह हमारे सामाजिक–जनसांख्यिकीय विशेषताओं पर निर्भर करता है कि नगरों और नगरीय जीवन को लेकर हमारे अनुभव सकारात्मक होंगे अथवा नकारात्मक।

## 12.3 ग्रामीण–शहरी सततता (Rural-Urban Continuum)

ग्रामीण–शहरी सततता की अवधारणा अमेरिकी मानवविज्ञानी रॉबर्ट रेडफील्ड द्वारा मेक्सिको के नगर टेपोज्लेन के अध्ययन पर आधारित है। अपने अध्ययन में उन्होंने पारंपरिक लोकसमाज और **नगरीय** समाज को स्पष्ट किया। उनका विचार है कि ऐसा कोई स्पष्ट बिन्दु नहीं है जो ग्रामीण और **नगरीय** अंतरों को पूरी तरह स्पष्ट कर सके। वह बताते हैं कि शहरीकरण की बेहद तेज रफ्तार, **नगरीय** सुविधाओं और विशेषताओं ने नगरों और गांवों के अंतर को कम किया है। कुछ समाजशास्त्री शहरी–ग्रामीण को द्विभाजन (dichotomous) के तौर पर देखते हैं। वे विभिन्न स्तरों, जैसे– व्यवसाय, पर्यावरण, समुदायों के आकार, जनसंख्या घनत्व, सामाजिक गतिशीलता के आधार पर विभिन्न स्तरों पर दोनों का अंतर स्पष्ट करते हैं और इस तरह ग्रामीण–शहरी सततता को ऐसे गतिशीलता के संतुलन के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है, जहां विकास की प्रक्रिया में ग्रामीण और **नगरीय** दोनों तरह की

आबादी को शामिल किया जाता है। अर्थव्यवस्था के विकास का प्रसार लोगों के हर वर्ग तक होने से बदलाव औद्योगिक **नगरीय** केन्द्रों से गांवों की ओर होने लगता है, जो शहरी–ग्रामीण सततता का परिचायक बनता है। **नगरीय** और ग्रामीण समुदायों के संबंध में तीसरा विचार पोकॉक का है, जो मानते हैं कि गांव और शहर दोनों ही समान सभ्यता का हिस्सा हैं ऐसे में न तो शहरी–ग्रामीण विभाजन और न ही शहरी–ग्रामीण सततता अर्थपूर्ण हैं। एमएसए राव भारतीय संदर्भ में स्पष्ट करते हैं कि पूर्व ब्रिटिशकाल में भले ही गांवों से कस्बों का विकास होता गया, जिनमें परिवार, जाति व्यवस्था भी मौजूद थी, लेकिन इन कस्बों में भी सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियां उसी तरह संचालित होती थीं, जैसेकि गांवों में। इस प्रकार राव मानते हैं कि शहरी–ग्रामीण सततता अर्थपूर्ण है।

## ग्रामीण–शहरी सततता का अर्थ (Meaning of Rural-Urban Continuum)

परंपरागत रूप से ग्रामीण–शहरी सततता ग्रामीण और **नगरीय** व्यवस्थाओं के सामाजिक संबंधों की परस्पर विरोधी प्रकृतियों का रैखिक चित्रण करती है। यह समुदायों के विभिन्न प्रकारों को वर्गीकृत करने और उनके परिवर्तन को समझने की अवधारणा है। 20वीं सदी के प्रारंभ से समाजशास्त्र ने शहरीकरण की तेज रफ्तार के परिणामस्वरूप होने वाले सामाजिक परिवर्तनों को समझने का प्रयास किया। ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन छोटे, भौगोलिक रूप से अलग–थलग क्षेत्र में मिलता है, जहां सामाजिक सजातीयता, परस्पर संचार का उच्चस्तर और सामाजिक एकजुटता पायी जाती है और जो बहुत धीमी गति से बदलते हैं। यह कहना बेहद कठिन है कि गांव की सीमा कहां समाप्त होती है या कहां से शुरू होती है। मैक्लेवर के अनुसार भले ही समुदाय अब भी सामान्यतः ग्रामीण और **नगरीय** में विभाजित हों, लेकिन उनके बीच की विभाजन रेखा हमेशा स्पष्ट नहीं होती है। ऐसा कोई पैमाना, मानक या रेखा नहीं है जो बता सके कि कहां शहर खत्म हो गया और कहां से गांव प्रारंभ हुआ। हर गांव में शहर के कुछ तत्व मौजूद रहते है, इसी तरह हर शहर अपने भीतर गांवों के कुछ गुणों को लेकर चलता है।

## सततता एवं अमीरी से गरीबी की ओर धनप्रवाह (Rural-Urban Continuum and 'Trickle Down' Effect)

रामचंद्रन के अनुसार आबादी और बसावत का बुनियादी सामान्यीकरण यह है कि किसी देश या क्षेत्र में आबादी के आकार और संख्या में विपरीत संबंध होता है। सामाजिक ढांचे के शब्दों में कहें तो छोटी और बड़ी आबादी या बसावत के बीच कोई विशेष अंतर नहीं होता है। भारत में आज भी गांव और शहर भी, धार्मिक, पारंपरिक, भाषायी, जाति–वर्ण आदि के आधार पर पहचाने जाते हैं। परिवारों के आकार और उनके प्रकार (एकल, संयुक्त आदि) भी शहरों में गांवों के समान ही होते हैं। किसी परिवार में बच्चों की संख्या या परिवार का आकार नगरों या गांवों में अलग नहीं होता है। पाइपों के जरिये पेयजल वितरण, सीवेज, कचरा निस्तारण आज भी भारत के कई शहरों में बड़ी आबादी को उपलब्ध नहीं हैं और इसके चलते वे शहरों में रहकर भी गांवों के लोगों से बदतर जीवन जीते हैं। झोपड़ियां और बस्तियां आज भी भारतीय शहरों का उसी तरह हिस्सा हैं, जैसे वे गांवों का थीं। शहरों का बड़ा हिस्सा इन झुग्गी–झोपड़ियों वाली बस्तियों से घिरा हुआ रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या उतनी ही है, जितनी शहरों में। इतना ही नहीं, शहरों में बस्तियों के आकार और संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। इस प्रकार इस दृष्टिकोण के अनुसार आबादी को दो श्रेणियों में बांटकर देखना एकपक्षीय है, क्योंकि दोनों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन है ही नहीं। लेकिन, यह जरूर दावा किया जा सकता है कि स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं होने के बावजूद आबादी और बसावत सततता से जुड़ जाते हैं।

विकसित पश्चिमी देशों में शहरी–ग्रामीण विषमताएं समाप्त हो चुकी हैं। 80 प्रतिशत से अधिक आबादी शहरों में रहती है, जबकि 20 फीसदी आबादी फार्महाउसों और बस्तियों में रहती है। यहां यह दिलचस्प है कि गांवों में रह रही आबादी में से अधिकतर कृषि कार्य नहीं करते हैं। कुल श्रमबल का महज पांच फीसदी ही कृषि करता है। इतना ही नहीं, अलग–थलग फार्महाउस होने के बावजूद उनके पास सभी आधुनिक सुविधाएं, जैसे पाइपलाइनों से पेयजल वितरण, टेलीफोन, बिजली आदि उपलब्ध हैं। (Ramachandran, R. 2013. Urbanization and Urban Systems in India. New Delhi: Oxford University Press) परिवहन सुविधाएं इन लोगों को शहरों तक आसानी से पहुंचा देती हैं। वहीं, भारत में इन सब सुविधाओं का अभाव ग्रामीण और **नगरीय** दोनों क्षेत्रों में अब भी बना हुआ है।

उपरोक्त तर्कों और साक्ष्यों के बावजूद शहरी–ग्रामीण सततता का समर्थन करना पारंपरिक रूप से नगरों को गांवों से अलग मानने की तरह है। ऐतिहासिक पहलू पर नजर डालें तो नगरों का विकास करीब पांच हजार साल पूर्व मानव जीवन में आये बदलावों के बाद शुरू हुआ। उस दौर में अधिकतर आबादी कृषि कार्यों में लिप्त थी और बेहद छोटे, सीमित आकार वाली बसावतों में रहा करती थी। दूसरी ओर, नगरों में बेहद कम संख्या में लोग रहा करते थे। ये लोग खेती के बजाय शिल्प, उद्योग, शिक्षण, उपचार, सैनिक, प्रशासनिक, धार्मिक कार्यों से जुड़े होते थे या फिर शासक होते थे। उस वक्त **नगरीय** केन्द्रों की विशेषताएं ग्रामीण क्षेत्रों से अलग हुआ करती थीं। नगरों में बड़े–बड़े भवन, स्मारक, व्यस्त बाजार और कई तरह के संस्थान हुआ करते थे। नगरों में विजातीय लोगों की बहुतायत होती थी, जो विभिन्न गांवों, देशों या क्षेत्रों से वहां बसते थे। गांवों में इस तरह की कोई विजातीयता नहीं पायी जाती थी। गांवों में लोग एक दूसरे को भली–भांति जानते थे, जबकि नगरों में लोग शायद ही अपने पड़ोसी को भी जानते हों। नगरों में लोगों के संबंधों का नियमन नये तरह के मूल्यों–मानकों से होने लगा। **नगरीय** मूल्य व्यवस्था में धर्मनिरपेक्ष और उदारवादी व्यवहार पर जोर दिया गया। इसके अलावा शहरों में भौतिकवादी लक्ष्यों व धन कमाने की इच्छा मुख्य भाव होती थी। परिवहन सुविधाओं, रेलवे ने नगरों को गांवों से और अधिक अलग बनाने में मदद की। विशेष रूप से शहर आकार में विस्तृत हुये और आबादी बढ़ती गयी। लाखों लोग कुछ वर्ग किलोमीटर के ही दायरे में रहने लगे।

## रर्बनाइजेशन (Rurbanization)

'रर्बनाइजेशन' भी वह प्रक्रिया है जो शहरी–ग्रामीण सततता में योगदान करती है। गैल्पिन पहले विद्वान थे, जिन्होंने इस शब्द का इस्तेमाल किया। उनके अनुसार ग्राम्य और **नगरीय** लोगों का संबंध यह है कि गांवों में शहरीकरण और शहरों में ग्राम्यीकरण हो। इस तरह रर्बनाइजेशन ग्रामीण रूपांतरण की प्रक्रिया है। यद्यपि **नगरीय** नियोजकों ने अब तक इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है, लेकिन विकासशील देशों में यह प्रमुख विकास प्रक्रिया है। ऐसे कई कारक और घटनाक्रम हैं जो शहरी–ग्रामीण सततता को रर्बनाइजेशन के तहत बढ़ावा देते हैं, जैसे–**नगरीय** प्रसार, उपनगरीकरण आदि। कई विकसित देशों में **नगरीय** विस्तार आसपास के सारे ग्रामीण क्षेत्रों को समाहित करने के साथ ग्रामीण जीवन के रूपांतरण का कारण बनता है। गतिशील नगरों के परिधीय इलाकों में भी इसका असर देखा जा सकता है। इसे नवग्रामीणता या रर्बनाइजेशन नाम दिया गया है जो पूर्ववर्ती विकास के केन्द्रीय मॉडल से अलग है और नये वैश्विक व्यवस्था को वर्णित करती है। कई आर्थिक गतिविधियों के लिये भी ग्रामीण क्षेत्र विशेष बने हैं, जैसे– पर्यटन, पार्क और अन्य विकास क्षेत्र, ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक नेटवर्क की स्थापना आदि। ये सभी बिन्दु ग्रामीण क्षेत्रों को लेकर नये दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते हैं। उपनगरों में भी शहरों की सभी

विशेषताएं मिलती हैं। किसी बड़े नगर के बाहर बसे कस्बों को उपनगर कहा जाता है, जैसे मुंबई के पास अंधेरी और दिल्ली के पास फरीदाबाद। अब लोगों को भी यह बताने में अच्छा लगता है कि वे उपनगरीय इलाकों में रहते हैं। इस तरह किसी उपनगरीय इलाके में नगरीय और ग्रामीण प्रभाव एक–दूसरे पर असर डालते हैं और शहरी–ग्रामीण सततता को बढ़ावा देते हैं।

### ग्रामीण–शहरी सततता में आवासीय ढांचा (Housing Patterns in City cum Rural-Urban Continuum)

नगरों में लोग कहां और कैसे रहेंगे, यह सवाल भी सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान के आधार पर देखा जाता है। दुनियाभर के नगरों में अधिकतर आवासीय क्षेत्र अकसर वर्ग, जाति, परंपरा, धर्म और इसी तरह के अन्य मानकों के आधार पर तय किये जाते हैं। विभिन्न पहचानों के बीच का तनाव इस तरह के विभाजक ढांचे की वजह बनता है। उदाहरण के लिये भारत में दो धार्मिक समुदायों के बीच का सांप्रदायिक तनाव मिश्रित प्रतिवेश के पूरी तरह किसी एक समुदाय में बदलने की वजह बनता है। यह फिर से सांप्रदायिक हिंसा को बढ़ावा देता है जो दोबारा पृथक्कीकरण का कारण बनता है। चहारदीवारी के समुदाय दुनियाभर की तरह भारत में भी पाये जाते हैं। यह साफ करता है कि आसपास का प्रतिवेश इन लोगों की चहारदीवारी और गेटों से अलग किया गया है और इस समुदाय में प्रवेश तथा निकासी के रास्ते तय हैं। ऐसे अधिकतर समुदायों में अपनी समानांतर पेयजल, बिजली, सुरक्षा व्यवस्था रहती है। इसी तरह चंडीगढ़ में अग्रवाल भवन, सैनी भवन, महाजन भवन, परशुराम भवन, कश्मीरी भवन, जाट भवन आदि मिलते हैं। यह और कुछ नहीं, शहरों में अपनी पारंपरिक पहचान कायम रखने का प्रयास है।

## 12.4 निष्कर्ष (Conclusion)

ग्रामीण–शहरी सततता को और आसान तरीके से ऐसे समझा जा सकता है कि यह लोक (folk) की निरंतरता और **नगरीय** व ग्रामीण समाज का संगठन है। शहरीकरण की तेजरफ्तार,**नगरीय** क्षेत्रों से सटे गांवों में नये तकनीकी रूप से विकसित उद्योगो ंकी स्थापना ने ग्रामीण जीवन पर बड़ा असर डाला है। आधुनिक औद्योगिक विशेषताओं से ग्रामीण जीवन और **नगरीय** जीवन का अंतर लगातार घट गया है। इसीलिये इन दोनों के बीच विभाजन की कोई रेखा अब स्पष्ट नजर नहीं आती है। ग्रामीण और **नगरीय** दोनों समाजों के मिश्रण के चिह्न साफ दिखते हैं। भारत में बीते तीन दशकों में परिवहन और संचार के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हुआ है। परिवहन और संचार सुविधाएं न सिर्फ बेहतर हुयी हैं, बल्कि दूरस्थ जनजातीय, ग्रामीण क्षेत्रों तक इनका विस्तार हुआ है। इसके चलते ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की शहरों तक पहुंच बढ़ी है और वे रोजगार की तलाश में शहरों में आने लगे हैं।

## 12.5 अभ्यास प्रश्न (Model Question)

- विभिन्न समाजविज्ञानियों के विचारों के अनुरूप **नगरीय** जीवन की व्याख्या करें।
- ग्रामीण–शहरी सततता से आप क्या समझते हैं?
- रर्बनाइजेशन का क्या अर्थ है?

## 12.6: सन्दर्भ ग्रन्थ (References)


- Butler, E.W. (1976). Urban Sociology. New York: Harper and Row, Publishers.
- Knox, P and Pinch, S. (2010). Urban Social Geography. 6thed. New Delhi:

- Pearson. Paddison, Ronanan. (2001). Handbook of Urban Studies. New Delhi: Sage Publications.
- Ramachandran, R. (1997). Urbanization and Urban Systems in India. 1st ed. New Delhi: Oxford University Press.
- Redfield, R. (1930). Tepoztlan a Mexican Village: A Study of Folk Life.Chicago: Chicago University Press.
- Stolley, Kathy.S. (2005). The Basics of Sociology. London: Greenwood Press.


इकाई– 13

## नगरीकरण के सिद्धांत (Theories of Urbanism)

इकाई की संरचना

13.0 उद्देश्य

13.1 परिचय

13.2 प्रमुख सिद्धांत

13.2.1 पारिस्थितिकीय विशिष्टता

13.2.2 नवीकृत

13.3.3 नेटवर्क

13.3 निष्कर्ष

13.4 अभ्यास प्रश्न

13.5 सहायक अध्ययन

## 13.0 उद्देश्य (Objective)

इस अध्ययन के बाद हम इन बातों से परिचित हो सकेंगेः

1. नगरीकरण के कुछ प्रमुख सिद्धांत
2. संबंधित क्षेत्र के कुछ महत्वपूर्ण सैद्धांतिक पहलू

## 13.2 परिचय (Introduction)

नगरीकरण (Urbanization) और शहरीवाद(Urbanism) वे दो महत्वपूर्ण केन्द्र हैं, जिन पर शहरी सामाजिक सिद्धांत टिके होते हैं और नगरों के विकास का रास्ता तय करते हैं। नगरों के अध्ययन की जरूरत दो अहम विचारों से सामने आयी है। पहला यह कि शुरुआत में नगरीकरण को न सिर्फ सामंतवादी व्यवस्था के समापन बल्कि तीसरी दुनिया के उद्भव के चलते आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के सूचक (Index) के तौर पर देखा गया। और दूसरा यह कि शहरी अध्ययन सभ्यता से गहराई से जुड़ा हुआ है। यहां नगरीकरण को किसी नगर में रहने वाले लोगों की संस्कृति के तौर पर ही नहीं देखा जाता है, बल्कि सामान्य रूप से यह एक सामाजिक विस्तार है जो मनोदशा में भी अवस्थित होता है। (Chandavarkar , 2009). यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो स्थित द शिकागो स्कूल ने समाजशास्त्रियों का एक समूह गठित किया था, जिन्होंने शिकागो नगर के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया और पाया कि नगर दरअसल एक सामाजिक प्रयोगशाला (Social Laboratory) हैं, जहां मानव की वास्तविक प्रवृत्ति उभरकर सामने आती है एवं अस्तित्व का विकास करती है। रॉबर्ट एजरा पार्क, अर्नेस्ट बर्गीज, लुईस वर्थ शिकागो स्कूल के प्रख्यात शहरी विशेषज्ञ रहे, जिन्होंने शहर के विभिन्न कार्यों, उद्देश्यों, इसकी प्रकृति–प्रवृत्ति को स्पष्ट किया। पुस्तक ***"The City: Suggestions for Investigation of Human Behaviour in the Urban Environment",*** के प्रकाशन के साथ शहरी घटनाक्रमों को समझने की शुरुआत हुई और इसके साथ ही इस विचार को आगे बढ़ाने के लिये विशेष स्कूल की स्थापना की भी जरूरत महसूस की गयी (Dear,2005). अभूतपूर्व एवं त्वरित रूप से विकसित होते

शहर के रूप में शिकागो नगर शिकागो स्कूल के लिये आधुनिक शहरी विकास के पहलुओं को समझने और परीक्षण करने का माध्यम बना। जैसाकि उस वक्त प्रचलित था, शिकागो स्कूल ने समग्र एवं संयुक्त रूप में नगर का आधुनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। स्कूल ने उन शहरी घटनाक्रमों और परिस्थितियों पर अध्ययन किया, जो नगरीय संस्कृति के विकास का जरिया थीं। माइकल डियर (2002) शिकागो स्कूल के विशेषज्ञों के बारे में लिखते हैं, 'उनका अध्ययन मूलतः शहरी लोगों के आत्मवाद (Subjectivity) पर आधारित था, जिसमें स्थानीय संस्कृति, अपराध, निर्धनता, जातिवाद भी समाविष्ट किये गये।' स्कूल ने कई विचार दिये जो नगर के समग्र परिदृश्य को स्पष्ट करते थे और जिनकी मदद से शहरी सामाजिक क्षेत्रों तथा शहरी जीवन के तरीकों के विकास व इन्हें समझने के लिये जरूरी अवधारणा की बुनियाद मिली।

रॉबर्ट ई पार्क ने सबसे पहले मानवीय पारिस्थितिकी (Human Ecology) शब्द का इस्तेमाल किया, जिसका तात्पर्य सामाजिक क्षेत्र में जैविक प्रक्रियाओं और अवधारणाओं को लागू करने से था और इससे यह विचार विकसित हुआ कि शहर और शहरी जीवन दरअसल प्राकृतिक दुनिया की प्रतिस्पर्धा का परिणाम हैं। शिकागो स्कूल ने नगरों के ढांचागत स्वरूप और इस ढांचे में मानव समुदाय के समायोजन (Adjustment) के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया। शहरी समाजशास्त्र की अवधारणा का विकास शिकागो स्कूल में वर्ष 1914 में पार्क के जुड़ने और बर्गीज के साथ उनके संयुक्त कार्यों से हुआ। इन दोनों ने ही नगर के सामाजिक शोध की प्रयोगशाला होने का विचार सबसे पहले दिया था। 20वीं सदी के पहले दशक में हेंडरसन ने नगरों के व्यवस्थित अध्ययन के लिये फंड की व्यवस्था की, जिसके बाद थॉमस ने वर्ष 1908 में यूरोप और अमेरिका में पोलिश किसानों (The Polish Peasants) पर अपना शोध कार्य प्रारंभ किया। अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी के 1902 में प्रस्तुत एक जर्नल में कहा गया:

'शिकागो नगर दुनिया की सबसे संपूर्ण सामाजिक प्रयोगशाालाओं में से एक है। यद्यपि समाजशास्त्र के तत्वों का अध्ययन छोटे समुदायों से भी किया जा सकता है, लेकिन आधुनिक समाज की गंभीर समस्याओं का प्रतिनिधित्व बड़े शहर ही करते हैं और इनका अध्ययन इसलिये अत्यावश्यक है कि बहुत बड़ी आबादी हर रोज इन समस्याओं से जूझती है। मौजूदा दौर में दुनिया का कोई शहर सामाजिक समस्याओं को उतना परिलक्षित नहीं करता, जितना कि शिकागो नगर।'

समाजशास्त्र को विज्ञान के स्वरूप में स्थापित करने के लिये शोधकर्ताओं, शिक्षकों ने अनुभव आधारित शोध पर ध्यान केन्द्रित किया, जिसमें उन्होंने मात्रात्मक (Quantitative) और गुणवत्तात्मक (Qualitative) तरीकों का इस्तेमाल किया। पार्क ने बिल्कुल नया सैद्धांतिक मॉडल पेश किया, जिसमें उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर बताया कि नगर सिर्फ भौगोलिक परिस्थितियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मानवीय पारिस्थितिकी की मूल अवधारणा प्रकृति विज्ञान पर आधारित हैं। प्रतिस्पर्धा और विभाजन प्राकृतिक क्षेत्रों के अद्वितीय, भिन्न एवं सीमांकित गठन का आधार बनते हैं। 'शहर, दरअसल छोटी–छोटी दुनियाओं का एक समूह है, जो एक–दूसरे को छूते जरूर हैं, लेकिन एक–दूसरे में समाहित नहीं होते।' (Park, 1977). शहरों के विकास को लेकर बर्गीज ने सघन क्षेत्र सिद्धांत (Concentric Zone Theory) पेश किया। इसमें उन्होंने सेंट्रल बिजनेस डिस्ट्रिक्ट (CBD) की अवधारणा दी, जिसके चारों ओर उन्होंने कामकाजी लोगों के आवास, आवासीय क्षेत्र, परिवर्तनशील क्षेत्र आदि के अवस्थित होने का मॉडल दिया। रॉड्रिक मॅकेंजी ने बाद में महानगरीय समुदायों का अध्ययन करते हुए

मानव पारिस्थितिकी के बुनियादी सिद्धांत को और आगे बढ़ाया। शिकागो स्कूल का शोध एवं प्रकाशन कार्यक्रम का जिम्मा स्थानीय समुदाय शोध समिति, शिक्षकों व समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान (चार्ल्स मरियम) व मानवविज्ञान (रॉबर्ट रेडफील्ड) विषय के छात्रों के समूह पर था। लॉरा स्पेलमैन रॉकफेलर मेमोरियल ने वर्ष 1924 से 1934 तक शिकागो स्कूल को छह लाख डॉलर से अधिक की मदद दी। इस दौरान बर्गीज एवं पार्क के मार्गदर्शन में स्कूल के छात्रों ने स्थानीय सामुदायिक क्षेत्रों की मैपिंग के अलावा वहां नगर में बाल अपराध, पारिवारिक अव्यवस्थाओं, सांस्कृतिक जीवन आदि पहलुओं पर शोध किये। इन शोध कार्यक्रमों ने अध्ययन के विविध पहलुओं को विभिन्न शहरी संस्थानों (होटल, डांस हॉल आदि), सामाजिक अव्यवस्थाओं (बाल अपराध, आवासहीन लोग आदि) और प्राकृतिक क्षेत्रों पर व्यवस्थित तरीके से केन्द्रित किया। शिकागो स्कूल के कुछ उल्लेखनीय अध्ययनों में फ्रेडरिक थ्रेशर, The Gang (1926); लुईस वर्थ, The Ghetto (1928); हार्वे डब्ल्यू जोरबॉ, The Gold Coast and the Slum (1929); क्लिफोर्ड एस शॉ, The Jackroller (1930); ई फ्रैंकलिन फ्रेजर, The Negro Family in Chicago (1932); पॉल जी क्रेसी, The Taxi Dance Hall (1932); वॉल्टर सी रेकल्स, Vice in Chicago (1933) शामिल हैं।

**जानने योग्य तथ्य**

**20वीं सदी के प्रारंभिक आधे समय तक शिकागो स्कूल समाजशास्त्र एवं शहरी समाजशास्त्र के क्षेत्र में अगुआ रहा। 1950 तक दो सौ छात्र यहां से शोधकार्य कर चुके थे। इनमें से अधिकतर ने देशभर में समाजशास्त्र के अध्ययन को विस्तार दिया। अमेरिकन सोशियोलॉजिकल एसोसिएशन के आधे से अधिक अध्यक्ष भी शिकागो के छात्र अथवा शिक्षक रह चुके थे। 1895 में बेहद छोटे स्वरूप में प्रारंभ हुआ द अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी 1906 से 1935 तक द अमेरिकन सोशियोलॉजिकल एसोसिएशन का आधिकारिक जर्नल रहा। शिकागो स्कूल के एकाधिकार एवं प्रभुत्व ने 1935 के वार्षिक सम्मेलन में विरोध के स्वरों को मुखर किया, जिसका परिणाम एक नये जर्नल द अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू के तौर पर सामने आया। इसके बाद से शिकागो के प्रभुत्व में उतार आता गया।**

शिकागो स्कूल के कार्यों के कई आलोचक भी रहे। मीसा अलिहान (1938) ने पार्क के मानवीय पारिस्थितिकी मॉडल में अंतर्निहित नियतिवाद (यानी यह धारणा कि मनुष्य किसी भी कार्य को करने के लिये स्वतंत्र नहीं होता) की आलोचना की, स्वयं पार्क ने भी लिखा है कि समग्रता में यह आलोचना सही थी। मौरिस डेवी ने 1938 में क्लिफोर्ड शॉ के आपराधिक क्षेत्रों पर 1929 में किये शोधकार्य के आंकड़ों का पुनर्विश्लेषण किया और पाया कि संबंधित क्षेत्र भौतिक रूप से अपमानकों वाले थे और यहां शरणार्थी आबादी की बहुतायत थी, लेकिन शिकागो स्कूल के सघन क्षेत्र मॉडल में इन बिंदुओं को शामिल नहीं किया गया था। बर्गीज का सघन क्षेत्र मॉडल भी जल्द ही बहुल केन्द्र, विकेन्द्रीकरण के मॉडलों से पुनर्स्थापित किया गया। अब भी शहरी पारिस्थितिकी (Urban Ecology) का मॉडल शहरी समाजशास्त्रियों के मध्य सबसे अधिक प्रचलित है।

हालिया शोधकार्यों में लैंगिक समानता के मसले पर ध्यान केन्द्रित किया गया है, जिसमें शिकागो स्कूल में भी महिलाओं की भूमिका को उभारा गया है। डीगेन (1986) का तर्क है कि शिकागो स्कूल में पार्क

और अन्य पुरुष शिक्षकों ने महिलाओं के योगदान को हाशिये पर रखा। जेन एडम्स ने हल हाउस (Hull House) में प्रारंभिक समुदायों का अध्ययन किया। एडिथ एबॉट विभाग में अल्पकालिक निरीक्षक रहे, इसी तरह एडमस को भी अल्पकालिक पद दिया गया था। शिकागो के कई शिक्षक हल हाउस और अन्य सामाजिक सुधार आंदोलनों में सहभागी बने। ग्राहम टेलर विभाग के प्रारंभिक सदस्यों में से एक थे। बर्गीज ने भी बाद में पाया कि शिकागो स्कूल में व्यवस्थित शोधकार्य वर्ष 1908 में एबॉट और सोफोंसिया ब्रेकरिंज द्वारा हल हाउस अध्ययन से प्रारंभ हुआ। यद्यपि अधिकतर शोध छात्रों ने अपने शोध में सहायता के मकसद से स्वयं को सामाजिक सुधार कार्यक्रमों से इतर दिखाने का प्रयास किया, जिसकी वजह यह भी थी कि सामाजिक कार्यों का यह उभरता क्षेत्र शिकागो स्कूल के प्रारंभिक अध्ययनों के प्रति उनकी अनिच्छा को भी जाहिर कर सकता था।

शिकागो स्कूल से हुई इस शुरुआत का असर आगे चलकर सेंट क्लेयर ड्रेक और होरास केटन के Black Metropolis (1945) एवं मॉरिस जेनोविज के निर्देशन में वर्ष 1970 में विभिन्न समुदायों के अध्ययनों में साफ नजर आता है। 1980–85 में विलियम जूलियस विल्सन के प्रतिवेशों में निर्धनता पर किये शोधकार्यों ने एक बार फिर बेहद बेहतर तरीके से नगरों को सामाजिक प्रयोशाला के रूप में स्थापित किया। उन्होंने शिकागो स्कूल में शोध छात्रों के लिये सतत प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ किया, लेकिन इसका उद्देश्य पूर्ण होने से पहले ही वह हार्वर्ड चले गये। हालांकि, इसके बाद भ द शिकागो स्कूल ऑफ अर्बन सोशियोलॉजी का प्रभाव बना रहा।

शहरी समाजशास्त्र के अलावा पारंपरिक अध्ययन, अपराध आदि क्षेत्रों में भी शिकागो स्कूल ने बेहतरीन काम किया है। शिकागो स्कूल ऑफ अर्बन सोशियोलॉजी में सामान्यतः जीएच मीड (1930) एवं डब्ल्यू लॉयड वार्नर (1940) का नाम उभरकर नहीं आता, लेकिन दोनों इस विभाग में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। लुईस वर्थ बताते हैं कि शिकागो स्कूल ने विभिन्न सैद्धांतिक मॉडलों को एकीकृत कर व्यक्तिगत दस्तावेजों से लेकर मानवजाति विज्ञान तक की विस्तृत श्रृंखला तक विस्तृत विश्लेषण किया है। पार्क मानते हैं कि थॉमस के कार्यों ने विभाग की बुनियाद रखी, लेकिन वही नहीं जानते थे कि वह एक स्कूल या मत का निर्माण कर रहे हैं। शहरी भूगोल पर हाल में हुए शोधकार्य बताते हैं कि शिकागो स्कूल बीसवीं सदी में शहरी सिद्धांतों की बुनियाद था तो लॉस एंजेलिस शहरी सिद्धांतों का भविष्य है। यहां उल्लेखनीय है कि लॉस एंजेलिस स्कूल (शिकागो स्कूल के एकाधिकार के विरोध में 1980 में शुरू हुए शोध कार्यक्रमों का प्रतीक नाम) ने शहरी समाजशास्त्र के बजाय समग्र शहरी अध्ययन पर व्यापक रूप से ध्यान केन्द्रित किया है।

## 13.2 प्रमुख सिद्धांत (Important Theories)

शहरी घटनाक्रमों और शहरी जीवन को स्पष्ट तौर पर समझने–जानने के लिये नगरीकरण की प्रक्रिया ने शोधकर्ताओं का ध्यानाकर्षित किया। विभिन्न काल–परिस्थितियों में इसे स्पष्ट करने के लिये कई शोध हुए हैं। इन शोधकार्यों में विश्लेषण के जरिये शहरी घटनाक्रमों के कुछ सिद्धांत स्पष्ट हुए।

### 13.2.1 पारिस्थितिकीय विशिष्टता (Ecological Classical)

बीसवीं सदी के पहले चरण में समाजशास्त्र विभाग के प्रारंभिक शैक्षिक विभाग स्थापित हो चुके थे। शिकागो विश्वविद्यालय के नये वैचारिक स्कूल की स्थापना समाजशास्त्रियों के छोटे समूह द्वारा की गयी थी। पारिस्थितिकीय विशेषज्ञों ने नैतिक आधार नगरों के स्वरूप के निर्धारण के प्रयासों और तरीकों का विरोध किया। पारिस्थितिकीय विशेषज्ञों ने प्रारंभ में शहरी पर्यावरण एवं वस्तुनिष्ठता के दृष्टिकोण से तथ्यों का अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया। इस दृष्टिकोण के विकास को लेकर पार्क अपने छात्रों को कहते थे कि यह अनुभवहीन और मार्गदर्शनहीन प्रयास है, वह इसके लिये अकसर अंग्रेजी कहावत 'seats of their pants dirty' का इस्तेमाल करते थे। दूसरी ओर, वेबर, मार्क्स और सिमेल जैसे यूरोपीय विचारकों ने तर्क दिया कि नगर एक ऐसा पर्यावरण है, जहां पूंजीवादी व्यवस्था की प्रभुत्ववादी ताकत मानव जीवन के हर पहलू को प्रभावित करती है। शिकागो स्कूल ने पूंजीवाद पर अध्ययन से किनारा कर लिया, लेकिन जैविक आधार पर शहरी जीवन की अवधारणा का प्रयास किया। शहरी समाजशास्त्र में पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण का विकास शिकागो विचार स्कूल (Chicago School of Thoughts) में हुआ, जहां भौतिक और भौगोलिक कारकों को सामाजिक जीवन एवं मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाला माना गया। यहां विद्वानों ने नगरीकरण को निम्नवत व्याख्यायित किया है:

## रॉबर्ट पार्क (Robert Park)

पार्क मानते थे कि एक–दूसरे पर हमारी आर्थिक निर्भरता व्यक्तिगत संबंधों से अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने नगर के पारिस्थितिकीय सिद्धांत का सामान्य ढांचा पेश किया। पार्क की शुरुआत एक पत्रकार के रूप में हुई, जहां उन्होंने भ्रष्टाचार, शरणार्थी समुदाय, अपराध आदि शहरी मुद्दों को करीब से देखा, लेकिन सवालों के जवाब तलाशने की उनकी रुचि उन्हें वापस विश्वविद्यालय ले आयी। उन्होंने हार्वर्ड से दर्शनशास्त्र की पढ़ाई की, बर्लिन में सिमेल के सहपाठी रहते हुए सामाजिक विचार का अध्ययन पूरा किया और फिर हीडलबर्ग से पीएचडी किया। 1913 से उन्होंने शिकागो विश्वविद्यालय में अध्यापन प्रारंभ किया। समाजशास्त्र में रॉबर्ट पार्क का सबसे महत्वपूर्ण योगदान मानवीय पारिस्थितिकी (Human Ecology) रहा, जिसने डार्विन के प्रकृति के जीवनचक्र सिद्धांत को मानवीय सामाजिक व्यवस्था से जोड़ दिया। पार्क ने पाया कि पौधों और जन्तुओं के संबंधों में कई ऐसे गुण हैं, जिन्हें सामुदायिक संबंधों पर आसानी से लागू किया जा सकता है। पार्क किसी समुदाय के तीन आवश्यक गुण बताते हैं। 1. वह आबादी जो विशेष सीमाओं में व्यवस्थित है और जिसकी जड़ें संबंधित क्षेत्र में गहरी हैं, 2. व्यक्ति (Individual) की इकाइयां इसमें सहजीविता (Symbiotic) अंतर्निर्भरता को पोषित करती हैं। 3. समुदाय की स्पर्धा संख्या को नियंत्रित करती है और प्रतिस्पर्धियों के बीच संतुलन बनाये रखती है।

पार्क मानते हैं कि समाज पारिस्थितिकीय स्तरों के अलावा भी कई बातों से विकसित होता है। इसके लिये वह आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक क्रमों को सामने रखते हैं, जिन्हें पदानुक्रम (Hierarchical) में पिरामिड स्वरूप में व्यवस्थित किया गया हो। यहां पारिस्थितिकीय क्रम बुनियाद का काम करता है, जबकि नैतिक क्रम सर्वोच्च स्तर पर होता है। वह तर्क देते हैं कि समाज को बांधे रखने वाले बंधन रूढ़ियां और नैतिकता के बजाय भौतिक एवं जीवनप्रद होते हैं। शिकागो के समाजशास्त्रियों ने शहर के विश्लेषण के लिये पारिस्थितिकीय अवधारणा का प्रयोग किया। इसी अवधि में कई पशु पारिस्थितिकी विशेषज्ञ बदली हुई सघन परिस्थितियों में चूहों के व्यवहार पर शोध कर रहे थे। अधिक सघनता के चलते नवजात चूहों के प्रति वयस्कों की अनदेखी, हिंसात्मक व्यवहार और कई अन्य तरह के बदलाव सामने आये। इन शोधकर्ताओं ने बताया कि मानवीय पारिस्थितिकीय विशेषज्ञों ने मानव व्यवहार पर

भौतिक परिस्थितियों के असर का अध्ययन करने का प्रयास किया और मनुष्यों ने पशुओं से बिल्कुल अलग तरीके से व्यवहार किया।

मानव पारिस्थितिकी समाजशास्त्र की एक शाखा है जो मानव समुदाय और इसके पर्यावरण के संबंधों का अध्ययन करती है। पार्क ने पारिस्थितिकी को उपयोगी दृष्टिकोण माना, क्योंकि नगरों में मानव एक क्षेत्रविशेष में अलग–अलग परिस्थितियों के अनुरूप रहते हैं। पार्क ने तर्क दिया कि नगर पारिस्थितिकीय समुदाय का रचनात्मक तत्व है, जिसके गुण अनजाने (Unconsciousness) में तभी विकसित हो गये थे, जब मनुष्य अस्तित्व के लिये जैविक संघर्ष की प्रक्रिया से गुजर रहा था। इस क्षमता ने मनुष्य को क्रियात्मक रूप से स्वयं और पर्यावरण के अनुकूल बनने योग्य बनाया। इन प्रक्रियाओं की व्याख्या मानव पारिस्थितिकी के जरिये ही संभव है। पार्क मानते हैं कि नगर में प्राकृतिक वास या उत्पत्तिस्थल निहित हैं, जो स्वयं के नियमों का पालन करते हैं और इनमें किसी तरह के बदलाव की गुंजाइश उसी सीमा तक है, जहां तक संभव हो। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो समुदाय विभिन्न परिस्थितियों के लिये तयशुदा निश्चित दृष्टिकोण का ही अनुसरण करते हैं। इस तरह मानव पारिस्थितिकी का अर्थ मानव समूह के पर्यावरण में व्यवस्थित होने की प्रक्रिया और विभिन्न समूहों के अंतर्संबंधों का अध्ययन करने से है। 'समान पंखों वाली चिड़िया एक झुंड में रहती हैं' यह तर्क यद्यपि मनुष्यों पर पूरी तरह लागू नहीं होता, फिर भी ऐसा देखा जाता है। किसी क्षेत्रविशेष में सजातीय सामाजिक संगठन पाये जाते हैं। अंतर सिर्फ यह होता है कि मनुष्य तकनीकी साधनों के इस्तेमाल से पर्यावरण से जूझता है।

पार्क ने इस विचार को पूर्ण सहमति दी कि आर्थिक प्रतिस्पर्धा अस्तित्व के संघर्ष का अहम पहलू है (Charles Darwin *On the Origin of Species, 1859*). पार्क ने नगर को एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में रेखांकित किया, जहां विभिन्न समूह आंतरिक प्रक्रियाओं के बूते एक–दूसरे से संबद्ध हैं। शहरी जीवन अव्यवस्थित एवं अक्रियाशील नहीं था, बल्कि इसका झुकाव अपनी आबादी और संस्थानों का क्रमानुसार समूह बनाने की ओर था। पार्क के अनुसार शहरी जीवन दो विभिन्न स्तरों पर व्यवस्थित था, 1. जैविक (Biotic) और 2. सांस्कृतिक (Cultural)। वह बताते हैं कि जैविक या निर्धारित समुदायों का आधार प्रतिस्पर्धा होता है, जबकि सांस्कृतिक समुदाय संचार और समान विचार पर आधारित होते हैं। पार्क का तर्क है कि ये दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। वास्तव में इन दोनों के बीच बड़ा जटिल संबंध है। जैविक स्तर पर प्रतिस्पर्धा है, लेकिन समाज में समझौतों, सामूहिकता, नियमों के चलते यह प्रतिबंधित है।

वॉल्टर फायरी ने भावनाओं (Sentiments) एवं प्रतीकवाद (Symbolism) को पारिस्थितिकीय मानक माना है। इसके आधार पर पारिस्थितिकीय सिद्धांत दो चीजों, स्थान के गुण और अवस्थिति (Location) में गतिविधियों की प्रकृति पर निर्भर करता है। यह इसका अनुसरण करता है:

1. स्थान और स्थानिक गतिविधियों का एकमात्र संबंध खर्चीला एवं लागत थोपने की प्रकृति वाला होता है
2. स्थानिक गतिविविधियां राजकोषीय कारकों को कम खर्चीला बनाने का प्रयास करती हैं

### लुईस वर्थ (Louis Wirth)

लुईस का मत है कि नगरीकरण जीवन जीने का तरीका है। उन्होंने शहरी और ग्रामीण परिवेश में अंतर के विषय में जॉर्ज सिमेल के समान ही मत रखा है। वर्थ तर्क देते हैं कि घुमंतू सभ्यता से सामयिक सभ्यता की ओर और सर्वाधिक प्रभावी ग्रामीण समाज से सर्वाधिक प्रभावी शहरी समाज की ओर परिवर्तन की वजह कृषि से औद्योगीकरण की ओर परिवर्तन है। औद्योगिकीकृत समाज की ओर इस गतिशीलता ने ही सामाजिक जीवन को नाटकीय रूप से परिवर्तित किया है। वह कहते हैं, 'शहरों का विकास और दुनिया का नगरीकरण आधुनिक दौर के सबसे प्रभावी तथ्यों में से एक है। इस प्रक्रिया ने जीवन के तरीकों, इन परिवर्तनों के अध्ययन और नगरीकरण की प्रक्रिया को नया आकार दिया है।' यद्यपि विभिन्न विद्वानों ने नगर को निर्धारित परिभाषा देने का प्रयास किया है, लेकिन वर्थ ने शहरी जीवन के सामाजिक गुणों को समझने के लिये समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाने पर जोर दिया। वह मानते हैं कि सघनता, अवस्थिति के मात्रात्मक विश्लेषण के बजाय शहरी लोगों के जीवन में आने वाले बदलाव, परिवर्तन की प्रक्रिया जैसे गुणों का अध्ययन शहरी सामाजिक व्यवस्था को आसानी से समझा सकता है। मात्रात्मक रूप से अकेले शोधकर्ता के लिये सामान्यतः सघन आबादी वाले क्षेत्रों और और बड़ी सदस्यता वाले समुदायों की सामाजिक गतिविधियों को सामान्यीकृत करना मुश्किल होता है। समाजशास्त्रियों के बीच एक सामान्य मतैक्य है कि शहरों में औद्योगीकरण की प्रक्रिया ओर अमेरिका के कदम बढ़ने के बाद जो परिवेश उत्पन्न हुआ, वही नगरीकरण है। वर्थ के परीक्षणों के अनुसार, 'नगर पारिवारिक इकाइयों के बजाय एकल अभिभावकों, अल्पसंख्यक समुदायों को अधिक संख्या में आकर्षित करते हैं, जो अपने घर लेने के बजाय किराये पर रहना पसंद करते है। ऐसे में शहरी परिवेश को और संयोजित बनाने की दिशा में यह समाधान अपनाया जा सकता है कि घर खरीदने की संभावनाओं और अवसरों को अधिक बढ़ाया जाये। खुद की जिम्मेदारी पर घर देना यानी 'Rent-to-own' कार्यक्रम इसका विकल्प हो सकता है। इससे लोगों को जोड़ने के लिये शहरों में किराये पर रहने वालों को प्रेरित करना चाहिये और आवास पर स्वामित्व रखने वालों को टैक्स में छूट जैसे प्रोत्साहन दिये जाने चाहिये। एक अन्य समाधान यह भी है कि समुदायों के भीतर ही रोजगार के अवसर सुनिश्चित किये जायें, ताकि घर और रोजगार के क्षेत्र अलग–अलग न हों। ऐसा होने से सामुदायिक एवं एकजुटता का भाव विकसित होगा।'

### 13.2.2 नव विशिष्ट (Neo-Classical)

नगर आकार सिद्धांत और विशिष्ट सिद्धांत में सामने आयी कमियों को जिन सिद्धांतों ने दूर किया है, उन्हें सामान्यतः दो अलग अवधारणात्मक उदाहरणों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। ये निम्न हैं:

1. वे शहर जिन्हें क्रिस्टेलर मॉडल के तर्कों पर व्याख्यायित किया गया है
2. नेटवर्क सिटी

नवविशिष्ट एवं क्रिस्टेलर मॉडल पर किसी शहर की व्याख्या पूर्ववर्ती विशिष्ट उदाहरणों (Classical Paradigm) की कमियां दूर करने का साधन बनीं। पहला उदाहण नगर आकार सिद्धांत की कमियों को दूर करता है। इसे इस तरह समझा जा सकता है:

1. शहरी आकार का अर्थ ऐसी अवस्था से है, जहां उत्पादन लाभ एवं अवस्थिति मूल्य के बीच संतुलन की स्थिति बनी रहे

2. सभी नगर समान नहीं होते, लेकिन वे अपने आकार के अनुरूप विभिन्न सामानों का उत्पादन करते हैं

इस दृष्टिकोण के माध्यम से शहरी अवस्थिति सिद्धांत (Urban Location Theory) में सुधार आया और नव शहरी आर्थिकी को समझना आसान हो सका। वॉन थुनेन और अलोंसो मूथ के कार्यों को विस्तार देकर और इनमें संशोधन से यह भी स्पष्ट हुआ कि उत्पादन लाभ और अवस्थिति मूल्य के बीच संतुलन की अवस्था 'अंतर शहरी संतुलन' संभव है। उन्होंने दावा किया था कि विकेन्द्रीकरण से किराये में मामूली गिरावट को यात्रा खर्च में मामूली बढ़ोतरी से पूरा करना संभव है। इस मॉडल का निष्कर्ष यह बताता है कि सभी संभावित अवस्थितियों में सर्वश्रेष्ठ का चयन किस तरह किया जा सकता है (the famous 'Muth condition'), यानी केन्द्र तक कम पहुंच का लाभ कम किराये और उच्चतर पर्यावरणीय गुणवत्ता के तौर पर मिलता है। उदाहरण के लिये, यदि हम दिल्ली के किसी हाईप्रोफाइल एरिया में किराये पर रहना चाहते हैं तो हमारे पास इसके लिये बड़ा बजट होना जरिये है और यह क्षेत्र लोगों की अधिक आबादी के कारण काफी सघन भी होगा। यही स्थिति अंतर शहरी संतुलन पर भी लागू होती है। यदि किसी शहर में किराया अधिक हो और वहां लाभ की संभावनायें इसके मुकाबले कम हों तो वहां न तो लोग ही रहना पसंद करेंगे, न ही उद्यम। ऐसे में बाजार की शक्तियां शहर के आकार को उपयोगिता के उच्चतम स्तर पर ले जाती हैं, जिससे वहां रहने वाले लोगों और वहां के उद्यमियों को लाभ मिले। यही नव शहरी आर्थिकी का दृष्टिकोण है। समान उत्पादन प्रक्रियाएं अपरिहार्य रूप से एकसमान आकार के शहरों को विकसित करती हैं (Camagni, 1992). हेंडरसन (1985) के अनुसार इस प्रत्यक्ष विरोधाभास से निपटने के लिये या तो हर शहर में अलग–अलग उत्पादन को बढ़ावा देने की अवधारणा पर काम करना होगा (यानी हर शहर के लिये एक निश्चित उत्पादन) या फिर क्रिस्टेलर मॉडल के उपयोग से नवविशिष्ट तर्क का इस्तेमाल करना होगा। यह मॉडल बताता है कि शहरी पदानुक्रम के अनुरूप शहरी तंत्र स्वयं कुछ ही अनुक्रमों के इर्द–गिर्द व्यवस्थित होता है। हर उच्च क्रम अपने पद के अनुरूप ही वस्तुओं, सेवाओं का उत्पादन करता है, लेकिन वहां अपने से नीचे के क्रम के भी उत्पादन मिलते हैं। ऐसे में शहर को कार्य के अनुरूप विशिष्टता दिये जाने पर बल दिया जाता है। क्रिस्टेलर मॉडल पर नव विशिष्ट तर्क को लागू करने पर पदानुक्रम आधारित शहरी व्यवस्था परिभाषित होती है, जिसमें नगरों के आकार के अंतर को वहां उपलब्ध लाभ और उच्च शहरी किराये से देखा जा सकता है।

हालिया शोधों में शहरी पदानुक्रम व्यवस्था को नव आर्थिक भूगोल दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है। विशुद्ध रूप से आर्थिक परिस्थितियों को लागू करने पर पता चलता है कि शहरी व्यवस्था का पदानुक्रम विकास परिवहन लागत, उत्पादन की विविधता, प्रतिस्पर्धा, वित्तीय व्यवस्था, अवस्थिति आदि के संतुलन से हुआ है। इस तर्क के अनुसार छोटे शहर यानी जहां आर्थिक रूप से कम संसाधन उपलब्ध हैं, या वे शहर जो भौगोलिक रूप से गौण हैं यानी जहां उत्पादन कम और जीवनमूल्य कहीं अधिक है, भी छोटे बाजारी क्षेत्रों को विकसित कर सकते हैं, जिनमें परिवहन की लागत कम हो और जहां अवस्थिति के अनुरूप लाभ लिया जा सके। ये मॉडल बताते हैं कि किस तरह क्रिस्टेलर के तर्क पर आधारित पदानुक्रम आर्थिक विकास के लिये प्राकृतिक हो सकते हैं साथ ही यह भी समझाते हैं कि किस तरह उत्पाद को पूरी क्षमता के साथ बेच पाना संभव हो सकता है। इस तरह ये स्पष्ट करते हैं कि भले ही नगरों का आकार समान हो, लेकिन वहां अलग–अलग तरह की आर्थिक गतिविधियां संभव हैं।

## नेटवर्क सिटी (Network City)

नेटवर्क सिटी हालिया शोधकार्यों से उभरा उदाहरण है, यह नगर आकार सिद्धांत के अलावा नव विशिष्ट, क्रिस्टेलर दृष्टिकोण की कमियों का समाधान बताता है। इस उदाहरण का सबसे अहम पहलू यह है कि इसकी मदद से क्रिस्टेलर के तर्क पर आधारित शहरी आकार और शहरी क्रियाओं के जुड़ाव को तोड़कर देखा जा सकता है। क्रिस्टेलर के दृष्टिकोण से यह समझाना मुश्किल है कि महज तीन लाख आबादी वाला शहर ज्यूरिख कैसे टोक्यो और न्यूयॉर्क जैसे बड़े शहरों के ही समान अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विशिष्ट हिस्सा बन गया है? दरअसल, वास्तविक दुनिया में यह जरूरी नहीं कि शहर का आकार उसके कार्यों को विशिष्टता प्रदान करे। शहरी आकार और शहरी क्रियाओं के अंतर को स्पष्ट करना ही SOUDY (Supply Oriented Dynamic Approach) मॉडल का महत्वपूर्ण गुण है (Camagni et al., 1986), यह बताता है कि नगरों के आकार का अंतर हर नगर के पदानुक्रम के लिये अलग होता है और यह उसके विशेष आर्थिक गतिविधियों से जुड़ा होता है। यह मॉडल निम्न अवधारणा पर आधारित हैः

**उच्च क्रम की आर्थिक गतिविधियों को नगर में अस्तित्वमान करने के लिये उच्च संभावनाओं की आवश्यकता होती है (शहरी आबादी के संदर्भ में) ताकि उत्पादन को क्षमतापूर्ण परिस्थितियों में किया जा सके, जैसा कि क्रिस्टेलर के मॉडल में भी बताया गया था।**

## उप सांस्कृतिक सिद्धांत (Sub-Culture Theory)

इस सिद्धांत का वर्णन लुईस वर्थ ने 1938 के अपने निबंध "Urbanism as a Way of Life" में किया है। इसमें लुईस ने सामाजिक विघटन एवं व्यक्ति (Individual) के हस्तांतरण को नगरीकरण का वजह बताया है। हालांकि, हर्बर्ट गेन ने अपने शोधपत्र "Urbanism and Sub-urbanism as Ways of Life: A Re-Evaluation of Definitions" (1962b) में वर्थ के सिद्धांत के समक्ष आने वाली चुनौतियों का वर्णन किया है। गेन्स और अन्य मानते हैं कि किसी विशेष सामाजिक प्रभाव को नगरीकरण का जिम्मेदार नहीं माना जा सकता है। वह कहते हैं कि इससे दोनों ही स्थितियों के लिये समस्या खड़ी हो जाती है और तीसरे विकल्प की जरूरत महसूस होती है। यहां यह ध्यान रखना जरूरी है कि जो सवाल इस शोधपत्र से संबंध रखता है, वह विश्लेषणात्मक है। यह सघन आबादी के व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभावों पर ध्यान केन्द्रित करने के साथ इन सवालों का जवाब तलाशता हैः नगरीकरण में अलग समुदायों के बीच रहने और सघन आबादी से व्यक्ति पर सांस्कृतिक और व्यावहारिक रूप से क्या परिवर्तन सामने आते हैं? जवाब में यह बात सामने आती है कि आबादी में संयोजित छोटे और बड़े समुदायों के बीच स्पष्ट अंतर होते हैं, जो आयु, परंपराओं, शैक्षिक स्तर, उनमें रहने वाले लोगों आदि के आधार पर अलग–अलग हो सकते हैं। आर्थिक अवसर और राजनीतिक ढांचा भी इस तरह के अंतरों को विकसित करने के लिये कुछ हद तक जिम्मेदार है। यहां यह भी स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण को विभिन्न स्तरों पर परीक्षण करने की जरूरत होती है। इसके कारणों पर विचार करते हुए नगरीकरण अधिक प्रभावी नजर नहीं आता है (वर्ग, जाति, लिंग आदि कारकों की तुलना में)। हालांकि, यदि प्राथमिक कारण नहीं होने के बावजूद नगरीकरण इस तरह की घटनाओं के लिये स्वायत्त कारण के तौर पर सामने आता है तो यह नगरीकरण की प्रकृति को समझने के लिये महत्वपूर्ण तथ्य हो सकता है। इससे इस सवाल का जवाब भी मिल सकेगा– नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव क्या हैं?

## प्रस्थापना (Preposition)

1. शहरी स्थारनों की बढ़ती संख्या के साथ उप सांस्कृतिक विविधताओं की भी संख्या बढ़ती है
2. आबादी की सघनता अलग–अलग उप संस्कृतियों को जन्म देती है (Wirth's "heterogeneity," Park's "urban mosaic") (Preposition)
3. आबादी का आकार ढांचागत विभेद को गतिशील सघनता (Dynamic Density) की प्रक्रिया के जरिये बढ़ावा देता है (Durkheim 1933; Schnore 1958).

प्रतिस्पर्धा, तुलनात्मक लाभ और संबद्ध चयन जैसे बल विशिष्ट आंतरिक उपव्यवस्थाओं को बढ़ावा देते हैं, जो अलग–अलग व्यवस्थाओं से जुड़े होने के कारण संस्कृतियों को अलग करते हैं। परिणामस्वरूप विभिन्न सामाजिक वर्गों में व्यवसाय, समान रुचियों वाले समूह, जीवनस्तर आदि के आधार पर उपसंस्कृतियां भी उभरती हैं। नगरीकरण एवं सांस्कृतिक विभेद का यह संबंध ऐतिहासिक और सामयिक दोनों व्यवस्थाओं के अध्ययन में सामने आया है। अधिकतर मामलों में आर्थिक विशेषीकरण इसकी सबसे बड़ी वजह पायी जाती है (Hawley 1971; Gibbs and Martin 1962; Ogburn and Duncan 1964; Meade 1972; Betz 1972; Clemente and Sturgis 1972; Crowley 1973). श्रम का विभाजन पूर्ववर्ती ही रहता है या नगरीकरण के हिसाब से बदलता है (Hawley 1971, p. 328; Kemper 1972), यह प्रश्न भी प्रासंगिक है। सूक्ष्म स्तर पर कई ऐसे तथ्य भी उपलब्ध हैं जो आकार के स्वतंत्र कारणत्व को भी स्पष्ट करते हैं (cf. Literature on organizational size and differentiation).

भारतीय इतिहास में नगरों या कस्बों के विशेष निशान मिलते हैं। प्राचीन ग्रंथों में हमें ऐसे अकेले क्षेत्रों की भी जानकारी मिलती है, जहां सभी जातियों के लोग रहते थे। यह नगरों में ही संभव था कि ब्राह्मण, ज्योतिषी जैसे धार्मिक अनुष्ठान करने वाली जातियां और दैनंदिन उपयोग की वस्तुओं का निर्माण करने वाले कारीगर एक साथ रहते थे। (Rowe 1973, p. 213).

नगरीकरण में उप संस्कृतियों के विकास का एक अन्य कारण पलायन भी है। इसके कारण एक ही केन्द्र वाले क्षेत्र में कई आंतरिक इलाके विकसित हो जाते हैं। यानी भौगोलिक रूप से एक ही दिखने वाले क्षेत्र में कई अलग–अलग समूह उपस्थित रहते हैं। इसे इस तरह भी समझ सकते हैं कि शरणार्थियों को नगर में जितना अधिक क्षेत्र व्यवस्थाओं के लिये दिया जायेगा, उतने ही उप–सांस्कृतिक विविधतायें सामने आयेंगी। छोटे क्षेत्र में इसकी संभावना कम रहती है। इस तरह शहर के आकार पर भी यह निर्भर करता है। (e.g., Schnore 1963; Hanna and Hanna 1971,p. 109).

## प्रस्थापना 2 (Preposition 2)

कोई क्षेत्र जितना अधिक शहरीकृत होता है, वहां उपसंस्कृतियों की श्रेणियों का विकास भी उतना ही तीव्र होगा।

1. पहली प्रस्थापना अहम समूहों की समान धारणा पर आधारित है। किसी उपसंस्कृति को मानने वाली आबादी जितनी अधिक होगी, सांस्थानिक संपूर्णता भी उतनी ही अधिक होगी (Breton 1964). यह अंतर्निहित मूल तंत्र है कि नगरीकरण से समूहों का आकार बढ़ता है और यह आकार सामाजिक उपव्यवस्थाओं व समर्थक संस्थानों या प्रतीकों को जन्म देता है, जो उपसंस्कृति का ढांचा तैयार करते हैं और इसे पुष्ट करते हैं। ये संस्थान–प्रतीक जिनमें वेशभूषा,

संगठन आदि होते हैं, अधिकरण के स्रोतों और समूहों की स्थापना करते हैं और सामाजिक सीमाओं को बांध देते हैं। संख्या बढ़ाने के सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे समूह के भीतर ही विवाह संबंधों को मान्यता देते हैं, प्रोत्साहित करते हैं।

2. एक अन्य परिदृश्य आपराधिक उप समुदायों का है। बड़े शहरों में पेशेवर आपराधिक समूह समान ऐतिहासिक समस्या रही है। इन लोगों का अपना अलग आवासीय क्षेत्र होता है और उनके मुलाकातों के स्थान भी अलग होते हैं। ऐसे समूहों से जुड़े लोग परस्पर सुरक्षा, प्रशिक्षण का भी काम करते हैं। (e.g., Tobias 1972; Lapidus 1966, pp. 153-63). इसी तरह के उदाहरण कारीगरों के उप समुदायों, छात्रों की उपसंस्कृति, अकेले रहने वाले युवाओं और अन्य समूहों में भी मिलते हैं। हालांकि, ये सभी उदाहरण हैं।
3. ऐसे तथ्य विभिन्न शोधों में सामने आये हैं कि शहर जितना बड़ा होगा, वहां उतने ही अधिक संस्थान और सेवाएं उपलब्ध होंगी और कोई एक विशेष सेवा तो वहां की पहचान होगी (Keyes 1958; Ogburn and Duncan 1964; Thompson 1965; Abrahamson 1974). विशेष सामुदायिक संस्थानों की मौजूदगी आंतरिक विवाह संबंधों, संयोजन, उप संस्कृति की मान्यताओं को बढ़ावा देती हैं, जिन्हें शहरी शरणार्थियों e.g., Breton 1964; Doughty 1970; Little 1965) और व्यावसायिक समूहों भी समर्थन मिलता है (e.g., Lipset et al. 1962, pp. 170-208).
4. अंतर सामूहिक संबंध भी उप संस्कृति को बढ़ावा देते हैं। किसी क्षेत्र में जितनी अधिक उपसंस्कृतियां विकसित होंगी, वहां इनके मध्य उतना ही अधिक द्वंद्व उत्पन्न होगा और इसके परिणामस्वरूप और नयी उपसंस्कृतियां सामने आयेंगी। सामूहिक स्तर पर प्रतिस्पर्धा और संघर्ष की भावना समूह में ही संयुक्त रहती है (Simmel 1951; Coser 1956; Sherif 1956). व्यक्ति के स्तर पर देखें तो उसका भिन्न समूह से संपर्क उसे अपने समूह के मानकों, मूल्यों की ओर खींचता है (कम से कम प्रारंभिक तौर पर तो यह होता ही है)। क्लाइड क्लकहोन (1960, p. 78) कहते हैं, आबादी के विस्तार का प्रत्यक्ष परिणाम विभिन्न नैतिक मूल्यों के परस्पर विरोधाभासी दृष्टिकोण के तौर पर सामने आता है। ऐसी स्थिति में मौजूदा अस्तित्वमान नैतिक क्रम को सही ठहराने के कारण तलाशे जाने जरूरी हो जाते हैं, अन्यथा या तो वह नकार दिया जायेगा अथवा समन्वय के जरिये उसे नया स्वरूप दे दिया जायेगा। नैतिक क्रम पहली बार में समस्या के तौर पर उभरता है, लेकिन विचार समय के साथ समूहों के बीच और मनोवैज्ञानिक रूप से अपना स्थान बना लेते हैं। इसका कारण यह है कि ग्रामीण और अशहरी (Non Urban) क्षेत्रों में मिलने वाले विशेष उपसमूह उपसंस्कृति पर होने वाले नगरीकरण के प्रभावों में मध्यस्थता का काम करते हैं।

## 13.3 निष्कर्ष (Conclusion)

विशिष्ट से लेकर नवविशिष्ट और उपसांस्कृतिक सिद्धांत तक सबने अपने–अपने तरीके से शहरों की व्याख्या की है। आबादी की बढ़ती सघनता के हिसाब से शहरों की संख्या और लोगों का नव शहरी पर्यावरण के प्रति अनुकूलन भी बढ़ता जा रहा है।

## 13.4 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. नगरीकरण के विशिष्ट सिद्धांतों का वर्णन करें।
2. नगरीकरण के नव विशिष्ट सिद्धांत की व्याख्या करें।
3. नगरीकरण का उप सांस्कृतिक सिद्धांत क्या है? विस्तार से बतायें
4. नगरीकरण के विभिन्न सिद्धांतों का तुलनात्मक विश्लेषण करें। इसे सारिणी से भी समझायें।

## 13.5 सहायक अध्ययन

1. Sociology.iresearchnet.com › Urban Sociology

2. Abbott, A. (1999) Department and Discipline: Chicago Sociology at One Hundred. University of Chicago Press, Chicago.

3. Becker, H. S. (1999). The Chicago School, so-called. Qualitative Sociology 2.1, 2:3-12.

4. Blumer, M. (1984) The Chicago School of Sociology: Institutionalization, Diversity, and the Rise of Socio logical Research. University of Chicago Press, Chicago.

5. Deegan, M. J. (1986) Jane Addams and the Men of the Chicago School, 1892-1918. Transaction Books, New Brunswick, NJ.

6. Faris, R. E. L. (1970) Chicago Sociology, 1920-32. University of Chicago Press, Chicago.

7. Kurtz, L. R. (1984) Evaluating Chicago Sociology: A Guide to the Literature, with an Annotated Bibliography. University of Chicago Press, Chicago.

8. Matthews, F. H. (1977) Quest for an American Sociology: Robert E. Park and the Chicago School. McGill-Queen's University Press, Montreal.

9.Short, J. F. (Ed.) (1971) The Social Fabric of the Metropolis: Contributions of the Chicago School of Urban Sociology. University of Chicago Press, Chicago.

10.The University and the City: A Centennial View of the University of Chicago: The Urban Laboratory.

Online. http://www.lib.uchicago.edu/projects/centcat/centcats/city/citych3_01.html

इकाई– 14

# मार्क्सवाद और नगरीय प्रारूप (Marxist Approach to City)

इकाई की रुपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 नगरों पर मार्क्सवाद की मूल धारणा

14.2 नगरीय संकल्पना में मार्क्स का सैद्धांतिक जुड़ाव

14.3 नगरवाद के जरिये मार्क्सवाद की पुनर्परिभाषा

14.4 निष्कर्ष

14.5 अभ्यास प्रश्न

14.6 सहायक अध्ययन

## 14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे–

- नगरों पर मार्क्सवाद की बुनियादी संकल्पना
- नगरों के विचार से मार्क्स और एंगेल्स का सैद्धांतिक जुड़ाव
- नगरों में मार्क्स और मार्क्सवादी विचारों का समालोचनात्मक विश्लेषण

## 14.1 नगरों पर मार्क्सवाद की मूल धारणा (Basic Assumptions of Marxism on City)

पूर्व और पश्चिम में अक्रियाशील और जीर्ण होने के बाद मार्क्सवाद एक शैक्षिक विचार के रूप में बदल गया। यह विचार कई शोधकर्ताओं के लिये आधुनिक जीवन व घटनाक्रमों के विश्लेषण एवं प्रश्न उठाने का माध्यम बना। केटनेल्सन (1992) ने अपनी पुस्तक "The Marxism and The city" में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से नगरों का मूल्यांकन एवं विश्लेषण किया है। उनके अनुसार, सामाजिक सिद्धांत के रूप में मार्क्सवाद की खामियों को नगरों में स्थानिक महत्व के अनुसार लागू कर दूर किया जा सकता है। वह तर्क देते हैं कि मार्क्सवाद में आज भी ऐतिहासिक प्रश्नों के उत्तर तलाशने की क्षमता है। इसके जरिये उन सवालों के जवाब तलाशे जा सकते हैं कि कैसे कोई नगर और समाज सामंती व्यवस्था से पूंजीवाद की ओर बढ़ा।

वहीं, पीटर सांडर्स जैसे विद्वान मानते हैं कि मार्क्सवाद का यह विचार कि पूंजीवाद का विकास विघटनकारी ताकतों को बढ़ावा देता है, शहरी सिद्धांत का विकास नहीं कर सका। इस सन्दर्भ में फिलिप अब्राहम तर्क देते हैं कि नगर सामाजिक वस्तु नहीं है, यही वजह है कि शहरी विश्लेषकों को हृदयहीन विश्लेषक माना जाता रहा। केटनेल्सन बताते हैं कि सांडर्स का टिप्पणीनुमा सर्वे और अब्राहम की सलाह नगरों की स्थिति का अध्ययन करने की दिशा देते हैं। इस तरह के तर्कों के अंत और मार्क्सवाद को स्पष्ट करने के लिये मैनुअल कैस्टल अपनी पुस्तक "The Urban Question" में कहते हैं कि ऐसा कोई भी सिद्धांत नहीं है जो सामाजिक सिद्धांतों का हिस्सा नहीं बन सके।

कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स ने नगर के सूक्ष्म समाजशास्त्रीय विश्लेषण पर जोर दिया है। नगरीय घटनाक्रमों को समझने के लिये उनके द्वारा अपनायी गयी मूल धारणा निम्नवत हैः

- पूर्व औद्योगिक काल में लोग पारंपरिक समाजों से जुड़े हुये, मौलिक और आदिवासी थे (Katznelson Ira (2005), Marxism and the City, oxford publication, New York)
- नगरों का विकास असभ्यता से सभ्यता की ओर रूपांतरण का परिणाम था
- लोगों ने राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता और उत्पादन की विशेषता के महत्व को समझा
- मानव के सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तब तक पूर्ण नहीं हो सकती, जब तक पूंजीवाद समाजवाद में परिवर्तित नहीं हो जाये
- आर्थिक तंत्र के प्रभाव, असमानता और अंतर्द्वंद्व

## 14.2 नगरीय संकल्पना में मार्क्स का सैद्धांतिक जुड़ाव (Theoretical Engagement of Marx in Concept of City)

यद्यपि नगरों के सन्दर्भ में मार्क्सवादी विश्लेषकों की अच्छी संख्या है, लेकिन मार्क्स ने स्वयं नगरों को लेकर काफी कम लिखा है। रिचर्ड होगन (2009) के अनुसार नगरों के संबंध में मार्क्स ने विस्तृत विचार नहीं किया है, लेकिन उनक लेखन के तीन अलग–अलग सेट मिलते हैं, जिनमें उन्होंने प्रमुख मुद्दों को छुआ है। ये मुद्दे हैं, 1. नगर या कस्बों के आंतरिक इलाकों का आर्थिक शोषण (और राजनीतिक प्रभुत्व एवं नगर का सामाजिक–सांस्कृतिक नायकत्व) 2. ग्रामीण संपत्तियों के मुकाबले शहरी संपत्तियों का अधिक बाजार मूल्य 3. ग्रामीण लोगों के मुकाबले शहरी लोगों की राजनीतिक (सामाजिक व सांस्कृतिक भी सम्मिलित) परिवर्तन या क्रान्ति की क्षमता। आधुनिक औद्योगिक पूंजीवाद के पश्चिमी यूरोपियन मार्ग में नगरीकरण के ये तीनों आयाम शामिल हैं। पूंजीवादी बैंकर, व्यापारी, उत्पादक और जमींदार भी नगरीय आबादी का हिस्सा थे जो आंतरिक क्षेत्रों में श्रमिकों–कामगारों का शोषण करते थे। यहां तक कि उन्होंने कृषि समेत ग्रामीण उद्यमों के भी 'विकास' का प्रयास किया। जमीनों को पट्टे या किराये पर देकर उन्होंने नगरीय रियल इस्टेट के जरिये दिन दूना, रात चौगुना लाभ हासिल किया। यही नहीं, उन्होंने उन ग्रामीण क्षेत्रों की जमीनों को भी नगरीय सुविधाएं उपलब्ध कराकर नगरीकरण का प्रयास किया, जहां भूमि के बाजार की उपलब्धता नहीं थी। पूंजीवादियों की यह जीत ग्रामीण क्षेत्रों पर नगरवाद की भी जीत थी। फ्रांस के वर्सीलीज में तीसरे गणराज्य के रूप में किंग लुई 16वें के नगरीय विकास का लक्ष्य तो पूरा हुआ, लेकिन इस पूरे दौर में किसानों की हार, जमीनों का स्वामित्व अभिजात्य के हाथों में चले जाने से विपक्ष भी खड़ा होता गया। यह विरोध वेंडी के छोटे किसानों तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि श्रमजीवी वर्ग और बाद में उग्र कम्यूनार्ड (पेरिस कम्यून में शामिल रहे लोग) तक बढ़ता गया। फ्रांसीसी पहलू से आधुनिक विश्व को देखें तो भले ही इसकी प्रकृति की आलोचना हुयी, लेकिन यह सामंतवाद से पूंजीवाद की ओर हुये परिवर्तन की मार्क्सवादी व्याख्या का प्रतीक है। इसमें पेरिस के कामगार, श्रमजीवी भी शामिल हैं, जिनके लिये मार्क्स ने यह उम्मीद जतायी कि वे निश्चित तौर पर दोबारा उठ खड़े होंगे। यह पूरी प्रक्रिया एक सामान्य सैद्धांतिक दृष्टिकोण को भी जन्म देती है, जिसे अमेरिका या 19वीं सदी की किसी भी अन्य पूंजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर लागू करके देखा जा सकता है।

फ्रेडरिक एंगेल्स ने नगरों पर अपने प्रारंभिक कार्य *The Condition of the Working Class in England*, मेनचेस्टर और अन्य औद्योगिक क्रान्ति के प्रारंभिक नगरीय केन्द्रों की चर्चा से ऐसा रास्ता तय किया जो मार्क्सवाद नहीं कर सका था। उन्होंने नगरों में ऐसे तंत्र की पहचान की जो ढांचे और संस्था को जोड़ता था। एंगेल्स का नगरों और मार्क्सवाद का अध्ययन ऐतिहासिक विश्लेषण और राष्ट्र राज्य पर विचार से मुक्त है। एंगेल्स ने वे तीन बुनियादी सवाल उठाये, जो मार्क्स के सैद्धांतिक प्रस्ताव को आगे बढ़ाते हैं, 1. वृहद प्रक्रियाओं के अंतर्संबंध, मुख्यतः पूंजीवाद का विकास और इससे आधुनिक पूंजीवादी नगरों का उभरना 2. संचय प्रक्रिया के बिन्दु के रूप में नगर और इसके आंतरिक पहलुओं का संबंध 3. वर्ग और समूहों में जागरूकता के विकास और उपरोक्त स्वरूपों का संबंध।

कार्ल मार्क्स ने दुनिया में परिवर्तन की बात पर जोर सिर्फ व्याख्या के लिये नहीं किया, बल्कि उनका अधिकतर जीवन बड़े नगरों में बीता। वह राइनलैंड नाम के छोटे कस्बे में जन्मे थे, जिसके बाद वह अपेक्षाकृत बड़े कस्बे बोना में आ गये, जहां उन्होंने कानून की पढ़ाई की। यहां से वह और बड़े नगर बर्लिन पहुंचे। मार्क्स की नगरों को बढ़ावा देने के समर्थन को उनके कथन, 'ग्रामीण जीवन की मूर्खता' से बल मिलता है। वह पूंजीवादियों की इसलिये प्रशंसा करते थे कि उन्होंने विशाल नगरों की स्थापना की और देश का शासन कस्बों में निहित किया (क्योंकि नगरों में अकसर आवारा, शरणार्थियों को भी स्वीकृति मिल जाती है और नये विचारों के प्रति उदारता का भाव नजर आता है, नयी संस्कृतियों का विकास होता है)। कार्ल मार्क्स के लिये स्वयं को राजधानी में अपनी वृत्ति, पेशा, ब्रिटिश संग्रहालय और समृद्ध अध्ययन से दूर हो पाना बेहद मुश्किल था। इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि जब 1858 में मार्क्स परिवार लंदन वेस्ट एंड से एक छोटे नगर केंटिश टाउन (अब लंदन बोरो ऑफ केमडेन) में बसने गया तो मार्क्स ने इसे बर्बर क्षेत्र की संज्ञा दे डाली। वह अकसर शिकायत करते थे कि वहां रात के वक्त निकलने पर सिर्फ घोर अंधेरा, एकाकीपन और कीचड़ ही मिलता है।

पूंजीवादी ढांचे में नगरों की कार्यभूमिका को लेकर मार्क्स का दृष्टिकोण स्पष्ट था। वह मानते थे कि नगर उत्पादक बलों के विस्तार और सामाजीकरण में मदद करते हैं, लेकिन इसका एक पहलू यह भी है कि वे श्रम विभाजन की बुनियाद हैं। सरकार के लिये सीटें बढ़ाने का जरिया बनते हैं और यहां वर्ग विभाजन, आवासीय पृथक्कीकरण साफ नजर आता है। पूंजीवादी व्यवस्था के असमान भौगोलिक वितरण की चोट भी नगरों को झेलनी पड़ती है। मार्क्स यह अच्छी तरह समझते थे कि नगर स्वयं उत्पादन का केन्द्रबिन्दु रहकर कार्य करते हैं, लेकिन इन तथ्यों की जानकारी के बावजूद उन्होंने नगरों के संबंध में कभी विस्तार से नहीं लिखा। न ही उन्होंने कभी अपने औद्योगीकरण के सिद्धांत से नगरीकरण के सिद्धांत को संबद्ध किया। "Economic law of motion of modern society" की चर्चा करते हुये वह ऐसे संयोगों की ओर इशारा करते हैं, जिनमें पूंजी की भूख को मिटाने के मकसद से नगरों के आंतरिक ढांचे, आकार में पूंजीवाद के अनुरूप परिवर्तन, पुनर्व्यवस्था की जाती है। मार्क्स ने इसे पूंजीवाद के संचय का सामान्य नियम "General Law of Capitalist Accumulation" बताया है। कस्बों के सुधार के विषय पर मार्क्स कहते हैं कि यह प्रक्रिया संपत्ति, धन के बढ़ावे से जुड़ी हुयी है। अनुचित तरीके से निर्मित नगरों के ध्वस्तीकरण, महलों की जगह बैंकों, गोदामों का निर्माण, व्यावसायिक गतिविधियों के लिये होने वाले परिवहन के लिये चौड़ी गलियां, आरामदायक सुविधाओं के लिये ट्राम आदि का निर्माण निश्चित रूप से निर्धन लोगों को और अधिक बदतर हालात में पहुंचाकर हाशिये पर रखता है। इसे मार्क्स ने पूंजीवाद का स्याह पहलू बताया है। वह कहते हैं कि उद्योगों के विकास, पूंजी में बढ़ोतरी और कस्बों के विकास व 'सुधार' के साथ यह बुरा पहलू लगातार बढ़ता जाता है।

फ्रेडरिक एंगेल्स ने 1845 में "The Condition of the Working Class in England" और 1872 में "The Housing Question" लिखीं। वह बताते हैं कि नगरों में पूंजी संचय कामगार वर्ग के जरिये ही गतिशील होता है। औद्योगीकरण में उभरी मिलों में लाभ के मकसद से बाजार तंत्र ने किस तरह नगरों को बुरी तरह प्रभावित, पीड़ित किया है, यह आसानी से महसूस किया जा सकता है। पूंजीवादी छाया में होने वाला नगरीकरण सिर्फ और सिर्फ भेदभाव व असमानता को ही बढ़ावा देता है। एंजेल और मार्क्स ने जिन साझा विचारों पर अपनी राय दी है, वे हैं– अंधभक्ति (Fetishism), वर्ग (Class), अभ्यास (Practice) और प्रजातियां (Species)।

'वस्तुओं के प्रति अंधभक्ति' मार्क्स के मौलिक विचारों में से एक है। कैपिटल के पहले अध्याय के अंत में वह पूंजीवादी व्यवस्था में वस्तुओं के स्वरूप की संक्षिप्त चर्चा करते हैं, लेकिन सामान्य जीवन और ज्ञान पर इसके प्रभाव को देखते हुये हम इस मूल संदेश को और विस्तार से समझ सकते हैं। यह इस बात पर जोर देता है कि दुनिया हमारे सामने किस तरह पेश आती है। यह बिन्दु बताता है कि भले ही उनकी उपस्थिति वास्तविक महसूस होती है, लेकिन असल में उनमें सत्यता का अभाव भी महसूस होता है। मार्क्स मानते हैं कि इस शब्दस्मृतिलोप से पार पाते ही हम अपनी दुनिया के वास्तविक रूप को देखने समझने लगते हैं और इसके बाद दुनिया में हमारा स्थान पहले से कहीं बेहतर होने की ओर बढ़ने लगता है। वस्तुतः दृष्टिकोण का यह बदलाव समाज, सामाजिक और राजनीतिक कार्यों पर हमारी पकड़ को मजबूत करने के साथ यह तय करता है कि बेहतर व्यवस्थाओं के लिये हमें क्या–क्या बदलाव करने चाहिये। इस विचार के केन्द्र में यह विरोधाभास भी है कि वस्तुएं वे उत्तेजक चीजें हैं, जो एक ही समय में अतिसंवेदनशील और सामाजिक भी हैं। मार्क्स कहते हैं कि श्रम के ये उत्पादन अवास्तविक नहीं हैं, क्योंकि वे मनुष्य द्वारा विशिष्ट कार्य अभ्यास का परिणाम हैं। पूंजीवादी दुनिया एक ओर एक वस्तु या एक प्रक्रिया है जिसके परिणामों का मूल्यांकन–निरीक्षण संभव है, वहीं यह आभासी भी है, जिसका निरीक्षण संभव नहीं है। यहां हमें वैश्विक अनुभव और उत्पादन को एकसाथ लेकर गूढ़ परिणाम तक पहुंचने की आवश्यकता होती है, जैसा मार्क्स के 50 साल बाद के क्वांटम सिद्धांतकारों ने किया। उन्होंने अणु कणों की स्थिति को लेकर जो परिणाम हासिल किये, वह पूंजीवादी व्यवस्था में मार्क्स के दोहरे परिणाम की याद दिलाते हैं। क्वांटम सिद्धांत के अनुसार स्थानिक विसारक तरंगें और स्थान विशिष्ट कण आपस में टकराते हैं, लेकिन उनका सहअस्तित्व बना रहता है। यहां मार्क्स के अनुरूप तरंगों के स्थान पर प्रक्रियाओं और कणों के स्थान पर वस्तुओं को रखकर देखें तो समान रूप से विद्यमानता एवं निर्धारक व्यवहार को समझा जा सकता है। बोर और हाइजेनबर्ग की तरह मार्क्स ने वस्तु से उद्देश्य के विभाजन, प्रभावी कारकों के जरिये वास्तविकता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। संक्षेप में मार्क्स यह मांग करते हैं कि हम समग्र स्वरूप में अनुभव और अपरिवर्तनीय प्रक्रियाओं को समझने की ओर बढ़ें।

20वीं सदी के कुछ कल्पनाशील मार्क्सवादी विचारकों ने इसी पहलू का सहारा लिया। जॉर्ज लुकास अपने चर्चित शोधपत्र "Reification and the Consciousness of the Proletariat" में इतिहास और वर्ग विभाजन की स्थिति को स्पष्ट करते हैं। वह लिखते हैं कि यहां हमारा लक्ष्य स्वयं को मार्क्स के आर्थिक विश्लेषण पर आधारित रखते हुये वस्तुओं के प्रति अंधभक्ति से उपजने वाली समस्याओं पर चर्चा करना है, जिसमें वस्तुपरक स्वरूप एवं इससे जुड़े व्यक्तिपरक पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाये। दशकों बाद मार्क्सवादी नगरीय विशेषज्ञ लीफेवर ने भी स्थान के उत्पादन पर चर्चा करते हुये द्विपक्षीय विश्लषण किया।

## 14.3 नगरवाद के जरिये मार्क्सवाद की पुनर्परिभाषा (Redefining Marxism via Urbanism)

जेफ्री सी आईजेक (1987: Power and Marxist theory: a realistic view, 215-217, Cornell University press, Ithaca) तर्क देते हैं कि स्थान को वस्तुओं के रूप में, भवनों, स्मारकों, सार्वजनिक स्थलों, प्रतिवेश और नगरीय अवस्थापना को सिर्फ स्थानपरक वस्तुओं के रूप में नहीं देखना चाहिये। इसके बजाय इनकी मौलिकता पर विचार करते हुये इन वस्तुओं के मूल तक पहुंचना चाहिये, जैसाकि मार्क्स ने भी सलाह दी थी। वह बताते हैं कि स्थानिक महत्व में अव्यक्त सामाजिक संबंधों (वर्ग संबंधों सहित) के खुलासे और स्थान उत्पादन व इनसे जुड़े सामाजिक संबंधों (जो उत्पादन प्रक्रिया में विशेष अंतर्विरोधों को जन्म देते हैं) पर ध्यान देने के बजाय हम स्थान को ही महत्व देने लगते हैं। हम स्थानिकता के पहलू से ही विचार करने लगते हैं और इस तरह वस्तुओं के प्रति अंधभक्ति की तरह यहां स्थान के प्रति अंधश्रद्धा का शिकार हो जाते हैं।

निराकार स्थान और गैर लाभ–हानि के रूप में नगरीकरण का अब कोई विकल्प नहीं है। नगरीय गतिशीलता हमेशा असमान रूप से ही उभरती है। उद्योगों में भाई–भाई की प्रतिद्वंद्विता की ही तरह नगरों के बीच भी प्रतिद्वंद्वात्मक संघर्ष जन्म लेता है। नगरीकरण में प्रतिद्वंद्विता एक ऐसा अनिवार्य बल बन गया है जो नगरों को नैतिकता के अभाव की ओर ले जाता है। ऐसी स्थिति में वॉल स्ट्रीट वह अदालत बन जाती है, जहां विजेता और हारने वाले का फैसला किया जाता है। मूडी जैसी निवेश एजेंसी हर वक्त किसी शहर पर यह देखने के लिये नजर बनाये रखती है कि वह व्यापार के लिये उपयुक्त है या नहीं, वहां 'विकास' की संभावनाएं हैं या नहीं, नगर की उधार लेने की कितनी क्षमता है, वह आर्थिक रूप से कितना गतिशील हो सकता है। इस सबके बीच डो (एक अमेरिकी बाजार सूचकांक) जहां लगातार 'मोटा' होता जा रहा है, अमेरिकन उद्योग और इनसे जुड़े शहर कमजोर होते जा रहे हैं। और यह कमजोर नगरीकरण मौजूदा अमेरिकी नगरों की परिस्थितियों और यहां रहने वाले लोगों के अनुभवों को भी स्पष्ट करता है।

दुर्बल नगरीकरण नवउदारवादी नगरीय नीतियों की प्रक्रिया का अपरिहार्य परिणाम है। यह ऐसा नगर है, जिसका आकार लगातार घट रहा है और जो व्यापारिक केन्द्र के रूप में स्थापित हो जाता है। इसकी स्थिति के पैमाने में बजट संतुलन की क्षमता, सेवा प्रावधानों में वृद्धि और न्यूनतम लागत हैं। वस्तुतः लागत में कमी ही नगरीकरण का मुख्य मानक है। नगरीय परिषदें हमेशा से ही कॉरपोरेट बोर्ड की नकल करने का प्रयास करते रहे हैं। अपने कॉरपोरेट प्रतिद्वंद्वियों के समान ही उन्होंने भी बेहद तेजी से आउटसोर्सिंग रणनीति अपनानी शुरू कर दी है। इसके तहत चौकीदारी, साफ–सफाई, गलियों के रखरखाव, डाटा प्रोसेसिंग, छोटी प्रशासनिक इकाइयों आदि के काम के लिये अनुबंध के आधार पर सेवाएं ली जा रही हैं। नगर पालिकाओं में भी निर्माण कार्यों के लिये टेंडरिंग के जरिये प्रतिद्वंद्विता को बढ़ावा दिया जाता है। वार्षिक परिणामों में कटौती, अकसर गैरसंघीय निजी फर्मों को आकर्षक सार्वजनिक कार्यों के ठेके मिलना आदि के जरिये शहरी शासन बेहद मामूली दरों पर श्रमिकों की मांग करता है, जबकि उनके श्रम की बदौलत स्वयं पूंजी बनाता है।

नगरों में वेतनभोगियों से मिलने वाला सार्वजनिक राजस्व वित्तीय, बीमा और रियल इस्टेट (Finance, Insurance, Real Estate: FIRE) से जुड़े अभिजात्य वर्ग तक जाता है। इस तरह बिल्डर, निवेशक और डेवलपर विशेष सुविधाओं, करों में छूट आदि का लाभ लेकर वित्तीय जोखिम से बचे रहने के लिये

धन हासिल करते हैं और यह प्रक्रिया नगरीकरण को कॉरपोरेट की मदद की ओर झुकाती है। दुर्बल नगर उत्पादन और नगरीय स्थान के पुनर्निर्माण में धन के पुनर्प्रवाह का साधन बनते हैं, जिसे हेनरी लेफेवर ने पूंजी का दूसरा चक्र यानी "secondary circuit of capital" बताया है। शॉपिंग मॉल, ऑफिस ब्लॉक, कॉरपोरेट गढ़, स्पोर्ट्स स्टेडियम आदि ढांचे नगरों में विकसित होते हैं। सजीव श्रम (परिवर्तनीय पूंजी) से निर्मित लागत बचत को स्थायी माना जाता है, जिसे मूल आधार से अलग ठोस ढांचों में पर्दों में रखा जाता है। यहां सजीव श्रम और स्थान में उपलब्ध निर्जीव श्रम रूपी वस्तुओं के प्रति अंधभक्ति या अत्यधिक लगाव की स्थिति उत्पन्न होती है, जिसे अति संवेदनशील, गैर अवधारणात्मक वास्तविकता के तौर पर परिभाषित किया गया है।

वाल स्ट्रीट और वित्तीय पूंजी की अतिवृद्धि ने अमेरिकी अर्थव्यवस्था, श्रम और अमेरिकी नगरों के स्वरूप व कार्यशैली पर गहरा असर डाला है। मुद्रास्फीति के चलते रोजगार कभी भी छिन सकता है। मुद्रास्फीति का वर्तमान निर्धारण निश्चित रूप से इसकी अंतर्निहित शक्तियों की जानकारी देता है। मुद्रास्फीति ही वित्तीय संपत्तियों के मूल्य में वृद्धि, इसके कारण शासक वर्ग की कमजोरी और विशेषाधिकारों के बढ़ावे की वजह बनती है। संघीय व्यवस्था का झुकाव व्यवसाय और फायर (FIRE) की ओर रहता है। मुद्रास्फीति का छल और मौद्रिक मिथ्या उपचार इस झुकाव को इस तरह बनाये रखता है कि कार्यकारी परिषदें पूंजीवादियों के सामान्य मसलों के प्रबंधन और निस्तारण को तत्पर रहती हैं। यहां यह समझाने के प्रयास किये जाते हैं कि संपत्ति के मूल्यों में बढ़ोतरी करना उचित और आवश्यक है, लेकिन श्रम मूल्य में बढ़ोतरी को तुरंत मुद्रास्फीति का कारण बता दिया जाता है। यह अनुचित तर्क वास्तविक ब्याज दरों को हमेशा उच्च स्तर पर बनाये रखता है। इसके लिये वर्ग संघर्ष के रूप में निरंतर किराये में बढ़ोतरी जैसे कदम उठाये जाते रहते हैं।

शहरी कामगार वर्ग के संबंध में दो पहलू सामने आते हैं। पहला वास्तविकता और लोगों के जीवन के अनुभव तथा दुर्बल शहरीकरण के टकराव से सामने आता है। दूसरे शब्दों में प्रक्रियाएं और अनुभव किस तरह वास्तविक हो जाते हैं, 'एक्सचेंज' में होने वाले बदलाव कैसे जीवन को प्रभावित करते हैं और रोजमर्रा के उपयोग मूल्य पर लगातार असर डालते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शहरों में वर्ग (Class) शहरीकरण और शहरीवाद की भाषा में कूटरचित है। पूंजी लगातार लाभकारी उद्यमों का पीछा कर रही है, जबकि शेयर और ब्याज लाभांश किराये के लिये कमायी जाने वाली आय से समृद्ध होते जाते हैं। स्थान के उपयोग पर पूंजीवाद के किराये का जोर उसे विशेष स्थान में बदल देता है, जिसके चलते मात्रात्मक स्थान और गुणवत्तात्मक स्थान के बीच संघर्ष उपजता है। यह वह संघर्ष है, जिससे मौजूदा अमेरिकी कामगार वर्ग अपने घर और कार्यस्थल पर जूझ रहा है। वर्ग का तात्पर्य, जब कुछ लोग अपने अनुभवों (वंशानुगत या सहभागित) के आधार पर अपनी पहचान और अभिरुचियों को आपस में और उन लोगों के समक्ष महसूस व जाहिर करते हैं, जिनके विचार उनसे अलग (आमतौर पर विरोधी) हैं। यह एडवर्ड थॉमसन का प्रसिद्ध वर्ग दृष्टिकोण है जो उन्होंने The Making of the English Working Class में प्रस्तुत किया था। थॉमसन याद दिलाते हैं कि मार्क्स ने किस तरह वर्ग को किसी वस्तु के रूप में परिभाषित करने के बजाय एक प्रवाहमान संबंध के रूप में बताया। थॉमसन कहते हैं, यदि हम इस संबंध को किसी भी क्षण रोकने या इसकी गहराई में जाने की कोशिश करते हैं तो भी यह विश्लेषण से बच निकलता है।

मार्क्स ने स्वयं वर्ग के बिन्दु पर विचार अधूरा छोड़ दिया था, उन्होंने न तो कोई समाजशास्त्रीय परिभाषा दी, न ही सामाजिक विभाजन को लेकर कोई सिद्धांत दिया। हालांकि, बाद में, जब पूंजीवादी व्यवस्था पर तार्किक मॉडल सामने आया, तब ऐतिहासिक पूर्वपदों को छोड़ते हुये एक विश्लेषणात्मक मॉडल तैयार किया गया। आजीविका कमाने का लक्ष्य (जैविक एवं भौतिक पहलुओं के साथ) वह सार्वभौमिक बिन्दु है, जो विभिन्न समुदायों, अलग–अलग वर्णों (त्वचा रंग), लिंगों, परंपराओं के लोगों को विभिन्न नगरों में, विभिन्न कार्यों में साथ ले आता है। बाल्टीमोर, डेटन, डुलुथ, दुर्हाम, जर्सी सिटी, न्यू यॉर्क, मिनीपोलिस सेंट पॉल, लॉस एंजेलेस, ओकलैंड, पोर्टलैंड आदि नगरों में यह व्यवस्था अप्रत्याशित रूप से देखी जाती है। (Hennery Lefebvre (2016), Marxist struggle and the city (in book encyclopaedia of urban studies),Sage publication)

मार्क्स कहते हैं कि यह व्यावहारिक संघर्ष, व्यावहारिक संयोजन का परिणाम है कि लोग स्वयं को नये सिरे से गढ़ने के साथ खुद की प्रकृति को और दुनिया को बदलते हैं। क्रिया व्यवहार ही वह माध्यम है जो हमें मानवीयता की ओर ले जाने के साथ एकतरफा होने से बचाता है। यह संवेदनशील बनाने के साथ, स्वयं को और अपने आसपास मौजूद अन्य लोगों को समझने के लिये आवश्यक है। मार्क्स बताते हैं कि इस सबके बीच सामाजिक संघर्ष भी पनपते रहते हैं। जीविका वेतन अभियान ने असंतोष की भावनाओं को आवाज देने के लिये एक प्रकार का राजनीतिक मंच भी उपलब्ध कराया है। कई बार यह असंतोष शहरी सार्वजनिक स्थानों में, गलियों में भी नजर आता है। यहां वेतन और आवास संबंधी शिकायतें (फ्रेडरिक एंगेल्स के अनुसार पूरे शहरीकरण के सवाल से शिकायतें) एक ऐसी सांस्थानिक संस्कृति पनपती है, जो विस्तार पर जोर देती है। शाब्दिक और राजनीतिक सन्दर्भ प्रगतिशील रणनीतियों, जैसे– जीविका वेतन (कार्यक्षेत्र में और कार्यक्षेत्र के बाहर) अभियान को बढ़ावा देते हैं। और यह गतिशीलता ही फिर सन्दर्भों को आकार देती है, जो शहरीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं और लोकतंत्र को भी गतिशीलता देते हैं।

संभवतः नगरों को ऐसे स्थानों और संस्थानों की आवश्यकता होती है, जहां यह कार्य स्वतंत्रतापूर्वक हो सके और यह कार्य नगर और इसके जीवन में हवा–रोशनी पहुंचाने का माध्यम बनते हैं। दुर्बल नगरीकरण ने अमेरिका के अधिकतर शहरों को अंधकारयुक्त और दमघोंटू बना दिया है। यहां ऐसे समरूप स्थान सर्वव्यापी हैं, जिनमें वित्तीय गतिविधियों को संचालित किया जाता है। और यदि इनके बीच कोई सार्वजनिक स्थान पनपता भी है तो वह बंजर रह जाता है और असंवेदनशीलता की सघनता को बढ़ाता है। यहां कामकाजी लोगों की भीड़ घंटों तक काम में जुटी रहती है और बदले में बेहद अल्प पारिश्रमिक पाती है, यह भीड़ इस मामूली पारिश्रमिक के लिये लंबी दूरी तय करती है। और जब वे घर लौटते हैं तो उनका वेतन किराये में ही निकल जाता है। ऐसा कम ही देखने को मिलता है कि शहरों में नैतिकता और सौंदर्यपूर्ण स्थानों का सहअस्तित्व हो, जहां जाति, वर्ग के आधार पर भेद न हो और जो कल्पनाओं व राजनीतिक सहयोग से उन्नति की ओर अग्रसर हों और जहां विशेषाधिकार प्राप्त चंद लोगों के बजाय अधिसंख्य आबादी के लाभ की भी चिंता की जाये।

वर्ष 1844 में मार्क्स ने लिखा, वस्तुवादी दुनिया की व्यावहारिक रचना, कृत्रिम प्रकृति का निर्माण इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य जागरूक एवं प्रबुद्ध जीव है। मार्क्स इस बात पर जोर देते थे कि हम किस तरह जागरूकतापूर्वक एवं व्यावहारिकता के साथ अपनी गतिशील एवं वास्तविक दुनिया का निर्माण करते हैं। हम किस तरह बाहरी वास्तविकता और अपने विचारों के साथ संघर्ष करते हैं। मार्क्स यह भरोसा दिलाते

हैं कि अगर हम सामूहिक रूप से स्वयं को और स्वयं के विचारों के अनुरूप उत्पादित करते हैं तो हम अपने जीवन का निर्माण ठीक उसी तरह कर सकते हैं, जैसा हम देखते, सोचते, महसूस करते हैं। मार्क्स के अनुसार दुनिया की सभी समस्याएं (वास्तविक सामाजिक अंतर्द्वंद्व) व्यावहारिक तरीकों –मनुष्य की व्यावहारिक ऊर्जा– के जरिये समाधानयोग्य हैं। हमारे अपने दैनिक, भौतिक उद्यम में आवश्यक शक्तियों की वास्तविकता हमारी जैविक गतिविधियों में मूर्त हैं। हमारा कठोर परिश्रम, हमारा दैनिक संघर्ष, अपने जीवन को विचारपूर्वक आकार देने की प्रक्रिया हमें विशिष्ट बनाती है और हमें अन्य जंतुओं से अलग खड़ा करती है। हम खास हैं, क्योंकि (जैसा मार्क्स कहते हैं) हम गतिशील शक्तियों से परिपूर्ण हैं। मार्क्स इस बिंदु पर जोर देते हैं, क्योंकि वह मानते हैं कि कई कामगार और अन्य लोगों के लिये इन गतिशील शक्तियों को नकारा जाता है, अनदेखी की जाती है और दबाने की कोशिश होती है। उनकी इन ताकतों को कठोर जीवनचर्या में सुप्त कर दिया जाता है। घटिया आवास, असंतुलित आहार भी ऐसे ही जरिये हैं। मार्क्स कहते हैं, संवेदनशील और वास्तविक होने के लिये व्यक्ति को अपनी सीमाओं से बाहर की संवेदनाओं तक पहुंचना होगा। संवेदनशील बाहरी दुनिया तक पहुंचना ही हमारा संघर्ष है। ऐसी दुनिया, जहां सभी लोगों से समन्वय किया जाता है, जिसे महसूस करने के लिये, वहां तक पहुंचने के लिये जुनून की आवश्यकता होती है। मार्क्स कहते हैं कि यह जुनून, जुझारूपन ही व्यक्ति की आवश्यक शक्ति है जो उसे हमेशा उद्देश्य की प्राप्ति के लिये प्रेरित करती है। यहां वह मनुष्य के असंतुष्ट होने की विलक्षण शक्ति पर जोर देते हैं। वह बताते हैं कि भौतिक रूप से सर्वाधिक असंतुष्टि से पीड़ित लोगों को इस शक्ति से अलग किया जाता है। हालांकि, मार्क्स यहां पूंजी से इतर बात करते हैं और उनके विचार कुछ अस्पष्ट भी प्रतीत होते हैं, लेकिन यह लगता है कि वह कामगारों के जैविक–भौतिक चरित्र के बजाय स्वतंत्र जागरूक गतिविधियों के संघर्ष की बात कर रहे हैं। वस्तुनिष्ठ वास्तविकता (बाहरी उद्देश्य और दुनिया जो हमें घेरे रहती है और सामाजिक जीवन को संदर्भित करती है) मुक्त जागरूक गतिविधियों और संघर्ष को परिस्थितियों में बांधती हैं। सन्दर्भ भी इसमें बाधा बनते हैं और पूंजीवादी व्यवस्था में सन्दर्भ बड़ी आबादी के लिये यही काम करते हैं। लेकिन सन्दर्भ और पर्यावरण मुक्त जागरूक गतिविधियों को सशक्त भी बना सकते हैं, संघर्ष और मानवीय चिंतन को पोषण दे सकते हैं और उन वास्तविक शक्तियों को प्रेरित कर सकते हैं जो सही काम करने, न्याय पाने और वर्गसंघर्ष को खत्म करने में मदद करती हैं।

मार्क्स के विचार समाज और पर्यावरण में उन परिस्थितियों, संभावनाओं की जड़ों की तलाश करते हैं जो मानवीय जुनून, अभिलाषाओं, लालसा, स्वप्न देखने की क्षमता और इनके अनुरूप व्यावहारिक कार्य करने की संभावनाओं को न सिर्फ प्रोत्साहित करें, बल्कि लक्ष्य तक पहुंचायें। वह ऐसे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्थान की वकालत करते हैं, जहां अब तक साजिशों और डर से घिरे रहे लोगों के लिये कुछ रोमांच की संभावना उपलब्ध हो। वह ऐसे राजनीतिक, भौतिक स्थान पर जोर देते हैं, जहां देखने, अनुभव करने, सुनने, सूंघने, इच्छा जताने, व्यवहार करने और प्रेम की भावनाएं पोषित हों और ये सभी व्यक्तिगत मानवीय अंगों के रूप में विकसित होकर सिद्धांतकार इन पर अमल करने का काम करें। यहां यह सवाल उठता है कि किसी नगर के लिये इन सब बातों का क्या अर्थ हो सकता है? संभव है कि यह काल्पनिक हो, लेकिन यह एक ऐसी व्यवस्था की ओर इशारा करता है, जहां मानवीय संघर्ष और अनुभव को महत्व मिलता हो, जहां जीवन अवास्तविक पर्दों के पीछे ढकी हुयी नहीं हो, जहां वास्तविक, भौतिक, नागरिक, सांस्कृतिक स्थान उपलब्ध हों जो विविध मानवीय इच्छाओं को पर्याप्त अवसर प्रदान करने में सक्षम हों। ऐसी व्यवस्था जहां कामगारों की दुनिया सेहतमंद हो, किसानों का ऐसा बाजार जहां भले ही फल–सब्जियां कम और गंदे हों फिर भी वे ताजे हों और उनका स्वाद बेहतरीन हो। समकालीन

सुपर मार्केट चेन में इन वस्तुओं को प्रसंस्करण के नाम पर लंबे समय तक रखा जाता है, जिसके लिये सिर्फ उन वस्तुओं का चयन किया जाता है जो पूरी तरह सर्वोत्तम हों, और 'स्पेसीमेन' की तरह उनका उत्पादन किया जाता हो, लेकिन वे स्वादरहित हो जाते हैं। मार्क्स ऐसे पर्यावरण के विकास पर जोर देते हैं जो हमारी संवेदनाओं को बढ़ावा देता है, उन्हें समृद्ध, जागरूक और वास्तविक जीवन के प्रति और अधिक खुला बनाता है। ऐसा समाज, ऐसा नगर और ऐसा पर्यावरण संभव है कि कुरूप हो, लेकिन यही हमारे अभीष्ट इच्छाओं, संघर्षों और सपनों को पूरा करेगा।

मार्क्स हमें अपने लिये स्वतंत्र, खुले समाज की कल्पना करने की चुनौती देते हैं, जो सबके लिये समान हो, वर्गविशेष के लिये नहीं, जहां अवसरों की पर्याप्त उपलब्धता हो, जहां किसी का एकाधिकार न हो। मार्क्स नगरों के भविष्य की चिंता करने वालों को भी चुनौती देते हैं कि वे ऐसे नगरीकरण का निर्माण करें, जो खुला हो और जहां इच्छाओं–जुनून का प्रोत्साहन हो। यही विचार माइक डेविस की हालिया पुस्तक 'Latino Populations In The Big US City, Magical Urbanism' में नजर आते हैं। माइक इस बात पर जोर देते हैं कि लैटिन लोगों को अमेरिकी नगरों के भविष्य की बहस के केन्द्र में रखा जाये। ये वे लोग हैं, जिन्होंने एंग्लो मध्यवर्गीय लोगों द्वारा छोड़े गये नगरीय इलाकों को फिर आबाद किया है। इन गुमनाम नायकों की लघु उद्यमिता उस लंबे संघर्ष की कहानी है, जिसके जरिये उन्होंने अपने असल घरों से दूर अपने नये घर विकसित किये। फ्लोरेंस, वेर्नोन, वॉट्स और लॉस एंजेलस के पुराने औद्योगिक क्षेत्र में पुराने घरों को इन लोगों ने चमत्कारिक रूप से पुनर्जीवित किया, मरम्मत की, टपकती छतों, घिस चुके अगले हिस्सों, बरामदों का पुनर्निर्माण किया और कैक्टस–झाड़ियों से भर चुके आंगनों को फिर हरा–भरा किया। डेविस बताते हैं कि यह मेक्सिको और सेल्वाडोर के लोगों की उद्यमशीलता थी कि उन्होंने खतरों को जानते हुये भी चुनौती स्वीकार की, भूमि अधिकार न होने, नागरिक तौर पर उपेक्षा होने और बेहद न्यून संसाधनों के बावजूद परस्पर सहयोग से आवास तैयार किये। ये निडर आवास निर्माता अपने घरों तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि नगरीय सार्वजनिक स्थानों के उपयोग और निर्माण में भी उन्होंने योगदान किया है। लैटिन लोग गलियों में घूमना–फिरना पसंद करते हैं और जीवन को खुलकर जीते हैं, यह अलग बात है कि अब तक उन्हें अमेरिकी नगरों की बदनाम प्रजातियों के रूप में ही जाना गया है। एंग्लो परिवारों ने खुद को एकल घरों तक ही सीमित कर लिया है। उनका जीवन जहां निरुत्साहित सा नजर आता है, वहीं डेविस के अनुसार लैटिन लोग ऊर्जापूर्ण और भरपूर शहरी जीवन चाहते हैं। लैटिन लोगों का यह व्यवहार बताता है कि किस तरह अमेरिकी महानगरीय लोगों के निराशायुक्त जीवन को रचनात्मकता और संघर्षपूर्ण गतिविधियों के जरिये फिर उत्साह से भरा जा सकता है।

मार्क्स अपने जीवनकाल में यह सब नहीं देख सके, लेकिन वह जानते थे कि यही वह मुख्य कारण है, जिसके कारण उपेक्षित और असंतुष्ट लोग बड़े शहरों की ओर आकर्षित होते हैं। न्यू यॉर्क, लॉस एंजेल्स जैसे बड़े नगर मानवीय संपर्क के बड़े केन्द्र बन जाते हैं, जहां संघर्ष के जुनूनी केन्द्रों के तौर पर लोग अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिये निरंतर संघर्ष करते हैं। वास्तविक जीवन इन नगरों के सूक्ष्म केन्द्रों में रहता है। ऐसे में समाजवाद के समुचित विकास के लिये इन सूक्ष्म केन्द्रों को वृहद् स्वरूप देने की आवश्यकता है। यहां मार्क्सवादियों के लिये निर्देशात्मक सुझाव मिलते हैं। संघर्ष और अंतर्विरोध का आमतौर पर अर्थ खतरे से होता है, कई बार अन्याय, मृत्यु भी इसके अर्थ बन जाते हैं, लेकिन हमेशा यह जीवन को स्पष्ट करता है और मानवीय असंतुष्टि को समझाता है। विडंबना यह है कि ये सभी पहलू ही जीवंत नगरीकरण के अहम बिंदु बन गये हैं, जिसके चलते महानगरों में ऊजा समस्याग्रस्त नजर आती

है। कोई भी पहले से यह नहीं जानता है कि उसके संघर्ष का अंत कहां पर होगा या शहरीकरण और शहरीवाद कब श्रेष्ठता को हासिल कर पायेंगे। यहां यह महत्वपूर्ण है कि असंतुष्टि की इस भावना को सही दिशा में संचालित किया जाये, सही दुश्मन की पहचान हो और रचनात्मक रूप से निरंतर इसे आगे बढ़ाया जाये। मार्क्स कहते हैं कि हमारे पास पर्याप्त मात्रा में श्रमिक, सामुदायिक संगठक, विभिन्न बुद्धिजीवी, प्रतिबद्ध नागरिक, कामगार, दैनिक वेतनभोगी हैं, जो इस तरह की परिस्थिति को बेहतर समझ सकते हैं और पूर्ववर्ती अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं के विश्लेषण के साथ ऐसे वास्तविक स्थानों का निर्माण करने की दिशा में काम कर सकते हैं, जहां लोगों के लिये जीवन के बेहतर अवसर उपलब्ध हों।

1960 के बाद मार्क्सवाद और नगर पर काम करने वाले तीन अहम शोधकर्ता हेनरी लीफेवर, डेविड हार्वे और मैनुएल कैस्टेल्स हैं। उनका अध्ययन स्थान की अवधारणा में नगरों के केन्द्र को मार्क्सवाद के बुनियादी प्रस्ताव के रूप में स्थापित करता है। 1980 में डेविड हार्वे और कैस्टेल्स के अध्ययन से साफ हुआ कि मार्क्सवादी नगरीय सिद्धांत की सीमाएं मुख्यतः विषयवस्तु की न्यूनता, इतिहास के साथ संयोजन का अभाव और मार्क्सवादी सामाजिक सिद्धांत के केन्द्रीय मुद्दों (आधार, ढांचा, एजेंसी आदि) पर प्रतिबंध रहीं। इन परतों के चलते ही मार्क्सवाद गतिरोध की स्थिति में पहुंच गया, जिसे हार्वे ने 'मार्क्सवादी भूलभुलैया' करार दिया है, जबकि कैस्टेल्स ने सकारात्मक रूप में इसे 'नया अस्तित्व' बताया है। हार्वे ने अपनी पुस्तक *social justice and the city* में शहरी घटनाक्रमों को मार्क्स के तरीकों से देखने के परिणामों, लाभ–हानियों के बारे में विस्तार से बताया है। यहां वह हेनरी लीफेवर के साथ सहमत नजर आते हैं और बताते हैं कि मैं सिर्फ हेनरी लीफेवर के कार्य पर भरोसा कर सकता हूं। हार्वे ने पाया कि मार्क्सवादी सिद्धांत सामाजिक प्रक्रियाओं और स्थानिक स्वरूपों के संबंध को स्थापित करते हुये विश्लेषण का बेहतर ढांचा दे सकता है। इसी तरह कैस्टेल्स ने नगरीकरण की प्रक्रिया को समझने के लिये सैद्धांतिक विकास किया। उन्होंने भी हेनरी लीफेवर की सराहना करते हुये लिखा है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन बुद्धिजीवियों ने आज के दौर की शहरी समस्याओं को समझने के तरीकों की बुनियाद पहले ही रख दी थी।

## 14.4: निष्कर्ष (Conclusion)

गिडन्स को छोड़कर अधिकतर शोधकर्ताओं ने मार्क्सवादी सामाजिक सिद्धांत का नगरवाद में स्थान के विचार से वर्णन किया है। मार्क्सवादी सामाजिक सिद्धांत नगर के विचार से जुड़ जाता है और यह 16वीं सदी के बाद पूंजीवाद तथा नगरों के इतिहास के साथ अच्छी तरह संबद्ध, युक्तिसंगत लगता है। ऐसे में यह माना जा सकता है कि एक विचार के रूप में नगरों के अध्ययन के लिये मार्क्सवाद उपयुक्त हो सकता है।

## 14.5 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

- नगरों पर मार्क्सवाद की बुनियादी अवधारणा क्या है?
- नगरों के विषय में मार्क्स के विचार की समालोचना करें।
- मार्क्स के बाद के काल में मार्क्सवादी विचारकों द्वारा किये गये विश्लेषण पर प्रकाश डालें।

## 14.6 सहायक अध्ययन सामग्री


- Katznelson Ira (2005), Marxism and the City, oxford publication, New York
- Jeffery C. Isaac (1987), Power and Marxist theory: a realistic view, 215-217, Cornell University press, Ithaca

इकाई–15

# नगरीय शासन का अर्थ एवं सिद्धांत, भारत में नगरीय शासन
# (Meaning and Principle of Urban Governance, Urban Governance in India)

इकाई की रुपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 परिचय

15.2 भारत में नगरीय शासन का इतिहास

15.3 नगरीय शासन का अर्थ एवं सिद्धांत

15.4 भारत में नगरीय शासन

15.5 व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण

15.6 मुद्दे एवं दृष्टिकोण

15.7 निष्कर्ष

15.8 अभ्यास प्रश्न

15.9 भावी अध्ययन

## 15.0 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे कि–

1. नगरीय शासन क्या है?
2. भारत में नगरीय शासन विकास कैसे हुआ?
3. भारत के संदर्भ में नगरीय शासन` अर्थ, सिद्धांत और कार्य।
4. भारत में नगरीय शासन से जुड़े प्रमुख मुद्दे।

## 15.1 परिचय (Introduction)

भारत अब सिर्फ गांवों का देश नहीं रह गया है। नयी सहस्राब्दी के मौजूदा दौर में 30 करोड़ से अधिक भारतीय 3700 से अधिक कस्बों और नगरों में रहते हैं। 1947 में भारत की आजादी के वक्त यह संख्या 60 लाख ही थी। (chakrabati). पिछले 50 साल में भारत की आबादी ढाई गुना से अधिक बढ़ी है, लेकिन नगरीय भारत का विकास पांच गुना से अधिक हुआ है। आंकड़ों के लिहाज से देखें तो भारत में नगरीय आबादी दुनिया में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। यही नहीं, भारत की जनसंख्या फ्रांस, जर्मनी और यूनाइटेड किंगडम की संयुक्त जनसंख्या से भी करीब दोगुनी है।

वर्ष 2018 के आंकड़े बताते हैं कि एशिया में नगरीय आबादी की प्रतिशतता 48.6 प्रतिशत है, जबकि भारत में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 31.6 फीसदी शहरों में रहती है। शहरीकरण के विकास के

साथ प्रशासनिक विकास की भी जरूरत महसूस होती है। यही वजह है कि शहरों में नगरीकरण की व्यवस्था स्वतंत्र शाखा के रूप में उभरी। इसका सिद्धांत सामाजिक अध्ययन का एक प्रचलित माध्यम बन गया है, जिससे न सिर्फ शहरीकरण की तेज गति बल्कि नगरीय भारत के संदर्भ में आवश्यक प्रेरणा को समझने का प्रयास किया जा सकता है (kundu,2011). सार्वजनिक प्रशासन तंत्र के एक हिस्से के रूप में उभरा नगरीय शासन स्वयं में एक विशेष क्षेत्र बनकर उभरा। नगरीय प्रशासन से जुड़ी विभिन्न समस्याओं के निस्तारण के लिये इसके साथ विशेष व्यावहारिकता की आवश्यकता होती है। नगरीय विकास प्रबंधन से शहरीकरण, पर्यावरणीय विचार, नगरीय राजनीति, नगरीय अवस्थापना ढांचा, नगरीय नियोजन, अनौपचारिक क्षेत्रों के विकास आदि मुद्दों का हल निकाला जा सकता है (Rao, 2015). इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सक्षम, प्रभावी और जिम्मेदार नगरीय स्थानीय प्रशासन की स्थापना जरूरी है। 1992 में भारतीय संविधान के 74वें संशोधन में नगर निकायों को नगरीकरण के तीसरे स्तर के रूप में परिभाषित किया गया है और इन्हें सांस्थानिक ढांचे में उपयुक्त शक्तियां भी प्रदान की गयी हैं। इस संविधान संशोधन ने भारत में नगरीय शासन की अवधारणा को विस्तार दिया। नगरीय नगरीकरण की विशेषता इसका नागरिक केन्द्रित दृष्टिकोण और ऐसे मसलों का निस्तारण करना है जो मांगों से उभरते हैं। नगरीय क्षेत्र उत्पादन और बाजारी गतिविधियों के जरिये किसी राज्य के राजस्व में भी महत्वपूर्ण योगदान करते हैं।

हालांकि, 19वीं सदी के भारतीय विद्वानों ने नगरीय शासन और राजनीति को तुच्छ एवं अप्रासंगिक मानते हुए नकार दिया था। (Leonardo, 2008). इनमें से अधिकतर ने यह निष्कर्ष उच्चाधिकारियों के निजी दस्तावेजों, भारत सरकार की रिपोर्ट आदि के जरिये लंदन और दिल्ली में नीतियों के निर्धारण के अध्ययन के बाद निकाला। तत्कालीन ब्रिटिश नीतियों में बताया गया था कि 'स्थानीय स्वायत्त नगरीकरण एक ऐसा पेड़ है, जिसकी जड़ें कभी मजबूत नहीं होतीं। ऐसे में आधुनिक भारत की राजनीति में इस तरह की व्यवस्था का पहचान नहीं पा सकी।' अन्य विद्वान स्थानीय स्वशासन की विफलता के कारण गिनाते हुए कहते हैं, 'निगरानी का ऐसा कठोर तंत्र विकसित किया गया था, जो सबसे छोटे नगर निकाय से लेकर भारतीय संघीय सचिव तक जाता था।' इस गैरजरूरी नियंत्रण और बजट के अभाव के कारण जनसुविधाओं के अवसर खत्म होते गये। नगर निकायों की इस बेरंग तस्वीर में कुछ सुधार तब हुआ, जब 1899 में लॉर्ड कर्जन ने भारत में बतौर वायसराय जिम्मा संभाला। कर्जन ने स्थानीय नगरीकरण को गतिशील और प्रभावी बनाने के प्रयास किये। यद्यपि स्थानीय स्वशासन की नीतियां न तो आधिकारिक उद्देश्यों की पूर्ति करने में ही सक्षम थीं, न ही राष्ट्रवादी विचारों को बढ़ावा देने के योग्य, फिर भी निरंतर मूल्यांकन और संशोधनों के जरिये यह स्थानीय राजनीति और प्रशासन के लिये पोषक बन गयी।

## 15.2 भारत में नगरीय शासन का इतिहास (History of Urban Governance in India)

सिंधु घाटी सभ्यता को आदिम युग की सबसे परिष्कृत, व्यवस्थित और सुनियोजित नगर व्यवस्था माना जाता है। फेयरसर्विस (1971) ने मोहनजो–दारो को महान सभ्यता बताया है। वह कहते हैं कि यदि मोहनजो–दारो में 40 हजार के करीब आबादी के रहने का वैज्ञानिकों का अनुमान सही है तो नगर को अजेय बनाये रखने, वहां सामने आने वाली समस्याओं के निस्तारण और लोगों पर नियंत्रण के लिये कोई न कोई प्रशासनिक व्यवस्था भी अवश्य रही होगी, जो केन्द्रीकृत रूप से पूरे नगर का प्रतिनिधित्व करती होगी। अलग–अलग दौर में नगरों की भूमिका लोगों के कल्याण के लिये सुविधाएं मुहैया करवाने की रही। यहां हम विभिन्न काल में नगरों में नगरीकरण व्यवस्था के बारे में जानेंगे:

## मुगलकाल (The Mughal Period)

मुगलकाल में प्रशासनिक तंत्र का संचालन कोतवाल करता था। आईन–ए–अकबर में अब्दुल फजल ने नगरों के आठ कार्यों की जानकारी दी है। इनमें चोरों की पहचान करना, दामों पर नियंत्रण रखना और तौल–माप की निगरानी करना, नगर में रात्रि गश्त, नगर में घरों की पूरी जानकारी रखना, अनजान लोगों पर नजर रखना, बेघर लोगों में से चुनकर जासूसों की नियुक्ति करना, गुमशुदा लोगों के सामान–संपत्ति को संरक्षा में रखना, पशुधन को मारने पर रोक लगाना (गाय, बैल, भैंस) और महिलाओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध जलाये जाने से रोकना (सती करना) शामिल हैं (Fazal,1949). मजूमदार (2004) ने अपने अध्ययन में पाया कि कोतवाल का एकमात्र कार्य लोगों की संपत्ति की रक्षा और नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना था। यद्यपि कोतवाल लोगों की अन्य सुविधाओं के लिये भी कार्य करते थे, लेकिन यह तंत्र कैसे काम करता था, इसका कोई दस्तावेजीकरण उपलब्ध नहीं है। हालांकि, मुगल काल के बाद के दौर में यह प्रशासनिक व्यवस्था ध्वस्त हो गयी। मजूमदार बताते हैं कि मुगल नगरीकरण के विघटन और उस दौर में मची उथल–पुथल में यह स्वशासन संस्था नगरों और गांवों से पूरी तरह खत्म हो गयी। (ibid).

## दूसरा चरण (Phase 2) 1688–1882

यद्यपि ब्रिटिश शासनकाल में कई विकासपरक कार्यक्रम संचालित किये गये, लेकिन नगरीय शासन के पुनर्गठन को लेकर कोई कदम प्रारंभ में नहीं उठाया गया। हालांकि, 1688 में पहली बार मद्रास सिटी में नगर निकाय बनाया गया, जिसका उद्देश्य चार्टर 1687 के तहत ब्रिटेन में तय नीतियों का पालन करना था। नगर निकाय के गठन का मुख्य मकसद लगान, कर की वसूली और भारत के शिक्षित लोगों की मदद से राजनैतिक लक्ष्य हासिल करना था। जनसुविधाओं के नाम पर तब पांच शिलिंग (तत्कालीन ब्रिटिश मुद्रा) कर वसूला जाता था, लेकिन निरंकुश नगरीकरण ने इस पर भी छह पेंस बढ़ा दिये थे (Maheswari, 2000). निकाय गठन के अन्य कारणों में स्थानीय संस्थानों में नागरिक और सफाई संबंधी कार्यों को लागू करना था। वर्मा (1998) के अनुसार इसका उद्देश्य महामारी पर रोकथाम और नाले–नालियों की व्यवस्था, पेयजल वितरण व्यवस्था व राजकोष को बढ़ाना था। लेकिन स्थानीय शासन को न तो कभी पूर्ण सक्षम बनने दिया गया, न ही उसे 'वीटो' शक्ति दी गयी। उनके वित्तीय संसाधन बेहद सीमित थे और उन पर जिला कलेक्टर का नियंत्रण था।

1726 में नगर निकायों को मेयर कोर्ट का स्वरूप दिया गया, जिसे निश्चित न्यायिक अधिकार और शक्तियां प्रदान की गयीं। इससे निकाय को प्रशासनिक–न्यायिक स्वरूप मिला। भारत में 1793 में चार्टर एक्ट 1793 के पारित होने के बाद निकायों को वैधानिक श्रेणी दी गयी। इस एक्ट के तहत तीन निकाय मद्रास, कलकत्ता और बंबई का गठन किया गया। इन निकायों को करवसूली का अधिकार प्रदान किया गया। यद्यपि प्रारंभ में भारतीय नागरिक नगर निकाय की इन व्यवस्थाओं पर मोहित दिखे, लेकिन राष्ट्रवादी विचारधारा के उभार ने उनमें स्वनिर्धारित व्यवस्था के विकास के लिये संघर्ष को प्रेरित किया। इस तरह स्थानीय निकायों की शुरुआत से ही वे ब्रिटिश नगरीकरण से पृथक्कीकृत होने लगे। वायसराय काउंसिल के सदस्य सैमुअल लैंग ने बजट भाषण में स्थानीय निकायों के जरिये स्थानीय संसाधनों के उपयोग की वकालत की। 1870 में लॉर्ड मेयो के प्रस्ताव में स्थानीय निकायों के लिये चुनाव प्रक्रिया प्रारंभ करने की बात कही गयी। इस प्रस्ताव में नगर निकायों को वीटो जैसी शक्तियां प्रदान की गयीं, जिससे स्थानीय निकायों के कार्यों और वित्तीय विकेन्द्रीकरण को बल मिला। हालांकि, यह प्रस्ताव

नगरीय और ग्रामीण दोनों तरह के निकायों पर लागू था, लेकिन इसके कोई निश्चित मानक और सिद्धांत तय नहीं थे।

## लॉर्ड रिपन के प्रस्ताव के बाद का काल (Post Lord Rippon Resolution Period)

लॉर्ड रिपन ने ईमानदारी से उन कमियों को दूर करने का प्रयास किया, जो पहले नगर निकायों के प्रशासन में सामने आयी थीं। यही वजह है कि उन्हें नगरीय स्थानीय नगरीकरण का जनक माना जाता है, क्योंकि उन्होंने ही स्थानीय स्वशासन की अवधारणा को पुष्ट किया। लॉर्ड रिपन ने इस बात पर जोर दिया कि स्थानीय स्वशासन का एकमात्र उद्देश्य भारतीयों को अनी समस्याओं, मसलों के समाधान और निस्तारण के प्रबंधन के लिये योग्य बनाना था। लॉर्ड रिपन के अनुसार, 'मैं भारतीय समुदाय से बुद्धिमान, प्रभावी लोगों का चयन कर उन्हें क्रमिक प्रशिक्षण देना चाहता हूं, ताकि वे स्थानीय मामलों के प्रबंधन में सक्रिय रूप से सहभागिता निभा सकें।' रिपन ने इस बात पर स्पष्ट रूप से जोर दिया कि उनकी ओर से प्रशासन के विकेन्द्रीकरण की जो सिफारिश की गयी है, उसका मकसद प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करना नहीं, बल्कि राजनीतिक और लोकप्रिय शिक्षण के साधन के तौर पर स्थानीय नगरीकरण को बतौर साधन प्रयोग करना है। स्थानीय स्वशासन की स्थापना का विचार नया नहीं था। भारत के बड़े शहरों में नगर निकाय पहले से थे, लेकिन वहां नगर आयुक्त की नियुक्ति सरकार यानी ब्रिटिश नगरीकरण द्वारा ही की जाती थी। इसी तरह ग्रामीण क्षेत्रों में भी सफाई, सड़क निर्माण, शिक्षा आदि मुद्दों के समाधान के लिये समितियां बनायी गयी थीं। लेकिन यहां भी आधिकारिक नियंत्रण और निगरानी बना रहता था। चूंकि अधिकारियों के नियंत्रण में जो समितियां आती थीं, उनका दायरा बहुत बड़ा था। इसके अलावा अधिकारी अलग–अलग स्थानों पर लोगों की अलग–अलग जरूरतों से भी अधिक वाकिफ नहीं थे। ऐसे में लॉर्ड रिपन ने 1882 में अपने प्रस्ताव में इन सब बाधाओं को दूर कर स्वशासन को और अधिक स्वायत्त बनाने का प्रयास किया।

ग्रामीण क्षेत्रों में जिला परिषद और स्थानीय परिषद के प्रतिनिधि स्वरूप में तहसील और तालुक स्थापित थे। यहां सदस्य नगरीकरण द्वारा मनोनीत किये जाने के बजाय लोगों द्वारा चुने जाने थे। इसी तरह नगरों में नगर निकायों की शक्तियां और जिम्मेदारियां अधिक थीं। वहां कुछ सदस्यों का सीधा निर्वाचन और कुछ का नगरीकरण द्वारा मनोनयन करने की व्यवस्था दी गयी। अध्यक्ष के गैर अधिकारी होने पर जोर दिया गया। इसी तरह मनोनीत सदस्यों की संख्या कुल सदस्य संख्या की एक तिहाई से अधिक नहीं होनी चाहिये। स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क, संचार का प्रबंधन स्थानीय निकायों को सौंपा गया। उन्हें निश्चित वित्तीय अधिकार दिये गये, जबकि नगरीकरण यानी सरकार को निगरानी का अधिकार दिया गया। स्थानीय निकायों को सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्र रखा गया, लेकिन यदि निकाय अपने कार्य और जिम्मेदारियों का निर्वहन ठीक से नहीं कर पाते तो उन्हें भंग करने का अधिकार सरकार को था। हालांकि, सामान्यतः सरकार स्थानीय निकायों के मामलों में दखल नहीं देती थी। 1883–85 में स्थानीय स्वशासन एक्ट भारत के विभिन्न प्रांतों में पारित किया गया। पथप्रकाश, गलियों की सफाई, शिक्षा, स्वास्थ्य, जल वितरण आदि कार्य मद्रास, पंजाब और बंगाल के स्थानीय निकाय शासनों को सौंप दिये गये।

## भारत सरकार एक्ट (Government India Acts) 1919, 1935

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद का काल भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के लिये वरदान साबित हुआ, क्योंकि इसी दौर में स्वायत्त राज्य और संवैधानिक व्यवस्थाओं में सुधारों की मांग तेजी से उठी। भारतीय लोग

मॉर्ले–मिन्टो सुधारों से संतुष्ट नहीं थे। सिंह (2000) बताते हैं कि प्रशासनिक शाखाओं में भारतीयों के बढ़ते प्रभाव और स्वायत्त नगरीकरण संस्थाओं के क्रमिक विकास ने भारतीयों को उत्तरदायी भारत सरकार की मांग के लिये प्रेरित किया। इसके पीछे मूल विचार यह था कि भारतीयों को भी विकास का अवसर मिलना चाहिये।

भारतीयों को उन्नति के अवसर प्रदान करने की सकारात्मक सोच के साथ ब्रिटिश नगरीकरण ने सरकार के जनकार्यों से जुड़े अधिकारों को कम कर स्थानीय निकायों को ये अधिकार दिये। इस तरह मोंटेग–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुयी। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने 16 मई 1918 को सरकार के गैरजरूरी नियंत्रण को कम करने और सरकार व स्थानीय निकायों के बीच कार्यों के विभाजन को पुनर्निर्धारित करने की नीति लागू करने की घोषणा की। एक्ट 1920 में लागू हुआ, जिसके तहत स्थानीय निकायों को स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, सड़क, कृषि, स्थानीय निर्णयों समेत कई अधिकार पहले से अधिक स्वायत्त रूप में दिये गये। इस तरह कई संशोधनों से होते हुए स्थानीय निकाय स्वतंत्र नगरीकरण की स्थिति तक पहुंचे। निकायों में नगरीकरण के लिये किये जाने वाले मनोनयन की पूर्ववर्ती प्रक्रिया भी धीरे–धीरे समाप्त होती गयी।

## पुनर्निर्माण काल (Period of Reconstruction) 1935–1949

1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट ने स्थानीय नगरीय इकाइयों को नवीनीकृत किया। इस एक्ट ने स्थानीय निकायों को और शक्तिसंपन्न करने के साथ प्रांतीय प्रशासन को स्वायत्त बनाते हुए द्वैध नगरीकरण (Diarchy) व्यवस्था को समाप्त किया। हालांकि, पूर्ववर्ती संशोधनों की तरह 1935 के इस एक्ट से भी बहुत करिश्माई बदलाव नहीं आये, लेकिन तुलनात्मक रूप से पिछले एक्ट के मुकाबले इसने स्थानीय नगरीय निकायों में विकास को बढ़ावा दिया।

## स्वतंत्रता पश्चात व्यवस्था (Post Independence Setup) 1950 और आगे

1950 में भारतीय संविधान के लागू होने के बाद का काल स्थानीय नगरीकरण के लिये बेहतर रहा। संवैधानिक संशोधनों के जरिये स्थानीय निकायों को राज्य सूची में शामिल किया गया। इसके अलावा राज्य नीतियों के नीतिनिर्देशक तत्वों के अनुरूप तीसरी पंचवर्षीय योजना में नगरों के नगरीय नियोजन और विकास को प्राथमिकता में रखा गया। हालांकि, नगरीय क्षेत्रों की प्रगति ग्रामीण क्षेत्रों के मुकाबले धीमी थी, इसकी वजह यह थी कि लोकतंत्र जनसमूह का प्रतिनिधित्व करता है और उस दौर में दो तिहाई से अधिक आबादी गांवों में ही रहती थी। यही वजह थी कि दो पंचवर्षीय योजनाओं के बीत जाने के बाद ही नगरीय व्यवस्थाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जा सका। 80 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था ने उदारीकरण की ओर पहला कदम बढ़ाया और नगरीय नीतियां आर्थिक नीतियों में शामिल हो गयीं। सातवीं पंचवर्षीय योजना में इस दिशा में एक कदम और बढ़ाया गया, जब नगरीय विकास की प्रक्रिया में निजी उपक्रमों को निवेश की संभावनाएं दी गयीं। योजना में आवास संबंधी सभी नीतियों को पुनर्गठित कर आमूल परिवर्तन किया गया और आवास निर्माण संबंधी जिम्मेदारी निजी क्षेत्र को दी गयी। इस प्रक्रिया में सरकार की भूमिका सिर्फ आवासीय सुविधाओं के लिये जरूरी संसाधन उपलब्ध कराने, गरीबों के लिये सब्सिडाइज्ड आवास तय करने और निर्माण कार्यों को सुचारु रूप से संपन्न कराने हेतु अधिग्रहण के माध्यम से भूमि उपलब्ध कराने तक ही रखी गयी। (GoI: 7th Plan).

आवासीय क्षेत्रों में निवेश और बाजारी मांग को देखते हुए नेशनल हाउसिंग बैंक की स्थापना की जरूरत इस योजना में जतायी गयी। इसके अलावा इसमें National Urban Infrastructure Development Finance Corporation की स्थापना पर भी जोर दिया गया, जिससे स्थानीय निकायों की अवस्थापना विकास की क्षमता को बढ़ायी जा सके, जिसमें विशेषतः जल वितरण, सीवरेज सुविधा शामिल थीं। 1988 में पहली नेशनल हाउसिंग पॉलिसी (NHP) घोषित की गयी। इस नीति का मकसद आवासहीनता को खत्म करना, आवासों की अनुपलब्धता की स्थिति को दूर करना और बुनियादी जरूरतों के न्यूनतम स्तर को सबके लिये उपलब्ध कराना था। इस नीति में सरकार की भूमिका निर्धनतम और पिछड़े वर्गों, अन्य आय वर्गों और निजी उपक्रमों को निर्बाध और बढ़ी मात्रा में भूमि व अन्य सुविधायें उपलब्ध कराने की थी (Ibid). IDSMT सातवीं पंचवर्षीय योजना में भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण योजना के तौर पर शामिल रही।

## 15.3 भारत में नगरीय नगरीकरण का अर्थ एवं सिद्धांत (Meaning and Principles of Urban Governance in India)

नगर पालिकाएं और नगर निगम भारत में वैधानिक निकाय हैं। हालांकि, अधिसूचित क्षेत्र समिति (Notified Area Committee) और नगरीय क्षेत्र समिति (Urban Area Committee) में पूर्ण या आंशिक रूप से मनोनीत प्रतिनिधि भी होते हैं। भारतीय संविधान के 74वें संशोधन (1992) के अनुसार नगरों में स्थानीय नगरीकरण के रूप में नगर पालिकाओं अथवा नगर पंचायतों की स्थापना की जानी चाहिये, जो निर्वाचित इकाइयां हों। 1994 में राज्य निकाय विधानों में व्यापक बदलावों से पहले स्थानीय निकाय राज्य सरकार के पूरी तरह अधीन काम करते थे, जो इन्हें विस्तार देने अथवा इसके कार्यक्षेत्रों में बेरोकटोक, विधायी प्रावधानों में बिना किसी बदलाव के ही दखल देने में सक्षम थी।

नगरीय शासन को नगरीय क्षेत्रों के परिषदीय कार्यों को संचालित करने वाले राजनीतिक, वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकरण के तौर पर भी परिभाषित किया जा सकता है। इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि यह उन तंत्रों, प्रक्रियाओं, संस्थाओं और संबंधों का सघन स्वरूप है, जिनके जरिये नागरिकों और समूहों को अधिकार, सुविधाएं प्रदान की जाती हैं और जिससे उनके बीच का अंतर समाप्त होता है। इस प्रकार नगरीय शासन सरकार का ही छोटा स्वरूप है, जिसके जरिये जनसंसाधनों एवं समस्याओं का प्रबंधन प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। यह क्षमतावान नगरीकरण है, जो समाज की महत्वपूर्ण जरूरतों को पूर्ण कर सकता है। नगरीकरण का प्रभावी लोकतांत्रिक स्वरूप जनसहभागिता, उत्तरदायित्व एवं पारदर्शिता से ही संभव हो पाता है। ऐसे में अच्छे नगरीय शासन के कुछ महत्वपूर्ण गुण निम्नवत हैं:

1. सहभागिता (Participatory)
2. सततता (Sustainable)
3. वैधानिक एवं जनता के बीच स्वीकृत (Legitimate and acceptable to public)
4. पारदर्शी (Transparent)
5. समानता एवं न्याय को बढ़ावा देना (Promoting equity and equality)
6. संसाधनों के विकास एवं नगरीकरण के तरीकों के विकास में सक्षम (Able to develop the resources and methods of governance)
7. लैंगिक संतुलन को बढ़ावा देना (Promoting gender balance)

8. विभिन्न दृष्टिकोणों के प्रति स्वीकार्यता (Tolerance and acceptance to diverse perspectives)
9. सामाजिक उद्देश्यों के लिये संसाधनों को गतिशील करने में सक्षम (Able to mobilize resources for social purposes)
10. कानूनी नियमों द्वारा संचालित (Operates by rule of law)
11. संसाधनों का क्षमतावान एवं प्रभावी उपयोग (Efficient and effective use of resources)
12. उत्तरदायित्व, भरोसा और सम्मानजनक (Engenders and commands respect and trust accountable)
13. स्थानीय समाधानों को समझना और इनकी जिम्मेदारी लेना (Able to define and take ownership of local solutions)
14. सामर्थ्यवान एवं सुविधाएं देने वाला (Enabling and facilitative)
15. नियंत्रक के बजाय नियामक (Regulatory rather than controler)

वेबस्टर के नये शब्दकोष के अनुसार उत्तरदायित्व वह गुण अथवा स्थिति है, जिसका अर्थ उत्तरदायी होना है। यहां उत्तरदायी उन सभी को हर वो जरूरी सूचना उपलब्ध कराने के लिये हमेशा तैयार रहता है, जो उन्हें चाहिये होती है। वह अपने कार्यों, असफलता और सफलता के लिये स्वयं जिम्मेदार है। ऐसे में जन उत्तरदायित्व नगरीय शासन के लिये सबसे अहम गुण बन जाता है, क्योंकि स्थानीय नगरीकरण की सेवाओं से ही लोग प्रत्यक्ष, सबसे पहले, त्वरित, दैनिक रूप से एवं व्यक्तिगत रूप से जुड़ते हैं। यह नगरीकरण का वह हिस्सा है, जिसे नागरिक आसानी से समझ सकते हैं और इसे लेकर अपनी राय दे सकते हैं, जिससे वे आसानी से अपनी शिकायतें बता सकते हैं, जो उनकी बातों पर आसानी से प्रतिक्रिया दे सकता है और जिसके विरुद्ध वे तब आसानी से प्रतिकार व्यक्त कर सकते हैं, जब वे असंतुष्ट हों। वस्तुतः यह लोकतंत्र की बुनियाद है, जिसके जरिये जनता के राजनीतिक सिद्धांत सामने आते हैं और जिन्हें वे निरंतर विकसित करते रहते हैं। यह लोगों के द्वारा नगरीकरण की अभिव्यक्ति है।

पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व दो ऐसे पहलू हैं, जिन्हें एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि यदि कोई पारदर्शी है तो वह स्वतः ही उत्तरदायी भी हो जाता है। बिना पारदर्शिता के कोई उत्तरदायी नहीं हो सकता है। अच्छे नगरीय शासन में निम्न वजहों से पारदर्शिता होना अत्यावश्यक हैः

1. जनता का विश्वास जीतना
2. जनता की गैरजरूरी आलोचना से बचना
3. जनता के प्रति उत्तरदायी होना

## 15.4 भारत में नगरीय शासन (Urban Governance in India)

संवैधानिक विकास एवं नगरीय शासन के विकास में बहुत निकटता है। भारत के सन्दर्भ में नगरीय शासन का राजनीतिक आधार अंग्रेजी की उपयोगिता था, जैसाकि जॉन स्टुअर्ट मिल (Mill 1861) के लेखन 'local representative bodies' में परिलक्षित हुआ है। मिल के अनुसार स्थानीय नगरीकरण का एक प्रमुख कारण नागरिकों को शिक्षा प्रदान करना भी था। 1882 में रिपन के प्रस्ताव में भी समान सोच सामने आती है। रिपन के प्रस्ताव में निरंकुश जिला प्रशासन के स्थान पर स्थानीय नगरीकरण के माध्यम से स्वतंत्र राजनीतिक जीवन की छोटी शुरुआत की परिकल्पना की गयी है। नगर निकाय

जनगणना के आधार पर निर्धारित नगरीय क्षेत्रों में ही होते हैं। किसी क्षेत्र को जनगणना के आंकड़ों को दृष्टिगत रखते हुए निम्न मापदंडों के अनुसार ही नगरीय क्षेत्र घोषित किया जाता है:

1. पांच हजार की आबादी
2. गैर कृषि क्षेत्रों में आबादी का घनत्व न्यूनतम चार सौ हो

हालांकि, कुछ राज्य सरकारों ने आयसृजन की क्षमता के स्तर और उपरोक्त जनसंख्या मानकों से अधिक पर ही नगर निकाय की स्थापना की व्यवस्था भी दी थी। ऐसे में 74वें संविधान संशोधन में भी नगर निकायों की तीन श्रेणियां तय की गयी हैं:

1. परिवर्तनशील नगरीय क्षेत्रों में नगर पंचायत स्थापित होंगी
2. छोटे नगरीय क्षेत्रों में नगर पालिकाएं, और
3. बड़े नगरीय क्षेत्रों में नगर निगम स्थापित किये जायेंगे

राज्य सरकारों ने 74वें संशोधन से अप्रभावित निर्णय लेने का अधिकार दिया, लेकिन दो समस्याओं का समाधान नहीं निकल सका। 1. नगर पालिका परिषदों और नगर निगमों के कार्यों में अंतर और 2. छावनी परिषदों के भविष्य में लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया। ब्रिटिश व्यवस्था में नगर निकाय नगरीकरण के अधीन बेहद सीमित दायरे में सीमित अधिकारों के साथ काम करते थे (Dillon's Rule) जिससे इनकी अभिरुचियां एवं विविधता भी सीमित होती थी। दूसरी ओर, जर्मन सिद्धांत में स्थानीय निकायों को हर उस कार्य, गतिविधि के संचालन का अधिकार है, जो किसी उच्च वैधानिक संस्था के अधिकार क्षेत्र अथवा संवैधानिक प्रावधानों में शामिल नहीं हों। उदाहरण के लिये, भारत में शुरूआती निकाय विधान में निकायों को स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति, जनकल्याण, जनसुविधाएं, सफाई व्यवस्था आदि का जिम्मा देने का प्रावधान था (e.g. Bengal Municipal Act, 1932, Section 108) लेकिन ऐसा करने से संविधान में बतायी गयीं राज्य सूची के कार्यों की पूरी शृंखला निकायों में शामिल हो जाती (Datta 1982).

भारत में नगरीय शासन के आंतरिक रूप से तीन अहम कारक हैं:

1. पहला बल 1991 के आर्थिक उदारीकरण के दौर में सामने आयी सुधारवादी प्रक्रियाओं और नीतियों को नियंत्रित करता है
2. दूसरा बल विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे वैश्विक संस्थानों की मदद से अच्छे नगरीकरण के संचालन को निर्धारित करता है
3. तीसरा बल उन नगरीय सुधार कार्यक्रमों का है, जिन्हें भारतीय सरकार ने लागू किया है, उदाहरण के लिये जवाहरलाल नेहरू नेशनल अर्बन रिन्यूअल मिशन (JNNURM) जो वर्ष 2007 में शुरू हुआ, जिसके बाद Smart Cities Mission (SCM), AMRUT, HRIDAY, SBM आदि योजनाएं–नीतियां संचालित की गयीं

इन तीन बलों, कारकों ने एकल अथवा संयुक्त रूप से भारत में नगरीय स्थानीय शासन को परिवर्तित किया है। उदाहरण के लिये, सार्वजनिक उपक्रमों को जनता की नयी जरूरतों के प्रबंधन के हिसाब से पुनर्गठित किया गया, निजी उपक्रमों की सहभागिता बढ़ायी गयी, हितधारकों की व्यवस्था के हिसाब से सेवा नियमों के नये स्वरूप, सरकारी संस्थानों की गतिविधियों को गैरराजनीतिक करते हुए आर्थिक लक्ष्यों की ओर मोड़ना, राजनीतिक दखलंदाजी को कम करते हुए क्षमता में और अधिक बढ़ोतरी करना, कारपोरेट समूहों द्वारा संचालित होने वाली वित्तीय व्यवस्था को बढ़ावा देना और स्थानीय शासन का नये स्वरूप में प्रबंधन करना आदि शामिल हैं। नगरीय भारत की स्थानीय शासनव्यवस्था में इस तरह के

परिवर्तनों से भारत वैश्विक व्यवस्था का हिस्सा बना। यूनाइटेड किंगडम, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया स्थानीय नगरीय शासन व्यवस्था में नये स्वरूपों को अपनाने में सबसे आगे हैं। नगरीय शासन अवधारणा का उभार वर्ष 1990 और 1992 के रियो अर्थ समिट व 1996 में इस्तांबूल में आयोजित हैबिटेट–4 कांफ्रेंस से माना जा सकता है। इन आयोजनों में केंद्रीय सरकारों के अलावा स्थानीय नगरीकरण और गैर सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों को भी शामिल किया गया। इसका मकसद इन सभी को एक मंच पर लाकर सतत पर्यावरणीय एवं सामाजिक विकास की दिशा में मिलकर काम किया जा सके। यह वह दौर था, जब स्थानीय सरकारें विखंडन एवं और अधिक बदले हुए स्वरूप के अभियानों से जूझ रहे थे और स्थानीय नगरीकरण नगरीय शासन में बदल चुके थे। इन बदलावों की प्रेरणा सरकार के निचले स्तर पर वित्तीय प्रतिबंधों (विशेषकर यूरोपीय देशों में) के कारण मिली। इसके फलस्वरूप स्थानीय नगरीकरण ने विभिन्न सेवाओं के संचालन के लिये निजी समूहों से करार किये, जिम्मेदारियों को स्वयंसेवी संस्थाओं का सौंपा गया और बेहद सीमित संसाधनों के क्षमतावान उपयोग के जरिये आंतरिक स्पर्धा को जन्म दिया।

## 15.5 व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis of the System)

एक अच्छा नगरीकरण निश्चित रूप से वह है, जो भ्रष्टाचारमुक्त हो और विकासशील हो। विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे कई राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों ने कर्मचारियों की अक्षमता, पारदर्शिता के अभाव, सार्वजनिक कोष के दुरुपयोग, लालफीताशाही जैसी कमियों को दूर करने के लिये अच्छे नगरीय शासन की अवधारणा को बल दिया। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार अच्छा नगरीकरण जनता के प्रति उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, क्षमता और जवाबदेह होता है। नगरीय क्षेत्रों के विकास के प्रति सार्वजनिक, निजी और सरकारी उत्तरदायित्व तथा चढ़ती हुई विकास दर अच्छे नगरीकरण के प्रतीक हैं।

### चीन और भारत (China and India)

लियॉन वैन डैन डूल, फ्रैंक हेंड्रिक्स, अल्बर्टो जियानोली और लींज शैप ने भारत और चीन में नगरीय विकास की तुलना की है। भारत की तरह ही चीन भी बाजारी अर्थव्यवस्था में योजनागत परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है और परिवर्तन की इस प्रक्रिया में पूंजी, श्रम, तकनीक, सूचनाओं की गतिशीलता जैसे पहलू भी शामिल हैं। ऐसा आकलन है कि वर्ष 2025 तक ढाई अरब एशियन शहरवासी हो जायेंगे, जो पूरी दुनिया की नगरीय आबादी का लगभग 54 प्रतिशत होगा। भारत और चीन दोनों का ही मिलाकर कुल एशियाई नगरीय आबादी में 62 प्रतिशत हिस्सा होगा, जबकि वैश्विक आबादी के लिहाज से यह संख्या 40 फीसदी तक होगी (dobbs, 2010).

वर्ष 1950 में भारत चीन के मुकाबले अधिक नगरीय देश था। यहां 17 प्रतिशत आबादी शहरों में रहती थी, जबकि चीन में यह आंकड़ा 13 प्रतिशत ही था। लेकिन 1950 से लेकर 2005 तक चीन ने भारत के मुकाबले कहीं अधिक तेजी से शहरीकरण किया है। इससे वहां शहरीकरण की दर 41 प्रतिशत तक जा पहुंची है, जबकि भारत में यह दर 29 प्रतिशत ही है। मैकेंजी (2010), ग्लोबल इंस्टीट्यूट के हालिया शोध के अनुसार चीन की नगरीय आबादी में 2025 तक 40 करोड़ की बढ़ोतरी होने की संभावना है जो मौजूदा नगरीय जनसंख्या से करीब 64 फीसदी अधिक होगी, इसी तरह भारत में 21 करोड़ आबादी के नगरीय होने का पूर्वानुमान है जो मौजूदा नगरीय जनसंख्या से 38 प्रतिशत अधिक होगी। इतिहास में इससे पहले कभी दो सबसे बड़े देश (जनसंख्या के लिहाज से) एक ही समय में और एकसमान गति से इस तरह शहरीकरण की प्रक्रिया से नहीं गुजरे हैं। इस प्रक्रिया के चलते दोनों देशों में होने वाले

परिवर्तन वैश्विक अर्थव्यवस्था पर असर डालने वाले होंगे और निवेशकों के लिये ये नये अवसरों को प्रदान करेंगे।

भारत में नगरीय प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के वर्ष 2005 से 2025 तक छह फीसदी की दर से बढ़ने का अनुमान है। जबकि चीन की जीडीपी में 7.3 प्रतिशत की वृद्धि संभव है। भारत के शहरों में घर लेने का निर्णय करने वाले और इस पर खर्च करने वाले लोगों की संख्या बढ़ सकती है, इससे 2025 तक भारत में आठ से नौ करोड़ तक गृहस्वामी संभव हैं। चीन में अभी साढ़े पांच करोड़ मध्यमवर्गीय गृहस्वामी हैं, जिनकी संख्या 2025 तक 28 करोड़ तक जाने की संभावना है, जो कुल नगरीय आबादी का तीन चौथाई से अधिक होगा। प्रति व्यक्ति नगरीय आय और मध्यमवर्गीय परिवारों की आय में बढ़ोतरी व्यापारिक दृष्टि से नये बाजार उपलब्ध कराती है। तो भारत और चीन की परिस्थितियों में किसका बाजार व्यापार को सबसे अधिक लाभ दे सकता है? यह सवाल उठना लाजिमी है। भारत में 2025 तक परिवहन, संचार, खाद्यान्न, स्वास्थ्य सेवाएं सबसे बड़े बाजार होंगे, इनके बाद आवास, सुविधाएं, मनोरंजन, शिक्षा जैसे पहलू आयेंगे। यहां तक कि मौजूदा दौर में धीमे नजर आने वाले बाजार भी उस दौर में विश्व के दूसरे हिस्सों के मुकाबले बड़े बाजारों की उपलब्धता का जरिया बनेंगे, क्योंकि तब तक वे शहरीकरण की दौड़ में तेजी से शामिल हो चुके होंगे। इसी तरह चीन में परिवहन, संचार, आवास, सुविधाएं, निजी जरूरतों के सामान, स्वास्थ्य, शिक्षा और मनोरंजन का बड़ा बाजार उपलब्ध होगा। इसके अतिरिक्त दोनों ही देशों में नगरीय अवस्थापना भी बहुत बड़ा बाजार होगा। उदाहरण के लिये, 2005 से 2025 तक भारत में प्रतिवर्ष सात करोड़ से नौ करोड़ वर्गमीटर क्षेत्र की आवश्यकता अवस्थापना विकास के लिये होगी। चीन में यह जरूरत दोगुनी यानी 16 करोड़ से 19 करोड़ वर्ग मीटर तक जा सकती है। इसी अवधि में भारत को प्रतिवर्ष 350 से 400 किलोमीटर रेल और भूमिगत मार्गों, सुरंगों का निर्माण करने की जरूरत होगी, दूसरी ओर चीन में यह जरूरत एक हजार किलोमीटर प्रतिवर्ष की होगी।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत और चीन में नये बाजारों के विकास की वजह उनका शहरीकरण है, लेकिन व्यापारिक गतिविधियों के इन बाजारों तक पहुंचने के लिये व्यावहारिक प्रयासों की जरूरत होगी। शहर किस तरह बढ़ रहे हैं और वहां उत्पादकता के परिणाम क्यों, यह कंपनियों के लिये सबसे बड़ा कारक है। इस मामले में चीन भारत के मुकाबले कुछ बेहतर नजर आता है। भारत में जहां अब तक शहरीकरण की दिशा में सीमित ध्यान दिया गया है, चीन ने शहरीकरण की प्रक्रिया को तेजी से अपनाने के साथ शासन, नियोजन, क्षेत्रवार नीतियां, निवेश जैसे शहरों के आंतरिक तत्वों पर भी काम शुरू कर दिया है, जो शहरों को नगरीय स्तर पर और समग्रता में राष्ट्रीय स्तर पर आगे ले जाने में सक्षम हैं।

भारत ने अपने शहरों पर कम निवेश किया है, जबकि चीन ने मांग के अनुरूप निवेश के साथ अपने शहरों को निवेश संबंधी संसाधनों के विकास की स्वायत्ता भी दी है, हालांकि वह स्वयं भूमि संपत्तियों पर निगरानी रखता है और शहरों में वसूले जाने वाले वैल्यू एडेड टैक्स का 25 प्रतिशत हिस्सा राजकोष में जाता है। दूसरी ओर भारत नगरीय अवस्थापना विकास में प्रतिवर्ष 17 डॉलर प्रति व्यक्ति खर्च कर रहा है, जबकि चीन में यह खर्चा 116 डॉलर है। भारत ने अपने शहरों में छोटे स्तर पर शक्तियां, अधिकार और उत्तरदायित्व विकसित किया है, लेकिन चीन में महत्वपूर्ण बड़े शहर प्रांतीय स्तर हासिल कर चुके हैं और वहां मेयर जैसे शक्तिशाली राजनीतिक पद हैं। भारत में नगरीय नियोजन व्यवस्था स्थान की उपलब्धता की मांग को भी पूर्ण कर पाने में विफल रही है, जबकि चीन ने भूउपयोग, आवास

और परिवहन जैसी मांगों के लिये लंबे समय के लिये परिपक्व नगरीय नियोजन तैयार किया है, जिसमें पिछड़े इलाकों में भी व्यवस्थित विकास पर जोर दिया गया है।

दोनों देशों के बीच विरोधाभास यह है कि चीन ने जहां शहरीकरण को आकार दे दिया है, वहीं भारत नगरीय वास्तविकता को लेकर अब भी पूरी तरह जगा नहीं है और न ही अपने शहरों की वित्तीय, सामाजिक परिवर्तन क्षमताओं का आकलन कर सका है। हालांकि, यदि भारत बेहतर नगरीय क्रियान्वयन मॉडल को लागू करे तो इसके अंदर नौकरीपेशा आबादी के बूते जनसांख्यिकीय लाभ लेने की पूरी क्षमता है। अगले एक दशक में ऐसी आबादी की संख्या 25 करोड़ से अधिक होने का अनुमान है। यह अंश चीन से कहीं अधिक है, क्योंकि वहां कामकाजी लोगों की आयु तेजी से बढ़ रही है। 2025 तक चीन की नगरीय आबादी का 28 फीसदी हिस्सा 55 वर्ष या इससे अधिक आयु का हो चुका होगा, जबकि भारत में यह आंकड़ा सिर्फ 16 प्रतिशत रहने का अनुमान है। इस लिहाज से भारत अधिक युवा राष्ट्र होगा। इस लिहाज से यदि भारत अपने शहरों की उत्पादकता को बढ़ाने और सकल घरेलू उत्पाद को बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित करे तो 2005 से 2025 तक भारत 17 करोड़ कामगार हासिल कर सकता है, दूसरी ओर चीन में इस अवधि में यह संख्या सिर्फ पांच करोड़ रहेगी।

## कनाडा और भारत (Canada and India)

कनाडा की कुल जनसंख्या साढ़े तीन करोड़ है जो भारत की जनसंख्या यानी सवा अरब का महज 2.8 प्रतिशत है। कनाडा की मौजूदा जनसंख्या दर 3069 प्रतिवर्ष है, जबकि भारत में यह 3,86,100 प्रतिवर्ष है। इससे आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि कनाडा को भारत के बराबर जनसंख्या हासिल करने में कितने साल लग सकते हैं। भारत को कनाडा की जनसंख्या के बराबर बच्चों को जन्म देने में महज 16 महीने लगते हैं, जबकि कनाडा को भारत में पैदा होने वाले बच्चों की संख्या के बराबर तक पहुंचने में 38 हजार महीने लगेंगे। भारत में प्रति वर्ग किलोमीटर में 421 नागरिक रहते हैं, जबकि कनाडा में यह आंकड़ा मात्र चार का है। भारत में दुनिया की 17 प्रतिशत आबादी रहती है, जबकि कनाडा में यह प्रतिशतता 0.5 है। भारत में 65 वर्ष से अधिक आयु के छह करोड़ 20 लाख लोग रहते हैं, कनाडा में यह संख्या पांच लाख है। कनाडा के सबसे बड़े शहर टोरंटो से भारत के 12 शहर बडऋे हैं, जिनमें कानपुर, लखनऊ, जयपुर, पुणे, सूरत, कोलकाता, चेन्नई, अहमदाबाद, हैदराबाद, बंगलुरू, दिल्ली और मुंबई शामिल हैं।

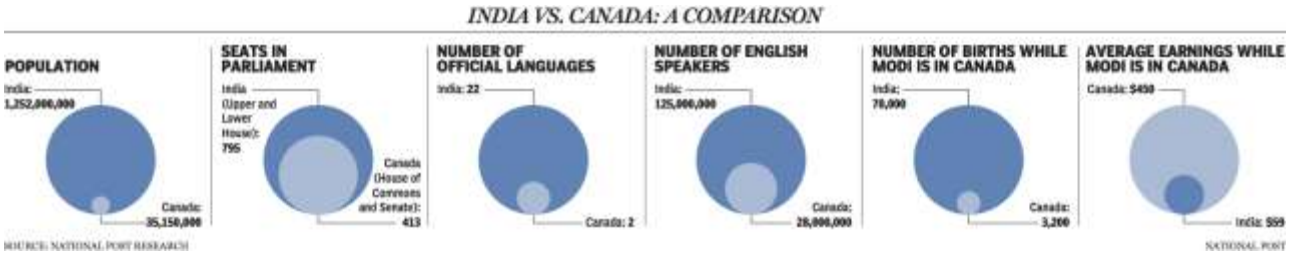


**(Source: www.mediablogspot.com)**

कनाडा की कुल जनसंख्या जितनी है, उतनी भारत के तेलंगाना राज्य में है जो देश का 12वां सर्वाधिक आबादी वाला राज्य है। वहीं, देश के चार बड़े शहरों मुंबई, दिल्ली, बंगलुरू और हैदराबाद की कुल जनसंख्या के बराबर कनाडा की आबादी है। इसी तरह कनाडा के मुकाबले उत्तर प्रदेश में छह वर्ष से

कम उम्र के बच्चों की संख्या कहीं अधिक है, यह प्रदेश भारत का सर्वाधिक जनसंख्या वाला प्रदेश भी है। यही नहीं, भारत में जितने लोग मलयालम बोलते हैं, उतनी ही जनसंख्या कनाडा की है, जबकि यह भाषा भारत में सर्वाधिक बोली जाने वाली नवीं भाषा है।

### वित्तीय संकट (Fiscal Crisis)

अमेरिका में 2008 में सामने आया नगरीय राजकोषीय घाटा संपत्तियों को गिरवी रखे जाने से शुरू हुआ, क्योंकि वहां नगरीय निकाय नगरीकरण राजस्व के सबसे बड़े स्रोत के रूप में प्रॉपर्टी टैक्स को ही महत्व देते रहे हैं। चीन में भी 2008 में ही निकायों पर भारी उधारी हो गयी थी, लेकिन इसका वजह मंदी नहीं बल्कि बिना सोचे–समझे लिये गये कर्जे और राज्य प्रोत्साहित कार्यक्रमों के तहत अवस्थापना में जरूरत से अधिक निवेश रहा। इन कार्यक्रमों को वहां की केंद्र सरकार ने ही वैश्विक मंदी से चीन की अर्थव्यवस्था को बचाये रखने के मकसद से प्रारंभ किया था। दूसरी ओर, भारत में शहर राज्य द्वारा नगर निकायों की शक्तियों को अवरुद्ध किये जाने से अवधारणात्मक रूप से घाटे में ही रहते हैं। अधिकारिता, उत्तरदायित्व और वित्तीय स्वायत्तता के लिहाज से तीनों देशों के नगरीय शासनों की तुलना करें तो इसे इस तरह भी देखा जा सकता है कि शहरों में विभिन्न शक्तियों के संयोजन की उपलब्धता नगरीय वित्तीय संकट को अलग–अलग वजहों और परिणामें से बढ़ावा दे सकती है।

## 15.6 प्रमुख मुद्दे और दृष्टिकोण (Issues and Perspectives)

2011 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल शहरों की संख्या 5161 है, जहां 38.5 करोड़ आबादी रह रही है, जो भारत की कुल जनसंख्या का 27 प्रतिशत है। भारत में दस लाख से अधिक आबादी वाले शहरों की संख्या 2001 में 34 थी, जिनकी संख्या 2015 तक 40 से अधिक होने का अनुमान है। 2025 तक देश की आबादी में 54 करोड़ की बढ़ोतरी और कुल आबादी का आधा यानी करीब एक अरब लोगों के शहरों में बसने की संभावना है। हालांकि, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह स्थिति विस्फोटक हो सकती है। भारतीय शहरीकरण के इस चिंताजनक पहलू को ध्यान में रखते हुए यहां विकास की सतत प्रक्रिया को बढ़ावा देने पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। यहां परिवहन, सीवरेज, जल वितरण, सफाई, जलनिकासी, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास जैसी बुनियादी अवस्थापना जरूरतों के विकास के लिये बहुत भारी निवेश की आवश्यकता है। प्रारंभिक रूप से कई जगह स्थानीय तौर पर शहरीकरण की प्रक्रिाय के दौरान अंतरक्षेत्रीय, आकार, वर्ग वितरण जैसे असंतुलन सामने आये हैं। महाराष्ट्र के पश्चिमी हिस्से, गोआ और गुजरात की ओर नजर डालें तो स्पष्ट होता है कि ये राज्य शहरीकरण की प्रक्रिया को लगभग 40 प्रतिशत तक पूर्ण कर चुके हैं, लेकिन दूसरी ओर ओडिशा और बिहार 13 प्रतिशत के आंकड़े से भी कहीं पीछे हैं। ऐसी स्थिति अंतरक्षेत्रीय पलायन को बढ़ावा देती है (singh and Steinberg, 1996). जरूरत से अधिक श्रमिक वर्ग निर्धन क्षेत्रों से पलायित होकर विकसित हो रहे नगरीय केन्द्रों में रोजगार की तलाश में पहुंचते हैं और उनके कारण शहरों में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी, जब तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में ही रोजगार के समुचित अवसर उपलब्ध नहीं कराये जाते। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भारत में नगरीय जनसंख्या का 39.9 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों के पलायन से मिला है और ग्रामीण क्षेत्रों में शहरों के मुकाबले रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं मिलने के कारण इसके और अधिक बढ़ने की संभावना है। लेकिन यह भी जानना जरूरी है कि नगरीय विकास में योगदान के बजाय इस हिस्से ने नगरीय क्षेत्रों में भी रोजगार के अवसरों को कम

करने के साथ निर्धनता को बढ़ावा दिया है। ऐसे में भारत के सन्दर्भ में नगरीय विकास की सततता सीधे तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से संबद्ध है, विशेषकर पिछड़े क्षेत्रों में।

## 15.7: निष्कर्ष (Conclusion)

राहुल मुखर्जी ने भारत की नगरीकरण व्यवस्था का गहन अध्ययन किया है। अनके अनुसार भारत के कुछ राज्यों में नगरीय शासन की विफलता का एकमात्र कारण राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव रहा है। इसी तरह प्रो. राधाकांत बारिक, जिन्होंने जेपी आंदोलन का ओडिशा में विश्लेषण किया, बताते हैं कि स्थानीय नगरीकरण की विफलता की वजह सत्तासीन दल की बेरूखी और उपेक्षापूर्ण व्यवहार होता है। Annual Survey Of India's City System (ASICS) के अनुसार नियमों, कानूनों, संस्थानों और सांस्थानिक प्रक्रियाओं के मूल्यांकन के लिहाज से बंगलुरू सबसे निम्नतम शहर है। पुणे इस मूल्यांकन में 5.1 रेटिंग के साथ पहले स्थान पर है, जिसके बाद कोलकाता, तिरूअनंतपुरम, भुवनेश्वर आते हैं जिनका तीनों का स्कोर 4.6 है। राजधानी दिल्ली की रेटिंग 4.4 है, जबकि हैदराबाद 4.3, मुंबई 4.2 और चेन्नई को 3.4 रेटिंग मिली। बंगलुरू की रेटिंग 3 रही।

## 15.8 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. नगरीय शासन से आप क्या समझते हैं? भारत में इनका विकास किस तरह हुआ?
2. भारत में नगरीय शासन के चरणबद्ध विकास की व्याख्या करें।
3. अच्छे नगरीय शासन में क्या गुण होने चाहिये? आंकड़ों के आधार पर इनका वर्णन करें।
4. भारत में नगरीय शासन की मौजूदा स्थिति और इनके विकास की व्याख्या करें।

## 15.9 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)

Barik, Radhakant (1977), "Politics of the JP Movement", Radiant Publication, Delhi.

Dobbs,Richard(2010), "The Quest For Good Urban Governance: Theoretical Reflections And..., Mckinsey Global Institute", A Version Of This Article Appeared In The *Financial Times* On May 18, 2010.Https://Www.Mckinsey.Com/Global-Themes/Urbanization/Comparing-Urbanization-In-China-And-India

Kundu, Amitabh (2011), "Trends And Process Of Urbanization In India", Urbanization And Emerging Population Issues, Vol.6, New York.

Mukherji, Rahul (2017), "Bureaucratic Rationality, Political Will And State Capacity", Economic and Political Weekly, Vol.52, Issue No.49

Singh, Kulwant & Steinberg, Florian(Ed) (1996), "Urban India in Crisis", New India International Publication, Delhi

Nagaraja Rao, C. (2015), "Urban Governance in India", Kalpaz Publication, Delhi

Leonardo, John G, (2008), "Urban Government under the Raj A Case Study Of Municipal Administration In Nineteenth–Century South India", Https://Doi.Org/10.1017/S0026749X00004571

Http://Mohua.Gov.In/Upload/Uploadfiles/Files/74th_CAA13.Pdf

Walter A. Fairservis (1971), "The Roots of Ancient India: The Archaeology of Early Indian Civilization", New York, Macmillan.

Xuefei Ren(2015),"City Power And Urban Fiscal Crises: The USA, China, And India",Pages 73-81 | Received 30 May 2014, Accepted 20 Nov 2014, Published Online: 11 Mar 2015

इकाई– 16

# नगरीय नीतियों की प्रकृति, नगरीय विकास कार्यक्रम
## (Nature of Urban Policies, Urban Development Programme)

इकाई की रुपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 परिचय

16.2 नगरीय नीति क्या है, प्रकृति और अवसर

16.3 भारत में नगरीय विकास कार्यक्रम

16.4 नगरीय नीतियां: अंतर देशीय दृष्टिकोण

16.5 भारत में वर्तमान नगरीय विकास योजनाएं

16.6 निष्कर्ष

16.7 अभ्यास प्रश्न

16.8 भावी अध्ययन

## 16.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे:

1. नगरीय नीतियां क्या होती हैं और इनकी प्रकृति व अवसर क्या हैं
2. भारत में नगरीय नीतियों का विकास और इनके हितधारक
3. भारत में संचालित नगरीय विकास कार्यक्रम, इनका उद्देश्य और इनसे जुड़े मुद्दे

## 16.1 परिचय (Introduction)

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात शहरीकरण की प्रक्रिया को गति मिली। 20वीं सदी के अंत में यह बात सामने आयी कि तत्कालीन शहरीकरण की प्रक्रिया की वजह से क्षेत्रीय असमानता और असंतुलन उभरा। इसके बाद की योजनाओं में अन्य उद्देश्यों के अलावा यह लक्ष्य भी महत्वपूर्ण था कि क्षेत्रीय संतुलन (Balance) एवं समन्वय (Co-ordination) बना रहे। हालांकि, नगरीय विकास का घटक आर्थिक विकास से सीधे तौर पर जुड़ा हुआ है। इसकी वजह यह है कि भारत की कुल सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में नगरीय क्षेत्रों की भागीदारी 1950–51 में 29 प्रतिशत थी, जो 1980–81 में 47 प्रतिशत और 2007 में 63 प्रतिशत हो गयी। वर्ष 2021 तक इसके 75 प्रतिशत होने की संभावना है (Planning Commission 2008). यह भी माना जाता है कि जीडीपी में नौ से दस प्रतिशत की विकास दर

भारतीय शहरों को बुनियादी तौर पर अधिक जीवनोपयोगी एवं समावेशी बनाने पर निर्भर है (Planning Commission, Govt. of India 2008). अधिकतर विकासशील देश तेज शहरीकरण के दौर से गुजर रहे हैं, जिसके चलते वहां नगरीय व्यवस्थाओं में निरंतर बदलाव आ रहे हैं। यद्यपि विभिन्न नीतियों को लागू करने का मकसद अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करना होता है, लेकिन इनका संचालन करने वाली राजनीतिक–आर्थिक शक्तियां ही इसमें बड़े अवरोध के तौर पर सामने आती हैं। इसके चलते भारत में अधिकतर नगरों में शहरीकरण की प्रक्रिया नियोजित (Planned) होने के बजाय अनियमित और अनियंत्रित होकर अव्यवस्था में बदल गयी। (Gaganeswar, 1995).

वर्ष 1991 में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण यानी LPG (liberalisation, privatisation and globalisation) की वजह से नीतियों में नगरीय अवस्थापना के वित्तीय निवेश को लेकर बदलाव किये गये। (Mehta and Mehta, 2010). वर्ष 2015 में पहली बार वित्तीय सेक्टर ने शहरों में नगरीय निकायों के जरिये अवस्थापना विकास (Infrastructure Development) के लिये नगरीय सेक्टर से समन्वय प्रारंभ किया। यह नगरीय निकायों के लिये एक नयी दिशा में कदम बढ़ाने जैसा था। इसकी पृष्ठभूमि में हम जानेंगे कि नगरीय निकाय नगरीय विकास प्रक्रिया को लेकर किस तरह नीतियों का निर्धारण करते हैं और इसके लिये क्या–क्या कदम उठाये जाते हैं।

## 16.2 नगरीय नीति, प्रकृति एवं अवसर (Urban Policy, It's Nature and Scope)

नगरीय नीति अवधारणात्मक (Conceptual) एवं व्यवस्थित (Systematic) गतिविधि है, जिसका संचालन नगर निकाय जैसे सार्वजनिक प्राधिकरण (Public Authority) द्वारा किया जाता है (Ministry for Regional Development of the Crezch Republic, 2010). इसके उद्देश्यों का निर्धारण प्रमुख नगरीय विकास मुद्दों, जरूरतों की पहचान और राष्ट्रीय व्यवस्था तथा क्षेत्रीय ढांचे में उनके महत्व, कार्य आदि के आधार पर किया जाता है। इनका निर्धारण छह सिद्धांतों के आधार पर किया जाता है। इस परिभाषा का तात्पर्य अंतरअनुशासनबद्ध व संयोजन की प्रकृति से है, यानी किसी समग्र नीति का निर्माण, निर्धारण एवं लागू करने की प्रक्रिया कई एकनिष्ठ उपनीतियों के संयुक्त समन्वय के जरिये होता है। क्षेत्रीय नीतियां, भूउपयोग योजनाएं इस संयोजन के लिये क्षेत्रीय तंत्र (Framework) तैयार करती हैं। Ministry for Regional Development of Crezch Republic,2010).

नगरीय नीतियों के सिद्धांत दरअसल उन दस्तावेजों का ढांचा हैं, जिनका उद्देश्य नगरीय विकास के लिये सरकार के स्तर पर उठाये जाने वाले विभिन्न कदमों का संयोजन एवं समन्वय (Co-ordination) है। इनकी मदद से ऐसी नियमावली और गतिविधियों को को चिह्नित किया जाता है, जो निरंतर नगरीय विकास के लिये सर्वथा उपयोगी हों। जिनकी मदद से नगरों के विकास की जरूरतों को समझा जा सके और पूरी प्रक्रिया में मदद के लिये निजी और स्वयंसेवी सेक्टर को प्रेरित किया जा सके। भारत अब सिर्फ गांवों का देश नहीं रह गया है। वर्तमान में 31 करोड़ के करीब भारतीय 3700 के करीब शहरों और कस्बों में रहते हैं, जबकि स्वतंत्रता के वक्त यह संख्या महज 60 लाख थी। पिछले 50 साल में भारत की आबादी में ढाई गुना की बढ़ोतरी हुई है, लेकिन भारतीय शहरों का विकास पांच गुना तक हुआ है। आंकड़ों की बात करें तो वर्ष 2011 में नगरीय आबादी 31.6 प्रतिशत रही। कस्बे या छोटे नगर भारत की जीडीपी में बड़ा योगदान करते हैं और उन सेवाओं के प्रदाता हैं जो उन नगरों–कस्बों में

अथवा आसपास रहने वाले लोगों के लिये भी आवश्यक हैं। लेकिन, ये नगर सामाजिक, परिवहन, पर्यावरण, प्रदूषण संबंधी कई गंभीर समस्याओं से भी इसी वजह से जूझ रहे हैं।

शॉ (Shaw, 1999) ने नीति निर्माण में इसे बड़ी बाधा करार दिया है कि नगरीय नीति और योजना राज्य सूची के विषय हैं। इसकी वजह से जिस पंचवर्षीय योजना का निर्माण केन्द्र सरकार ने संवैधानिक विधायिका शक्ति से इतर विकास योजनाओं को गति देने के लिये किया था, वह नगरीय नीतियों के लिये सिर्फ निर्देशक तत्व (Directive Element) बनकर रह गयी। नगरीय नीतियों एवं योजनाओं के लिये नियम–सिद्धांतों का निर्माण आर्थिक विकास के लिये पूंजी संचय के मकसद से किया गया था। उदाहरण के लिये, 1960 में पूंजी के संकट ने शहरों पर केन्द्रित नीतियों के निर्माण को प्रोत्साहित किया, जो पहले से भारत के वार्षिक आर्थिक प्रदर्शन में बड़ा योगदान कर रहे थे। भारत की पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाएं (1951-1961) पर विभाजन का साफ असर दिखता है। सान्याल (2014) के शब्दों में, इस दौर में लोगों के पलायन की तत्कालीन इतिहास की सबसे बड़ी घटना हुई। बड़ी संख्या में शरणार्थी भारत की ओर आये। उनकी जरूरतों को पूरा करने, आवासीय और अन्य सुविधाएं प्रदान करने में उपजी परिस्थितियों से दिल्ली, कलकत्ता (अब कोलकाता) जैसे बड़े शहरों के साथ राज्य एवं केन्द्र सरकारों तक को व्यग्र किये रखा। दिल्ली में किंग्सवे कैंप एवं कलकत्ता में कूपर्स कैंप जैसी जगहों की स्थापना भारत में नये आये इन लोगों के आवास के लिये की गयी, लेकिन उनकी तादाद बहुत अधिक होने के कारण इन शिविरों में व्यवस्थाएं, सुविधाएं कम पड़ने लगीं। बड़ी संख्या में लोगों को बैठे ही रहना पड़ता था, क्योंकि शिविरों में इससे अधिक व्यवस्था कर पाना मुश्किल हो गया था। सान्याल (2014) बताते हैं कि दिल्ली में मालवीय नगर, कालकाजी, लाजपतनगर आदि जिन क्षेत्रों को आज मध्यमवर्गीय लोगों का क्षेत्र और महंगा बाजार माना जाता है, उन्हें कभी पुनर्वास मंत्रालय ने शरणार्थियों के पुनर्वास के लिये इस्तेमाल किया था।

## नगरीय नीति के बुनियादी तत्व (Fundamentals of Urban policy)

1. केन्द्रीय शहरों में हाशिये पर रहने वाले समूहों की निर्धनता और सामाजिक उपेक्षा आज के दौर के शहरों की सबसे बड़ी समस्या है। इसका निस्तारण अविलंब और संसाधन उपलब्ध कराने के दृढ़निश्चय के साथ किया जाना चाहिये, न कि इसे सिर्फ मामूली दिक्कत मानना चाहिये। ऐसे विशेष कार्यक्रम और नीतियों का निर्माण आवश्यक है जो ऐसे समूहों को विकास योजनाओं से जोड़ सकें।
2. नगरीय क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक शक्तियों ने न तो संतुलन बनाये रखा है न ही साम्य। उद्योगों, परिवहन सुविधाओं, आवासीय व्यवस्थाओं, सामाजिक सेवाओं और नगरीय जीवन से जुड़े कई अन्य आयामों में अव्यवस्थाओं का माहौल लगातार बढ़ता जाता है और कई बार इस बढ़ावे की वजह नगरीय नीतियां ही होती हैं। ऐसे में नगरीय संतुलन की अवधारणा को समझना आवश्यक लगता है, 'सामाजिक परिस्थितियों में जब कुछ शक्तियां असंतुलन की स्थिति बनाती हैं तो ऐसी ताकतें भी उभरती हैं जो इसका प्रतिरोध करती हैं और धीरे–धीरे परिवर्तन करते हुए फिर संतुलन की स्थिति को साधती हैं।संघीय (Federal) अधिकारियों के लिये यह निरंतर लक्ष्य का विषय होना चाहिये, क्योंकि उनकी योजनाएं नगरीय क्षेत्रों को प्रभावित करती हैं और उनमें कुछ ऐसे भी होते हैं जो संतुलन नहीं चाहते हैं।' (planning tank, 2017).
3. नगरीय शासन के भंगुर (Fragile) और अनुपयोगी (Obsolescent) ढांचे ने नगरीय समस्याओं को जन्म दिया। नगरीय समस्याओं के निस्तारण को लेकर प्रभावी प्रयास नहीं

करने की गैरजिम्मेदारी तो नगरीय सरकार में ही अकसर अंतर्निहित देखी गयी है। संघीय विचारों के साथ सरकारों को नगरीय परिस्थितियों के प्रति स्थानीय शासन के दायित्वों को जागरूक कर सुधारीकरण (Reformation) को प्रोत्साहित करने के प्रयास करने चाहिये। संघीय सरकार का एकमेव लक्ष्य स्थानीय शासन को शक्तिसंपन्न, अधिक प्रभावी, अधिक पारदर्शी, अधिक गतिशील और स्थानीय नागरिकों के प्रति अधिक दायित्वपूर्ण बनाना चाहिये। दूसरी ओर, एक अच्छी संघीय सरकार को विशेष समस्याओं के निस्तारण के लिये तैयार की गयी समानांतर सत्ता व्यवस्थाओं को खत्म करने के साथ प्रभावी विकेन्द्रीकरण को बढ़ाना चाहिये।

4. संघीय नगरीय नीति का पहला और सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य नगरीय शासन की राजकोषीय गतिशीलता (Fiscal Vitality) को बढ़ाना और इसकी मदद से संसाधनों का विकास करना होना चाहिये। ताकि स्थानीय शासन के पास संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता हो और वह स्थानीय जनकल्याण को लेकर इनकी मदद से निर्णय ले सके।
5. नगरीय नीतियों में सार्वजनिक सेवाओं के समान वितरण के प्रावधानों को बढ़ावा देने के लिये आवश्यक बदलाव किये जाने चाहिये, जो विभिन्न नगरीय क्षेत्रों के अधिकार क्षेत्र में लागू हो सकें। संघीय नगरीय नीतियों में यह बिंदु प्रायिकता पर रहना चाहिये।
6. संघीय शासन को तकनीकी विकास, निर्धनता और अन्य कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों से आबादी के नगरीय क्षेत्रों की ओर आने की गति व प्रक्रिया पर सर्वाधिक नजर रखनी चाहिये। इसके अलावा सघन आबादी वाले क्षेत्रों से उपनगरीय क्षेत्रों में भी लोगों के पलायन पर सरकार की नजर रहे।
7. नगरीय मामलों में राज्य सरकार को मुख्य भूमिका का निर्वहन करना चाहिये और इस काम में राज्य सरकार को संघीय सरकार की पूरी मदद व प्रोत्साहन मिलना चाहिये।
8. संघीय सरकार को प्रभावी प्रोत्साहन योजनाओं को लागू करना चाहिये, ताकि राज्य सरकार, स्थानीय निकाय और निजी सेक्टर संघीय नीतियों, कार्यक्रमों के सफल निष्पादन में मदद करें और निर्धारित लक्ष्य को हासिल किया जा सके।
9. संघीय शासन को नगरीय मसलों से जुड़ी सूचनाएं जुटाने के लिये निरंतर और वृहद् शोधकार्यों को बढ़ावा देना चाहिये।
10. संघीय शासन को स्वयं के उदाहरणों, प्रोत्साहन योजनाओं के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों को बढ़ावा देने और विकास के प्रयास करने चाहिये और सफल नगरीय विकास में सौंदर्यबोध के महत्व को भी ध्यान में रखना चाहिये।

## 16.3 भारत में नगरीय विकास कार्यक्रम (Urban Development Programmes in India)

'भारत में शहरीकरण का पिछले 35–40 वर्ष का रिकॉर्ड साफ करता है कि यहां निरंतर बढ़ती नगरीय आबादी के लिये सक्षम नगरीय प्रशासन, आवासीय और अन्य जरूरी सुविधाओं के लिये आवश्यक वित्तीय संसाधनों का असमान वितरण किया गया, जबकि प्रबंधन को लेकर भी अनदेखी की गयी।' (Nath,1986). अनियोजित एवं बेतरतीब तरीकों के कारण भारत के पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया अप्रभावी रही। गलत शहरीकरण नीतियों के परिणामस्वरूप शहरों में बेरोजगारी बढ़ती गयी, जबकि शहरों में आबादी भी लगातार बढ़ रही थी। (Bandyopadhyay, 2017). विकास का अर्थ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय और सांस्कृतिक आयामों में जीवन की बेहतर परिस्थितियों से होता है। यह भविष्य के जीवन के लिये निरंतर क्षमता को बढ़ावा देने का भी परिचायक है। विकास एक गतिशील प्रक्रिया है, जो समग्र सामाजिक वातावरण को बदलती है। इसके आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक पहलू संतुलित एवं उर्ध्वगामी (Upwards) परिवर्तन को बढ़ावा देते हैं। यह

अनिवार्य रूप से माना जाता है कि यह प्रक्रिया समाज के हर स्तर को अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के अवसर प्रदान करे।

भारत में नगरीकरण का जन्म ईसा से 2500 वर्ष पूर्व सिंधु घाटी में हुआ। इसके बाद से विभिन्न परिस्थितियों में भारत की नगरीय आबादी में निरंतर वृद्धि ने इसके अवस्थापना व्यवस्था पर दबाव बहुत अधिक बढ़ा दिया है। ऐसे में देश के निरंतर विकास के लिये बेहतर प्रबंधन और योजनाओं की आवश्यकता बढ़ गयी। स्वतंत्रता के बाद देश के विकास के लिये महत्वपूर्ण घटकों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने 1951 में पंचवर्षीय योजना लागू की। शुरुआती पंचवर्षीय योजना के दौरान भारत की अर्थव्यवस्था काफी पिछड़ी हुई थी, जिसमें आर्थिक लाभ के लिये आवश्यक व्यापार, उद्योगों के मुकाबले जनसंख्या में लगातार और काफी अधिक बढ़ोतरी हो रही थी। इसके चलते प्रति व्यक्ति आय भी काफी कम थी। यही वजह रही कि भारत में योजना को केन्द्रीय लक्ष्य मानकर विकास की ऐसी प्रक्रिया की शुरुआत की गयी, जिसका उद्देश्य लोगों के जीवनस्तर में सुधार के साथ उन्हें समृद्धि के बेहतर अवसर प्रदान करना था। (Commission) चूंकि 1947 से ही भारतीय अर्थव्यवस्था योजनाओं पर आधारित थी, योजना आयोग को भारत के पांच साल के विकास, क्रियात्मकता के लिये योजनायें बनाने का दायित्व दिया गया। 2014 में योजना आयोग को भंग कर इसकी जगह नीति आयोग को यह जिम्मेदारी दी गयी। यहां नीति आयोग का अर्थ National Institution for Transforming India (NITI) है।

स्वतंत्रता से पूर्व भी देश के विकास को लेकर योजनाएं बनाने के प्रयास होते रहे थे। उदाहरण के लिये 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से राष्ट्रीय योजना समिति बनायी गयी, 1945 में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पुनर्गठित इंडियन ट्रेड यूनियन का पीपुल्स प्लान (Peoples' Plan) और 1950 में जयप्रकाश नारायण की सर्वोदय योजना। इन सभी में आर्थिक रूप से भारत के विकास को लेकर जरूरी कदम सुझाये गये।

स्वतंत्रता के पश्चात प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के समाजवादी प्रभाव पर आधारित भारत की पहली पंचवर्षीय योजना 1951 में आयी। इसकी प्रक्रिया 1950 में योजना आयोग के गठन के साथ शुरू हुई, जिसका लक्ष्य संसाधनों की उपलब्धता, उत्पादन में वृद्धि, अवसरों–रोजगारों की उपलब्धता आदि के जरिये लोगों के जीवनस्तर में सुधार तय किया गया। योजना आयोग को देशभर के संसाधनों के मूल्यांकन, कम उपलब्धता वाले संसाधनों में वृद्धि, संसाधनों के प्रभावी और संतुलित उपभोग और लक्ष्य को लेकर प्रायिकताओं के हिसाब से योजनायें तैयार करने का जिम्मा दिया गया।

पहली पंचवर्षीय योजना 1951 में आयी, जिसके बाद दो और पंचवर्षीय योजनायें योजना आयोग ने तैयार कीं, जो 1965 तक चलीं, क्योंकि इसी दौर में भारत–पाक विवाद उभर आया। इसके बाद 1966 से 1969 तक दो वर्ष अकाल पड़ने, रुपये के अवमूल्यन, महंगाई दर में बढ़ोतरी और संसाधनों की कमी की वजह से योजना आयोग की गतिविधियों पर असर पड़ा। ऐसे में तीसरी पंचवर्षीय योजना के 1965 में समाप्त होने के बाद चौथी योजना 1969 में लागू की जा सकी। वर्ष 1990 में लगातार बदलती राजनीतिक परिस्थितियों के चलते आठवीं योजना लागू नहीं हो सकी। ऐसे में 1990–91 एवं 1991–92 को वार्षिक योजना के तौर पर लागू किया गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992 में लागू की जा सकी।

## पहली पंचवर्षीय योजना (1951–1956)

हेरड–डोमर मॉडल पर आधारित इस पंचवर्षीय योजना के जरिये भारत ने 2.1 प्रतिशत की विकास दर का लक्ष्य रखा था। इस पंचवर्षीय योजना में मुख्य फोकस बिजली, कृषि, परिवहन सुविधाओं के विकास के साथ महंगाई दर पर लगाम कसे रखना था। शरणार्थियों की बढ़ती संख्या एवं दामों में बढ़ोतरी के चलते यह आवश्यक हो गया था। इस पंचवर्षीय योजना को भाखड़ा बांध, मेट्टूर बांध, हीराकुंड बांध जैसी बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के लिहाज से वरदान भी माना जाता है। शरणार्थियों की व्यवस्था एवं खाद्यान्न की कमी को दूर करने, महंगाई पर रोक के साथ इस योजना ने 3.6 प्रतिशत की विकास दर हासिल की।

## दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–1961)

4.5 प्रतिशत की विकास दर हासिल करने के लक्ष्य के साथ इस योजना का मॉडल प्रो. पीसी महलानोबिस ने तैयार किया था। यही वजह है कि इसे महलानोबिस प्लान के तौर पर भी जाना जाता है। पहली पंचवर्षीय योजना के बाद खाद्यान्न संकट की समस्या काफी हद तक दूर हो चुकी थी। देश आर्थिक तौर पर विकास की ओर बढ़ रहा था, लिहाजा इस योजना में विदेशी मदद और आयात पर फोकस किया गया। इसी योजना के दौरान रूस, ब्रिटेन एवं जर्मनी की मदद से क्रमशः भिलाई, दुर्गापुर, राउरकेला स्टील प्लांट समेत पांच स्टील प्लांट लगाये गये।

## तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–1966)

इस योजना के लिये विकास दर का लक्ष्य 5.6 प्रतिशत रखा गया। इस योजना में पिछली दो योजनाओं के अनुभवों का इस्तेमाल किया गया। विदेश निर्यात, उद्योगों के विकास पर इस योजना में फोकस किया गया, ताकि आर्थिक स्थिति को और मजबूत किया जा सके। इस पंचवर्षीय योजना का मकसद भारत में आर्थिक विकास के संसाधनों का विकास करना थ। लेकिन, इसी बीच 1962 में भारत–चीन युद्ध और 1965 में भारत–पाक युद्ध के चलते इस योजना का लक्ष्य रक्षा विकास की ओर मोड़ना पड़ा। इसके अलावा 1965–66 में अकाल ने भी मुश्किलें बढाईं। इस सबके चलते यह योजना 2.8 प्रतिशत की ही विकास दर हासिल कर सकी, जो लक्ष्य से काफी कम थी। इसके चलते इस पंचवर्षीय योजना को असफल माना गया।

## योजनावकाश (1966–1969)

इस अवधि में भारत में विभिन्न कारणों से तीन वार्षिक योजनाओं को लागू किया गया। यही वजह है कि इस अवधि को पंचवर्षीय योजनाओं के अवकाश का काल भी माना जाता है। इस अवधि में देश ने 4.3 प्रतिशत की विकास दर हासिल की। दरअसल, तीसरी पंचवर्षीय योजना की असफलता के बाद तीन अल्पकालिक योजनाओं की जरूरत महसूस हुई। इनका लक्ष्य खाद्यान्न संकट को देखते हुए कृषि को बढ़ावा देना और खेती के नये तरीकों, बीज–खाद की पर्याप्त उपलब्धता, सिंचाई व्यवस्था और मिट्टी संरक्षण की प्रक्रिया को बढ़ाना था। इन अल्पकालिक योजनाओं ने वास्तव में भारत के आर्थिक विकास में खासी मदद की और तीसरी योजना के काल में हुए नुकसान की भरपाई भी की।

## चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–1974)

5.7 प्रतिशत के लक्ष्य विकास दर के साथ इस योजना का मकसद आर्थिक तौर पर भारत की आत्मनिर्भरता और स्थायित्व को बढ़ाना था। भारत–पाक युद्ध के दौरान कई देशों ने भारत को कच्चा माल देने से इनकार कर दिया था। ऐसे में इस योजना में कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने के साथ अन्य सेक्टर में भी स्थायित्व पर फोकस किया गया। प्रारंभिक दो वर्षों में रिकॉर्ड उत्पादन हुआ, लेकिन बाद के तीन वर्षों में मौसम और अन्य कारणों से उत्पादन पर खासा असर पड़ा। इसके अलावा भारत–पाक युद्ध के बाद बांग्लादेशी शरणार्थियों की बढ़ती संख्या ने भी मांग और उपलब्धता को प्रभावित किया। इस योजना से भारत को 3.9 प्रतिशत की विकास दर हासिल हुई। जनसंख्या नियंत्रण को लेकर परिवार नियोजन कार्यक्रम की शुरुआत को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में इस योजना को नाकाम माना गया।

## पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–1979)

4.4 प्रतिशत विकास दर के लक्ष्य के साथ इस योजना का प्रारूप डीपी धर ने तैयार किया था। इस योजना को तेल की बढ़ती कीमतों के कारण पैदा हुए आर्थिक संकट और गेहूं के थोक व्यापार को अपने हाथों में लेने की सरकार की नाकामी को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य निर्धनता को दूर कर आत्मनिर्भरता को बढ़ाना था। 1975 में आपातकाल की घोषणा के बाद इसका लक्ष्य बदलकर प्रधानमंत्री के 20 सूत्रीय कार्यक्रम कर दिया गया। 1978 में यह योजना समाप्त कर दी गयी। इस योजना ने 4.8 प्रतिशत की विकास दर हासिल की, लेकिन उच्च महंगाई दर को समाप्त कर पाने में यह योजना सफल नहीं हो सकी।

## छठी पंचवर्षीय योजना (1980–1985)

इस अवधि में भारत ने 5.2 प्रतिशत की विकास दर हासिल की। इस योजना का मुख्य लक्ष्य राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी, तकनीकी विकास, गरीबी उन्मूलन, रोजगार योजनाएं, जनसंख्या नियंत्रण था। इसी दौर में TRYSEM -Training of Rural Youth for Self Employment, IRDP -Integrated Rural Development Programme, NREP -National Rural Employment Programme जैसी योजनाएं लागू हुईं। इस पंचवर्षीय योजना को सफल माना जाता है।

## सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–1990)

5 प्रतिशत विकास दर का लक्ष्य इस पंचवर्षीय योजना के लिये तय किया गया था। इस योजना का मुख्य लक्ष्य खाद्यान्न एवं रोजगार सेक्टर रहे। उत्पादन में बढ़ोतरी और विभिन्न अवसरों की उपलब्धता का लक्ष्य हासिल करने के साथ इस पंचवर्षीय योजना के जरिये भारत को 6 प्रतिशत की विकास दर हासिल हुई, जो इसके लक्ष्य से अधिक थी।

## आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–1997)

5.6 प्रतिशत विकास दर के लक्ष्य के साथ इस पंचवर्षीय योजना को लागू किया गया। इससे पहले दो वर्षों तक केन्द्र में राजनीतिक उथल–पुथल बनी रही थी। प्रधानमंत्री पीवी नरसिंहा राव की अध्यक्षता में इस योजना में कमजोर आर्थिक स्थिति को शक्तिसंपन्न बनाने पर फोकस किया गया। इसी दौर में आर्थिक और वित्तीय सुधारों की कवायद शुरू हुई, जिसे उदारीकरण भी कहा जाता है। इस अवधि में कृषि, उत्पादन, निर्यात–आयात, वाणिज्य–व्यापार सेक्टर में बेहतर विकास देखा गया, जबकि घाटा भी कम करने में कामयाबी मिली। इस योजना से भारत ने 6.8 प्रतिशत की विकास दर हासिल की जो भारतीय योजना के इतिहास में सर्वाधिक विकास दर थी।

## नवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002)

सामाजिक न्याय एवं समानता के साथ इस पंचवर्षीय योजना में 6.5 प्रतिशत की विकास दर हासिल करने का लक्ष्य था। इस योजना में निजी सेक्टरों के साथ विदेशी निवेश यानी एफडीआई पर भी फोकस किया गया। शिक्षा, स्वास्थ्य समेत विभिन्न अवस्थापना में निजी सेक्टरों को निवेश के लिये प्रोत्साहित किया गया। रोजगार, ग्राम्य विकास, कृषि विकास और गरीबी उन्मूलन भी इस योजना के अहम हिस्से रहे।योजना से भारत को 5.4 प्रतिशत की विकास दर हासिल हुई।

## दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007)

आर्थिक विकास के साथ साक्षरता दर में वृद्धि, महिलाओं की बेहतर स्थिति, श्रम मूल्य, मातृ–शिशु मृत्यु दर में कमी, साफ पेयजल की उपलब्धता, नदियों से प्रदूषण खत्म करना आदि इस योजना के मुख्य लक्ष्य थे। आठ फीसदी की विकास दर इस योजना से हासिल करने का लक्ष्य था। विकास को लेकर शासन की भूमिका को ध्यान में रखते हुए इस योजना में पंचायती राज को महत्व दिया गया, जबकि राज्यवार भी विकास लक्ष्य तय किये गये। इससे संतुलित विकास प्रक्रिया में मदद मिली। योजना के समाप्त होने पर भारत ने 7.6 प्रतिशत की विकास दर हासिल की और योजनाओं व विकास में राज्यों की भूमिका को तय करने के साथ कृषि को अर्थव्यवस्था का अहम अंग माना गया।

## 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012)

समावेशी विकास आधारित इस योजना का लक्ष्य नौ प्रतिशत की विकास दर प्राप्त करना था। शिक्षा–स्वास्थ्य की बुनियादी सेवाओं की व्यवस्था, रोजगार के अवसर, गरीबी उन्मूलन, वायु प्रदूषण पर रोकथाम, वनों का संरक्षण, लैंगिक असमानता को दूर करना आदि इस समावेशी विकास की प्रक्रिया के हिस्से थे। ग्रामीण क्षेत्रों में संचार सुविधाओं का विकास भी इस योजना का अहम लक्ष्य थेः

1. सभी गांवों में वर्ष 2012 तक टेलीफोन कनेक्शन और ब्रॉडबैंड सुविधा उपलब्ध कराना
2. एक हजार और इससे अधिक आबादी वाले गांवों तक वर्ष 2009 तक सड़क निर्माण
3. सभी गांवों में वर्ष 2009 तक बिजली कनेक्शन

इस पंचवर्षीय योजना ने आठ प्रतिशत की विकास दर हासिल की। इस पंचवर्षीय योजना के निर्धारित लक्ष्य से कम प्रदर्शन करने के लिये फंड की कमी को बड़ी बाधा माना जाता है।

### 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017)

यह पंचवर्षीय योजना दूसरे वैश्विक मंदी के दौर में प्रारंभ हुई। यूरोजोन में उभरे आर्थिक संकट ने दुनिया के अन्य देशों की तरह भारत पर भी खासा असर डाला। ऐसे में इस पंचवर्षीय योजना का मूल मकसद आर्थिक स्थायित्व को बनाये रखना और समावेशी व निरंतर विकास की प्रक्रिया को बनाये रखना था। इसके लिये गरीबी उन्मूलन, क्षेत्रीय संतुलन, असमानता को दूर करना, सशक्तीकरण को बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं, कौशल विकास, तकनीकी विकास, अवस्थापना विकास के जरिये पूर्ण करना था। सूचना तकनीकी के विकास, संचार, सड़क विकास आदि पर भी फोकस किया गया। उर्जा क्षेत्र में NELP-New Exploration Licensing Policy लागू की गयी।

### नीति आयोग (National Institution for Transforming India)

एक जनवरी 2015 को नीति आयोग का गठन किया गया। हालांकि, उस वक्त 12वीं पंचवर्षीय योजना लागू थी, जिसे संचालित रहने दिया गया। अब पंचवर्षीय योजनाओं का स्थान नीति आयोग ने ले लिया है। यह संस्थान सरकार के थिंक टैंक के रूप में सेवाएं प्रदान करेगा और उसे निर्देशात्मक एवं नीतिगत गतिशीलता प्रदान करेगा। नीति आयोग, केन्द्र और राज्य स्तरों पर सरकार को नीति के प्रमुख कारकों के संबंध में प्रासंगिक महत्वपूर्ण एवं तकनीकी परामर्श उपलब्ध कराएगा। इसमें आर्थिक मोर्चे पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आयात, देश के भीतर, साथ ही साथ अन्य देशों की बेहतरीन पद्धतियों का प्रसार नए नीतिगत विचारों का समावेश और विशिष्ट विषयों पर आधारित समर्थन से संबंधित मामले शामिल होंगे।

## 16.4 नगरीय नीतिः अंतर राष्ट्रीय दृष्टिकोण (Urban Policy: An Inter Country Perspective)

इवान टोरोक के अनुसार, 'राष्ट्रीय नगरीय नीति किसी विशेष दृष्टि अथवा लक्ष्य को हासिल करने के लिये सरकार के स्तर पर की जाने वाली प्रक्रिया और निर्णयों का एक संयुक्त स्वरूप है। इस प्रक्रिया में विभिन्न घटकों में समन्वय के जरिये सुधारात्मक, उत्पादात्मक, समावेशी और निरंतर नगरीय विकास की प्रक्रिया को लंबे समय के लिये संचालित किया जाता है। ऐसी राष्ट्रीय प्रक्रिया निरंतर गतिशील रहती है।' (2014). सामयिक नगरीय नीतियों का सीधा जुड़ाव यूरोपीय नगरों में 19वीं–20वीं सदी में तेजी से हुए विकास से है। ये नगर दुनिया के सबसे बड़े मानवीय व्यवस्था वाले नगर बन गये और इनके कारण भौतिक समन्वय समेत कई सामाजिक चुनौतियां भी उभरीं। (Chandler and Fox, 1974; Hall and Tewdwr-Jones, 2011; Collier and Venables, 2014).

शहरीकरण की प्रक्रिया औद्योगीकरण से सीधे तौर पर जुड़ी हुई थी। इस अवधि में श्रमिकों की भारी मांग के चलते लोग ग्रामीण क्षेत्रों की निर्धन परिस्थितियों से निकलकर शहरों की ओर आये। शहरों के स्थानिक महत्व के पीछे परिवहन सुविधा का बड़ा हाथ रहा। योजना की अवधारणा का जन्म दरअसल नगरीय सुधार के अभियान से हुआ, जिसका कारण निर्धन श्रमिक वर्ग की कठिनाइयों, मलिन जीवनस्तर, निचले स्तर की सुविधाओं और तेजी से हो रहे नगरीय विकास से उपजी परिस्थितियां थीं। ऐसे में पारंपरिक ग्रामीण तरीकों के अनुसार रहने वाले कुछ सामंजस्यपूर्ण समुदायों ने सामाजिक, भौतिक आयामों को नया विचार दिया (Hall, 1988). 1870 के बाद शहरों का तेजी से विस्तार हुआ, जिसके

चलते सस्ती परिवहन सुविधा भी योजनाओं का अहम हिस्सा बनी। समय के साथ घोड़ागाड़ी, फिर बिजली से चलने वाले ट्राम और बसें और बड़े शहरों में ट्रेन, सबवे जैसी व्यवस्थाएं विकसित हुईं। 20वीं सदी के शुरुआती दशकों में ब्रिटेन, जर्मनी, स्वीडन और अन्य यूरोपीय देशों में औपचारिक नगरीय विकास व्यवस्था ने नगरीय विकास के नये साधनों के साथ संपत्ति विकास के उन गुणों को जन्म दिया, जो इससे पहले कभी अस्तित्व में नहीं थे। एबेनेजर हॉवर्ड (Ebenezer Howard), पैट्रिक गेडेस (Patrick Geddes), ला कॉर्बूजर (Le Corbusier), सिग्फ्रेड गिडियॉन (Sigfried Giedion) जैसे प्रारंभिक विद्वानों और अंतर्राष्ट्रीय बॉहास डिजाइन स्कूल (International Bauhaus Design School) ने भू–उपयोग क्षेत्र, नगरी विस्तार योजनाओं, ग्रीन बेल्ट, गार्डन सिटी, मास्टर प्लानिंग के सिद्धांत दिये जो बेहद प्रभावी साबित हुए और बहुत जल्दी लगभग पूरी दुनिया में इनका प्रसार हुआ। इन सिद्धांतों में सघनता के स्तरों के हिसाब से भवनों की ऊंचाई को सीमित करने, भू–उपयोग की अलग–अलग व्याख्या (विशेष तौर पर आवासीय, औद्योगिक और व्यापारिक गतिविधियों के लिये भू–उपयोग), यातायात व्यवस्था के पैटर्न को स्पष्ट करने और अनुक्रमाधाारित नगरीय विकास को बढ़ावा देने में मदद मिली। (Hall, 1988, 1998).

स्थानीय शासन अपने अधिकार क्षेत्र में नगरीय पर्यावरण के निर्माण के लिये विकास की गुणवत्ता को नियंत्रित करने, हरित क्षेत्र के संरक्षण और यातायात नियमों को लागू करवाने के लिये पर्याप्त कानूनी शक्तिसंपन्न थे। लोगों के अपनी जमीनों पर मनचाहे विकास पर नियंत्रण के लिये सबसे महत्वपूर्ण साधन भू–उपयोग क्षेत्र का निर्धारण था। लेकिन, इससे कई बार यह विवाद भी खड़े हुए कि निर्धन वर्ग की बड़ी संख्या को एक ही बहुमंजिला इमारत में रहना पड़ता था, जबकि कई अभिजात्य लोगों के आवास बड़े–बड़े भूखंडों पर बने होते थे। नगरीय क्षेत्रों के भावी प्रारूप (Future Layout) के निर्धारण में राज्य ने नीति निर्देशक की भूमिका निभाई। इन सबका मेल बेहतर सार्वजनिक व्यवस्था के तौर पर सामने आया, हालांकि इसमें भी कई बार अभिजात्य वर्ग को निर्धन वर्ग की अपेक्षा अधिक सहूलियतें प्रदान की जाती थीं। नगरीय योजना एक रैखिक एवं तकनीकी गतिविधि थी, जिसमें स्थानिक दृष्टिकोण या भौतिक रूपरेखा महत्वपूर्ण थी, जिसे मास्टर प्लान कहा जाता है। और यहां आधारभूत मूल्यों के दांव पर लगने की स्थिति पर सवाल उठाने का बेहद सीमित मौका मिलता था। (Hall, 1988).

उत्तरी अमेरिका में भी इसी दौर में औद्योगीकरण और आप्रवासन के फलस्वरूप शहर तेजी से विकसित हो रहे थे। फिलाडेल्फिया का 'Grid Plan' इस महाद्वीप में नगरीय विचार के लिये विशेष रूप से प्रभावी था। यह किसी क्षेत्र के सर्वे और वहां नये शहर के विकास का सबसे आसान तरीका बना। इसने वहां अवस्थापना विकास से जुड़े सभी पहलुओं को स्पष्ट करने के साथ मानकानुरूप प्लॉटों के विकास से भूमि बाजार को विकसित किया, जिन्हें आसानी से बेचा–खरीदा जा सकता था। शहर के आसपास के निम्न सघनता वाले क्षेत्रों में एकल परिवारों के स्वतंत्र आवास की परंपरा भी अमेरिका से ही विस्तारित हुई, जिसने कारों की खरीद को भी बढ़ावा दिया। हालांकि, आवास के अन्य तरीके भी यहां प्रचलित थे। यूरोप में टैरेस वाले जुड़े हुए घर आम थे, मध्य क्षेत्र में आंगन वाले घरों में लोग रहते थे, वहीं अफ्रीकी और एशियाई व्यवस्था में आंगन, चहारदीवारी युक्त छोटे घर पाये जाते थे। 20वीं सदी के कुछ दशकों में ही नगरीय योजना कई यूरोपीय देशों में राजनीतिक शक्ति और सामाजिक दबाव का स्पष्ट हिस्सा बन गयी। बर्लिन, रोम, मैड्रिड, मॉस्को में तानाशाह शासन के दौर में पुनर्विकास के नाम पर भारी मात्रा

में ध्वस्तीकरण किया गया, जिसके लिये आम जनता को निष्कासित भी किया गया। इस दौरान आम नागरिकों को सलाह–सुझाव देने अथवा चर्चा का कोई अधिकार नहीं था।

यूरोप और अमेरिकी देशों में नगरीय विकास का तीसरा दृष्टिकोण राष्ट्रीय नगरीय नीति (NUP) उभरा। इसे नव शहरीवाद (New Urbanism) या तीव्र विकास (Smart Growth) कहा गया (UN-Habitat 2013). इसका एक उद्देश्य ऐसे नगरीय स्वरूपों को बढ़ावा देना है जो प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति संवेदनशील हों। इसके अलावा नगरीय क्षेत्रों को विशेष पहचान दिलाना, वाणिज्यिक–व्यापारिक संपत्तियों का विकास, एकसमान आवासीय क्षेत्र, उपनगरीय क्षेत्रों का नियंत्रण भी इसके लक्ष्य थे। भविष्य को ध्यान में रखते हुए दीर्घकालिक यातायात व्यवस्था के हिसाब से भूउपयोग, पारंपरिक विभाजन भी इसमें किया गया। नव शहरवाद ऐसी योजना को बढ़ावा देता है जो सुगठित हो, उच्च सघनता, सम्मिलित विकास करे, जिसमें घर, कार्यक्षेत्र, बाजार, मनोरंजन आदि सुविधाएं निकट होकर निरंतर शहरीकरण के दायरे में आ जायें।

बेहद सघन आबादी वाले क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के प्रोत्साहन के लिये उच्च गुणवत्ता वाले सार्वजनिक स्थान आवश्यक पहलू है। निजी कारों के मुकाबले सार्वजनिक परिवहन सुविधाका इस्तेमाल करने वाले अथवा पैदल–साइकिल पर चलने वालों को भी बेहतर माना जाता है। परिवर्तनोन्मुखी (Transit-oriented) विकास नगर के आसपास सघन आवासीय व्यवस्था में लोगों के बदले मिलने वाली पहुंच (Accessibility) का पूंजीकरण करना चाहता है। नगरीय योजनाओं को लेकर यह व्यवस्था नगरीय योजनाकारों (Urban Planners) और निर्माणकर्ताओं (Developers) में परंपरागत निर्धारक भूमिका के बजाय संवाद बढ़ाती है, जिसके तहत भूमि पर निर्माण और अवस्थापना संबंधी विकास के अधिकारों के अलावा सार्वजनिक सुविधाओं में योगदान पर सहमति बनती है। अकसर यह तर्क दिया जाता है कि सुगठित एवं एकीकृत नगरीय स्वरूप निम्न सुविधाएं देता हैः 1. शहर की समृद्धि (अनुपूरक गतिविधियों के बेहतर समन्वय एवं संयोजन के जरिये) 2. सामाजिक समावेश (नौकरियों और सुविधाओं तक बेहतर पहुंच के माध्यम से) 3. सामाजिक गतिशीलता और गुणवत्तापरक जीवन (सार्वजनिक सुविधाओं तक लोगों की पहुंच और जीवनशैली में सुधार के जरिये) 4. कम लागत की जनसुविधाएं (भारी मात्रा में अवस्थापना विकास से होने वाली बचत के जरिये) 5. पर्यावरणीय नुकसान को कम करना और मानव सुरक्षा (पुराने भवनों की मरम्मत और पारिस्थितिकी अवस्थापना को होने वाली हानि को कमतर करके). वे शहर जहां इन बिंदुओं की अनदेखी की जाती है, वहां भीड़, प्राकृतिक आपदाओं, असमान बुनियादी सुविधाओं, बेहद सीमित निकाय वित्त और भूमि व आवासों को लेकर सामाजिक–राजनीतिक द्वंद्व की आशंकाएं बनी रहती हैं। ऐसे शहर अवस्थापना के ऐसे जाल में फंस सकते हैं, जहां भू–उपयोग का कोई पैटर्न तय नहीं होता, पानी, उर्जा समेत प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध और अनुपयोगी दोहन किया जाता है और कार्बन उत्सर्जन यहां चरम पर होता है।

चौथा विचार नगरीय क्षेत्रों में सामाजिक उपेक्षा के मसले से निपटने का है। फ्रेंच विद्वान हेनरी लिफेवर (Henri Lefbvre, 1901-1991) ने सर्वप्रथम इस विचार का प्रस्ताव 'शहर का अधिकार' (Right to the City) के तौर पर दिया। यह दृष्टिकोण बताता है कि शहरीकरण को जितना अधिक महत्व दिया जाता है, राजनीतिक उपेक्षा के मामले उतने ही बढ़ते जाते हैं। ग्रामीण–शहरी पलायन, बड़े पैमाने पर बस्तियों को हटाने के कार्यक्रमों, आर्थिक पुनर्विकास योजनाओं के विस्थापन के प्रभावों से उपजी प्रतिक्रियाओं ने भी इस विचार को उभारा। यह नारा ब्राजील एवं दक्षिणी अफ्रीका जैसे देशों में सामाजिक अभियानों का अभिन्न अंग बन गया। यह विचार लोगों के शहरों की ओर विस्थापित होने के अधिकार से

भी आगे की बात करता है। यह मानता है कि एक बार भी शहर में आ जाने के बाद यह लोगों का अधिकार है कि उन्हें औपचारिक तौर पर नागरिक की पहचान मिले। उन्हें उनके भविष्य के लिये तय की जाने वाली नीतियों, योजनाओं के निर्धारण में पर्याप्त भागीदारी मिले, नगरीय संसाधनों, आवास एवं अन्य बुनियादी जनसुविधाओं तक उनकी सीधी और बेहतर पहुंच हो। यह विचार मानता है कि सरकारों को अधिकार मांगने वालों पर आरोप लगाने या उनका दमन करने के बजाय कमियों को स्वीकार करने के साथ सुधार के प्रयास करने चाहिये। जमीन पर अनौपचारिक व्यवस्थाओं और अनौपचारिक उद्यमों की पहचान कर उन्हें तकनीकी योग्यता, संसाधन मुहैया कराकर औपचारिक बनाने के साथ आवास, जनसुविधाएं, व्यापार नियंत्रण के मानकों को पूरा करना चाहिये। डेविड हार्वे (David Harvey) इस कथन के साथ इस विचार को और आगे बढ़ाते हैं, 'शहर का अधिकार नगरीय संसाधनों पर किसी व्यक्ति की पहुंच मात्र तक सीमित नहीं है। वास्तव में यह शहर का बदलाव कर स्वयं के बदलाव की प्रक्रिया है। यह व्यक्तिगत अधिकार नहीं, बल्कि सामान्य और सामूहिक परिवर्तन की प्रक्रिया है, जो सामूहिक शक्ति के जरिये शहरीकरण की प्रक्रिया को अपरिहार्य रूप से रूपांतरित कर सकती है।' (Harvey, 2008, p. 23)

## 16.5 भारत में नगरीय विकास योजनाएं (Urban Development Plans in India)

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में विकास, रोजगार को लेकर कई योजनाओं का संचालन किया गया। इसके साथ ही विभिन्न विकास परियोजनाओं, कार्यक्रमों के माध्यम से नगरीय क्षेत्रों के विकास को तेजी प्रदान करने के प्रयास किये गये। भारत में आर्थिक, समावेशी विकास के लक्ष्य से संचालित विभिन्न विकास योजनाओं को हम निम्नवत समझ सकते हैं:

1. **1965:** क्रेडिट ऑथोराइजेशन स्कीम (CAS) का लक्ष्य रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के जरिये पूंजी पर नियंत्रण की गुणवत्तापरक व्यवस्था बनाना था।
2. 1966–67: हाई यील्डिंग वेराइटी प्रोग्राम (HYVP) का मकसद खाद्यान्न संकट को दूर करने के लिय फसलों की पैदावार को बढ़ाना और इसके लिये उच्च गुणवत्ता वाले व बीजों, फसलों को अपनाना था
3. **1975:** कमांड एरिया डेवलपमेंट प्रोग्राम (CADP) का लक्ष्य बेहतर सिंचाई सुविधाओं का विकास और इनके जरिये कृषि विकास था
4. **1975:** बीस सूत्री कार्यक्रम (TTP) को गरीबी उन्मूलन और जीवनस्तर में सुधार के लिये आवश्यक सभी बुनियादी उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये संचालित किया गया
5. **1977–78:** डेजर्ट डेवलपमेंट प्रोग्राम (DDP) इस विकास कार्यक्रम का लक्ष्य पर्यावरणीय संतुलन को बनाये रखते हुए मरुस्थल के विस्तार को नियंत्रित करना था
6. **1977–78:** काम के बदले अनाज यानी फूड फॉर वर्क कार्यक्रम का लक्ष्य श्रमिक वर्ग को खाद्यान्न उपलब्ध कराना था
7. **1986:** सब्सिडी एवं ऋण सुविधा के जरिये निर्धन वर्ग को स्वरोजगार के लिये प्रेरित करने के मकसद से सेल्फ इंप्लॉयमेंट प्रोग्राम फॉर द पुअर (SEPUP) कार्यक्रम संचालित हुआ
8. **1990:** नगरीय लघु उद्यमियों की मदद के लिये स्कीम फॉर अर्बन माइक्रो इंटरप्राइजेज (SUME)
9. **1990:** नगरीय निर्धन वर्ग के लिये स्कीम ऑफ अर्बन वेज इंप्लॉयमेंट (SUWE)

10. 1991: काले धन को रोकने के लिये नेशनल हाउसिंग बैंड वॉलन्टियरी डिपॉजिट स्कीम (NHBVDS) संचालित की गयी, जिसके जरिये निर्धन वर्ग के लिये निम्न मूल्य वाले आवास तैयार किये गये
11. **1992:** निजी क्षेत्र में काम करने वाले लोगों के लिये नेशनल रिन्यूअल फंड (NRF)
12. **1993:** विकास कार्यों को बढ़ावा देने के लिये मेंबर्स ऑफ पार्लियामेंट लोकल एरिया डेवलपमेंट स्कीम (MPLADS)
13. **1994:** बेहतर जल वितरण, सीवेज, नाले–नालियों के निर्माण, परिवहन सुविधा, भू–उपयोग के लिये स्कीम फॉर इंफ्रास्टक्चरल डेवलपमेंट इन मेगा सिटीज (SIDMC) एवं नगरों में बस्तियों के सुधारीकरण के लिये योजनाएं
14. **1994:** बच्चों को घातक उद्योगों में श्रम से निकालकर स्कूलों तक पहुंचाने और शिक्षा के अवसर प्रदान करने के लिये चाइल्ड लेबर इरेडिकेशन स्कीम (CLES)
15. **1995:** स्कूलों में बच्चों के दाखिले, उपस्थिति बढ़ाने के लक्ष्य के साथ उन्हें बेहतर पोषण उपलब्ध कराने के लिये प्राइमरी स्कूलों में मिड–डे मील योजना
16. **1995:** गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों के लिये नेशनल सोशियल असिस्टेंस प्रोग्राम (NSAP)
17. **1997:** महिला साक्षरता दर के लिहाज से बेहद पिछड़े क्षेत्रों में जिलास्तर पर बालिका विद्यालयों की स्थापना कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना (Kastoorba Gandhi Education Scheme) के तहत की गयी
18. **1997:** नगरीय रोजगार की व्यवस्था के लिये स्वर्ण जयंती नगरीय रोजगार योजना
19. **1998:** बालिका शिशुओं की देखभाल और उनके जीवनस्तर में सुधार के लिये भाग्यश्री बाल कल्याण योजना
20. **1999:** वरिष्ठ नागरिकों को दस किलो खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिये अन्नपूर्णा योजना
21. **2000:** गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों को बीमा कवर उपलब्ध कराने के लिये जनश्री बीमा योजना
22. **2000:** निर्धन वर्ग को खाद्य सुरक्षा देने के मकसद से अन्त्योदन योजना
23. **2005:** National Child Labour Project (NCLB)
24. **2015:** स्मार्ट सिटी मिशन
25. **2015:** अमृत योजना
26. **2015:** प्रधानमंत्री आवास योजना

## 16.6 निष्कर्ष (Conclusion)

नगरीय नियोजकों से यह उम्मीद की जाती है कि वे एक समावेशी नगरीय नीति तैयार करेंगे, जो भारत में नगर निकायों को गतिशील करने के साथ निकाय प्रशासन में सुधार, IDSMT कार्यक्रम के जरिये स्थानीय आर्थिकी में निवेश की व्यवस्था, 1989 की NRY की तरह रोजगार के अवसर प्रदान करने और EIUS तथा UBSP योजनाओं के जरिये मलिन बस्तियों में बेहतर सुविधाएं मुहैया कराने का काम कर सकें। (planning tank, 2017). ये सभी कार्यक्रम देश के सभी राज्यों में क्षेत्रीय अंतर को दूर करने के लिये सक्रिय रूप से लागू किये जाने चाहिये। 74वें संविधान संशोधन को नगर निकायों के जरिये लागू किया जाना चाहिये। नगरीय नीतियों को प्रत्यक्ष और प्रभावी रूप से गरीबी उन्मूलन, बेरोजगारी को खत्म करने पर काम करना चाहिये। नगरीय अनौपचारिक सेक्टरों में श्रमिकों की अच्छी–खासी तादाद है। इन सेक्टरों का उच्चीकरण और नगरीय अर्थव्यवस्था में एकीकरण किया जाना आवश्यक है।

## 16.7 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. नगरीय नीति के बुनियादी सिद्धांत क्या हैं? भारत के सन्दर्भ में इन्हें किस तरह लागू किया गया है?
2. नगरीय विकास कार्यक्रमों को पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कैसे लागू किया गया? विस्तार से समझाएं।
3. स्वतंत्रता के बाद भारत में नगरीय विकास कार्यक्रमों की जानकारी दें। हर योजना के पीछे क्या लक्ष्य और उद्देश्य थे, इसे भी समझाएं।

## 16.8 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)

Harvey, D. (2008). "The right to the city", New Left Review, 53, pp. 23-40.

V.Gnaneshwar (1995), "Urban Policies in India Paradoxes and Predicaments",Habitat Intl. Vol. 19, No. 3, Pp. 293-316, 1995

Singh,M.S(2014),shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/31999/.../n14-various%20programme.pdf

Nath. V, "Urbanisation in India: Review & Prospects", EPW. Vol. XXI. No.8, Feb.22, 1986, p .339

**Turok, I. (2014). "South Africa's tortured urbanization and the complications of reconstruction". In McGranahan, G. and G. Martine, eds. Urban Growth in Emerging Economies, London: Rutledge.**

इकाई– 17

# नगरीय शासन की चुनौतियांः नगरीय हिंसा
# (Challenges to Urban Governance: Urban Violence)

इकाई की रुपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 परिचय

17.2 शहरीकरण

17.3 शहरीकरण के कारण

17.4 नगरीय क्षेत्र क्या है

17.5 नगरीय शासन का अर्थ और महत्व

17.6 भारत में नगरीय सरकार का विकास

17.7 नगरीय शासन की चुनौतियां

17.8 नगरीय हिंसा की अवधारणा एवं माध्यम

17.9 हिंसा की श्रेणियां

17.10 नगरीय हिंसा के कारण एवं परिणाम

17.11 निष्कर्ष

17.12 अभ्यास प्रश्न

17.13 सहायक अध्ययन

17.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 17.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम यह समझ और विश्लेषण कर पाएंगेः

1. नगरों में नगरीय शासन और हिंसा की अवधारणा
2. नगरों में हिंसा के परिणाम और कारण

## 17.1 परिचय (Introduction)

पूरा विश्व शहरीकरण के इजाफे का साक्षी बना हुआ है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और विकास में शहरों का महत्व भी बढ़ रहा है। शहरीकरण के साथ नगरों में शासन के पारंपरिक तरीकों (ऊपर से नीचे की ओर) में भी बदलाव आया है, पुराने तरीके अप्रासंगिक हो गये हैं। सेवाओं–सुविधाओं में सुधार, सहभागिता के नये रास्ते, पारदर्शिता में वृद्धि और आधुनिक प्रशासन आज की जरूरत बन गये हैं। इन जरूरतों को पूरा करने के लिये नयी व्यवस्थाओं और कामकाज के तरीकों के विकास की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही यह भी महसूस किया जाता है कि स्थानीय नगरीय निकायों की मौजूदा क्षमता जरूरत के हिसाब से कम है और इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होनी चाहिये।

## 17.2 शहरीकरण (Urbanization)

शहरीकरण का तात्पर्य पारंपरिक तरीकों से आधुनिकता की ओर बढ़ने से है। यह कृषि आधारित समाज से औद्योगिक समाज तक का रूपांतरण है। यह जीवनशैली में बदलाव का जरिया बनता है, जिसमें जीवन अनौपचारिक के बजाय औपचारिक हो जाता है और शारीरिक सुविधाओं के लिये यह भौतिकता को बढ़ावा देता है। शहरीकरण मानव संबंधों में भी परिवर्तन की वजह बनता है। इसके चलते संबंधों में प्रगाढ़ता की जगह अवैयक्तिकता और वर्गीकृत संपर्क–संबंध बढ़ते हैं। यह उत्पादन के साधनों में भी बदलाव करता है। इससे उत्पादन के साधन मानवीय नहीं रहते, बल्कि यांत्रिक हो जाते हैं। इस प्रकार शहरीकरण की प्रक्रिया अवसरों की उपलब्धता, रोजगार की मौजूदगी और सांस्कृतिक व्यवस्था में बदलाव का सबब बनती है। शहरीकरण ग्रामीण क्षेत्रों से आबादी के नगरीय क्षेत्रों की ओर स्थानांतरण की भी प्रक्रिया है।

## 17.3 शहरीकरण के कारण (Causes of Urbanization)

जैसाकि हम जानते हैं कृषि ग्राम्य जीवन का आधार है, इसी तरह औद्योगिकता शहरों का निर्माण करती है। इसीलिये शहरीकरण की प्रक्रिया में कृषि आधारित समाज स्वयं को औद्योगिक समाज में रूपांतरित करता है। ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर आबादी का स्थानांतरण दो प्रमुख घटकों से होता है। ये हैं, दबाव (Push Factor) और खिंचाव (Pull Factor)। हालांकि, प्रथम दृष्ट्या ये दोनों घटक एक–दूसरे से अलग नजर आते हैं, लेकिन वास्तव में पूरी प्रक्रिया में इन दोनों को विभक्त नहीं किया जा सकता। दबाव के कारकों की बात करें तो इन्हें इस तरह समझा जा सकता है–

1. कृषि आधारित क्षेत्रों में जनसंख्या बढ़ती है तो भूमि सीमित होती जाती है। इससे आबादी के बड़े हिस्से के लिए जीवनयापन कठिन होता जाता है और वे अस्तित्व के लिये अकृषि आधारित विकल्पों की तलाश करने लगते हैं।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के बेहद सीमित अवसर उपलब्ध होते हैं।
3. ग्रामीण कार्यों में कामगारों की अधिकता के चलते लोगों की आय पर असर पड़ता है।
4. सीमित ग्राम्य जीवन सामाजिक लिहाज से कठिनाइयों को पैदा करता है, इससे यहां रहने वाले लोग सामाजिक सुरक्षा, संपत्ति, बेहतर रोजगार के अवसर, जीवन संसाधनों की अधिकता, सुविधाओं की उपलब्धता, अधिक स्वतंत्रता और खुलेपन, शैक्षिक–सांस्कृतिक और स्वास्थ्य समेत जीवन के लिए उपयोगी विभिन्न सुविधाओं को हासिल करना चाहते हैं।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में उग्रवाद भी ग्रामीण आबादी का शहरों की ओर पलायन की वजह बनता है।

इसी तरह खिंचाव घटक को इस तरह समझा जा सकता है–

1. शहरों में शैक्षिक संस्थान, सड़कें, पेयजल–बिजली जैसी जीवनोपयोगी सुविधाएं और सामाजिक लिहाज से आकर्षक संसाधनों की उपलब्धता रहती है।
2. नगरीय इलाकों में परिवहन के बेहतर और त्वरित संसाधन उपलब्ध होते हैं।
3. भारत में धार्मिक केन्द्र भी शहर केन्द्रित हैं।
4. पलायन करके आने वाले लोगों, शरणार्थियों के पुनर्वास के लिये नगरीय इलाकों के आसपास ही व्यवस्था की जाती है।
5. उपभोक्तावादी बाजार की संस्कृति लोगों को कस्बों और शहरों की ओर आकर्षित करती है।
6. रोजगार में बेहतर साधन हासिल करने के अवसर नगरीय क्षेत्रों में पर्याप्त उपलब्ध होते हैं।
7. यह माना जाता है कि नगरीय क्षेत्र में रहना किसी व्यक्ति की पहचान को बढ़ाता है।
8. शहर ऐसे खुले समाज को बढ़ावा देता है, जहां हर व्यक्ति के कामकाज और जीवनशैली का अपना तरीका होता है, जिसमें अन्य किसी का हस्तक्षेप नहीं होता

## 17.4 नगरीय क्षेत्र क्या है (What is an Urban Area)

नगरीय क्षेत्र वह क्षेत्र है, जिसे औपचारिक तौर पर वैधानिक ढांचे की ओर से नगरीय घोषित किया गया है और जहां स्थानीय नगर निकाय, नोटिफाइड एरिया या छावनी परिषद की स्थापना की गयी हो। प्रदेश सरकारों की ओर से इन निकायों में विकास और अन्य आवश्यक कार्यों को संपन्न करने के लिये 'म्यूनिसिपल एक्ट' बनाये गये हैं। इनके अलावा भी जनसंख्या आंकड़ों के आधार पर कुछ क्षेत्रों को नगरीय माना जा सकता है। जनसंख्या के आधार पर किसी क्षेत्र को नगरीय मानने के लिये इन तीन कारकों का होना आवश्यक है– 1. न्यूनतम जनसंख्या 5000 होनी चाहिये, 2. जनसंख्या घनत्व चार सौ प्रति वर्ग किलोमीटर होना चाहिये, 3. उस क्षेत्र में रहने वाली आबादी का 75 प्रतिशत हिस्सा अकृषि कार्यों से संबद्ध होना चाहिये

## 17.5 नगरीय शासन का अर्थ और महत्व (Meaning and Importance of Urban Governance)

शासन (Governance) का अर्थ और उद्देश्य सरकार (Government) से कहीं अधिक व्यापक और विस्तृत होता है। सरकार का अर्थ राजनीतिक वर्ग की आंतरिक और बाह्य रुचियों को पूर्ण करने के लिये शक्ति–सत्ता के उपयोग हेतु बनायी गयी सांस्थानिक व्यवस्थाओं और मशीनरी से है। दूसरी ओर, शासन का अर्थ उस प्रक्रिया से है, जिसके जरिये समाज के लाभ के लिए आधिकारिक निर्णय लिये जाने के अलावा इनका नियमन और नियंत्रण किया जाता है। सरकार मूलतः शासन का सर्वाधिक शक्तिशाली और मुख्य तत्व है। हालांकि, मौजूदा दौर में खुले बाजार (Free Market), निजीकरण, ढांचागत व्यवस्थाओं, विकेन्द्रीकरण और विनियमन जैसे मसलों के चलते सरकारी नियंत्रण का आकार और प्रवृत्ति कुछ हद तक सीमित हुई है। गैरसरकारी स्वयंसेवी संस्थाएं (NGOs) आज विकास प्रक्रिया में अहम भूमिका निभा रही हैं। कॉरपोरेट सेक्टर भी अच्छे शासन (Good Governance) में भूमिका निर्वाह करता है और जनता की खुशहाली में योगदान करता है। कई देशों में सरकार की लोकतांत्रिक व्यवस्था पारदर्शिता के अभाव, शक्तियों के दुरुपयोग, भ्रष्टाचार और घपले–घोटालों की समस्या से जूझ रही है। ऐसे में अच्छे नगरीय शासन की अवधारणा इन समस्याओं से निजात के तरीके के तौर पर उभरती है। शक्तियां सरकार के आंतरिक और बाह्य अधिकरणों (Authorities) एवं संस्थानों (Institutions) में

निहित होती हैं, जो प्राथमिकताओं (Priorities) को ध्यान में रखते हुए विभिन्न कारकों के संबधों को आधार बनाते हुए आवश्यक निर्णय लेती हैं। नगरीय शासन को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, 'यह व्यक्तिगत और सांस्थानिक, निजी और सार्वजनिक, योजना एवं प्रबंधन के विभिन्न माध्यमों का संयोग है जो शहर के सामान्य मामलों को नियंत्रित, निर्धारित करता है। यह एक ऐसी सतत प्रक्रिया है, जिससे द्वंद्वात्मक और विभिन्न रुचियों वाले कारकों को समायोजित कर समन्वित सहयोगी (Cooperative) कदम उठाना संभव हो पाता है। यह औपचारिक संस्थानों के अलावा अनौपचारिक व्यवस्थाओं को भी समाविष्ट करके नागरिकों की सामाजिक स्थिति को नियंत्रित रखता है।' (Rao:2004)

## 17.6 भारत में नगरीय सरकार का विकास (Evolution of Urban Government in India)

भारत में नगरीय सरकार का विकास शासन के केन्द्रीकरण की व्यवस्था से हुआ। प्राचीन भारत ग्रामीण गणतांत्रिक था, लेकिन शासक नगरों की भी स्थापना किया करते थे। वैदिक काल के नगरों और प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में बहुत कम विवरण उपलब्ध है। गुप्तकाल में नगरीय शासन व्यवस्था का जिम्मा केन्द्रीय स्तर पर नियुक्त 'पुरपाल' करते थे। पुरपाल का सहयोग एक समिति करती थी। इस तरह की नगर समितियां प्राचीन भारतीय प्रशासन व्यवस्था में आम थीं। मध्यकाल में केन्द्रीय शासक स्थानीय मामलों की देखरेख अच्छी तरह नहीं कर सकते थे। इसके लिए उन्हें स्थानीय निकाय की आवश्यकता हुई जो स्थानीय मसलों को सुलझाने के अलावा राजस्व संग्रहण भी कर सकें। स्थानीय प्रशासन की यह व्यवस्था शासक (राजा) के प्रतिनिधियों द्वारा संभाली जाती थी। आम जनता प्रबंधन से नहीं जुड़ी होती थी। मुगल प्रशासनिक व्यवस्था में 'कोतवाल' स्थानीय मामलों का निस्तारण तो करता था, लेकिन आम जनता के प्रति उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं था। (Altekar 1949).

केंद्रीयकृत प्रशासनिक व्यवस्था में बदलाव औपनिवेशिक दौर में सामने आया। ईस्ट इंडिया कंपनी का मकसद व्यापार था, लेकिन इसके साथ उसे भारत में रह रहे ब्रिटिश नागरिकों की स्वास्थ्य रक्षा, पुलिस प्रबंधन के लिए राजस्व संग्रहण और कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए कुछ नियमन की भी आवश्यकता हुई। हालांकि, इसका उद्देश्य स्थानीय शासन की स्थापना नहीं था। 1858 तक भी ब्रिटिश रानी के शासन ने भारत में आम नागरिकों की सहभागिता और उनके प्रति उत्तरदायित्व के भाव से स्थानीय शासन की व्यवस्था के कोई प्रयास नहीं किए। 1882 में लॉड रिपन ने पहली बार स्थानीय प्रशासन का प्रस्ताव रखा, जिसमें स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के लिये निर्वाचित इकाई की जरूरत जताई गई।

भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों (Directive Principles) में अनुच्छेद 40 में नगरीय निकायों (Urban Bodies) की तरह ग्राम पंचायतों के गठन की व्यवस्था दी गयी, जिसमें राज्य का यह दायित्व निर्धारित किया गया कि वह पंचायतों का गठन कर इन्हें इस तरह शक्ति प्रदान करे कि वे स्वायत्त सरकार (Self Government) के रूप में कार्य कर सकें। स्वतंत्रता के पश्चात अव्यापी और अनुपयोगी निकाय नियमों, अकुशल कर्मचारियों, कमजोर वित्तीय व्यवस्था और तंगहाली नगरीय सरकारों के विकास में रोड़ा बन गयीं। 'राज्य सरकारों ने नगरीय निकायों से संबंधित नियमों को लेकर दोहरी (Ambivalent) नीति अपनायी। कागजों पर तो निकायों को शक्तियां प्रदान की गयीं, लेकिन धरातल पर निकायों के इन शक्तियों के उपयोग पर कई तरह के नियंत्रण और अवरोध लगा दिये गये।' (Bhattacharya: 1976).

वर्ष 1985 इस दिशा में इस लिहाज से प्रतिमान माना जाता है कि इसी साल केंद्रीय स्तर पर नगरीय विकास मंत्रालय (Ministry of Urban Development) का गठन स्वतंत्र रूप से किया गया। इससे पूर्व यह अलग–अलग मंत्रालयों के अधीन हुआ करता था। इससे शहरीकरण की तेज गति के बावजूद भारत में शहरीकरण की व्यापक और सुपरिभाषित नीति तय नहीं थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 65वें संविधान संशोधन बिल में नगर निकायों को आवश्यक शक्तियां प्रदान करने और उन पर से वित्तीय नियंत्रण हटाने की जरूरत जतायी, ताकि वे स्वायत्त सरकार के रूप में कार्य कर सकें। हालांकि, लोकसभा में पारित होने के बावजूद वर्ष 1989 में यह बिल राज्यसभा में गिर गया। 16 सितंबर 1991 को केंद्र सरकार ने नगर निकायों को लेकर संविधान संशोधन बिल लोकसभा में रखा। यह बिल मूलतः 65वें संशोधन बिल पर ही आधारित था, लेकिन इसमें कुछ जरूरी बदलाव किये गये थे। यह बिल संविधान में एक नया हिस्सा (जिसे भाग 9ए या Part IX A कहा गया) जोड़ने के लिये रखा गया। इस भाग में नगर निकायों के ढांचे, संरचना, सीटों के आरक्षण, चुनाव व्यवस्था और प्रक्रिया, वित्तीय और अन्य प्रावधानों को शामिल किया गया।

वर्ष 1992 में संसद ने संविधान के 74वें संशोधन एक्ट (CAA 1992) को पारित कर दिया और एक जून 1993 से यह लागू भी हो गया। इससे सभी राज्य सरकारों के लिये एक साल के भीतर अपने निकाय नियमों में बदलाव करना अनिवार्य बना। यह कानून भारत में नगरीय स्थानीय निकायों के लिए ऐतिहासिक माना जाता है। यह ऐसी समुचित वैधानिक व्यवस्था देता है, जिससे नगरीय निकायों में लोकतांत्रिक परंपरा स्थापित हो सके। यह समाज के सभी वर्गों को निकायों में प्रतिनिधित्व के साथ नगरीय निकायों में व्यवस्थित वैधानिक प्रक्रिया को बढ़ाता है। इस एक्ट से स्थानीय सरकारों को पहली बार संवैधानिक स्थापना (Status) मिली। इस प्रकार स्थानीय सरकारें संवैधानिक प्रक्रिया के तहत स्थापित होती हैं और इस प्रक्रिया में राज्य के नियम शामिल होते हैं। स्थानीय निकायों का गठन राज्य की शाखा के रूप में नहीं होता है। 74वां संशोधन इस बात पर जोर देता है कि राज्य आमजनों तक शक्तियां प्रदान करें ताकि वे अपने लिये योजनाएं बना सकें और इसके लिए आवश्यक निर्णय भी ले सकें। इस प्रकार यह संशोधन बिल नगर निकायों के लिए संवैधानिक ढांचा तय करता है। इस एक्ट के प्रावधान राज्यों (States) के अलावा केन्द्रशासित राज्यों (Union Territories) पर भी लागू होते हैं। यह बिल अनिवार्य प्रावधानों के अलावा विवेकाधीन प्रावधानों की भी व्यवस्था देता है जो पूरे देश में लागू हैं।

अनिवार्य प्रावधानों में एकसमान ढांचा, स्थायित्व, प्रतिनिधित्व, वार्ड समितियां, जिला या महानगरीय योजना समितियां, वित्तीय आयोग, राज्य चुनाव आयोग आदि शामिल हैं। स्थानीय सरकार चूंकि राज्य का विषय है, लिहाजा विवेकाधीन प्रावधान राज्यों पर ही छोड़े गये हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि राज्य स्थानीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप इनका उपयोग कर सके। इस प्रकार भारत में संविधान ने ही स्थानीय निकायों के विकास की व्यवस्था दी है। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे स्थानीय विकास के लिये योजनाएं बनाने, विकास कार्यक्रमों के निष्पादन और नगरीय गरीबी को पाटने में अहम भूमिका निभायें।

## 17.7 नगरीय शासन की चुनौतियां (Challenges of Urban Governance)

शहरीकरण की तेज गति ने विभिन्न देशों में हिंसात्मक गतिविधियों और असुरक्षा की भावना को भी बढ़ाया है। लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के महानगरों (Mega Cities) तो विशेष रूप से

प्रभावित हैं ही, औद्योगिक नगरों में भी नगरीय हिंसा और आपराधिक गतिविधियों में बढ़ोतरी हुई है। पूरे विश्व में आधी से अधिक आबादी अब शहरों में रहती है और आबादी का बड़ा हिस्सा शहरों में मिलने वाले अवसरों से लाभान्वित होता है, लेकिन फिर भी कई लोग शिक्षा, श्रम, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से आगे बढ़ पाने में बाधाओं का सामना करते हैं। सामाजिक अन्याय, उद्देश्यों का अभाव, अवसरों की कमी आदि पहलू निर्धनता को बढ़ावा देते हैं। इस सबसे एक ऐसा वातावरण बनता है, जो हिंसात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देने की वजह बन जाता है। विशेषतः उन स्थानों पर जहां सामाजिक–आर्थिक बेहतरी के बेहद सीमित अवसर हों। इसके परिणामस्वरूप नगरीय क्षेत्रों में विभाजन उभरता है, जो सामुदायिक चहारदीवारियों (Gated Communities), बस्तियों (Slums) और गरीब इलाकों के तौर पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस तरह की परिस्थितियां आपराधिक गतिविधियों और नेटवर्क को बढ़ावा देती हैं, विशेषतः उन स्थानों में जहां मूलभूत जनसुविधाओं को लेकर नीतियां अस्पष्ट और अनुपयोगी हों। ऐसे क्षेत्रों में आपराधिक गिरोह अवसरों से वंचित युवाओं को कामयाबी का झांसा देकर अपराध की ओर मोड़ते हैं। दूसरी ओर, महिलाएं घरेलू, यौन और शारीरिक हिंसा का शिकार बनती हैं। इस तरह के अपराध और हिंसात्मक वातावरण धीरे–धीरे राष्ट्रीय और स्थानीय शासन के नियंत्रण के नष्ट होने की वजह बनता है और शक्तियों पर राज्य का नियंत्रण भी कम होता जाता है।

## 17.8 नगरीय हिंसा की अवधारणा एवं माध्यम (Concept and Methods of Urban Violence)

हिंसा की व्यापक संकल्पना घटनाओं की विस्तृत श्रृंखला को सामने लाती है। ढांचागत हिंसा में समाज के उपेक्षित हिस्से की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक बाधाएं अहम कारक हैं, जो राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थानों की नीतियों की वजह से पैदा होती हैं (Galtung 1969)। शेपर, ह्यूज और बोर्जोआ (2004) इसे 'गरीबी, भूख, सामाजिक बहिष्कार और असम्मान से उत्पन्न हिंसा' मानते हैं। सांस्कृतिक हिंसा का तात्पर्य उस स्थिति से है, जब संस्कृति की कोई धारणा ढांचागत हिंसा या शारीरिक हिंसा को आश्रय अथवा वैधता देती है (Galtung 1990)। इन विस्तृत अवधारणाओं से यह माना जा सकता है कि हिंसा पीड़ितों (Victims) और हमलावरों (Agressors) के बीच शक्तियों की असमानता का परिणाम है, लेकिन इसमें काल्पनिक विस्तार का खतरा बना रहता है (Sartori 1970), क्योंकि यह स्थिति हिंसात्मक घटनाओं की अंतहीन श्रृंखला की धारणा को बढ़ाती है।

हिंसा शब्द को इस तरह परिभाषित किया जाता है– किसी व्यक्ति, समुदाय या सामाजिक समूह पर शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक रूप से बल का इस्तेमाल या इस्तेमाल की धमकी। शक्तियों की असमानताओं के चलते इनसे जुड़े लोगों को हिंसात्मक रूप से और अधिक ताकत मिलती है जो समाज और राज्य के बीच विवादास्पद मुद्दों को जन्म देते हैं। ये मसले स्वयं राज्य (State) में अंतर्निहीत रहते हैं, जबकि सामाजिक तत्वों में भी विशिष्ट रूप से उपस्थित होते हैं।

जब भी अपराध और हिंसा की बात की जाती है तो लंबे समय से यही माना जाता रहा है कि ये दोनों विषय मूलतः बस्तियों (Slums) से जुड़े हुए हैं। इस धारणा ने सार्वजनिक नीति निर्माताओं (Public Policy Makers) के मन में बस्तियों के प्रति नकारात्मक विचारों को बढ़ावा दिया। हालांकि, धीरे–धीरे यह तथ्य भी सामने आया कि बस्तियों में रहने वाले लोग आपराधिक गतिविधियों के मुख्य स्रोत नहीं हैं। बस्तियों में रहने वाले लोग (Slum Dwellers) सांगठनिक अपराध के मामले में बस्तियों में नहीं रहने वाले लोगों (Non Slum Dwellers) के मुकाबले जल्दी और अधिक अनावृत्त (Exposed) हो जाते हैं। इसकी मुख्य वजह सार्वजनिक आवास सुविधाओं का अभाव और अन्य जनहितकारी नीतियों में बस्तीवासियों को उपेक्षित रखना है। इससे यह भी साफ हुआ कि बस्तियों में रहने वाले लोग अपराध से अधिक पीड़ित होते हैं। हालांकि कुछ बस्तियों (विशेषतः शहरों के भीतर की पारंपरिक बस्तियां) में अपराध और हिंसा की अधिक घटनाएं सामने आ सकती हैं। इसका कारण यहां रहने वाले लोगों का अस्थायित्व, परस्पर विरोधी संस्कृति और सामाजिक तौर–तरीके हो सकते हैं।

## 17.9 हिंसा की श्रेणियां (Categories of Violence)

हिंसा को सामान्यतः दूसरों को क्षति पहुंचाने वाले शारीरिक बल के तौर पर परिभाषित किया जाता है। व्यापक परिभाषाओं में मनोवैज्ञानिक क्षति और भौतिक हानि को भी शामिल किया जाता है। अधिकतर परिभाषाओं से यही स्पष्ट होता है कि हिंसा दरअसल एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें किसी खास लाभ या वस्तु को पाने के मकसद से शक्ति के दुरुपयोग को मान्यता दी जाती है। हिंसा की परिभाषा टकराव या संघर्ष (Conflict) और अपराध से अकसर अलग होती है, हालांकि इनमें कई विशिष्ट समानताएं भी पायी जाती हैं। शक्तियों को लेकर होने वाले संघर्ष या टकराव में यह आवश्यक नहीं है कि किसी को शारीरिक या मानसिक रूप से नुकसान हो, जबकि हिंसा की प्रकृति ही नुकसान पहुंचाने की होती है। इसी तरह अपराध में भी हिंसा अनिवार्य नहीं होती। हिंसा को निम्न श्रेणियों से समझा जा सकता हैः

| क्रम | हिंसा का प्रकार | अपराधी / पीड़ित |
|---|---|---|
| 1 | राजनीतिक (Political) | राज्य और गैर राज्य (State and Non State) |
| 2 | संस्थागत (Institutional) | 1. राज्य और अनौपचारिक व्यवस्थाएं (State and Informal)<br>2. निजी क्षेत्र (Private Sectors) |
| 3 | आर्थिक (Economic) | 1. संगठित अपराध (Organized Crime)<br>2. व्यावसायिक लाभ (Business Interests)<br>3. दायित्वों का अपालन (Delinquents)<br>4. लुटेरे (Robbers) |
| 4 | आर्थिक–सामाजिक (Economic-Social) | 1. गिरोह (Gangs)<br>2. लावारिस बच्चे (Street Children)<br>3. पारंपरिक हिंसा (Ethnic Violence) |
| 5 | सामाजिक (Social) | 1. यौन हिंसा, दुराचार (Sexual Violence, Rape)<br>2. घरेलू हिंसा (Violence at Home)<br>3. बच्चों का शोषण (Child Abuse)<br>4. अभिभावकों–बच्चों के अंतर्विरोध, पीढ़ीगत अंतर (Inter Generational Conflict Between Children And Parents)<br>5. निष्कारण / दैनिक हिंसा (Gratuitous/Routine Violence) |

यद्यपि नगरीय हिंसा की विभिन्न श्रेणियों में बहुत अधिक विभाजन या अंतर नहीं है, लेकिन नीति नियंता इन श्रेणियों के हिसाब से घटनाओं के विश्लेषण के आधार पर इनकी रोकथाम के कदम उठाते हैं। सामाजिक हिंसा में सबसे अधिक मामले लैंगिक हिंसा (Gender Violence) के सामने आते हैं। इनमें पुरुषवादी व्यवस्था में महिला अधिकारों का हनन, घरेलू हिंसा, पति द्वारा मारपीट, बच्चों के साथ अपराध और यौन शोषण आदि शामिल हैं। इस तरह की हिंसा में पारंपरिक, क्षेत्रीय अथवा पहचान आधारित गिरोहात्मक हिंसा भी आती है। आर्थिक हिंसा का मूल वस्तुओं और लाभ का मकसद होता है। इसमें

सड़कों पर होने वाले अपराध (छिनैती, लूटमार, जेब काटना आदि), नशे का कारोबार, अपहरण आदि शामिल हैं।

संस्थागत अपराध सांगठनिक अपराध होते हैं, जिसमें पुलिस, न्यायिक व्यवस्था, राज्यगत संस्थाएं, स्वास्थ्य–शिक्षा समेत विभिन्न सरकारी विभागों–मंत्रालयों के अधिकारी और राज्य के बाहर की संस्थाओं, प्राइवेट सेक्टर आते हैं। राजनीतिक अपराध का सीधा अर्थ उन प्रक्रियाओं से है, जिसमें राजनीतिक शक्तियों को हासिल करने के लिये गुरिल्ला युद्ध, सैन्य विद्रोह और राजनीतिक हत्याएं जैसे अपराध किये जाते हैं। यद्यपि राजनीतिक अपराध को सीधे तौर पर विद्रोहात्मक संघर्षों और युद्धकाल की प्रक्रिया माना जाता है, लेकिन कई बार शांतिकाल में भी यह सांगठनिक अपराध की प्रक्रिया को बढ़ावा देता है। चूंकि हिंसा की बेहद गतिशील और व्यापक घटनाओं की प्रक्रिया को सांख्यिकीय आधार पर बांधना पूरी तरह संभव नहीं है, लिहाजा अपराध और हिंसा को समझने के लिये इस तरह की श्रेणियां बांटी गयी हैं, ताकि अलग–अलग तरह के अपराधों के परस्पर संबंध और संपर्क को समझा जा सके। हिंसा हमेशा शारीरिक तौर पर ही प्रकट नहीं होती, बल्कि ढांचागत भी होती है। जैसाकि गलटंग (Galtung) ने हिंसा को सिर्फ नृशंस अपराधों से आगे सामाजिक व्यवस्थाओं में शोषण, सामाजिक असमानता, अन्याय, उपेक्षा आदि तक विस्तार दिया है।

**महानगरों में सांगठनिक हिंसा के मामले और इनके कारण मौत की संख्या बेहद गंभीर हैं। इस तरह की हिंसा के परिणाम पारंपरिक सैन्य विद्रोह और युद्धों से कहीं अधिक भयावह हैं।**

## 17.10 नगरीय हिंसा के कारण एवं परिणाम (Causes and Consequences of Violence)

असमान शक्ति संबंधों से संबद्ध हिंसा के ढांचागत कारणों की विशेषता और परिस्थितिगत खतरे के कारणों को समझना बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके जरिये हिंसा की संभावनाओं को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिये लैंगिक हिंसा के जोखिम (Risk Factors) में सामान्यतः नशा और शराब का उपयोग भी जुड़ते हैं। इस तरह ढांचागत अध्ययन के लिये समग्र दृष्टिकोण की जरूरत होती है, जो पारिस्थितिकीय मॉडल से मिल सकती है। इस मॉडल में उन तरीकों का अध्ययन किया जाता है, जिसमें विभिन्न स्तरों (व्यक्तिगत, अंतर्वैयक्तिक, संस्थागत और व्यवस्थागत) की हिंसात्मक गतिविधियां सामने आती हैं। एक अन्य मॉडल में लोगों के परिस्थितिगत हिंसात्मक अनुभवों, हिंसा के कारणों की पहचान की जाती है।

चूंकि शक्ति और शक्तिहीनता हिंसा को समझने के आधार हैं, यह मॉडल विस्तृत राजनीतिक और सामाजिक–आर्थिक ढांचे को व्यक्तिगत वास्तविकता के आधार पर समझने में मदद करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिंसात्मक अनुभव लिंगभेद, आयु, परंपराओं और जाति के आधार पर समझे जा सकते हैं। पहचान मानव समुदाय से गहराई से संबद्ध होती है और कई बार संसाधनों पर प्रतिबंधों के कारण व्यक्ति अपने उद्देश्यों की पूर्ति और पहचान के लिये वैकल्पिक रास्तों की तलाश करता है। सामाजिक ढांचे में सहिष्णुता के स्तरों को आसानी से देखा जा सकता है जो हिंसात्मक गतिविधियों को कम करने वाली नीतियों के निष्पादन में प्रभावी होते हैं। उदाहरण के लिये, समुदायों में घरेलू हिंसा और मादक द्रव्यों के सेवन की सामाजिक स्वीकार्यता हिंसा को बढ़ावा तो देती है, लेकिन प्रभावी रक्षात्मकता का भी काम करती है। नगरीय संदर्भों में वे सीमाएं अकसर वाद–विवाद का विषय बनती हैं, जिनके आधार पर निर्धनता और असमानता को हिंसा की वजह माना जाता है। निर्धनता को सामन्यतः लंबे समय से हिंसा

का कारण माना जाता रहा है, लेकिन बाद के शोधों से यह साफ हुआ है कि असमानता का भाव निर्धनता से कहीं अधिक हिंसा को बढ़ावा देता है। नगरीय क्षेत्रों में ग्रामीण इलाकों के मुकाबले आर्थिक असमानता हिंसा का बड़ा कारण है। कुछ विश्लेषक मानते हैं कि हिंसा के बढ़ते स्तर वैश्वीकरण, ढांचागत समायोजनों और राजनीतिक प्रक्रिया का परिणाम हैं।

इसी तरह नगरीय क्षेत्रों में निर्धन लोगों की दैनिक जीवनशैली विद्रोह, अपराध और हिंसा की आशंका को बढ़ाती है। अपराध का राजनीतिकरण (Politicization of Crime) नये दौर का उभरता हुआ संदर्भ है, जिसमें राज्यगत संस्थाओं को सामाजिक शासन की गैरराज्यगत, निजी संस्थाओं और व्यवस्था से चुनौती मिलती है। युद्धों का शहरीकरण (Urbanization of Warfare) उन क्षेत्रों में अकसर सामने आने लगा है, जो हाल में युद्धों के परिणामस्वरूप उभरे हैं। युद्धों का यह बदलता स्वरूप संगठित अपराध से जुड़े लोगों को लाभ पहुंचाता है। शहरों और उनके आसपास हिंसा के स्थानीय कारण भी सामने आते हैं, इनमें असुरक्षित स्थान (अंधेरी गलियां, निर्जन बस स्टॉप, सार्वजनिक शौचालय आदि) शामिल हैं, जहां दुराचार, लूटमार जैसे अपराध घटित होते हैं। नगरीय क्षेत्रों में अपराध के स्तर में इस तरह बढ़ावा होने से राज्य की ओर से प्रभावी सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध करा पाने पर विश्वास घटता है। समृद्ध लोग मजबूत चहारदीवारियों के भीतर रहते हैं और परिवहन के लिये विशेष सुविधाओं का इस्तेमाल करते हैं, जबकि सुरक्षा का जिम्मा निजी व्यवस्थाओं को दिया जाता है। यह पूरी प्रक्रिया उन्हें उन निर्धन लोगों से अलग करती है जो अकसर हिंसा के पीड़ित के रूप में सामने आते हैं।

हिंसा के कारकों पर नजर डालें तो ये मुख्यतः अपराध के मूल्य और परिणाम हैं। सर्वाधिक प्रासंगिक शोध प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष मूल्यों की श्रेणियों पर आधारित हैं। प्रत्यक्ष आर्थिक मूल्यों ने इन शोधों को आगे बढ़ाने में मदद की है, इन्हें इस तरह समझा जा सकता है। अपराधों की वजह से होने वाली मौतें और विकलांगता व इनसे होने वाला नुकसान, जीएनपी और जीडीपी का हिस्सा बनने वाले संपत्ति संबंधी अपराध। इस तरह के मानक अपराध के व्यक्ति और समाज पर होने वाले प्रभाव को समझने में सहायक होते हैं और इनके जरिये अन्य सामाजिक बुराइयों के मूल्यों से तुलनात्मक अध्ययन के जरिये महत्वपूर्ण नीतियों को लागू करने में मदद मिल सकती है। हालांकि, कई बार अपराधों की वजह से होने वाले पुलिस, न्याय व्यवस्था, कानून व्यवस्था और सैन्य बलों के खर्चों तक पहुंच नहीं हो पाने से मूल्य मूल्यांकन में अवरोध भी आता है। इसी तरह अप्रत्यक्ष मूल्यों –जिसमें व्यक्तिगत और सामाजिक कारक भी शामिल होते हैं– का भी भरोसेमंद मात्रात्मक आंकड़ा भी उपलब्ध नहीं होता। वृहद अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर पूंजीगत संपदाओं के पांच तरीकों को ही मान्य माना जाता है। ये हैं– भौतिक (Physical), वित्तीय (Financial), मानवीय (Human), सामाजिक (Social) और प्राकृतिक (Natural)। अपराधों के परिणामों को इन पांचों पर आपराधिक गतिविधियों के कारण होने वाले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभावों से देखा जा सकता है। हिंसा और अपराध वित्तीय संपदा को नुकसान पहुंचाती है, जिससे आपराधिक न्याय सेवाओं और स्वास्थ्य सुरक्षा सेवाओं पर खर्चा बढ़ता है, जबकि निवेश में भारी कमी आती है। मानवीय पूंजीगत मूल्यों में इस लिहाज से कमी आती है कि अपराधों के कारण जीवनस्तर में कमी आती है, शैक्षिक अवसर घटते हैं और उत्पादन की क्षमता में भी गिरावट आती है, जिसका असर वित्तीय पूंजी पर पड़ता है। जीवनशैली के स्तर में गिरावट, भय का माहौल और असुरक्षा की भावना जैसे पहलू सामुदायिक जीवन में विश्वास का अभाव पैदा करते हैं और सामाजिक पूंजी पर असर डालते हैं।

शहरीकरण में संचयीकरण की अवधारणा की बढ़ोतरी के साथ अपराधों और सामाजिक ध्रुवीकरण को भी बढ़ावा मिला है, जिसने सुरक्षात्मक मानकों को बढ़ाया है। इन मानकों को बढ़ावा देने में समाज के धनाढ्य वर्ग का हाथ है। इन सुरक्षात्मक मानकों का एक उदाहरण भवन निर्माण में 'बंकर शैली' है, जिसे सिटाडेल (Citadel), फोर्टिफाइड (Fortified) और पैरानॉइड (Paranoid) स्थापत्य भी कहा जाता है। **नगरीय** विकास में अब गेटों, बैरियरों और दीवारों, सुरक्षा गार्डों, इंफ्रारेड सेंसर सिस्टम, पैनिक रूम, मोशन डिटेक्टर, पुलिस विभाग के साथ त्वरित प्रक्रिया वाले उपकरण, सर्विलांस सिस्टम, सीसीटीवी जैसी व्यवस्थाओं का महत्व बढ़ता जा रहा है।

## 17.11 निष्कर्ष (Conclusion)

दुनिया भर के शहरों में भय का मुद्दा बड़ा होता जा रहा है। निरंतर और नियमित रूप से होने वाले दैनिक अपराध–हिंसा स्थानीय जनता के जीवन पर बड़ा असर डालते हैं। इन अपराधों का डर निर्धन वर्ग को अपने घरों में ही रहने पर मजबूर करता है तो धनाढ्य वर्ग को अलग क्षेत्रों में जाने पर। यह पृथक्कीकरण एक–दूसरे के प्रति भय का माहौल बढ़ाता है और धीरे–धीरे इसके कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से विखंडन सामने आता है। अपराध आधारित कुछ अध्ययन और नीतियों ने डर के इस मसले को उभारने का प्रयास किया है और यह स्पष्ट किया है कि भय का यह विषय शक्ति और शक्तिहीनता से जुड़ा है। यह तथ्य ऐसे महत्वपूर्ण तंत्र (Mechanism) के विकास में सहायक हो सकता है, जो निर्धन और सामाजिक दायरे से बाहर रहने वाले लोगों के जीवन पर दैनिक हिंसा–अपराधों के प्रभाव को कम कर सके और दुनियाभर के शहरों में हिंसा–अपराध के असर को रोक पाए।

## 17.12 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. शहरों में अपराध–हिंसा नियंत्रण में नगरीय शासन की क्या भूमिका है?
2. नगरों में नगरीय हिंसा का क्या प्रभाव होता है?
3. क्या आप मानते हैं कि नगरीय योजनाएं नगर की अपराध दर (Crime Rate) के कारण प्रभावित होती हैं?

## 17.13 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)

Koonings, K., & Kruijt, D. (2007). Fractured cities: Social exclusion, urban violence and contested spaces in Latin America. London: Zed Books.

Rotker, S., & Goldman, K. (2002). Citizens of fear: Urban violence in Latin America. New Brunswick, NJ: Rutgers University Press.

Violence in the City Understanding and Supporting Community Responses to Urban Violence. 2011. Washington, D.C. : World Bank.

## 17.14 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/38495/5/chapter%201.pdf

2. http://rnlkwc.org/pdf/anudhyan/18_04_2016/Urban_Local_Government_In_India.pdf
3. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/38495/5/chapter%201.pdf
4. Rao. P.S. N., 'Good Urban Governance in India – The Road Ahead', Nagarlok, Vol. XXXVI, No. 2, April-June 2004, p. 52.
5. Definition of violence as Moncada Eduardo., 2013, Springer Science+Business media, New York.
6. http://pubs.iied.org/pdfs/10518IIED.pdf

इकाई– 18

# निर्धनता, शक्ति, अपराध और बस्तियां
# Unit 18: Poverty, Power, Crime and Slums

इकाई की रुपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 नगरीय निर्धनता और बस्तियां

18.1.1 नगरीय शासन की विफलता

18.1.2 निर्धनता की परिभाषा

18.1.3 निर्धनता पैमाने का मापन

18.2 बस्तियां

18.2.1 बस्तियों का अर्थ

18.3 नगरीय गरीबी का सामाजिक विश्लेषण

18.4 नगरीय शक्ति

18.5 नगरीय अपराध

18.6 निष्कर्ष

18.7 अभ्यास प्रश्न

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 18.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई में हम उन मसलों को समझ सकेंगे, जो नगरीय शासन के अवरोध हैं। उदाहरण के लिये, निर्धनता, बस्तियां और अपराध। इसके अलावा हम नगरीय शक्तियों के बारे में भी जान पाएंगे।

## 18.1 नगरीय निर्धनता और बस्तियां (Urban Poverty and Slums)

बस्तियां और नगरीय निर्धनता नगरों में जनसंख्या दबाव और क्षेत्र–स्थान परिवर्तन का परिणाम मात्र नहीं हैं, न ही ये वैश्वीकरण के वैयक्तिक दबाव का नतीजा हैं। बस्तियों के बसने की एक बड़ी वजह आवास संबंधी नीतियों की नाकामी, नियमों और संसाधन सेवाओं की कमी तथा नगरीय नीतियों और नगरीय शासन की विफलतायें भी होती हैं।

### 18.1.1 नगरीय शासन की विफलता (Failure of Urban Governance)

निम्न आय वर्ग समूहों के लिये बेहतर आवास संबंधी सुविधाओं और अच्छी जीवनशैली उपलब्ध कराने की राह में जो कारक सबसे बड़ी बाधा बनकर सामने आता है, वह है दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव। इसके चलते ही बस्तियां उभरती हैं। इसमें कोई दोराय नहीं है कि दीर्घकालिक और ढांचागत व्यवस्था को लेकर राजनीतिक इच्छाशक्ति सफलता की कुंजी है, मुख्यतः तब, जबकि स्थानीय स्वामित्व और स्थानीय नेतृत्व इसके लिये तैयार हो और लोगों, हितधारकों की क्षमताओं का भी इस काम में उपयोग किया जा सके। विभिन्न देशों के अनुभवात्मक शोध बस्तियों की संख्या में गिरावट और इनमें जीवनस्तर में सुधार के लिये राजनीतिक इच्छाशक्ति की मजबूती और निरंतरता को बुनियादी और महत्वपूर्ण कारक बताते हैं।

नीतियों की विफलता वैश्विक, राष्ट्रीय और स्थानीय हर स्तर पर होती है। वैश्विक स्तर पर जिन नीतियों ने राष्ट्रीय शासन को कमजोर किया है, उनमें असंयत वैश्वीकरण प्रक्रिया को लेकर प्रतिकार और केंद्रीय नियंत्रण का अभाव नजर आता है, जिसकी वजह से असमानता और कुछ समुदायों के हाशिये पर जाने का परिणाम सामने आता है। राष्ट्रीय स्तर पर नीतियों का उदारवाद, क्षेत्रीय विखंडन और विश्लेषणात्मक व सांस्थानिक ढांचा शहरी–ग्रामीण क्षेत्रों के बीच अंतर्क्षेत्रीय सेतु बन पाने में विफल रहा है। यह स्थिति आर्थिक विकास की निरंतरता और अवसरों के समान वितरण में बाधक बनती है। स्थानीय स्तर पर क्षमताओं के आवश्यक उपयोग और प्रबंधन के अभाव से उपजी परिस्थितियों ने बस्तियों में रहने वाले लोगों को गैरकानूनी, असुरक्षित वातावरण के अलावा पर्यावरणीय लिहाज से कमतर बना दिया है।

**राजनीतिक इच्छाशक्ति और स्थानीय शासन के अभाव का सर्वाधिक खामियाजा गरीबों को उठाना पड़ता है।**

**कमजोर नगरीयशासन के कारण असमानता, भ्रष्टाचार और संसाधनों के वितरण में असंतुलन की स्थिति पैदा होती है, जिसमें निर्धन वर्ग या तो सबसे निचले पायदान पर रहता है या मौजूद ही नहीं होता।**

नगरीय निर्धन लोग अनौपचारिक और अवैध दुनिया में फंसकर रह जाते हैं। वे उन बस्तियों में रहते हैं, जो नक्शे पर नजर नहीं आतीं, जहां कचरा और गंदगी हर ओर पसरी रहती है, करदाता यहां नहीं रहते हैं और जनसुविधाएं भी यहां मुहैया नहीं कराई जातीं। कुल मिलाकर आधिकारिक रूप से इन बस्तियों का कोई अस्तित्व होता ही नहीं है, जबकि वे किसी नगर और शहर की प्रशासकीय सीमाओं पर ही होती हैं। प्रशासनिक देखरेख के अभाव में इन बस्तियों में माफिया और आपराधिक तत्व विकसित होते हैं जो बस्तियों और यहां रहने वाले लोगों पर गैरकानूनी तरीकों से नियंत्रण रखते हैं। दूसरी ओर नगरीय परिषदों के कर्मचारी शायद ही कभी इन बस्तियों में प्रवेश करते हैं, उनके नियंत्रण की बात तो दूर है। अवैध रूप से रहने के कारण और पहचान का अभाव होने से इन बस्तियों में रहने वाले अधिकतर लोगों के पास न तो संपत्ति का कोई अधिकार होता है, न ही उनके लिये सुरक्षा की कोई व्यवस्था यहां रहती है। लेकिन अनियमित, अनौपचारिक व्यवस्थाओं के चलते इन लोगों के लिये यहां समानांतर बाजार

उपलब्ध रहते हैं।

### 18.1.2: निर्धनता की परिभाषा (Defining Poverty)

बस्तियों की तरह गरीबी भी ऐसा पैमाना माना जाता है, जिसे आसानी से पहचाना जा सकता है। लेकिन वस्तुतः इसकी अवधारणा को परिभाषित कर पाना बेहद कठिन है। नगरीय निर्धनता को सामान्यतः गृहस्वामियों की आय से मापा जाता है। उदाहरण के लिये ऐसे लोग नगरीय निर्धन की श्रेणी में माने जाते हैं, जो बुनियादी जरूरतों तक को भी जुटा नहीं सकते, दूसरे शब्दों में जो प्रतिदिन एक या दो डॉलर से भी कम आय कर पाते हैं। विभिन्न देशों में गरीबी को मापने के लिये कई पैमानों का इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन ये भी निर्धनता की बहुआयामी प्रकृति को स्पष्ट कर पाने में विफल ही रहे हैं। दरअसल, लोग सिर्फ कम आय के कारण ही निर्धन नहीं होते हैं, बल्कि अस्थायी और जोखिमभरी परिस्थितियों के कारण भी वे कई बार मुश्किल दिनों का सामना करते हैं। उनकी निर्धनता का कारण यह भी हो सकता है कि जिस घर में वे रहते हैं, वहां उनके अलावा कई लोग रहते हैं या फिर वहां

## नगरीय निर्धनता के घटक

1. अपर्याप्त आय (इसके चलते भोजन, पानी जैसी बुनियादी सुविधाएं तक जुटाना मुश्किल होता है। अकसर उधार लेने और फिर चुका नहीं पाने के चलते आय और अधिक घट जाती है और जीवन के लिये आवश्यक जरूरतें तक पूरी नहीं हो पातीं)
2. अपर्याप्त और अस्थायी संपत्ति आधार (भौतिक और अभौतिक संसाधन, जिनमें शैक्षिक सुविधाएं और आवास भी शामिल होते हैं)
3. अपर्याप्त आवास (सामान्यतः बेहद घटिया गुणवत्ता, असुरक्षित और बेहद सघन आबादी)
4. अपर्याप्त जनसुविधागत ढांचा (पेयजल पाइपलाइन, शौचालय, नालियां, सड़क–फुटपाथ, स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव)
5. बुनियादी सुविधाओं का अभाव (स्कूल, प्रशिक्षण, आपात सेवाएं, सार्वजनिक परिवहन, संचार, कानून)
6. असुरक्षित वातावरण के चलते आय में गिरावट पर बुनियादी संसाधनों के उपभोग का असमान वितरण, स्वास्थ्य और आवास सुविधाओं की अनुपलब्धता
7. निर्धन वर्गों के अधिकारों की अनदेखी, कानूनी और राजनीतिक संरक्षण का अभाव
8. राजनीतिक व्यवस्था और प्रशासकीय ढांचे में शक्तिहीनता और आवाज की अनदेखी, पहचान पाने के सीमित अथवा नगण्य अवसर, निजी संसाधनों के विकास के प्रयासों के समर्थन का अभाव, सहायता समूहों, सरकार से सहयोग की बेहद न्यून संभावना

(स्रोतः **Satterhwaite, 2001**)

बेहद निम्न गुणवत्तापरक परिस्थितियां हैं अथवा सुरक्षा का सर्वथा अभाव है। वे साफ–सुरक्षित पानी

इस्तेमाल नहीं कर पाते, उनके लिये स्वास्थ्य और स्कूल जैसी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। उनके लिये सुरक्षात्मक आवरण की कोई व्यवस्था नहीं है और वे न तो सामाजिक नियमों, न ही राजनीतिक सहारे और कानूनी सुरक्षा के दायरे में आते हैं। यहां तक कि उनके लिये आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की भी व्यवस्था नहीं होती, क्योंकि उनकी आवाज राजनीतिक व्यवस्था में सुनी ही नहीं जाती।

विभिन्न देशों में गरीबी को मापने के लिये कई पैमानों का इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन ये भी निर्धनता की बहुआयामी प्रकृति को स्पष्ट कर पाने में विफल ही रहे हैं। दरअसल, लोग सिर्फ कम आय के कारण ही निर्धन नहीं होते हैं, बल्कि अस्थायी और जोखिमभरी परिस्थितियों के कारण भी वे कई बार मुश्किल दिनों का सामना करते हैं। उनकी निर्धनता का कारण यह भी हो सकता है कि जिस घर में वे रहते हैं, वहां उनके अलावा कई लोग रहते हैं या फिर वहां बेहद निम्न गुणवत्तापरक परिस्थितियां हैं अथवा सुरक्षा का सर्वथा अभाव है। वे साफ–सुरक्षित पानी इस्तेमाल नहीं कर पाते, उनके लिये स्वास्थ्य और स्कूल जैसी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। उनके लिये सुरक्षात्मक आवरण की कोई व्यवस्था नहीं है और वे न तो सामाजिक नियमों, न ही राजनीतिक सहारे और कानूनी सुरक्षा के दायरे में आते हैं। यहां

## नगरीय निर्धनता के घटक

9. अपर्याप्त आय (इसके चलते भोजन, पानी जैसी बुनियादी सुविधाएं तक जुटाना मुश्किल होता है। अकसर उधार लेने और फिर चुका नहीं पाने के चलते आय और अधिक घट जाती है और जीवन के लिये आवश्यक जरूरतें तक पूरी नहीं हो पातीं)
10. अपर्याप्त और अस्थायी संपत्ति आधार (भौतिक और अभौतिक संसाधन, जिनमें शैक्षिक सुविधाएं और आवास भी शामिल होते हैं)
11. अपर्याप्त आवास (सामान्यतः बेहद घटिया गुणवत्ता, असुरक्षित और बेहद सघन आबादी)
12. अपर्याप्त जनसुविधागत ढांचा (पेयजल पाइपलाइन, शौचालय, नालियां, सड़क–फुटपाथ, स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव)
13. बुनियादी सुविधाओं का अभाव (स्कूल, प्रशिक्षण, आपात सेवाएं, सार्वजनिक परिवहन, संचार, कानून)
14. असुरक्षित वातावरण के चलते आय में गिरावट पर बुनियादी संसाधनों के उपभोग का असमान वितरण, स्वास्थ्य और आवास सुविधाओं की अनुपलब्धता
15. निर्धन वर्गों के अधिकारों की अनदेखी, कानूनी और राजनीतिक संरक्षण का अभाव
16. राजनीतिक व्यवस्था और प्रशासकीय ढांचे में शक्तिहीनता और आवाज की अनदेखी, पहचान पाने के सीमित अथवा नगण्य अवसर, निजी संसाधनों के विकास के प्रयासों के समर्थन का अभाव, सहायता समूहों, सरकार से सहयोग की बेहद न्यून संभावना

**(स्रोतः Satterhwaite, 2001)**

तक कि उनके लिये आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की भी व्यवस्था नहीं होती, क्योंकि उनकी आवाज राजनीतिक व्यवस्था में सुनी ही नहीं जाती।

### 18.1.3 निर्धनता के पैमाने का मापन (Measurement of Poverty Incidence)

अधिकतर देशों ने निर्धनता को मापने के लिये कुछ पैमाने तय किये हैं। सामान्यतः ये पैमाने आय पर आधारित होते हैं, जिन्हें निम्नवत समझा जा सकता हैः

**निश्चित निर्धनता (Absolute Poverty)**: इस दायरे में वे लोग आते हैं जो दैनिक जीवन के लिये आवश्यक संसाधन भी जुटा पाने में अक्षम हैं। इसमें न्यूनतम पोषण के लिये आवश्यक भोजन और पानी तो शामिल हैं ही, अन्य आवश्यकताओं जैसे कपड़े, आवास, परिवहन, रोजगार, शिक्षा और अन्य बुनियादी जरूरतों को भी शामिल किया जाता है।

**संबद्ध निर्धनता (Relative Poverty)**: आय संबंधी मानक अकसर नगरीय निर्धनता के कई पहलुओं की अनदेखी करते हैं। इसका कारण यह है कि वे नगरीय जीवन के लिये आवश्यक अन्य खर्चों जैसे आवास, परिवहन, स्वयं के लिये भोजन उत्पादन करने के अवसरों के अभाव को पैमाना नहीं मानते। वे आवासों के भीतर की निर्धनता को भी इंगित नहीं करते, जहां घर के सदस्यों के बीच शक्ति का असमान वितरण रहता है, जिसके चलते महिलाओं और बच्चों के लिये निर्धनता अथवा अभावग्रस्त जीवन जीना मजबूरी बन जाता है। शोध बताते हैं कि जिन घरों में महिलाओं को निर्णय की क्षमता हासिल है, वहां घर के सदस्यों के बीच आर्थिक वितरण की स्थिति बेहतर पायी गयी है। घर के सदस्यों की आय का पैमाना उन परिस्थितियों को भी सामने नहीं लाता, जिनके जरिये आय होती है। वे राष्ट्रीय संदर्भ में भी निर्धनता के बाबत स्थानीय वितरण को स्पष्ट नहीं करते हैं। फिर भी विश्व बैंक अध्ययन के ताजा रिकॉर्ड रुझानों पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं और सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों (Millenium Development Goals) को हासिल करने के लिये बहुत उपयोगी हैं।

## 18.2 बस्तियां (Slums)

बस्तियां और निर्धनता का न सिर्फ गहरा संबंध है, बल्कि ये दोनों एक दूसरे के लिये कारक भी बनती हैं। हालांकि, इन दोनों का यह संबंध हमेशा प्रत्यक्ष और साधारण नहीं रहता है। बस्तियों में रहने वाली आबादी सजातीय (Homogeneous) नहीं होती। कई बार ठीकठाक आय पाने वाले लोग भी विभिन्न कारणों से बस्तियों के भीतर या बस्तियों के किनारे पर रहते हैं। अधिकतर बस्तीवासी अनौपचारिक आर्थिक संसाधनों (Informal Economy) से जुड़े होते हैं, इसके चलते कई बार उनकी आय औपचारिक नौकरीपेशा (Formal Employees) से भी अधिक होती है। दूसरी ओर, कई नगरों के बाहरी क्षेत्रों में निर्धन लोग बस्तियों में रहते हैं। बस्तियां किसी शहर का वह इलाका हैं, जहां निर्धन लोगों को बेहद सघन क्षेत्र में और बेहद खराब परिस्थितियों में रहते देखे जा सकते हैं। हालांकि, शहर के सबसे बेहतर माने जाने वाले क्षेत्रों में भी निम्न आय वर्ग के लोग पाये जा सकते हैं।

बस्तियों की बदहाली की वजह निर्धनता और आवासीय सुविधाओं को लेकर असमान व्यवस्था है। आवासीय सुविधाओं की अव्यवस्था का कारण कई बार बस्तियों में रहने वाले लोगों के रहन–सहन के कारण नियमों को लागू कर पाने में बनने वाला असमंजस होता है। बस्तियों में जीवनशैली, निर्धनता और वहां रहने वाले निर्धन लोगों का जीवन प्रबंधन सम्मिलित होता है। इससे कारण और प्रभाव संबंधों (Cause and Effect Relationship) में भ्रांतियां और गड़बड़ियां उभरती हैं। इस सबके चलते बस्तियों की व्यवस्था में सुधार के कार्यक्रमों और नीतियों को ठीक से लागू कर पाने में दिक्कत आती है जो अंतिम रूप से निर्धनता को दूर करने के मकसद में बाधा बनती है। दूसरी ओर, गैर आवासीय निर्धनता को दूर करने के कार्यक्रमों की बात करें तो यहां माना जाता है कि इन नीतियों से आवासीय सुविधाओं, ढांचागत व्यवस्थाओं और सेवाओं को प्रदान करने की प्रक्रिया में सुधार आ सकता है। लेकिन यह प्रक्रिया तब तक बेहद धीमी अथवा अस्तित्वहीन रहने की आशंका रहती है, जब तक बस्तीवासियों की आय में निरंतर सुधार के प्रयास नहीं किये जाते। यद्यपि दुनियाभर के नगरीय क्षेत्रों में कुछ दशकों से निर्धनता का स्तर बढ़ा है और निर्धनों में भी निर्धनतम श्रेणियां भी बढ़ी हैं, फिर भी नगरीय निर्धन ग्रामीण क्षेत्रों के निर्धन लोगों के मुकाबले अपनी सहायता कर पाने में सक्षम नजर आते हैं। वस्तुतः आप्रवासी (Immigrant) नगरीय निर्धन आर्थिक अवसरों की उपलब्धता के आधार पर गतिशील बने रहते हैं। नगरीय क्षेत्रों में अनौपचारिक आर्थिकी का उभार और व्यवस्थाओं के बिखरे हुए वितरण से इन लोगों के लिये कई नये अवसर सामने आते हैं। कई नगरों में नगरीय जनसंख्या के लिये 60 प्रतिशत तक रोजगार की उपलब्धता अनौपचारिक क्षेत्रों में रहती है और ये क्षेत्र नागरिकों के लिए वस्तुओं व सेवाओं को प्रदान करने के लिहाज से बड़ी भूमिका निभाते हैं।

**बस्तियों के आसपास विभिन्न सामाजिक–आर्थिक चुनौतियां सामने आती हैं। इन क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक रूप से पृथक्कीकरण, उच्च जनसंख्या घनत्व, विघटित परिवारों की बड़ी संख्या, बेरोजगारी जैसी परेशानियां नजर आती हैं। ये सभी विशेषताएं अपराध और हिंसा को बढ़ावा देने की वजह बनती हैं और इसीलिये माना जाता है कि सघन नगरीय क्षेत्रों में हिंसा का 'टाइम बम' बना रहता है।**

यह अवधारणा मुश्किल है कि बस्तियों में रहने वाले सभी लोगों की जरूरतें और मांग एकसमान हों। निर्धनता के विभिन्न स्तरों के हिसाब से संसाधनों को इस तरह वितरित करने की जरूरत महसूस होती है कि वे सर्वाधिक आवश्यकता वाले समूह तक पहले पहुंचें। महिलाएं (विशेषतः विधवा), बच्चे, बेरोजगार युवा और शारीरिक रूप से अक्षम लोग सबसे अधिक निर्धनता की चपेट में नजर आते हैं। बस्तियों और अनौपचारिक नगरीय व्यवस्थाओं में ये वर्ग पर्यावरणीय निम्न मानकों और सेवा–सुविधाओं के असमान वितरण से जूझते हैं। हालांकि, नगरीय क्षेत्रों –विशेषकर बस्तियों– में महिलाओं पर निर्भरता वाले परिवार बढ़े हैं। अफ्रीका के नगरीय क्षेत्रों में कुल परिवारों में ऐसे परिवारों की संख्या 30 प्रतिशत तक है। महिला निर्भरता वाले परिवारों में आय के साधनों के अवसर पुरुषों पर निर्भर परिवारों के मुकाबले काफी कम देखी जाती है। इसके चलते ऐसे परिवार निर्धन रहते हैं। सामान्यतः महिलाओं को बेहतर शिक्षा के अवसर नहीं मिल पाना इसकी बड़ी वजह है। इसके कारण महिलाओं को जहां बच्चों की देखभाल का जिम्मा संभालना होता है, वहीं उनके काम के घंटे भी कहीं अधिक होते हैं। दूसरी ओर, उनके लिये पुरुषों के मुकाबले पर्याप्त पोषणयुक्त भोजन की अनुपलब्धता और गतिशीलता का भी अभाव रहता है। निम्न आय साधनों के चलते महिलाओं पर निर्भर परिवारों के लिये बेहद सीमित आवास सुविधा

ही उपलब्ध होती है। कई बार निम्न सामाजिक और कानूनी स्तर, पारंपरिक और धार्मिक कारण भी उनके आवास चयन और भूस्वामित्व में बाधा बनते हैं। इसे निर्धनत का स्त्रीकरण (Feminization of Poverty) माना जाता है।

### 18.2.1 बस्तियों का अर्थ (Meaning of Slums)

साधारण शब्दों में बस्तियां नगरीय क्षेत्रों का सर्वाधिक आबादी वाला क्षेत्र हैं, जहां आवास की निम्न सुविधाएं उपलब्ध हों और जहां मलिनता (Squalor) हो। बस्ती की यह परिभाषा इसकी विशेषताओं को स्पष्ट करती है। यानी बस्तियों में सघन जनसंख्या ढांचागत विकास, आवास और जनसेवाओं के लिहाज से निम्न मानकों पर रहती है, जबकि इन क्षेत्रों में साफ–सफाई की भी कोई व्यवस्था नहीं होती। बस्तियों में कई तरह की अनौपचारिक व्यवस्थाएं पनपती हैं जो अवैध वर्गीकरण और सार्वजनिक जमीनों पर कब्जे

**नगरीय गरीबी का तात्पर्य नगरीय क्षेत्रों में निर्धन लोगों के अस्तित्व के लिये किया जाने वाले संघर्ष से है। इसकी मुख्य वजहें अनौपचारिक आवास, आय संसाधन तो हैं ही, सामाजिक–वित्तीय और बाजार के लिहाज से नगरीय गरीबों की दुर्दशा भी है।**

कर गलत तरीके से निर्माण किये जाने के रूप में सामने आती हैं। इनमें झोपड़ियों से लेकर कई बार पक्के निर्माण ढांचे भी रहते हैं, जबकि पानी–बिजली, सफाई जैसी सुविधाएं और ढांचागत व्यवस्थाएं सीमित होती हैं। बस्तियों को दो तरह से वर्गीकृत कर सकते हैं:

1. **आशावादी बस्तियां (Slums of Hope):** इन बस्तियों में विकासवादी व्यवस्थाएं नजर आती हैं। यहां नये स्वनिर्मित भवन दिखाई देते हैं, हालांकि इनमें से अधिकतर अवैध तरीके से सार्वजनिक जमीनों पर कब्जे कर ही बनाए गए होते हैं। लेकिन यहां विकास, चकबंदी और अन्य सुधार की प्रक्रियाओं की संभावना रहती है।
2. **निराशावादी बस्तियां (Slums of Despair):** इन बस्तियों में पर्यावरणीय परिस्थितियों और घरेलू सेवाओं में कमी के चलते लगातार सुविधाओं और व्यवस्थाओं की गिरावट देखी जाती है।

**बस्तियों की विशेषताएं**
**1. साफ–सुरक्षित पानी का असमान वितरण। 2. सफाई व्यवस्था और अन्य बुनियादी सुविधाओं तक असमान पहुंच। 3. घरों के कमजोर ढांचे। 4. सघन आबादी। 5. असुरक्षित आवास। 6.अस्वास्थ्यकर जीवनशैली और खतरनाक स्थानों पर अवस्थापना**

## 18.3 नगरीय गरीबी का सामाजिक विश्लेषण (Sociological Perspective of Urban Poverty)

एक सिद्धांत में माना जाता है कि नगरीय क्षेत्रों में लंबे समय तक रोजगार के बेहतर अवसर और कल्याणकारी सेवाओं–सुविधाओं की पर्याप्तता के बावजूद पृथक्कीकरण की प्रक्रिया लगातार बनी रहती है और हस्तांतरित होती रहती है। इस सिद्धांत के अनुसार इसकी वजह उस सामाजिक अव्यवस्था का चक्र है जो एक से दूसरी पीढ़ी तक चलता रहता है। कम वेतन, कमजोर आवासीय सुविधाएं, रोजगार का अभाव जैसे महत्वपूर्ण कारक तो साफ नजर आते हैं, लेकिन सीधे तौर पर नजर नहीं आने वाले घरेलू माहौल और बच्चों की परवरिश के तरीके जैसे सामाजिक पहलू भी इसकी वजह होते हैं।

निर्धनता की संस्कृति दरअसल समाज में हाशिये पर रहने के कारण संबंधित लोगों की प्रतिक्रिया अथवा अपनी स्थिति को स्वीकार कर लेने से उभरती है। इस संस्कृति में जहां संघर्ष के भाव नजर आते हैं, वहीं असहाय स्थिति, विकास से पृथक्कीकरण और पूंजीवादी व्यवस्था में सफलता हासिल नहीं कर पाने का अहसास भी साफ दिखता है। संक्षेप में कहें तो इस सबसे अवसरों के अभाव और कुछ कर पाने की आकांक्षाओं में कमी का दुष्चक्र उभरता है। इस तरह यह पहलू भी सामने आता है कि क्या संस्कृति और सामाजिक स्थिति निर्धनता को बढ़ावा देने के अन्य कारणों से अधिक प्रभावी होती हैं। इसकी वजह यह भी है कि पश्चिमी नगरों में निर्धन वर्ग के सांस्कृतिक प्रतिमान समाज के अन्य वर्गों से बिल्कुल अलग देखे जाते हैं।

**निष्कर्षः** चिंताओं और परिणामों के सघन जाल से यदि एकल निष्कर्ष निकालना हो, तो वह यह है कि जिन नगरों और देशों में बस्तियों की समस्याओं को समझा गया है, उन्होंने इन दिक्कतों के निस्तारण के लिये सामाजिक आम सहमति बनाने का प्रयास किया है। इसके साथ ही निरंतर चलने वाली नीतियों को लेकर स्पष्टता से भी यह साफ होता है कि समस्याओं का समाधान हो सकता है और यह भी कि बस्तियों और निर्धनता से प्रभावित हितधारकों के स्वयं के स्तर पर भी इस प्रक्रिया को आंशिक रूप से संपन्न किया जा सकता है।

## 18.4 नगरीय शक्ति (Urban Power)

नगरीय शक्तियां किसके पास होती हैं? इस सवाल का अलग–अलग जवाब मिलता है। सी. राइट मिल्स (C. Wright Mills) बताते हैं कि अधिकतर नगरीय (राष्ट्रीय) शक्तियां शक्तिशाली अभिजात्य वर्ग, व्यावसायिक गठजोड़, प्रभावी परिवारों और राजनीनेताओं के हाथों में रहती हैं। वहीं, नेल्सन पॉल्सबी (Nelson Polsby) और रॉबर्ट डेल (Robert Dahl) बहुलवादी व्याख्या (Pluralistic Interpretation) देते हैं। अमेरिका के तटवर्ती नगर न्यू हेवन (New Haven) में शक्तियों की व्यवस्था पर उनका अध्ययन विभिन्न समूहों तक विस्तारित हुआ। लेकिन बेकरॅक (Bachrach), बराट्ज (Baratz) और मार्क्सवादी विश्लेषक डेविड गॉर्डन (David Gordon) ने इन दोनों सिद्धांतों को मात्र ढांचागत बताते हुए आलोचना की है। वे तर्क देते हैं कि किसी नगर की निर्णय निर्धारण क्षमता और नीतियों पर उस नगर के अभिजात्य वर्ग का प्रभुत्व रहता है और वे अपने निहित लाभ, रुचियों के हिसाब से इनमें आवश्यक बदलाव करने, अपने अनुसार मोड़ने की क्षमता रखते हैं।

नगरीय शक्तियों के मूलतः दो प्रकार माने जाते हैं, एकाधिपत्य (Monolithic) और बहुलवादी (Pluralistic)। हंटर (1953) और डेल (1961) की खोज के बाद इन दोनों प्रकारों की विस्तृत श्रृंखला दुनियाभर के शहरों में देखी–पहचानी गयी है। क्षेत्रीय शहर (Regional City) के तौर पर अटलांटा (Atlanta) के अध्ययन के दौरान हंटर (Hunter) ने पाया कि वहां लगभग सभी निर्णय उन लोगों के द्वारा लिये जाते थे, जो शक्ति के अनुक्रम में सबसे उच्च पायदान पर रहते थे और उनकी यह स्थिति लगभग स्थायी बनी रहती थी। ये लोग, जो मुख्यतः व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्र से आते थे जो गठजोड़ की तरह काम करते थे और कृपापात्र समूहों का चयन अपने लाभ के लिये किया करते थे। योजनाएं प्रारंभ तो होती थीं, लेकिन इन लोगों की सहमति के बिना उसका पूरा होना संभव नहीं था या होता भी तो उसके परिणाम नगण्य ही रहते।

दूसरी ओर, डेल ने न्यू हेवन, कनेक्टिकट में निर्णय क्षमता के अध्ययन के आधार पर शक्तियों के बहुलवादी मॉडल को स्पष्ट करते हुए बताया कि शक्ति की प्रवृत्ति हस्तांतरण की भी है। समय, परिस्थितियों और मुद्दों के आधार पर विभिन्न अभिजात्य वर्गों के बीच उनके प्रभुत्व के आधार पर शक्तियां बंट जाती हैं। उदाहरण के लिये यदि सार्वजनिक आवासों की योजना हो तो इससे लाभान्वित होने वाले व्यावसायिक–राजनीतिक वर्ग इस पर नियंत्रण रखते हैं, इसी तरह अगर योजना में नये स्वास्थ्य केंद्रों का निर्माण भी शामिल हो तो इस व्यवस्था से जुड़े व्यावसायिक–राजनीतिक वर्ग भी योजना में शामिल होकर उसके परिणामों से लाभ लेने की कोशिश करते हैं। इस तरह डेल का मॉडल स्पष्ट करता है कि हंटर ने अटलांटा में जिस वर्ग का अध्ययन किया था, दरअसल वह शक्तियों के वितरण के समूह (Cluster) का एक हिस्सा ही था। डेल तर्क देते हैं कि चूंकि समग्र दृष्टि से देखें तो व्यवस्था लोकतांत्रिक है जो राजनीतिक ढांचे पर टिकी हुई और जहां अभिजात्य वर्गों के बीच आमजन का समर्थन–निष्ठा पाने के लिये स्पर्धा बनी रहती है, वहां राजनीतिक स्वतंत्रता बनाए रखना आवश्यक होता है। इससे यह होता है कि जब मौजूदा शक्तिसंपन्न व्यवस्था की नीतियों और गतिविधियों में मतदाताओं की उम्मीदों के विपरीत कमी आती है तो लोग अपनी आवाज उठाने को प्रेरित होते हैं। परिणामस्वरूप एक नया शक्ति समूह उभरकर सामने आता है। बहुलवादी सिद्धांत के अनुसार, इस पूरी प्रक्रिया के फलस्वरूप किसी नगर में लंबे समय तक बेहतर सेवाओं–सुविधाओं और उत्पादन को बनाये रखने को विभिन्न समूहों के बीच संसाधनों का संतोषजनक वितरण किया जाता है। दूसरी ओर, एकाधिपत्यवादी सिद्धांत में यह माना जा सकता है कि वहां शक्तियों का ढांचा अभिजात्य वर्ग के ध्रुवीकरण को बढ़ावा देता है।

हालिया शोधों में यह सुझाव भी सामने आया है कि नगरीय राजनीति को न तो एकाधिपत्यवादी सिद्धांत के नजरिये से देखा जाना चाहिये और न ही बहुलवादी सिद्धांत के दृष्टिकोण से। इसके बजाय इसे शासनप्रणाली में क्रमागत उन्नति के तौर पर देखा जाना चाहिये। शासनप्रणाली सिद्धांत स्पष्ट करता है कि नगरों में किस तरह अलग–अलग लक्ष्यसमूह साथ आते हैं और उद्देश्य को पूर्ण करते हैं। सामान्यतः ये समूह विकासपरक होते हैं जो राजनीतिक प्रक्रिया के जरिये एक–दूसरे से जुड़े रहकर समस्याओं के समाधान की दिशा में प्रयास करते हैं। इस सिद्धांत का महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि शक्ति स्वतः हस्तांतरित नहीं होती, बल्कि इसे हासिल करने के लिये सक्रिय रूप से प्रतिभाग करना होता है। उदाहरण के लिये किसी नगर के आर्थिक जीर्णोद्धार और महानगरीय परिवर्तनों के लिये बनायी जाने वाली योजनाओं और नीतियों को पूरी तरह लागू करने और इनसे अपेक्षित परिणाम हासिल करने के लिये संबंधित नगर के अधिकारियों को मदद की जरूरत पड़ती है। सरकारी अधिकारियों और निजी समूहों के बीच एक अलग शासनप्रणाली विकसित होती है, जिसके चलते शासन ढीले–ढाले रवैये व कार्यशैली वाले तथा कम परिणामकारी औपचारिक अधिकरणों पर अधिक निर्भर नहीं रह जाता। उत्तर औद्योगिक नगरों में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप नवउदारवादी, युवा उद्यमी, जनवादी, पर्यावरणवादी जैसे नये सामाजिक–राजनीतिक समूह उभरकर सामने आये हैं और इन नगरों के पारंपरिक, जाति आधारित वर्गों में शामिल हो चुके हैं। इसके चलते इन नगरों की शासनप्रणाली और अधिक मिश्रित और गतिशील हो गयी है। इसके अलावा आर्थिक पुनर्निर्माण प्रक्रिया ने आर्थिक विकास निवेश को लेकर भी स्पर्धा को बढ़ाया है, जिससे नगरीय निकायों में नयी गतिशीलता और और इनमें राजनीतिक द्वंद्व मौन हो गये हैं। इससे नगरीय राजनीति को भी विस्तृत नजरिये से देखने की जरूरत बन गयी है।

**माइकल फॉकल्ट और शक्ति (Michael Foucalt and Power):** फॉकल्ट शक्ति को एक ऐसे महत्वपूर्ण कारक के तौर पर देखते हैं जो हर लोगों के दैनंदिन जीवन में साधारण जरूरतों को पूर्ण करने में मदद करती है। वह मानते हैं कि शक्ति कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो कुछ लोगों के ही पास हो और दूसरों के पास नहीं। लोगों के शक्तिशाली होने की वजह व्यक्तिगत गुण अथवा पद नहीं हैं, बल्कि उनकी क्षमता और शक्ति के उपयोग की दूसरों द्वारा की जाने वाली पहचान है। वह मानते हैं कि शक्ति कोई वस्तु नहीं, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका निरंतर अभ्यास किया जाना जरूरी होता है। फॉकल्ट तर्क देते हैं कि शक्ति तनाव की स्थिति में संबंधों का नेटवर्क है। इस प्रक्रिया को समझने के लिये उन्होंने सूक्ष्म शक्तियां (Micro Powers) शब्द दिया है। इसके अलावा उन्होंने जेलनुमा नगर (Carceral Cities) शब्द का भी प्रयोग किया है, जो बताता है कि नगरीय क्षेत्रों में शक्ति विकेन्द्रीकृत रहती है और यहां लोगों का नियंत्रण सूक्ष्मशक्तियों के जरिये किया जाता है। इस तरह लोग स्वयं के प्रभुत्व वाले क्षेत्रों में काल्पनिक तरीकों से रहते हैं। फॉकल्ट ने पेनाप्टिकॉन (Panapticon) नामक रूपक (Metaphor) का भी इस्तेमाल अपने सिद्धांत में किया है जो अनुशासित समाज की प्रक्रिया को समझाता है। पेनाप्टिकॉन दरअसल एक मॉडल जेल की परिकल्पना थी, जिसे 19वीं सदी के विचारक जेरेमी बेंथम ने ईजाद किया था। इस जेल में लोगों को इस तरह रखा जा सकता था कि उन्हें एक ही केंद्रीय बिंदु से हर वक्त नजर में रखा जा सके। हालांकि, जेरेमी का यह डिजाइन कभी सीधे तौर पर इस्तेमाल नहीं किया गया, फॉकल्ट ने इस शब्द का प्रयोग उन निगरानी उपयोगों के लिये रूपक के तौर पर किया, जो नगरों के सामयिक स्थानों पर इस्तेमाल किये जाते हैं। उदाहरण के लिये शॉपिंग मॉलों में सीसीटीवी और सुरक्षा गार्डों का इस्तेमाल निगरानी रखने के लिये किया जाता है।

**भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में शक्तियां विकेन्द्रीकृत हैं। 74वें संविधान संशोधन में स्थानीय निकायों की व्यवस्था दी गयी है जो नगरीय क्षेत्रों में लोगों के लिये जमीनी स्तर पर काम**

कुछ विद्वानों ने तर्क दिया है कि फॉकल्ट का शक्ति संबंधी सिद्धांत नितांत अप्रतिरोधी है और यह लोगों में उन्हें बांधने वाली ताकतों के विरोध की क्षमता के बारे में बहुत कम बताता है। उदाहरण के लिये, वारेन (1996) ने उन तरीकों को स्पष्ट किया, जिनसे डिज्नी थीम पार्क, विभिन्न शॉपिंग मॉल और इस तरह के अन्य स्थानों में लगी निगरानी और नियंत्रण प्रणाली को लोगों ने ध्वस्त कर दिया या उनसे बचने के तरीके तलाश लिये। डिज्नी पार्क में नियंत्रण और निगरानी के मानकों में वर्दीधारी सुरक्षा गार्ड भी रहते हैं, जबकि कई सुरक्षा गार्ड सैलानियों के बीच उनकी ही वेशभूषा में बने रहते हैं, जो आगंतुकों के साथ–साथ यहां तैनात रहने वाले कर्मचारियों पर भी निगाह रखते हैं। फिर भी, इस तरह की निगरानी व्यवस्था कुछ ऐसे आगंतुकों या कर्मचारियों को ड्रग्स और शराब जैसे मादक द्रव्यों को ले जाने से पूरी तरह रोकने में नाकाम रहती है।

शक्ति का प्रदर्शन किसी क्षेत्रविशेष पर विशेष समूहों के एकाधिकार और अन्य कमजोर समूहों के उस स्थान से बाहर रहने से परिलक्षित होता है। हालांकि, शक्ति के इन संबंधों को सामान्यतः दैनिक जीवन प्रक्रिया का स्वाभाविक हिस्सा माना जाता है। इसकी वजह से सांस्कृतिक साम्राज्यवाद उभरता है, जहां आधिपत्यवादी शक्तियां अदृश्य रहकर नियंत्रण रखती हैं, जबकि कम शक्तिशाली समूह बाहरी के तौर पर देखे जाते हैं। इस तरह की व्यवस्था पारंपरिक पहचानों में आमतौर पर देखी जाती है।

**जेलनुमा शहर (Carceral Cities) माइकल फॉकल्ट का दिया शब्द है, जो ऐसे शहर को सामने रखता है, जहां शक्तियां विकेन्द्रीकृत होती हैं। इन नगरों में लोग स्वास्थ्य, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आदि गतिविधियों के लिये परिवार, अस्पताल, स्कूल, जेल जैसे संस्थानों की मदद से नियंत्रित किये जाते हैं। चूंकि विभिन्न गतिविधियों के लिये संबंधित संस्थानों की मौजूदगी की बाध्यता रहती है, लिहाजा यहां लोग एक तरह से सांस्थानिक बंदी बने रहते हैं। (लैटिन शब्द Carcer का अर्थ जेल होता है, और इससे अंग्रेजी शब्द Incarcerate बना है, जिसका तात्पर्य बंदी अथवा बंधन में रखना है)**

## 18.5 नगरीय हिंसा–अपराध (Urban Crime)

**परिचय (Introduction):** नगर राजनीतिक शक्तियों, आर्थिक अन्वेषणों और सांस्कृतिक गतिविधियों का चौराहा होते हैं। ये लोगों को आकर्षित करते हैं, क्योंकि यहां रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन की बेहतर सुविधाएं और अवसर उपलब्ध होते हैं। यह माना जाता है कि नगर समृद्धि और विविधताओं के अगुवा होते हैं, लेकिन दूसरा पहलू यह है कि नगरों में प्रदूषण, आबादी, गरीबी, सामाजिक पृथक्कीकरण, हिंसा–अपराध और गंदगी जैसी समस्याएं भी लगातार बढ़ी हैं।

**नगरीय हिंसा के कारक (Factors of Urban Crime):** नगरीकरण की अंधाधुंध दौड़ ने संसाधनों और सुविधाओं को भारी दबाव की स्थिति में ला दिया है। अधिकतर विकासशील देशों में नगरीय निर्धन लोग बेहद असुरक्षित वातावरण और निम्न आय पर जीवन जीते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन कर आने वाले लोगों के सामने बस्तियों में रहने और निर्धनता का सामना करने के अलावा कोई चारा नहीं रहता। आज के दौर में शहरीकरण से बस्तियों में रहने वाले लोगों के लिये असुरक्षित गलियों, पानी, भोजन,

**अपराध शहरों का कोई विशेष मूल घटक नहीं है, बल्कि यह नगरीय सामाजिक जीवन, अलगाववाद और मूल्यों की कमी की वजह से उपजने वाली स्थिति है। अपराध पीड़ितों पर होने वाले इसके प्रभाव को शहरों में रहने के एक प्रमुख नुकसान के तौर पर देखा जाता है।**

स्वास्थ्य जैसी बुनियादी संसाधनों तक पहुंच का अभाव और खतरों की बढ़ोतरी भी हो रही है। संयुक्त राष्ट्र के मानव संसाधन विकास कार्यक्रम के अनुसार दुनियाभर में एक अरब के करीब लोग बस्तियों, असुरक्षित आवासों में निर्धनता और अनौपचारिक व्यवस्था में रहते हैं। यही नहीं, प्राकृतिक आपदाओं के पीड़ितों का आंकड़ा भी बताता है कि नगरीय क्षेत्रों में उपेक्षित रहने वाली आबादी ही इनसे अधिक प्रभावित होती है और मानव सहायता संगठनों के लिये कई बार उनकी पर्याप्त मदद कर पाना भी संभव नहीं हो पाता। प्राकृतिक आपदाओं के साथ नगरीय हिंसा उपेक्षित रहने वाले लोगों के लिये बेहद गंभीर चुनौतियां पेश करती हैं। ये समस्याएं तब और बढ़ जाती हैं, जब उपेक्षा, निर्धनता, आर्थिक असमानताएं,

बेरोजगारी, सामाजिक पृथक्कीकरण में किसी तरह की कोई कमी नहीं आती। दुनिया में शहरीकरण के बढ़ावे के साथ, कई नगरों में हिंसा और अपराध का स्तर अभूतपूर्व तरीके से बढ़ा है, जिसने लोगों के दैनिक जीवन को कुछ इस तरह का बना दिया है मानो वे युद्धक्षेत्र में रह रहे हों।

लूटमार से लेकर संगठित अपराध तक अपराधों की श्रृंखला नगरों में भययुक्त वातावरण के स्रोत हैं। आमतौर पर अपराध आर्थिक असमानता, निर्धनता, सामाजिक असमानता, मादक पदार्थों की तस्करी जैसी परिस्थितियों से प्रारंभ होता है। इसके अलावा राजनीतिक और आर्थिक अस्थिरता, हथियारों के प्रसार और आपराधिक गिरोह भी इसकी वजह होते हैं। इसके अलावा लक्ष्य आधारित समूह सीधे तौर पर हिंसा–अपराध के कारण नहीं होते, लेकिन वे भी कई बार हिंसा में बढ़ोतरी में मददगार बन जाते हैं। नगरीय क्षेत्रों में पानी, सफाई, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी सार्वजनिक और सामाजिक सेवाओं की कमी लोगों के दैनिक जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं और स्थानीय संगठित गिरोहों अथवा राज्य भी इन पर दमनात्मक नियंत्रण रखने का प्रयास करता है। इस तरह के क्षेत्र सामाजिक, मानवाधिकार संगठनों की पहुंच से भी दूर रहते हैं, जिससे इनके स्तर पर भी वहां रहने वाले लोगों को मदद नहीं मिलती, और अगर मिलती भी है तो बेहद कम पैमाने पर। आपराधिक गतिविधियों के कारण शहरों की प्रकृति में भी बदलाव आया है, जिसके चलते सामाजिक समूहों में अलगाव, समुदायों के खुलेपन में कमी आती है जो लोगों को चहारदीवारी के भीतर रहने पर मजबूर करती है। ऐसे समुदायों में युवाओं का अपराधों की ओर झुकाव अधिक देखा गया है, जहां आपराधिक वस्तुएं सुलभ हैं, जिनमें मादक पदार्थ सबसे अहम हैं। शराब और मादक पदार्थों का इस्तेमाल हिंसा–अपराध से प्रत्यक्ष जुड़ा रहता है और यह अपसंस्कृति को भी बढ़ावा देता है।

**अपराध का सामाजिक विश्लेषण (Sociological Perspective of Crime)**: हिंसा के लिहाज से नगरीय क्षेत्र ग्रामीण अथवा उपनगरीय क्षेत्रों के मुकाबले अधिक असुरक्षित माने जाते हैं। वे कौन से कारण हैं जो किसी क्षेत्र को खतरनाक बना देते हैं, इसका जवाब कुछ शोध में तलाशने का प्रयास किया गया है। वर्थ (Wirth-1938), शॉ (Shaw-1942), सिमेल (Simmel-1951) और मॅके (McKay-1969) ने अपने अध्ययन में उन पहलुओं को उभारा है जो नगरीय परिवेश में सामाजिक असंगठन और व्यक्तिगत अलगाव की वजह बनते हैं। ये दोनों परिस्थितियां व्यक्ति अथवा समुदाय के नकारात्मक व्यवहार को बढ़ावा देती हैं जिनके कारण अपराध और नगरीय क्षेत्रों में खतरा बढ़ सकता है। इस तरह के व्यवहार की वजह विजातीयता, निम्न आर्थिक स्थिति, घुमंतू या खानाबदोश जीवन, पारिवारिक विघटन हो सकती है। अपने निबंध 'Urbanism as a Way of Life' में लुइस वर्थ बताते हैं कि नगरीय समाज में प्राथमिक समूह संबंध (परिवार और रिश्तेदार) द्वितीयक समूह संबंध (पड़ोसी, सहकर्मी) में बदल जाता है। द्वितीयक समूह संबंध अस्थायी, सतही और अवैयक्तिक संवाद आधारित होता है।

परिणामस्वरूप नगरीय जीवन यहां रहने वाले लोगों को गुमनामी की ओर धकेलता है, जिससे उनकी परस्पर दूरियां बढ़ती जाती हैं। शहरों में रहने वाले लोग अकसर उन लोगों को जानते तक नहीं हैं, जिनसे वे लगभग हर रोज संवाद स्थापित करते हैं। मसलन, दुकानदार, सहकर्मी, सहयात्री और यहां तक कि पड़ोसी भी। वर्थ मानते हैं कि द्वितीयक समूह संबंध पारिवारिक विघटन, शराब के सेवन, अपराध और नगरीय जीवन के अन्य नकारात्मक पहलुओं को बढ़ावा देते हैं। सैमसन और ग्रोव्स (1989) ने शॉ और मॅके की अवधारणा के आधार पर इंग्लैंड और वेल्स के आंकड़ों का अध्ययन किया और पाया कि सामाजिक असंगठन का सिद्धांत नगरीय क्षेत्रों में किशोरवय के अपराध की ओर झुकाव को बेहतर तरीके से प्रस्तुत करता है। अमेरिका को छोड़कर अन्य कई देशों के अध्ययन से यह भी साफ हुआ कि

बाल अपराध की बढ़ती घटनाएं किसी देश विशेष तक ही सीमित नहीं हैं। इनके अलावा कई अन्य विद्वानों ने भी शॉ और मॅके के अपराध व सामाजिक असंगठन के संबंधों के सिद्धांत का परीक्षण किया है।

## 18.6 निष्कर्ष (Conclusion)

नगरीय शासन के लिये नगरीय गरीबी निश्चित रूप से बड़ी चुनौती है और यह शहरीकरण प्रक्रिया की बड़ी बाधा भी है। बस्तियों और निर्धनता के संबंधों की वजह से शहरों में कई समस्याएं जन्म लेती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से बड़ी संख्या में लोग शहरों में आते हैं, बस्तियों में रहते हैं और नगरीय क्षेत्र की टिफिन सर्विस, रिक्शाचालन, फड़ कारोबार, घरेलू नौकर जैसी अनौपचारिक आर्थिक गतिविधियों से जुड़ते हैं। हालांकि, औपचारिक और अनौपचारिक सेवा क्षेत्र एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, फिर भी इन दोनों में गतिशीलता, शक्तियों, सुविधाओं के स्तर पर व्यापक अंतर भी रहते हैं।

भारतीय संविधान के 74वें संशोधन में शक्तियों को विकेन्द्रीकृत कर नगरीय निकायों की व्यवस्था दी गयी है। इसके बावजूद नगरीय इलाकों में शक्ति का नियंत्रण अब भी शक्तिसंपन्न लोगों के पास ही देखा जाता है, क्योंकि स्थानीय राजनेता और राजनीतिक दल राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय दलों के इशारों पर ही काम करते हैं। निकायों में अकसर एक ही पार्षद बार–बार चुने जाते हैं, जो निहित स्वार्थों की पूर्ति में लगे रहते हैं, जबकि आम आदमी को चुनाव प्रक्रिया में बेहतर स्थान नहीं मिल पाता। चुनावों में भारी मात्रा में धन खर्च किया जाता है, जो शक्ति और शासन के बीच गठजोड़ को जन्म देता है।

नगरीय अपराध नगरीय आर्थिकी का घटक बन गया है। शहरों में बुजुर्ग महिलाओं से चेन स्नैचिंग हिंसात्मक आचरण बन गया है। आपराधिक गतिविधियां, कानून–व्यवस्था की नाकामी, भ्रष्टाचार और निर्धनता अपराध के उत्पादक कारक हैं। शहरों में कई चिटफंड कंपनियां कुकुरमुत्तों की तरह उग आती हैं, जिनका संचालन संपन्न वर्ग करते हैं। इस तरह यह माना जा सकता है कि नगरीय क्षेत्रों में अपराध की बढ़ोतरी के निर्धनता के अलावा कई अन्य कारण भी हैं। परंपराओं के पुनरुत्थान की आवश्यकता नगरीय क्षेत्रों में ही महसूस की जाती है, गांवों में नहीं। इसी तरह दंगे नगरीय क्षेत्रों में ही होते हैं, गांवों में नहीं। ऐसे में निर्धनता, शक्ति और अपराधों के बीच संबंधों को समझने के लिये गहराई से अवलोकन की जरूरत महसूस होती है।

**शहरीकरण की चुनौतियां (Challenges of Urbanization):** विभिन्न कारकों के अलावा रोजगार और समृद्धि का वादा लोगों को शहरों की ओर जाने के लिये आकर्षित करता है। दुनिया की लगभग आधी आबादी शहरों में रहती है और वर्ष 2050 तक दो तिहाई जनसंख्या के शहरों की ओर चले जाने का अनुमान है। लेकिन, दुनिया के लगभग सभी नगर आज के दौर में गरीबी और पर्यावरणीय अपमानकों की समस्याओं से जूझ रहे हैं। लगातार बढ़ती आबादी से हवा–पानी की घटिया गुणवत्ता, पानी की कम उपलब्धता, कचरा निस्तारण का अभाव बढ़ रहा है। दुनियाभर के देशों में शहरों के फैलाव को देखते हुए इन सब समस्याओं के निस्तारण को मजबूत नगरीय नियोजन की जरूरत महसूस होती है।

### खतरा (Threats)

1. शहरों का लगातार विकास गरीबी को बढ़ाने की बड़ी वजह बन सकता है, जिसके चलते स्थानीय शासन के लिये सभी लोगों को सेवाएं–सुविधाएं देना असंभव हो जायेगा
2. ऊर्जा का अत्यधिक और निरंतर उपयोग वायु प्रदूषण में बहुत अधिक बढ़ोतरी की वजह बनता है, जो मानव स्वास्थ्य पर बड़ा असर डालता है
3. वाहनों का धुआं शहरों में वायु प्रदूषण को बढ़ाता है
4. सफाई व्यवस्था का अभाव और अनिस्तारित कचरे के ढेर विभिन्न बीमारियों का कारण बनते हैं
5. नगरीय विकास की प्रक्रिया में पर्यावरणीय नुकसान का खतरा बना रहता है
6. प्रदूषण और अन्य कारणों से शहरों में वनों को नुकसान हो रहा है, नये पौधे नहीं पनप पा रहे हैं
7. विषैले पदार्थों, बढ़ते वाहन, खाद्य शृंखला के अभाव से पशुओं की आबादी घट रही है

(https://www.nationalgeographic.com/environment/habitats/urban-threats/#close)

## समाधान (Solutions)

1. रोजगार सृजन और आर्थिक विकास के जरिये निर्धनता की रोकथाम
2. स्थानीय निकायों में स्थानीय समुदाय की भागीदारी को बढ़ावा देना
3. ऊर्जा उपयोग के तरीकों में नवोन्मेषण और परिवहन व्यवस्था के वैकल्पिक साधनों को बढ़ावा देकर वायु प्रदूषण पर रोकथाम
4. कचरा निस्तारण और आवास जैसी सेवाओं–सुविधाओं के लिये पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप यानी पीपीपी मोड को बढ़ावा देना
5. पौधरोपण को बढ़ावा देना और नगरों के हरित क्षेत्र के संरक्षण को नगरीय नियोजन का मूल तत्व बनाया जाना

## 18.7 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. बस्ती को परिभाषित कीजिये। नगरीय निर्धनता से आप क्या समझते हैं?
2. क्या आप मानते हैं कि नगरीय निर्धनता ही बस्तियों के बसने का मुख्य कारण है?
3. नगरीय शक्तियों और नगरीय शासन पर अपने विचार लिखें।
4. नगरीय अपराध के कारण क्या हैं?
5. शहरों में किस तरह के अपराध होते हैं ?

## 18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

Knox, P. and Pinch, S. (2010). Urban Social Geography. 6th ed. New Delhi: Pearson.

Paddison, Ronanan. (2001). Handbook of Urban Studies. New Delhi: Sage Publications.

Spates, James L. and Macionis, John J. 1987. The Sociology of Cities. Belmont, Calif: Wadsworth Publishing Company.

United Nations Human Settlements Programme. (2003). The Challenge of Slums: Global report on Human Settlements, 2003. London: Earthscan Publications.